

परमात्म वैभव { भाग ९ }

परमात्मप्रकाश प्रवचन

परमात्मा
वैभव





परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग - 5)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 117-147, परमात्मप्रकाश
द्वितीय अधिकार गाथा 70 से 107

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत्
2081

वीर संवत्
2551

ई. सन
2025

—: प्रकाशन :—

ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी (ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी)
श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, विले पार्ला, मुम्बई
एवं श्री सीमन्धर जिनालय, बिजौलियां (राज.)
के वार्षिक स्थापना दिवस के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।



प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी ।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा दुँढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवंत रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेसन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

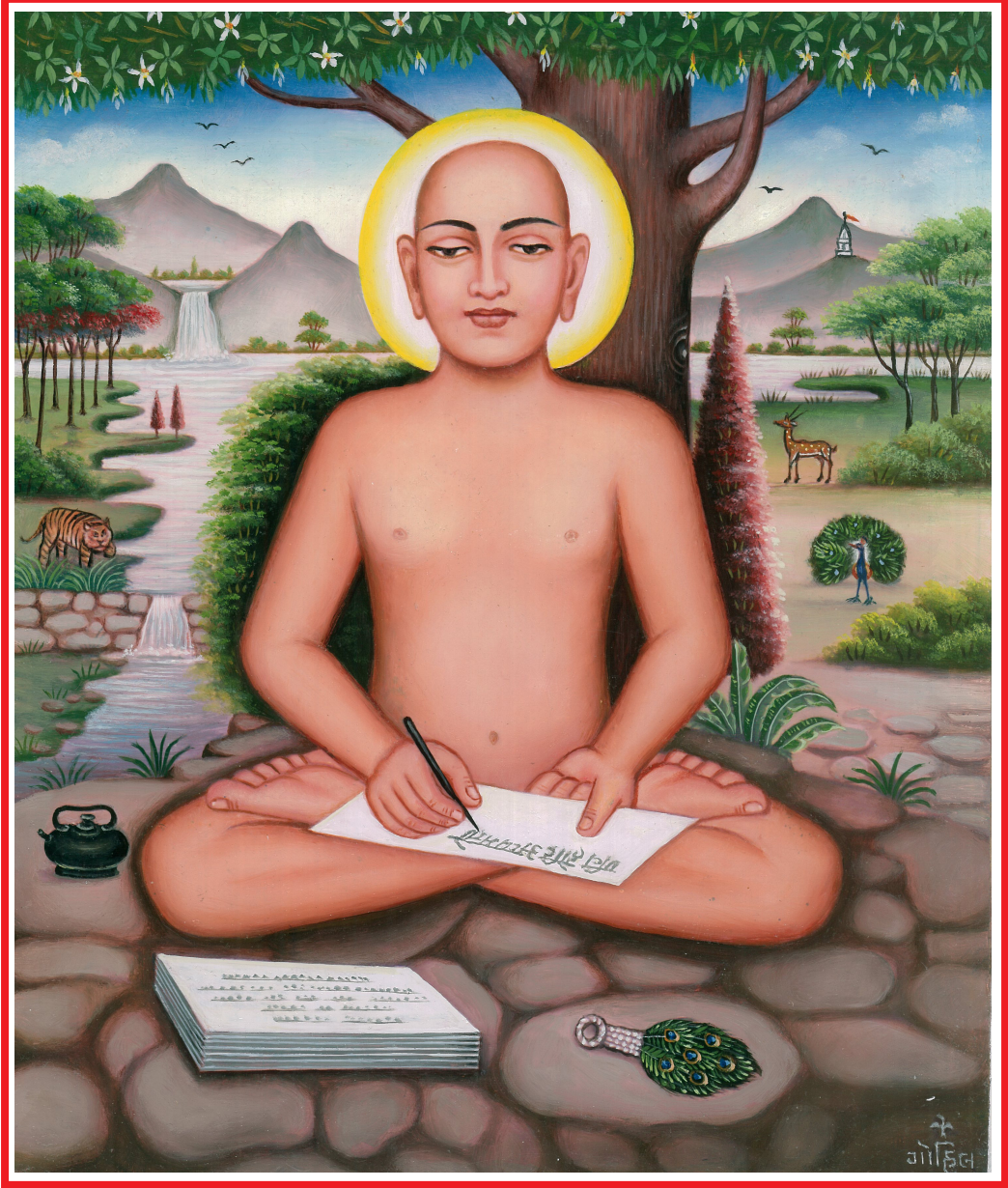
प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह पाँचवाँ भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई



श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव



अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था ।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली । दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा ।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया । सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं । जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है ।

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है । इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ । भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा । तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है । इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी । अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया ।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरू हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरू किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरू हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्त ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता ।
 2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है ।
 3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं ।
 4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है ।
 5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं ।
 6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती ।
 7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है ।
 8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है ।
 9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है ।
 10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं ।
- इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा

जयवन्त वर्तों !

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ
श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों !!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों !!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
११७	०३-०२-१९६६	गाथा - ७० से ७२	००१
११८	०४-०२-१९६६	गाथा - ७२ से ७४	०२०
११९	०५-०२-१९६६	गाथा - ७४ - ७५	०३७
१२०	०६-०२-१९६६	गाथा - ७५	०५५
१२१	०७-०२-१९६६	गाथा - ७६	०७२
१२२	०८-०२-१९६६	गाथा - ७६ से ७८	०८९
१२३	०९-०२-१९६६	गाथा - ७८ से ७९	१०५
१२४	१०-०२-१९६६	गाथा - ८० - ८१	१२२
१२५	११-०२-१९६६	गाथा - ८१ - ८२	१३८
१२६	१२-०२-१९६६	गाथा - ८२ - ८३	१५६
१२७	१३-०२-१९६६	गाथा - ८३ - ८४	१७५
१२८	१४-०२-१९६६	गाथा - ८४ - ८५	१९१
१२९	१५-०२-१९६६	गाथा - ८५ - ८६	२११
१३०	१६-०२-१९६६	गाथा - ८६ - ८७	२३०
१३१	१७-०२-१९६६	गाथा - ८७ - ८८	२४९
१३२	१८-०२-१९६६	गाथा - ८८ - ८९	२६६
१३३	१९-०२-१९६६	गाथा - ९०	२८५
१३४	२०-०२-१९६६	गाथा - ९० - ९१	३०३
१३५	२१-०२-१९६६	गाथा - ९१	३१९
१३६	२२-०२-१९६६	गाथा - ९१ - ९२	३३६
१३७	०२-०६-१९६५	गाथा - ९३ - ९४	३५०

(xvi)

१३८	०३-०६-१९६५	गाथा - ९५ - ९६	३६७
१३९	०४-०६-१९६५	गाथा - ९७ - ९८	३८८
१४०	०५-०६-१९६५	गाथा - ९८ - ९९	४०६
१४१	०६-०६-१९६५	गाथा - ९९ - १००	४२६
१४२	०८-०६-१९६५	गाथा - १०१ - १०२	४४५
१४३	०९-०६-१९६५	गाथा - १०२ - १०३	४६५
१४४	१०-०६-१९६५	गाथा - १०३ से १०५	४८५
१४५	११-०६-१९६५	गाथा - १०५ - १०६	५०८
१४६	१२-०६-१९६५	गाथा - १०६ - १०७	५२७
१४७	१३-०६-१९६५	गाथा - १०७	५४७



॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-५)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

माघ शुक्ल १३, गुरुवार, दिनांक ०३-०२-१९६६

गाथा - ७० से ७२, प्रवचन - ११७

गाथा - ७०

७०वीं गाथा। आगे यह प्रकट करते हैं कि किसी देश में जावो, चाहे जो तप करो,... मुनिपना धारण करो या बारह व्रत आदि। तो भी चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं है। यह बात करते हैं।

११७) जहिँ भावइ तहिँ जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।

केम्बइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहँ सुद्धि ण जं जि ॥७०॥

कहते हैं, हे जीव! जहाँ तेरी इच्छा हो उसी देश में जा,... क्षेत्र बदल चाहे जिस जगह, सम्मेदशिखर या गिरनार और पर्वतों में भटक। समझ में आया?

मुमुक्षु : एकान्त मिले न वहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त तो यहाँ है या (वहाँ है)? कहते हैं कि राग और विकल्प की एकता में पड़ा जहाँ जाये, वहाँ तुझे अशुद्ध ही है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो सम्मेदशिखर में जा, गिरनार जा, शत्रुंजय जा या समवसरण में जा, ले। देश कहा है न?

इच्छा हो, उसी देश में जा और जो अच्छा लगे, वही कर,... तपस्या कर, मुनिव्रत ले, व्रत ले, चाहे तेरी इच्छा हो, वह कर, लेकिन जब तक मन की शुद्धि नहीं है,... राग और पुण्य-पाप के विकल्प में जहाँ एकताबुद्धि है, वहाँ चित्त शुद्धि नहीं। समझ में आया ? लेकिन जब तक मन की शुद्धि नहीं है, तब तक किसी तरह मोक्ष नहीं हो सकता। जब तक राग की एकता और पुण्यभाव की भावना है अन्दर, परविषय अर्थात् परलक्ष्य, कषाय अर्थात् शुभाशुभभाव, उनमें जब तक उसकी भावना... भावना... भावना... है, तब तक तू चाहे जिस क्षेत्र में जा और चाहे जो त्याग तपस्या कर, (तो भी) मोक्ष नहीं। अर्थात् कि तुझे संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण नहीं।

भावार्थ :- बड़ाई,... महत्ता लेने की भावना। जिसे आत्मा रागरहित शुद्ध चिदानन्द है, उसकी बड़ाई-महत्ता लेने की दृष्टि नहीं, उसे बाहर की चीज़ में अधिकरूप से गिनाऊँ, ऐसा भाव रहे बिना रहता नहीं। बड़ाई, प्रतिष्ठा... मेरी कुछ इज्जत जमे, जगत में प्रतिष्ठा हो। परवस्तु का लाभ... इज्जत, कीर्ति आदि का। और देखे, सुने, भोगे... देखे हुए इन्द्रिय के विषय, सुने हुए वे, और भोगे अर्थात् रागादि। भोगे हुए भोगों की वांछारूप... जब तक राग की वांछा, मूर्च्छा, रंजित, तन्मय राग की इच्छा की भावना है (जो कि शुद्धात्मज्ञान के शत्रु हैं)... शुद्ध ज्ञानमय आत्मा पवित्र प्रभु की दृष्टि का अनुभव, उसके शत्रु हैं, यह सब इच्छायें। समझ में आया ? अशुभ-अशुभभाव, पर के लक्ष्य का भाव, स्वलक्ष्यी दृष्टि का अनुभव नहीं और भान नहीं, ऐसी चित्त शुद्धि मन की, अन्तर आत्मा की शुद्धि नहीं। उस शुद्धि बिना ऐसे भाव तुझे उत्पन्न हुए बिना रहेंगे नहीं। खोटे ध्यान, (जो कि शुद्धात्मज्ञान के शत्रु हैं) इनसे जब तक यह चित्त रँगा हुआ है,... जहाँ तक उनमें चित्त रंजित है, मूर्च्छित है, 'तन्मयं तिष्ठति' ऐसा पाठ है। अर्थात् पर में, राग में, कषाय में, परलक्ष्य में तन्मय है, तब तक हे जीव! किसी देश में जा,... किसी भी क्षेत्र में जा, ऐसा। साक्षात् समवसरण में जा तो तेरे लिये तो बन्ध का ही कारण है। स्पष्टीकरण करते हैं, देखो।

तीर्थादिकों में भ्रमण कर,... तीर्थ आदि शब्द है न यह ? समझ में आया ? यह तो स्पष्टीकरण 'देशान्तरं गच्छ किमप्यनुष्ठानं कुरु' इसकी व्याख्या की। तीर्थ, तीर्थ घूम, भगवान के चरण, चरण के दर्शन कर, मन्दिर के दर्शन कर, समवसरण में भी दर्शन

भगवान के कर। चैतन्य की सम्पदा ज्ञानानन्द है, उसकी अन्दर रुचि, दृष्टि हुई नहीं, इसलिए उसे यह भावना राग और विकार की ही अभिलाषा है। उस विकार की इच्छा की अभिलाषावाला देशान्तर जाये, तीर्थादिकों में भ्रमण करे **अथवा चाहे जैसा आचरण कर,...** अनुष्ठान है न पाठ में? अनुष्ठान। पंच महाव्रत धारण करे, महीने-महीने के उपवास करे, मौन रहे, चाहे वह शुभ आचरण कर। **किसी प्रकार मोक्ष नहीं है।** किसी प्रकार से संवर, निर्जरा भी होगी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द की दृष्टि हो तो उसकी भावना हो। उसकी दृष्टि नहीं, इसलिए रागादि विकल्प की ही दृष्टि और रुचि का प्रेम अर्थात् उसकी भावना है। वह भावनावाला भाव तो उसके पास पड़ा है। चाहे जो क्षेत्र और निमित्त हो संयोग, शुद्धि तो होगी नहीं।

मुमुक्षु : समवसरण में भगवान के पास जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। ऐसा बोलो न। तीर्थ आदि में यह सब आ गया। इसलिए देश में आ गया। साक्षात् भगवान हो तो भी, कहते हैं कि तेरा चित्त भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि नहीं और राग की भावना है, साक्षात् भगवान के पास जाये तो भी तेरी शुद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो बहिर् विषय की रुचि का प्रेम है, वह चाहे जिस स्थान में जा, तेरी चित्तशुद्धि होगी नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! सामान्य रीति से तो पूरी व्याख्या ऐसी है। स्वविषय चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द की रुचि, विषय और रुचि की नहीं स्वविषय की। (स्व विषय की रुचि हो) उसका नाम चित्तशुद्धि। समझ में आया?

किसी प्रकार मोक्ष नहीं है। किसी प्रकार से भी मोक्ष नहीं है। समझ में आया? 'तथापि मोक्षो नास्तीति' ऐसा है न? सारांश यह है कि काम-क्रोधादि खोटे ध्यान से... काम अर्थात् राग, क्रोध अर्थात् द्वेष। जहाँ आत्मा की दृष्टि नहीं, वहाँ राग और द्वेष की दृष्टि पड़ी है, ऐसा कहना है। काम, क्रोध अर्थात् राग और द्वेष। एक ओर भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप आत्मा है, वीतरागस्वरूप ही आत्मा है, उसकी दृष्टि नहीं, वहाँ राग-द्वेष की दृष्टि है। उसकी रुचि और उसकी भावना को भाता है वह। समझ में

आया ? काम-क्रोधादि खोटे ध्यान से यह जीव भोगों के सेवन के बिना भी... ऐसा कहना है। भले भोग का सेवन न हो, भावना अन्दर वीतराग दृष्टि नहीं, इसलिए राग की भावना है, ऐसा कहते हैं। बाहर में भोग का सेवन न हो, स्त्री का त्याग हो, बाहर से पंचेन्द्रिय विषय न दिखते हों, मुनि होकर बैठा हो। काम-क्रोधादि खोटे ध्यान से... अर्थात् कि स्वभाव की एकाग्र दृष्टि नहीं, इसलिए उनकी एकाग्रता उसे वर्तती है। फिर चाहे जिस संयोग में हो, उसमें ही तेरी लोलुपता रहेगी।

भोगों के सेवन के बिना भी शुद्धात्म-भावना से च्युत हुआ,... शुद्धात्म-भावना से च्युत, देखो! समझ में आया ? भावना शब्द से एकाग्रता। है न ? भावना शब्द पड़ा है, देखो! शुद्ध चैतन्यमूर्ति की एकाग्रता, वह उसकी भावना है। उस भावना बिना अशुद्ध की एकाग्रता अन्दर प्रगट हुई है। अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है। लो! बहुत संक्षिप्त... बहुत संक्षिप्त। शुद्ध चैतन्यस्वभाव समरसी वीतरागभाव की एकाग्रता की रुचि बिना, अशुद्धता की रुचि और एकाग्रता है, इसलिए तुझे कर्मबन्धन होगा। जरा भी कर्मबन्धन रुकेगा नहीं। कहो, अब इसमें क्या आया ? इसमें व्यवहार पहला, ऐसा कुछ नहीं आया इसमें तो। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार कहना किसे ? कठिन बातें ! स्व स्वभाव चैतन्य का पुंज प्रभु अन्तर रुचि में, दृष्टि में आये बिना यह भेदवाला राग, उसे व्यवहार कहे कौन ? समझ में आया ? अभेद चीज़ की दृष्टि बिना भेदवाला विकल्प है, वह व्यवहार है, ऐसा कहना किसे ?

मुमुक्षु : सब भूल जाने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भूलकर... पर भूल जाना। अपने को भूल जाना ? शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसकी अन्तर में एकाग्रता में दूसरा सब भूल जाना। और दूसरे को भूले बिना भगवान की एकाग्रता होती नहीं। भगवान को, दूसरे भगवान को भूले बिना इस भगवान में एकाग्रता नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो शुद्धात्मा की एकाग्रता। एक-अग्र जिसका विषय स्वभाव शुद्ध है।

उसकी एकाग्रता की रुचि बिना, उसकी एकाग्रता बिना अर्थात् उसकी भावना बिना च्युत हुआ है उससे। इसलिए उसे क्षण में-पल में इच्छा की ही एकाग्रता और भोग की वासना पड़ी है। अनुभव नहीं, इसलिए भोग की वासना है, ऐसा कहा है यहाँ। समझ में आया? अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है। लो! यह ६६ गाथा में आ गया है। असंयमी कहा था न वहाँ ६६ में। जिसकी चित्त शुद्धि नहीं, वह असंयमी है, ऐसा वहाँ कहा था। यहाँ शुद्ध नहीं, उसे अशुद्ध भाव से कर्म बाँधता है, ऐसा कहा। समझ में आया?

इसलिए हमेशा चित्त की शुद्धता रखनी चाहिए। अर्थात् कि आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध है, उसका माहात्म्य करके एकाग्र रखना चाहिए। 'लाख बात की बात (यही) निश्चय उर आणो। वह बात है यह। अपना स्वभाव महान अचिन्त्य महान पदार्थ है। ऐसी अन्तर में रुचि और दृष्टि करनी चाहिए। उसके बिना दूसरा जो कर, उसमें तो एकान्त कर्म का बन्धन ही है, संवर-निर्जरा बिल्कुल नहीं। यह लोगों को एकान्त पड़ता है, एकान्त... एकान्त... एकान्त... अरे! भगवान! यह तेरा सम्यक् एकान्त है। तू मान, न मान, उसके साथ सत्य को सम्बन्ध क्या है? एकान्त रे एकान्त। ऐसा ही कथन दूसरी जगह भी कहा है, इस लोक और परलोक के भोगों का अभिलाषी और कषायों से कालिमारूप हुआ अवर्तमान विषयों का वांछक... वर्तमान नहीं अर्थात् उसकी इच्छा अन्दर पड़ी है न राग अर्थात्। और वर्तमान विषयों में अत्यन्त आसक्त हुआ...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। अति मोहित होने से भोगों को नहीं भोगता हुआ भी अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है। समझ में आया? आता है न, समयसार में आता है। जयसेनाचार्य की टीका में यह श्लोक आता है। टीका में। लक्ष्य का अधिकार जहाँ दिया है न लक्ष्य। भोग नहीं भोगता होने पर भी, ऐसा है प्रायः गाथा... तन्दुल मच्छ है न, तन्दुल मच्छ? वहाँ कोई भोग सकता नहीं, खा सकता नहीं, तीव्र राग की भावना भाता है। बस! उससे पहला संहनन है, फिर नरक में जाता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अनाचार मिथ्यात्व का। उसे भोगता नहीं न। भोगे तो अनाचार

कहलाये, ऐसा। यह आता है न अतिचार का वहाँ? वह तो व्रत की अपेक्षा से। यह चार तो राग की एकता के अनुभव की बात है यह। ठीक कहा यह। उन अतिचार में आता है न, ऐसा करे तो ऐसा करे। भोगे तो ... वहाँ तक अतिचार। और भोगे परन्तु आसक्ति से भोगे तो अनाचार। ऐसा आता है न? सामायिक के पाठ में आता है। बत्तीस श्लोक में यह आता है न? सामायिक के पाठ आते हैं न? 'तत्त्वेषु मैत्री गुणशु प्रमोद...' उसमें यह आता है। यह तो सम्यग्दर्शनसहित ऐसी तीव्रता आसक्ति की न हुई हो और आ गया होता है, उसे अतिचार गिना है। और तीव्रता हो तो उसे अनाचार (गिना है)। वह व्रत की अपेक्षा से। यहाँ तो अभी मूल वस्तु की ही बात है यहाँ तो। स्वभाव का अनुभव भोगना और राग का अनुभव भोगना, दोनों की एक ही बात है यहाँ तो।

वर्तमान आत्मा के अन्तर शुद्ध आनन्द की रुचि का पोषाण अन्दर हुआ नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, रुचि, पोषाण अन्दर नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का भोग्यभाव जहाँ नहीं, वहाँ आगे राग का भोग्यभाव है, इसलिए अशुद्धता को ही भोगता है। भले क्रिया बाहर में भोगने की न हो देहादि से, परन्तु भाव में तो वह अशुद्ध को ही भोगता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है। निश्चय कहना है न? 'बंधदि भावेण कम्माणि' जो यह स्वयं लिखा, उसका आधार दिया है। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७१

आगे शुभ, अशुभ और शुद्ध इन तीन उपयोगों को कहते हैं:— आत्मा में तीन प्रकार के परिणाम होते हैं। एक शुभ उपयोगरूपी परिणाम, एक अशुभ उपयोगरूपी परिणाम, एक शुद्ध उपयोगरूपी परिणाम। उस अशुद्ध उपयोग के दो प्रकार—शुभ और अशुभ। उनसे रहित एक शुद्ध। ऐसे परिणाम तीन प्रकार के, उनका क्या फल? उसकी व्याख्या करते हैं।

१९८) सुह-परिणामं धम्मु पर असुहं होइ अहम्मु।

दोहिं वि एहिं विवज्जियउ सुद्ध ण बंधइ कम्मु ॥७१॥

लो ! दान पूजादि शुभ परिणामों से... मुख्यरूप व्यवहारधर्म, पुण्यरूप व्यवहारधर्म, लो ! परम शब्द पड़ा है न, इसलिए मुख्यता से कहा । सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन में... समझ में आया ? सम्यक् शुद्ध चैतन्य की दृष्टि में शुभ परिणाम यदि हों तो उसे मुख्यरूप से तो पुण्यबन्ध का कारण है । देखो ! दान पूजादि शुभ परिणामों से पुण्यरूप व्यवहारधर्म मुख्यता से होता है,... 'पुण्यं भवति' ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसकी ही बात है । कहो, समझ में आया ? मिथ्यात्वसहित अशुभ परिणाम हो, वह भी बात साथ में लेंगे ।

विषय-कषायादि अशुभ परिणामों से पाप होता है,... कहो, मिथ्यादृष्टि और उसके साथ अशुभ परिणाम, ये सब, उनसे तो अकेला पाप का ही बन्ध होता है । और इन दोनों से रहित मिथ्यात्व, रागादि रहित शुद्ध परिणाम अथवा परिणामधारी पुरुष... ऐसे दो अर्थ हैं । दोनों हैं न पाठ में ? समझ में आया ? ज्ञानावरणादि कर्म को नहीं बाँधता । वह आठों ही कर्म को बाँधता नहीं ।

भावार्थ :- जैसे स्फटिकमणि शुद्ध उज्ज्वल है... दृष्टान्त दिया देखो अब । स्फटिकमणि सफेद उज्ज्वल स्फटिकमणि है । उसके जो काला डंक लगावें, तो काला मालूम होता है,... समझ में आया ? और पीला डंक लगावें... साथ में फूल या वस्त्र कोई ऐसे लगावे स्फटिक के साथ । पीला डंक लगावें तो पीला भासता है, और यदि कुछ भी न लगावें, तो शुद्ध स्फटिक ही है,... सफेद स्फटिक रत्न । यदि कुछ भी न जोड़े तो वह है, ऐसा शुद्ध रहता है । समझ में आया ?

उसी तरह यह आत्मा क्रम से अशुभ, शुभ, शुद्ध इन परिणामों से परिणत होता है । देखो, समझ में आया ? इसमें कर्म-फर्म की बात भी नहीं ली । कोई तीव्र कर्म का उदय हो तो अशुभरूप परिणमे, मन्द हो तो शुभरूप परिणमे । समझ में आया ? उनमें से मिथ्यात्व और विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से तो पाप को ही बाँधता है,... रागादि की एकताबुद्धि और उसके साथ अशुभ परिणाम दूसरे, मिथ्यात्व के परिणाम हों या राग के-द्वेष के परिणाम, उस अशुभ के अवलम्बन से तो पाप को

बाँधे। देखो, अवलम्बन का अर्थ सहायता से। समझ में आया ? ‘अवलम्बनेन’ पाठ है न ‘कषायाद्यवलम्बनेन’ अवलम्बन कहो या निमित्त कहो या सहायता कहो। वह आत्मा के शुद्धस्वभाव में अशुभ का अवलम्बन है तो वह पाप बाँधता है। समझ में आया ?

उसके फल से नरक निगोदादि के दुःखों को भोगता है... लो ! समझ में आया ? यह अशुभ को तो अकेला मिथ्यादृष्टि का ही लिया। शुभ में मिथ्यादृष्टि नहीं। सम्यग्दृष्टि सहित की बात लेंगे इसमें। समझ में आया ? अशुभभाव तो अकेला मिथ्यात्व। मिथ्यात्व, वह अशुभभाव है न ? मिथ्यात्व अशुभभाव है, बाकी हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, वह विषय भाव है। उससे तो नरक में और मिथ्यात्व की तीव्रता हो तो निगोद में (जायेगा), ऐसा कहते हैं। अशुभभाव की तीव्रता हो तो नरक में और मिथ्यात्व की अशुभ की तीव्रता हो तो निगोद में (जायेगा)।

दुःखों को भोगता है... वहाँ कोई शरण नहीं, ऐसे संयोग में। यहाँ भी कोई शरण नहीं था। चैतन्य शरण को देखा नहीं था। मिथ्यात्वभाव अशुभ हिंसा आदि तीव्र परिणाम, अकेले तीव्र परिणाम हुए, मिथ्यात्व आदि हो, तथापि अकेले तीव्र हों तो नरक में जाये। मिथ्यात्व की तीव्रतासहित हो तो निगोद में जाये। स्वभाव तत्त्व का विरोध, तत्त्व का चैतन्यस्वरूप निर्विकल्प अनाकुल का सख्त विरोध, यहाँ से निगोद में जाये। उस सहित अशुभ परिणाम की अकेली तीव्रता विशेष हो जाये तो नरक में जाये।

अब शुभ की ली। देखो ! समकित्ती की बात है, हों ! और अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों के गुणस्मरण... यह शुभभाव है, यह शुभ उपयोग है। साक्षात् परमात्मा, साक्षात् सिद्ध भगवान, आचार्य, उपाध्याय, साधु भाव... भाववाले, उनका गुणस्मरण, उनका गुणस्मरण, वह शुभभाव है, ऐसा कहते हैं। लो ! कोई कहे कि भाई ! भगवान के गुणस्मरण में राग क्या आया ? क्यों गुणस्मरण में तो ऐसा कि शुद्धता आयी, ऐसा। अरिहन्त परोक्ष हो गये। आता है ऐसा कुछ ? ऐई ! आता है। समझ में आया ? प्रत्यक्ष इन्द्रिय और उसे गुणस्मरण में आया तो परोक्ष (अरिहन्त हो गया)। परोक्ष नहीं, वह तो विकल्प है। अरिहन्त, सिद्ध, अचार्य, उपाध्याय,

साधु के गुणस्मरण केवलज्ञान आदि का स्मरण, हों! देखो यहाँ। केवलज्ञान, केवलदर्शन, सिद्ध का अनन्त आनन्द इत्यादि, उनका गुणस्मरण सम्यग्दृष्टि को शुभभाव होता है। समझ में आया? है इसमें भीखाभाई? यह पढ़े भी है या नहीं अन्दर? परन्तु शब्द पड़े हैं या नहीं?

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, पाँच परमेष्ठियों के गुणस्मरण और दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से... दान और क्रिया सम्यग्दृष्टि की है यहाँ, हों! संसार की स्थिति अर्थात् जो लम्बी स्थिति है, सम्यग्दर्शन तो है, कर्म की स्थिति बहुत घटायी है, परन्तु अभी उसकी स्थिति लम्बी है, उसे शुभभाव के योग से स्थिति घटती है। कर्म की स्थिति घटती है न? राग मन्द है न? स्थिति कम पड़ती है, तीव्र हो तो अधिक पड़ती है। ऐसा, हों! संसार की स्थिति का अर्थ यह। संसार का नाश, ऐसी यहाँ बात नहीं। नाश तो दृष्टि और उसकी स्थिरता से ही होता है। शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और उसकी स्थिरता से संसार का अभाव—नाश होता है। यह संसार की स्थिति तो, शुद्ध दृष्टि है उसमें कर्म की स्थिति कितनी ही बढ़ाता है अभी उसके गुणस्थान प्रमाण में, उसे अशुभ में अधिक स्थिति बँधती है, शुभ में थोड़ी कम (बँधेगी) वह संसार की स्थिति छेदी है, ऐसा कहा जाता है। ओहोहो! ऐसे कौन? तीर्थकरनामकर्म उसको आदि ले... देखो! देखो! तीर्थकर नाम कहा न? वह तीर्थकरनामकर्म भी शुभभाव से बँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें बन्धन होता है, उसमें कहीं अबन्ध परिणाम नहीं, ऐसा कहते हैं। तीर्थकरनामकर्म प्रकृति बँधे, उसे केवल (ज्ञान) होता ही है वह।

मुमुक्षु : अभी बन्ध

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बन्ध परन्तु बाद में तो वह तीर्थकरप्रकृति बँधी, इसलिए केवलज्ञान होनेवाला ही है उसे। बँधी इसलिए हुआ, अर्थात् होने का होगा? यह किसने कहा? समझ में आया? वह तो उसकी योग्यता ही ऐसी है कि उस शुभभाव से जो बँधा है, उस शुभ को छेदकर केवल (ज्ञान) पायेगा। छेदेगा तब पायेगा; वह बाँधा, इसलिए पायेगा, ऐसा नहीं। सब विवाद... विवाद। जैनदर्शन में तो कौन जाने दूसरा मिलता ही नहीं। दूसरा भोजन नहीं, हों! ऐसा हो गया, भाई! अकेला परन्तु यह क्या अकेला माँडा

है ? अकेली ही माँडी है। दूसरा कुछ लेख ही नहीं कोई ? अरे... भगवान ! चारों ओर से वह फलाने गाँव में, ढीकणा गाँव में, इस गाँव में और इस गाँव में। समझ में आया ?

शुद्धस्वभाव की दृष्टि में, आत्मा की दृष्टि शुद्ध है, ऐसे भान में शुभभाव करने का भाव नहीं, परन्तु वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। कैसा ? कि **पाँच परमेष्ठियों के गुणस्मरण...** पंच परमेष्ठी का गुणस्मरण। उसमें निमित्तरूप से वे होते हैं, इसलिए उनका गुणस्मरण और दान, पूजादि शुभ क्रिया। भाव, हों भाव। उसमें इस संसार की स्थिति छेदे। लम्बी स्थिति है, थोड़ी घटे न ! कषाय से स्थिति पड़ती है न ? योग से प्रकृति (प्रदेश) मिथ्यात्व कषाय और कषाय, यह उसमें भी मन्द कषाय हुई, इसलिए स्थिति कम पड़ती है, यह उसकी स्थिति छेदता है, ऐसा कहा जाता है। पूर्व की भी घटित है न। टीका में, टीका में है। क्या है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न अर्थ लो न। जैसे '**संसारस्थितिच्छेदपूर्वकं**'। पुरानी स्थिति कम होती है न, शुभ कषाय मन्द है। सम्यग्दर्शन का भान है, अबन्ध दृष्टि है, अबन्ध भाव का भान है। अब उस भान में तीव्र कषाय नहीं, मन्द कषाय है। शुभभाव है गुणस्मरण आदि दान, पूजा आदि, उसमें से संसार की लम्बी स्थिति है, स्थिति... वही वास्तविक संसार है। समझ में आया ? उसे कम करता है।

और तीर्थकरनामकर्म उसको आदि ले... ऐसा। आदि ले अर्थात् यशकीर्ति आदि विशिष्ट गुणरूप पुण्य प्रकृतियों को अवांछीक वृत्ति से बाँधता है। देखो ! है ? '**अनीहितवृत्त्या बध्नाति**' भाव नहीं बाँधने का, परन्तु उस भाव शुभ में वह बन्धन हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया ? आहाहा ! विवाद... विवाद... विवाद... अभी तो कौन जाने शब्द में, शब्द में विवाद उठाते हैं, हों ! ऐई.. ! पुण्य प्रकृति ऐसी, पुण्य प्रकृति का ऐसा है। अब वह पुण्य है, यह है, सुन न अब। जिसे पुण्य की मिठास है न, मिठास, उसे तो मिथ्यात्व का जहर है। आहाहा ! आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव की मिठास है, उसे स्वभाव की मिठास नहीं। आनन्दमूर्ति प्रभु अनाकुल शान्त चिदानन्द मूर्ति, उससे शुभभाव और अशुभ दोनों विभाव हैं। विभाव की मिठास, उसे स्वभाव की मिठास का अनादर है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, भले मन्द किया। मैंने तो मिठास कही है न, मिठास है न उसमें? उसका स्वाद... स्वाद... आकुलता का स्वाद। आकुलता का स्वाद। एक व्यक्ति को पूछा कि ऐ...! सम्यग्दृष्टि को अनुभव का स्वाद होता है? कि नहीं, बिल्कुल नहीं होता। ऐसा लेख था। बिल्कुल नहीं। बिल्कुल नहीं, स्वाद तो मुनि को होता है, सम्यग्दृष्टि को तो होता नहीं। वह तो अकेली आकुलता को ही वेदता है। यह शास्त्र में ऐसा लिखा है। एक व्यक्ति को पूछा था बेचारे ने कि भाई! ऐसा होता है या नहीं? निर्बन्ध कहा है। ना, नहीं, बिल्कुल नहीं, अकेला बन्धन ही है। समयसार के कथन सब पण्डित जयचन्द्रजी के स्पष्ट, वे सब तोड़कर बहुत लिखा है। बहुत भरा है यहाँ। इतनी विपरीतता। किसी ने पूछा बेचारे ने साधारण। परन्तु उसने उसका अर्थ इस प्रकार से (किया)। वे सब आर्षग्रन्थ को माननेवाले नहीं। जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव को, अविरति को आत्मा का स्वाद है, ऐसा माननेवाले, वे आर्षग्रन्थों को माननेवाले नहीं। उसने तो बेचारे ने सामान्य पूछा था। अरे! भगवान! कौन जाने....

अभी प्रश्न था। ऐसा कहा, शुद्धात्मा का ध्यान गृहस्थ को बिल्कुल नहीं होता, शुद्ध का स्वाद नहीं आता, स्वाद तो अपनी अविरतदशा गृह सम्बन्धी आकुलता का आयेगा। ऐसा सिद्ध किया है। भाई! किसी समय तो कहे। अरे! सदा ही निरन्तर ऐसा है। परन्तु वह नहीं। सम्यग्दृष्टि कहे जहाँ पर स्वानुभव कहा गया है, वह अनुभव का अर्थ श्रद्धा है। यह पहले किया था। ऐसा ही किया था। उसका अर्थ तो ज्ञान है। अनुभव का अर्थ दूसरा कुछ नहीं... गृहस्थ को शुद्धात्मा का (अनुभव) होता ही नहीं है। लो! अविरत सम्यग्दृष्टि को इन्द्रिय सुख का अनुभव करता है, अतीन्द्रिय सुख का अनुभव नहीं होता। यदि कोई पुरुष यह कहे (कि) गृहस्थ को भी निश्चल निरालम्ब शुद्ध ध्यान होता है, तो समझना चाहिए कि इस प्रकार प्रलाप करनेवाला पुरुष आर्षग्रन्थों को ही नहीं मानता। करनेवाले को। ऐई! आहाहा! एक ओर से वह धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझे न? कौन कहे? ऐसा है न किसी शास्त्र में। धर्मध्यान ही नहीं। परन्तु भद्र और धर्म में अन्तर क्या पड़ा? पण्डितजी कहते थे बेचारे, बंशीधरजी नहीं कहते

थे ? यह बात तो भाई कोई आत्मा... यह कुछ एकदम समाज के साथ मिलान खाये, (ऐसी नहीं) । वह तो पुण्य हो तो वहाँ तक चले । बाकी यह बात अकेला निवृत्त पंथ, अत्यन्त निराला चैतन्य शुद्ध ज्ञायक की दृष्टि में राग-बाग कुछ सहायक हो, ऐसा है ही नहीं । समझ में आया ? निमित्त अकिंचित्कर उसमें है । यह वस्तु बैठे बिना एक भी कदम, शुद्धता का कदम नहीं आवे उसे । समझ में आया ? यहाँ तो तीर्थकर प्रकृतिवाला समकिती लिया । देखो !

मुमुक्षु : चौथे में बँधे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चौथे में बँधे । चौथे, पाँचवें में आदि ।

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप का पिण्ड है, वह तो अकेला । आत्मा अर्थात् शुद्धस्वरूप, शुद्धस्वभाव का पिण्ड । एक समय की जरा अशुद्धता विकृति है, वह एक समयमात्र है, बाकी तो पूरा शुद्धस्वभाव का पिण्ड है । परम स्वरूप है, परमात्मस्वरूप । परमात्म अर्थात् परम चैतन्यस्वरूप, परम चैतन्यस्वरूप, अकेला चैतन्य परम स्वरूप । उसमें राग, बन्ध कुछ नहीं । ऐसे चैतन्य की एकता की दृष्टि हुए बिना उसे धर्म की शुरुआत किसी प्रकार से नहीं होती । लाख बात की बात । समझ में आया ? क्या हो ? आत्मा, उसे अन्तर में स्वीकृति न दे, तब तक यह बात नहीं... नहीं... ऐसा नहीं होता... ऐसा नहीं होता... ऐसा नहीं होता... ... तीर्थकर समकिती जीव...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह कहे न वह यह बात तो बहुत बार आ गयी है । यह तो वह का वह रखा करे, नया नहीं उसके पास अब ।

पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण समकिती करे, उस गुणस्मरण में शुभभाव आता है । अपने स्वरूप की एकता में शुद्धभाव होता है । परमेष्ठी के गुणस्मरण में तो शुभ विकल्प ही है, शुभराग पुण्य ही है । दान, मुनियों को दान देना, धर्मात्मा को दान समकिती (दे), उस दान में शुभभाव है । कोई कहे कि दान देने से संसार का नाश होता है । ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो । दान कहा न ? और पूजा । भगवान की साक्षात् तीर्थकर की समवसरण में पूजा करता हो या प्रतिमा की पूजा, वह सब शुभ क्रिया, दया, भक्ति,

स्तवन, स्तुति। समझ में आया? शुभभाव है। सम्यग्दर्शन में भान है कि यह शुभभाव मेरी चीज़ नहीं। परन्तु वह भाव, वीतराग हुआ नहीं, इसलिए आये बिना रहता नहीं। इसलिए उसे करता है, ऐसा भी व्यवहार से कहा जाता है। परिणमता है, इसलिए (कहा जाता है)। उसका फल बहुत कर्म की स्थिति हो, वह थोड़ी होती है। वह कहता है, अनन्त स्थिति को छेदते हैं। ऐसा आया था। अनन्त स्थिति होती ही नहीं, उसे—समकित्ती को। अन्तः कोड़ाकोड़ी की ही स्थिति होती है। उसमें वह स्थिति घटावे शुभभाव में। शुद्धता का भान-सान चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... शुभराग में कर्म की स्थिति—अवधि कम होती है।

तीर्थकरनामकर्म उसको आदि ले विशिष्ट (खास) गुणरूप पुण्य प्रकृतियों को... लो! आहारकशरीरादि ऐसी-ऐसी यशकीर्ति... समझ में आया? ऊँची प्रकृतियाँ उसे अवांछीक वृत्ति से बाँधता है। इच्छा नहीं तो भी वे बँध जाती हैं। तथा केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप... देखो, समझ में आया? यहाँ अवलम्बन लिया, भाई! समझ में आया? उनमें तीनों में अवलम्बन-अवलम्बन (था)। शुभपरिणाम, अशुभपरिणाम, शुद्धपरिणाम, वह अवलम्बन। केवलज्ञानादि शुद्धात्मा केवल भगवान् शुद्धस्वरूप चैतन्य है, उसका अवलम्बन, उसकी दृष्टि और उसका आचरण का उपयोग, शुद्ध उपयोग, शुद्ध उपयोग। शुद्ध स्वभाव का उपयोग शुद्ध। समझ में आया?

केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप... अकेला आत्मा। अवलम्बन उनका—पंच परमेष्ठी का नहीं रहा, ऐसा कहा। पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण का अवलम्बन तो शुभभाव में गया। मिथ्यात्व, अव्रतादि जो कषाय परिणाम हैं तीव्र, वह अशुभ में गया। यह अकेला केवल अकेला प्रभु स्वयं शुद्ध ज्ञानमूर्ति अनाकुल शान्तरस का पूर, उसका अवलम्बन अर्थात् कि उसका आश्रय। समझ में आया? अर्थात् कि उसका आधार। उसके अवलम्बनरूप शुद्ध उपयोग, ऐसा वापस। वह अवलम्बनरूप शुद्ध (उपयोग) कहा न? यहाँ डाला पाठ में, ऐसा है। 'अवलम्बनेन शुद्धोपयोगेन' ऐसा। समझ में आया? उसमें ... कहा था। ...दान, पूजादि संसार स्थिति। समझे न? दान, पूजादि... वहाँ अवलम्बन शब्द नहीं पड़ा। गुणस्मरण नाम आया न? वह आया न अवलम्बन?

समझ में आया ? पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण, दान, पूजादि वहाँ अवलम्बन हो गया। इसलिए ऐसा हो गया। समझ में आया ?

अशुभभाव में अशुभ का परिणामन हुआ आत्मा को, ऐसा। अवलम्बन अर्थात्। शुभ में उसका गुणस्मरण आदि अवलम्बन हुआ न, वह और शुद्ध में आत्मा का अवलम्बन हुआ, ऐसा। समझ में आया ? रह गया अकेला ... स्थिर होने के लिये रहा अकेला स्थान आत्मा। उसके अन्तर में स्थिर हुआ, कहते हैं, शुद्ध उपयोग (हुआ), उससे मुक्ति है, उससे संवर-निर्जरा और मुक्ति है। बाकी अशुभ से बन्धन और शुभ से भी बन्धन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

उसी भव में केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप मोक्ष को पाता है। 'केवलज्ञानाद्य-नन्तगुण मोक्षं च लभते' इसलिए शुभभाव में, ऐसा लिया है। इन तीन प्रकार के उपयोगों में से सर्वथा उपादेय तो शुद्धोपयोग ही है, ... तीन प्रकार के उपयोग में सर्वथा तो शुद्ध उपयोग आत्मा का अन्तर आचरण, आत्मा के ओर की दृष्टि हुई, उसका आचरण एकाकार, वही आदरणीय है। देखो, उपयोग आदरणीय है, ऐसा कहा है, हों ! सर्वथा उपादेय। परिणाम है शुद्ध उपयोग। वह आदरणीय है न ? प्रगट करने योग्य का अर्थ वह आदरणीय है, ऐसा। आदरणीय तो द्रव्यस्वभाव है, परन्तु द्रव्यस्वभाव इन तीन परिणाम की अपेक्षा से बात कहनी है न ? शुभ, अशुभ और शुद्ध। सर्वथा उपादेय। समझ में आया ? पाठ में वह है ... अर्थात् मुख्य है। सर्वथा। वह गौण हो गया। सर्व प्रकार से उपयोग भगवान आत्मा, दूसरा भूलकर एक भगवान का जो शुद्ध उपयोग आत्मा का अपना, वही आदरणीय है। समझ में आया ?

अन्य नहीं है। समझ में आया ? अर्थात् अभिप्राय डाला है। और शुभ, अशुभ इन दोनों में से... स्पष्टीकरण किया यह तो। अशुभ तो सब प्रकार से निषिद्ध है, ... उस शुभ को निषिद्ध कहा है न, अशुभ तो निषिद्ध है ही। नरक निगोद का कारण है, ... अशुभ परिणाम। मिथ्यादृष्टि, राग की एकताबुद्धि और पाप के भाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, वह तो नरक और निगोद का काम है। किसी तरह उपादेय नहीं है... किसी तरह उपादेय नहीं है, हेय है, तथा शुभोपयोग प्रथम अवस्था

में उपादेय है,... ऐसा आता है न, इसलिए अशुभ की अपेक्षा से शुभ वह उपादेय है। अर्थात् आता है, इस अपेक्षा से। और परम अवस्था में उपादेय नहीं है,... ऐसा। आगे जहाँ शुभाशुभ परिणाम रहित हो गया, तब से वे हेय है। लो! समझ में आया? यह ७१ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ७२

इस प्रकार इकतालीस दोहों के महास्थल में पाँच दोहों में शुद्धोपयोग का व्याख्यान किया। ठीक! आगे पन्द्रह दोहों में वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं।

१९९) दाणिं लब्धइ भोउ पर इंदत्तणु वि तवेण।

जम्मण-मरण-विवज्जियउ पउ लब्धइ णाणेण ॥७२॥

‘णाणेण’ कहा है यह। दान से नियम करके पाँच इन्द्रियों के भोग प्राप्त होते हैं,... दान का फल। दान दिया, ऐसा उसे मिले अनुकूल। समझ में आया? स्पष्टीकरण करेंगे। दान से नियम से पाँच इन्द्रिय के भोग प्राप्त होते हैं। दान से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं। परम्परा कहा जाता है। दान करे तो परम्परा मुक्ति होती है, ऐसा वह कथन आवे न! परम्परा, वह तो व्यवहार से बात की है। कारण है या नहीं? कारण है या नहीं? ऐसा कहे। कारण बिना कार्य होते होंगे? ऐसा कहे। व्यवहार कारण कहा न? व्यवहार साधन। आहाहा! जगत को सत्य मिलना बहुत कठिन, महाँगा पड़ गया। मुश्किल-मुश्किल से समय, थोड़ा मिला मुश्किल से समय, थोड़ा यह तो कहीं अनन्त काल में यह ... वर्ष अर्थात्। आहाहा! किसी ने कहा न, जादवजीभाई को वह हुआ है। सुना न सेठ! ऐसे पड़े थे लो। कोई धनी और धोरी। असाध्य।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, होता है न। यह तो रास्ते में पड़े। क्या करे परन्तु देह की स्थिति होनेवाली उस काल में बदलती है कहीं? रास्ते में ही पड़ा है कब? वहाँ स्त्री,

पुत्र के पास पड़ा था, (तब भी) रास्ते में ही पड़ा था, मुफ्त का मानता है कि मेरे घर में हूँ। आहाहा! दिग्विजय दरबार गुजर गये। ...वह तो परन्तु स्थिति पूरी हो तो चला जाये। बड़े राजा हो या चक्रवर्ती हो। वह जहाँ संयोगी स्थिति की अवधि होती है, या संयोग को... पदार्थ में होता है? आहाहा! राजा हो या महाराज हो या चक्रवर्ती इन्द्र हो। डोले, पूरी स्थिति हुई तो उठे डोला। आहाहा! कहते हैं कि भाई! ऐसे थोड़े काल में यह कर ले न! बापू! यह बात की। समझ में आया?

मुमुक्षु : तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या अपने आप करे? कौन करे? लो! मर जाने को करता है कुछ। क्या करता था मर जाकर। धर्म किया?

यहाँ तो दान से नियम से। देखो, ... की व्याख्या कही। निश्चय से पाँच इन्द्रिय के भोग प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। है न? 'दाणिं लब्ध्वा भोउ पर' और तप से इन्द्र-पद मिलता है,... यह मुनिव्रत पालन करे, बारह व्रत, पंच महाव्रत पाले, अहिंसा व्रत पाले, ब्रह्मचर्य पाले। समझ में आया? उस मुनिपने से तो इन्द्रपद मिले, पुण्य बाँधे तो। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह बात सच्ची है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सहस्र धर्म का अर्थ क्या है? कि उस जाति का रस होता है न! वह हो उसमें क्या परन्तु उसके साथ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... दान ऐसी आशा से जो देता है, उसे तो पाप बंधता है, उसे तो कहाँ पुण्य भी बँधता है? वह तो कहते हैं, भगवान की मूर्ति (स्थापित करे) उसके पुण्य सरस्वती भी नहीं कह सकती। ऐसा आता है। सम्यग्दृष्टि जीव जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर आदि की भक्ति करे। समझ में आया? बनावे। बनावे तो अपने आप हो शुभभाव। इतना पुण्य बाँधे कि जिसे सरस्वती कह नहीं सकती। अर्थात् कि आत्मा का भान है और उसमें पुण्य का भाव ऐसा हुआ है। गुणानुस्मरण गुण आदि का भाव। वह पुण्य बँधता है, तब ऐसा कहे, परन्तु इससे वह पुण्य आदरणीय है, ऐसा नहीं। और

पुण्य के फल में धूल मिले यह पैसा-बैसा, इससे कहीं आत्मा को लाभ है, ऐसा है नहीं। आकुलता है, वहाँ लक्ष्मी में जितनी वृत्ति जाये, उतनी आकुलता है। मुफ्त का होशिडा होंश करे राग की। पैसे की। दूसरे का पैसा देखकर होंश करे कि ओहो! यह सुखी लगता है, हों! हम दुःखी हैं, हों! मूढ़ को भी माप भी करना आता नहीं। कौन सुखी है परन्तु जगत में? 'सुखिया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया।' एक आत्मा के ज्ञान, श्रद्धा और शान्तिवाले सुखी हैं, बाकी सब दुखिया हैं। लक्ष्मी के आश्रय से सुख कैसा?

यहाँ तो कहते हैं, मुनिपना कदाचित् मिथ्यादृष्टि हो और पालन करे तो अहमिन्द्र आदि की पदवी मिले। उत्कृष्ट की बात है। इन्द्र, ... तो समकित्ती होते हैं। और वीतराग स्वसंवेदन। देखो 'णाणेण' ऐसी बात ली है। एक आत्मज्ञान द्वारा ही मुक्ति होती है, बाकी कोई उपाय उसका है ही नहीं। भगवान आत्मा ज्ञान का सागर है। देखो, पाठ में 'णाणेण' कहा है। और इसका अर्थ कहा कि उन शुभाशुभभावरहित, रागरहित ज्ञान, ऐसा। रागरहित का ज्ञान। समझ में आया? 'णाणेण' टीका में लिया है। तथा वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से... 'णाणेण' ऐसा। अकेला ज्ञान अर्थात्? ऐसा ज्ञान—जाने, ऐसा नहीं। राग और विकल्परहित चैतन्य ज्ञानानन्द का ज्ञान। अर्थात् रागरहित का आत्मा का ज्ञान। आत्मा का ज्ञान हो, रागरहित ही ज्ञान हो। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान हो, वह विकल्प और इच्छारहित ही ज्ञान होता है। उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसे वीतराग स्वसंवेदनज्ञान।

यह व्याख्या पहले अपने आ गयी है। चौथे गुणस्थान से स्वसंवेदनज्ञान (होता है)। पहले आ गयी है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से होता है वह। यहाँ अकेला मोक्ष कहना है न? विशेष स्थिरता हो और आत्मा की स्थिरता अकेला वीतरागी ज्ञान खुल गया है। ओहो! अन्तर में पूर्णानन्द को लेने अन्दर झंखना में एकाग्र हो जायेगा न आनन्द में! ऐसा वीतरागी आनन्द, ऐसा जो ज्ञान। वीतरागी आनन्द, ऐसा ज्ञान—ऐसा। स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना, सं-प्रत्यक्ष वेदन ऐसा जो आत्मा का ज्ञान।

जन्म-जरा-मरण से रहित जो मोक्ष-पद वह मिलता है। तीन का स्पष्टीकरण किया। शुभ दान से पुण्य मिले भोग इन्द्रिय के, इन्द्रिय के। अतीन्द्रिय नहीं उसमें वह।

अशुभभाव से,... समझ में आया ? यहाँ तो शुभ से यह भोग मिले, इतना लिया। और बहुत तप करे तो उससे इन्द्रपद मिले इतना। अशुभ की यहाँ बात नहीं ली। समझ में आया ? उसमें ले गये वे तो। यह पहली हो गयी न यह ? शुभ के दो प्रकार किये। दानादि में पाँच इन्द्रिय के भोग मिलें और मुनिपने के व्रतादि पालन करें आत्मज्ञानरहित, आत्मदर्शनरहित तो इन्द्रपद मिले। और आत्मदर्शनसहित ऐसा शुभभाव हो तो वह भी इन्द्रपद में जाये। परन्तु उस शुभभाव के फल में जाता है, आत्मज्ञान के फल में वह हो नहीं सकता। समझ में आया ? **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से...** 'जन्मजरणविवर्जितं' जन्मना और मरना, उससे रहित जो मोक्ष है, वह मिलता है। लो ! समझ में आया ? दोनों स्पष्टीकरण करेंगे, हों !

भावार्थ :— आहार, अभय, औषध और शास्त्र इन चार तरह के दानों को यदि सम्यक्त्वरहित करे,... देखो ! है न ? तिर्यच होते हैं। नहीं कहा था ? एक मुनि को आहार देते थे। ऋषभदेव भगवान का जीव... पूर्व में मुनि को आहार देते थे जंगल में पति-पत्नी। चार जनें (जीव) बैठे थे। समझे न ? शूकर, नेवला। क्या कहा ? सिंह और बन्दर। चार बैठे थे। तिर्यच बैठे थे ऐसे। मुनि को आहार देते थे। आहा ! ऐसे, ओहो ! ऐसा भाव हुआ। वह देनेवाले, वे भी मिथ्यादृष्टि थे। वे मरकर जुगलिया में गये। जुगलिया-जुगलिया है न ? पति-पत्नी, भाई-बहिन होते हैं। वे वहाँ जन्मे, छहों जनें जन्मे। समझ में आया ? मुनि को दान देते थे, सम्यग्दर्शन नहीं था, मिथ्यादृष्टि थे, परन्तु दान दिया उसमें उन चार जनें—पशुओं ने अनुमोदन किया। आहाहा ! छहों जुगलिया में गये। बस ! उसका फल इतना।

चार तरह के दानों को यदि सम्यक्त्वरहित करे,... आहार दे, अभयदान दे, औषध दे, शास्त्रदान दे, लो न ! तो भोगभूमि के सुख पाता है,... भोगभूमि के कल्पवृक्ष होते हैं, उनके फल उसे मिले, ऐसा। वहाँ फिर मुनि वहाँ गये हैं और समकित पाये हैं। परन्तु यह किया, इसलिए समकित पाये हैं, ऐसा नहीं। छहों गये हैं, उसमें मुनि ऊपर से गये हैं और नीचे उतरे हैं। बोध देते हैं। वहाँ छहों जनें समकित प्राप्त करते हैं। समझ में आया ? परन्तु इसलिए इसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह दान दिया, इसलिए मनुष्य हुए वहाँ समकित प्राप्त करने की योग्यता हुई। समकित प्राप्त करने की योग्यता उस काल में

उसकी थी। उसके अपने पुरुषार्थ के ... समझ में आया ? इसलिए ऐसा करे, इसलिए वह समकित प्राप्त करेगा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : उपदेश का योग मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश का योग मिला, तथापि वह पुरुषार्थ किया। वह पुरुषार्थ है नया। वह कहीं उपदेश के कारण से नहीं, निमित्त के कारण से नहीं, दान यह सब साधन, इसलिए नहीं। उपदेश निमित्त के कारण से पावे तो उपदेश अनन्त बार मिला है। कहा, समवसरण में गया। अपने अन्तर चैतन्य के सहज स्वभाव के पुरुषार्थ से समकित पाये हैं। कहो, समझ में आया ? समकितरहित थे परन्तु भोगभूमि में हुए।

तथा सम्यक्त्वसहित दान करे, तो परम्पराय मोक्ष पाता है। देखो! समझ में आया ? 'सम्यक्त्वसहितेन तपसा तु यद्यपि निर्वाणं लभ्यते' अब इसमें दो भेद हैं, हों! समझ में आया ? 'तथापि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिविभूतिपूर्वकेणैव। वीतरागस्वसंवेदन-सम्यग्ज्ञानेन सविकल्पेन' ऐसा। राग रह गया अभी। वीतराग स्वसंवेदनज्ञान है, परन्तु राग रह गया। भाई! ऐसा शब्द है। बहुत स्पष्टीकरण नहीं किया, नहीं किया। बराबर दोनों चाहिए। सम्यग्दृष्टि को वीतराग स्वसंवेदनज्ञान है, परन्तु अभी विकल्प रह गया है, उससे देवेन्द्र आदि चक्रवर्ती (पद) पावे। वह टूटकर निर्विकल्प हो जाये तो मोक्ष पावे। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १४, शुक्रवार, दिनांक ०४-०२-१९६६

गाथा - ७२ से ७४, प्रवचन - ११८

भावार्थ फिर से देखो। आहार, अभय, औषध और शास्त्र इन चार तरह के दानों को यदि सम्यक्त्वरहित करे,... यह दान। आहारदान, अभयदान, औषधदान, शास्त्रदान, यह आत्मा के अनुभव और प्रतीति और भान बिना करे तो भोगभूमि के सुख पाता है,... जुगलिया में बाहर का संयोग अनुकूल प्राप्त होता है। समझ में आया? 'लभ्यते' उसमें भोगभूमि डाला है।

मुमुक्षु : भोग-उपभोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोग-उपभोग ... बस इतना। परन्तु इसका यहाँ स्पष्टीकरण किया भोगभूमि का।

तथा सम्यक्त्वसहित दान करे,... अर्थात् कि आत्मा के शुद्ध स्वभाव के भान, दर्शन, ज्ञान और अन्तर प्रतीति भानसहित (करे) तो परम्पराय मोक्ष पाता है। अर्थात् कि उसे रागभाग है, उसका पुण्य बँधेगा और परम्परा फिर छोड़कर मुक्ति होगी। सम्यक्त्वसहित दान करे, तो परम्पराय मोक्ष पाता है। यद्यपि प्रथम अवस्था में... ऐसा यहाँ लेना। समकित सहित तप। यद्यपि प्रथम अवस्था में अर्थात् सविकल्प अवस्था में। इतना शब्द पड़ा है अन्दर। समझ में आया? आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मस्थिरता। स्वद्रव्य की स्व से प्रतीति, स्वद्रव्य का स्व से ज्ञान, स्वद्रव्य का स्व से चारित्र, ऐसे आत्मा के ज्ञान सहित दान करे, पहली विकल्प अवस्था में। क्योंकि विकल्प जो आया तो वह देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि की विभूति भी पाता है,... विकल्प है न शुभराग, वह संयोग की प्राप्ति दे। समझ में आया?

मुमुक्षु : लाभ की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ की कहाँ बात है? यहाँ तो क्या होता है, उसकी बात है।

यह आत्मा अमृत का वृक्ष है अकेला। अतीन्द्रिय आत्मरस का सागर आत्मा, वह अतीन्द्रिय आनन्द को स्पर्शकर जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगटे, उससे आत्मा को मोक्ष का और मार्ग का लाभ होता है। एक बात है। उससे विरुद्ध जो विकल्प है, वह वास्तव में अमृत से विरुद्ध जहर है। कहो, एक ओर भगवान आत्मा अमृत अनाकुलरस का कन्द, एक ओर उससे विपरीत शुभभाव, यह विकल्प जो कहा वह। सम्यग्दृष्टि को, हों! है न पाठ में? 'सविकल्पेन तथापि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिविभूतिविशेषो भवति' समझ में आया?

यह राग है न राग... लोगों को बात ऐसी है कि ऐसी मिठास लगती है। बाहर के सुख... चक्रवर्ती नाम दिये न बड़े। देवेन्द्र, चक्रवर्ती, लो! समझे न? देवेन्द्र है, उसका ख्याल आवे। देव का इन्द्र स्वयं अन्दर में यह ख्याल न आवे, कहो। ठीक! यह ठीक साधारण व्यक्ति ... ऐई! देवेन्द्र हो, सेठिया हो, खबर आवे पाँच दिन में, लो! कि यह बैंगला हुए, यह पैसे हुए, ढेर हुए धूल के—सोना के, जवाहरात के। उसमें आत्मा को क्या? आहाहा!

ओहो! अनाकुल आनन्दमूर्ति आत्मा, अनाकुल आनन्दस्वरूप है आत्मा। अमृत का कुण्ड आत्मा अकेला अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप है। अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय दर्शन, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति अर्थात् चारित्र, उसमें से निकली हुई जितनी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वह एक ही आत्मा के स्वभाव को शान्ति देनेवाली और मुक्ति को देनेवाली है। यह एक बात है। बीच में उसे शुभराग आता है सविकल्पदशा में, पूर्ण वीतराग नहीं इसलिए, अतः कहते हैं कि उसे—अज्ञानी को जो कुछ मिले, वह अज्ञानी को, ऐसा कहा कि वह जुगलिया के भोग मिले, ऐसा कहा। समझ में आया? इसमें इतना अन्तर किया कि सम्यक् आत्म-भूमिका में राग का आदर नहीं और राग ऐसा आता है, उसके फल में इन्द्र और नरेन्द्र और चक्रवर्ती होगा। समझ में आया? दूसरी बात नहीं। भाई! बात तो यह है। आहाहा!

अरे! तुझे स्वतन्त्र होना हो तो भाई! उस स्वतन्त्रता का मार्ग ही एक यह है। भगवान आत्मा अन्तर स्वरूप महान चैतन्य पदार्थ का अवलोकन, श्रद्धा और ज्ञान, वही वस्तु, वह मोक्ष का मार्ग है। आनन्द का कारण वह और आनन्दस्वरूप वह। यह तो

विकल्प आया, वह दूसरे के विकल्प की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि की भूमिका में राग आवे—विकल्प शुभभाव, उसके फल की विशेषता, दूसरे की अपेक्षा विशेषता है, इतना बतलाने को देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि की विभूति (प्राप्त करता हुआ) दिखाई देता है। आत्मा स्वयं अनन्तगुण की विभूति प्रभु आत्मा ही है। आहाहा! वह स्वतन्त्र सुखी होने का ढिंढोरा इसे न सुहावे और चिल्लाहट मचाये, क्या करे? भाई! समझ में आया? दृष्टि में सुखरूप भगवान आत्मा लिये बिना कभी तीन काल में तेरे स्वतन्त्रता की शान्ति का पुकार नहीं उठे अन्दर से। लाख बात की बात करे अनन्त अनेक हो। लो! समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! पहली अवस्था में वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान पूरा न हो। क्या कहा? पहली दशा में चौथे, पाँचवें, छठवें में वीतरागी, अन्तर वीतरागी आत्मा का ज्ञान, वीतरागी आत्मदृष्टि, वीतरागी स्थिरता, ऐसी प्रथम भूमिका में पूर्ण न हो, इसलिए वहाँ एक ही विकल्पदशा, दान, औषध, आहार आदि मुनि को और भक्ति आदि के भाव आते हैं, होते हैं, होते हैं। उसके फलरूप से संयोगी भाव है, इसलिए उसके फलरूप से देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि की विभूति वह संयोग की विभूति मिलेगी। आहाहा! परन्तु उसे—व्यक्ति को वह जहाँ है, वहाँ उसे मजा आता है। देवेन्द्र, चक्रवर्ती की जिसे मिठास है, उसे तो मिथ्यादृष्टिपना है। उसे तो यह विकल्प भी ऐसा नहीं होता और उसे फल भी ऐसे नहीं होते। क्या हो? वस्तु ही ऐसी है वहाँ तीन काल में दूसरा क्या हो? समाज को और लोगों को रुचे या न रुचे, परन्तु मार्ग तो यह है। यह देवेन्द्र, चक्रवर्ती की विभूति सुनकर जिसे अन्दर रस आता है कि आहा...! उसे तो यह सम्यग्दर्शन ही नहीं। समझ में आया? क्या कहा? आहाहा! अरे! भगवान अनाकुल आनन्द का अनादर करके उत्पन्न हुआ राग और उसके फल का आदर माने। समझ में आया? वह वैरी को विदा करने जाता है। आना फिर से, हों! भाई! पिता का सिर काटनेवाले को विदा करने जाता है। आना फिर से दूसरे सिर काटने। ऐसा होगा? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! सुन बापू! यह अनन्त काल के दुष्काल टालना हो तो यह मार्ग है। बाकी तो दुष्काल, इसकी पर्याय में दुष्काल है। आहाहा! शुभ और अशुभराग की मिठास, उसके फल की मिठास, बापू! तेरे सुकाल के वृक्ष सूख गये हैं। भाई! आहाहा! अरे... दुनिया! दुनिया दुनिया के घर में रही। ऐसी की ऐसी अनादि से चलती

है, वह कहीं किसी का चला रुकावे, ऐसा है ? तीर्थकर हुए तो भी रुका नहीं सके । समझ में आया ?

कहते हैं कि प्रभु ! परन्तु सुन न, भाई ! यह तेरा सत्यपना, सत्यपना तो यह है । सत्यपना तो भगवान् चिदानन्द प्रभु, अरे ! उसका माहात्म्य न आवे और राग का और फल का माहात्म्य आवे, उसे ऐसी विकल्पदशा होती नहीं । समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि जो समकितसहित हो, वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानसहित ऐसे विकल्प जो हों, उनके फलरूप से, सत्य भूमिका में बँधा हुआ पुण्य है, उसके फल में, मिथ्यादृष्टि के पुण्य की अपेक्षा इसके पुण्य में भी विशेष अन्तर है । इतना बतलाने के लिये यहाँ इन्द्रपद और नरेन्द्र और चक्रवर्ती की बात की है । वह सम्यग्दृष्टि को तो वह जिस भाव से बँधे, उस भाव का ही आदर नहीं, तो उसके फल का आदर हो, (ऐसा) कैसे होगा ? आहाहा ! कठिन मार्ग, बापू ! ओहोहो ! समझ में आया ?

तो भी निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानकर मोक्ष ही है । अर्थात् क्या कहा ? यह विकल्प है बाकी, उसे तोड़कर अत्यन्त निर्विकल्प वीतरागदशा करे तो मोक्ष होता है । समझ में आया ? वस्तु परमात्मा स्वयं ही परम स्वरूप से भगवान् आत्मा है, उसके परम स्वरूप का अन्तर दृष्टि में अन्दर आदर होकर, अनुभव होकर जितने दृष्टि, ज्ञान स्पष्ट हुए, उसमें स्थिरता भी थोड़ी हुई, परन्तु अभी विकल्प बाकी रहा है, इसलिए ऐसा पाता है । वह टूटकर अकेला निर्विकल्प वीतराग परिणति शुद्ध हो जाये । बस ! यह बात करते हैं ।

तीन बातें की, तीन बातें हुई । कौनसी तीन ? आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु का आदर नहीं, दृष्टि नहीं, ज्ञान नहीं, मिथ्यादृष्टि है, असत्य दृष्टि है, सत्य की दृष्टि नहीं, असत्य दृष्टि विकल्प आदि मेरे । इस दृष्टि में आहार, औषध आदि दे, उसके फल में भोगभूमि (का) जुगलिया मनुष्य हो । और आत्मा के अन्तर दृष्टि के भानसहित में भूमिका अल्प है, पूर्ण वीतराग की नहीं, इसलिए उसे शुभराग आये बिना रहता नहीं । देव-शास्त्र-गुरु का बहुमान ऐसा ही उसे निमित्त विकल्प ऐसी जाति का ही होता है । समझ में आया ? ऐसे विकल्प के फल में देवेन्द्र और चक्रवर्ती, तीर्थकर आदि की पदवी उसे होती है । समझ में आया ?

कहते हैं कि ऐसी सविकल्पदशा में होने पर भी यदि वह विकल्प तोड़कर स्वयं स्थिरता में निर्विकल्प वीतरागता हो। दृष्टि और ज्ञान में तो वह आदर यही है, परन्तु जहाँ राग बाकी है तो ऐसा होता है, राग छूटकर निर्विकल्प तीनों चारित्र (आदि की) वीतरागदशा हो जाये तो मोक्ष हो। बहिरचला हो आत्मा के भान बिना तो कहते हैं कि यह मनुष्य आदि के भोग मिले शुभभाव में। सम्यग्दर्शनसहित भी जितना बहिरचला—अस्थिरता रहे, उसका यह फल। पूर्ण अन्तर में चाल में गति अपनी हो गयी वीतरागता, तो जो है वह मिल गया। मोक्षदशा पूर्ण हो गयी। यह बात है। समझ में आया? दिखता है न यह, कहते हैं। क्या दिखता है परन्तु? देखना अर्थात् क्या? देवेन्द्र...

मुमुक्षु : वह तो शरीर नहीं दिखता।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर नहीं दिखता। देवेन्द्र ऐसे बैठा हो, सिंहासन में इन्द्र बैठा हो। ऐसे हुकम हो, यह हो, परन्तु वह इन्द्र स्वयं ही (अपने को) मानता नहीं। स्वयं उसे सुख मानता नहीं, उसके विकल्प का और सहायक वृद्धि का आदर अन्तर में नहीं। जो दुनिया उसे देखे, उसका उसे आदर नहीं। दुनिया न देखे, ऐसे आत्मा का अन्दर दृष्टि में आदर है। देखना किसे कहना? आहाहा! समझ में आया?

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के, अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा है, उसके स्वाद के समक्ष विकल्प आ गया सही, अपूर्ण था, इसलिए (आ गया), फल में वह वहाँ गया। आनन्द के ऊपर दृष्टि है उसकी। उस फल में लोग ऐसा कहे कि धन्य, धन्य इन्द्र अवतार! धन्य महाराज! असंख्य देव के स्वामी क्या पुण्य करके आये, हमारे स्वामी! वहाँ वह अन्दर समझता है कि यह पुण्य हमारा स्वरूप नहीं, और यह फल, वह हमारा स्वरूप नहीं। हमको उसमें मिठास नहीं। आहाहा! यह वह कुछ अन्तर! यह अन्तर दृष्टि से अन्तर दिखायी दे या बाहर से दिखायी दे? समझ में आया?

यहाँ प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया, कि हे भगवन्! जो ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है... आपने तो ज्ञानमात्र से मोक्ष कहा। तो सांख्यादिक भी ऐसा ही कहते हैं,... सांख्यमत आदि, अन्य मत ऐसा ही कहते हैं। ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है... ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है। ज्ञान से ही मोक्ष होता है, उनको क्यों दूषण देते हो? तब श्रीगुरु ने कहा—इस

जिनशासन में... सच्चे वीतरागमार्ग में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा गया है,... विशेषण यहाँ है—सम्यक् और वीतराग। वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा है। आत्मा सो वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है,... देखो! स्वरूप... वीतराग स्वसंवेदनज्ञान सम्यक् अर्थात् कि आत्मा महान अनन्त सागर शान्ति का प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि हुई, वह सम्यक् है, उसका ज्ञान हुआ, वह सम्यक्पूर्वक है, और उसमें स्थिरता हुई है, वह रागरहित है। ऐसे तीन को यहाँ वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन कहा जाता है। वे अन्य तो अकेला ज्ञान-ज्ञान, जानपना-जानपना (कहते हैं)। परन्तु जानपना परन्तु उसे सम्यक् और वीतराग, ये दो बोल होते नहीं। समझ में आया?

क्या कहा? वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है,... अर्थात् कि ज्ञानस्वरूप आत्मा अपना ज्ञान, उसमें वापस रागरहित स्थिरता। तब वीतराग चारित्र, वह सम्यक्ज्ञान में आ गया। और सम्यक् पद के कहने से सम्यक्त्व भी आ जाता है। एक ज्ञान कहने में दोनों आ गये—चारित्र और सम्यग्दर्शन। आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से मोक्ष होता है, ऐसा कहने पर तीनों बोल आ गये। शुद्धस्वभाव परमात्मा स्वयं उसका सम्यग्दर्शन—सच्ची अन्तर अनुभव ज्ञान होकर प्रतीति और उसका ज्ञान और उसमें रागरहित स्थिरता, ये तीन मिलकर वीतरागी सम्यक् स्वसंवेदनज्ञान कहे जाते हैं। ऐसा सांख्यमति या अन्यमति में होता नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

ऐसा जहाँ हो वहाँ, वह विकल्प कहा था न? विकल्प सवेरे जो कहा जाता है न देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, नौ तत्त्व के भेद सच्चे, उसके विकल्प की ऐसी ही व्यवहारिक श्रद्धा उसे होती है। वही उसे निमित्तरूप से अनुकूल है, व्यवहाररूप से अनुकूल है। निश्चयरूप से आत्मा की दशा अनुकूल है। व्यवहाररूप से जो कहे निर्ग्रन्थ गुरु, वीतराग सर्वज्ञदेव, सर्वज्ञ के कहे हुए शास्त्र और जो कुछ नौ तत्त्व और सात तत्त्व के स्वरूप में जो कहा वह, इस प्रकार से उसकी श्रद्धा के शुभ विकल्प में ऐसा उसे होता है। वह उसे अनुकूल अर्थात् व्यवहार से अनुकूलता है। उसका यह ऐसा फल बँध जाता है। समझ में आया? व्यवहार से अनुकूल उसका व्यवहार फल आ जाता है, यह बाहर का।

अरे! इसे पराधीनता कैसे सुहाती है? स्वाधीनता की बात सुहाती नहीं और

पराधीन... पराधीन... पराधीन... आहाहा! यह हमारे राग फलेगा न? हमको राग का फल मिलेगा न? यह तो सब पराधीनता है। स्वाधीनता—जंजीर बन्धन में से छूटने की बात उसे सुहाती नहीं और बन्ध की बात सुहाती है। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर, यह आत्मा उसे कहते हैं कि अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द का कन्द तू ही चैतन्य सरोवर है। आहाहा! ऐसा भगवान स्वतन्त्र होने के लिये ऐसी उसकी पुकार दृष्टि, स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का ज्ञान, स्वभाव की स्थिरता। बस! यही इतना... मेरा। यह न रुचे और वह पराधीन वह (बाहर का रुचे)। यहाँ कहते हैं कि छेद, छेद। बीच में विकल्प व्यवहार पूर्ण न हो, वहाँ आता है। उस छेद को होंश में खतौनी कर डालना, (उसे) वस्तु की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमात्मा पुकारते हैं।

देखो, यह परमात्मा हैं न स्वयं। स्वरूप परमात्म है। परमात्मप्रकाश है। उसके निमित्त में परमात्मा ही हो सच्चे श्रद्धा में। सर्वज्ञदेव एक समय में तीन काल का ज्ञान। निर्ग्रन्थ गुरु तीन कषाय का अभाव, सन्त दिगम्बर महामुनि वनवासी, वे मुनि दिगम्बर मुनि जिसकी श्रद्धा में—व्यवहार श्रद्धा में उन मुनि को ही स्वयं व्यवहार में माने। ऐसा ही विकल्प उसे निमित्तरूप से अनुकूल है। तथापि उस अनुकूल निमित्त का फल संयोग अनुकूल है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है न? गुणवन्तभाई! यह तो समझ में आये, ऐसा है, हों! सादी बात है, हों! उन सब पैसा-बैसा की कुछ ऐसी बात नहीं मिलती कहीं। आहाहा! वह तो मिट्टी है, बापू! धूल जमीन की। यह जहाँ घिसा और कुछ हुआ, मोटर के साथ में भटका। स्वस्थ रहे तो भी मरने जैसा रहे। याद आता नहीं। क्या हो गया? कहो, मलूकचन्दभाई! वे... गये हैं न ... वकील अमरेली। किसी का धक्का लगा। भूल गये, सब भूल गये। जीये तो भी यह सब गया, अब मेरे मरने के बाद तो क्या होगा? हाय... हाय..! समझ में आया? मकान, यह तो बड़े पत्थर, काले पत्थर के मकान बनाये हैं बड़े। है या नहीं? है न, खबर है न, बहुत वर्ष से। मजबूत काले पत्थर के मकान। पत्थर भी काम आये नहीं, पैसे काम आये नहीं, पुत्र काम आये नहीं, वकालत काम आयी नहीं। यह और भारी। वकालत करते, हों! होशियार व्यक्ति ऐसे उस जाति का।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ... है ? यह रहे न भाई तो वहाँ रहते हैं न प्रवीणभाई । समझ में आया ? आहाहा ! हम तो (संवत्) १९८६ में थे न । उससे पहले मकान है वह, वहाँ जाते थे न । वह लड़का इतना था वर्ष का । वह प्रवीण है न । घोड़ीया में था तब । आहाहा ! स्वप्न जैसे लगते हैं स्वप्न, वह यह क्या होगा ! चालीस-चालीस वर्ष की, पचास वर्ष की बातें करें, ऐसा स्वप्न लगे । यह क्या हो गया ?

अनादि-अनन्त भगवान् आत्मा । आहाहा ! कहते हैं, भगवान् ! तेरे स्वभाव का माहात्म्य छोड़कर दूसरा माहात्म्य करना नहीं, हों ! यदि दूसरे का माहात्म्य किया तो भटकना मिटेगा नहीं । भटकना और दुःखी होना मिटेगा नहीं, भाई ! मार्ग तो यह है, भाई ! कहो, भीखाभाई ! कहाँ गये हीराभाई ? गये होंगे । समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान से ही मोक्ष है... उसमें एक दृष्टान्त दिया है । देखो न, यह वीतरागता और सम्यक्ता दो सहित का ज्ञान, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है । अकेला पठन-बठन, वह ज्ञान नहीं । कहेंगे आगे । शास्त्र का पठन, वह ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं । यह इसके बाद में ज्ञान कहेंगे । समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा वस्तु अखण्डानन्द प्रभु का ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसकी शान्ति, स्थिरता । उसमें सम्यक्ता और वीतरागता दोनों आ गयी । यह लोगों को एकान्त लगता है, हों ! ऐसा लगता है उन्हें कि यह एकान्त है । परन्तु वह व्यवहार साथ में हो, उससे कुछ... कुछ... कुछ... सहायता मिले । इसलिए उन्हें ऐसा लगता है कि तो अनेकान्त कहलाये । यह पूरा विवाद है, लो ! बड़ा । उससे मिलता नहीं, इससे मिले और उससे मिलता नहीं, तब अनेकान्त कहा जाता है । वस्तु ऐसी है । समझ में इसमें ? कहते हैं, आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान, आत्मा वस्तु निर्विकल्प आनन्द, उसका ज्ञान, श्रद्धा और वीतरागता, यह एक ही मोक्ष का कारण है । बाकी जितना विकल्प बीच में आवे, वह तो राग है । सम्यग्दृष्टि को राग है, अज्ञानी को राग हो तो वह मिले, ज्ञानी को राग हो तो देवेन्द्र और चक्रवर्ती की पदवी होकर फिर मुक्ति होगी । राग का अभाव करके वीतरागता होगी, तब मुक्ति होगी ।

जैसे एक चूर्ण में अथवा पाक में अनेक औषधियाँ आ जाती हैं... एक चूर्ण में अनेक औषधियाँ होती हैं। परन्तु वस्तु एक ही कहलाती है,... वस्तु एक ही कहलाती है न! गोली कहो या जो-जो कुछ कहते हों वह। उसी तरह वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के... वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के कहने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीनों आ जाते हैं। देखो, बादाम और पिस्ता का चूरमा बनाते हैं न, कहलाता है कि चूरमा ठण्डा है। गर्मी में बनाते हैं, लो! तीन वस्तुएँ आ गयी न, बादाम, पिस्ता, चीनी। ... भाँग होती है। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के कहने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीनों आ जाते हैं। लो! यह तीनों निश्चय की बात है, हों! व्यवहार तो उस विकल्प में जाता है। आहाहा! स्वतन्त्रता की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उसके समक्ष हुमलो (करे) या नहीं, हमारे स्वतन्त्र नहीं। परतन्त्रता के राग से कुछ लाभ कहो, शुभराग से आत्मा को लाभ कहो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बातें करे कोई? वह तो उल्टी मारकर दूसरे प्रकार से करे न! उससे अब लाभ होगा, भले सम्यग्दर्शन न हो परन्तु ऐसी क्रिया करते-करते, राग करते-करते अब मोक्ष होगा। अब मोक्ष नहीं होगा, बापू! तेरे राग से यह... मिलेगा कदाचित्, शुभराग बराबर होवे तो, परन्तु है संसार। वह भी शुभराग का फल तो संसार ही कहा। देवेन्द्र और चक्रवर्ती। उदयभाव का फल क्या होगा? संयोग हो। स्वभाव होगा? परम भगवान पारिणामिकस्वरूप प्रभु, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, वह एक ही संवर, निर्जरा और वह मोक्ष का मार्ग।

सांख्यादिक के मत में वीतराग विशेषण नहीं है,... उनमें सम्यक् विशेषण नहीं है। सम्यग्दर्शन नहीं, पूरी चीज़ क्या है, उसकी प्रतीति नहीं और रागरहित अभाव, राग का अभाव होना, वह नहीं। राग का अभाव होना, वह नहीं, पूरी चीज़ की प्रतीति, वह नहीं, बीच की वह ज्ञान की बातें करते हैं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? कि पूरी चीज़ अखण्ड प्रभु आत्मा की दृष्टि जो सम्यक् होनी चाहिए, वह सम्यक् नहीं और ऐसे राग का अभाव नहीं, उस ओर में राग का अभाव नहीं। एक ज्ञान की बात की, वह ज्ञान

मिथ्याज्ञान है। मिथ्याज्ञान रागवाला ज्ञान, ऐसा। समझ में आया? यह तो सम्यग्ज्ञान रागरहित ज्ञान। आहाहा! समझ में आया या नहीं?

सांख्यादिक के मत में वीतराग विशेषण नहीं है, और सम्यक् विशेषण नहीं है, केवल ज्ञानमात्र ही कहते हैं,... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... परन्तु ज्ञान, वह कौनसा ज्ञान? किसका? वस्तु जो एक समय में अखण्ड द्रव्य एक परिपूर्ण स्वयं है, उसकी सम्यक् प्रतीतिवाला ज्ञान, वह तो कहते नहीं। और पर से राग के अभाववाला ज्ञान, राग के अभाववाला (और) ऐसी सम्यक् प्रतीतिवाला, वह तो कहते नहीं। अकेला ज्ञान-ज्ञान (कहते हैं)। परन्तु अकेला ज्ञान अर्थात् क्या? समझ में आया? वस्तु है, उसकी प्रतीति सम्यक् आयी नहीं और वस्तु में पर के लक्ष्य से जो राग होता है। उस राग का अभाव हुआ नहीं। अब वह ज्ञान मोक्ष का कारण किस प्रकार होगा? वह ज्ञान ही मिथ्या है। समझ में आया?

सो वह मिथ्याज्ञान है,... देखो! है न? केवल ज्ञानमात्र ही कहते हैं, सो वह मिथ्याज्ञान है, इसलिए दूषण देते हैं,... सम्यक्ता आयी नहीं, अरागता आयी नहीं। अर्थात् कि सत्यता आयी नहीं, अरागता आयी नहीं। सत्यता आयी नहीं... वस्तु जो अखण्ड पूर्ण है, उसकी दृष्टि होना, वह सम्यक् सत्य है। सत्यता, सत्य का स्वीकार, वह आया नहीं। रागरहित आया नहीं तो अकेला ज्ञान में सत्य बिना, रागवाला ज्ञान, वह मोक्ष का कारण हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। मानता है। आहाहा! यह तो सब बातें। नाम देने में कहाँ दिक्कत थी? केवलज्ञान? कहाँ? होगा। बहुत अधिक नाम होते हैं। कुछ भान नहीं होता। ... आगरा में है न बड़ा मकान साढ़े तीन करोड़ का तब था। (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये थे। साढ़े तीन करोड़ का। राधा-स्वामी। दयालबाग। गप्प-गप्प। दूसरे कहते कि कबीर से यह मार्ग अलग, फलाना से यह मार्ग अलग। ऐसे लेख लिखे हुए। परन्तु वस्तु कौन? सत्यता क्या? सत्य-सत्य क्या? सत्य पूरा होकर सत्य या तू अकेला पूरा सत्य? ऐसा है कहीं? समझ में आया?

सत्य अर्थात् क्या ? सत्य, वह परमेश्वर । तो कितना सत्य ? अनन्त गुणराशि प्रभु, वह स्वयं सत्य है । समझ में आया ? उस सत्य की प्रतीति का अन्तरभान, उसे सम्यग्दर्शन है । इसके बिना सम्यक्... सत्य के बिना ज्ञान को सत्य होना कैसे हो ? समझ में आया ? पूरे सबको सत्य स्वीकारे, वह सत्य नहीं । ऐसा सत्य है ही नहीं । समझ में आया ? और एक अवस्था को स्वीकारे, वह सत्य नहीं । एक ही गुण को स्वीकारे, ऐसा सत्य नहीं ।

अनन्त गुण का पिण्ड भगवान् आत्मा, ऐसा सत् है । उसकी अन्तर में प्रतीति स्वसन्मुख की, उसका ज्ञान तो रागरहित हो गया । इस ओर ढला तो ऐसे रागरहित हुआ । ऐसा सम्यग्ज्ञान, वह मोक्ष का कारण वीतरागमार्ग में कहा जाता है । अन्य में यह बात होती नहीं । बातें भले ज्ञान की करे और ऐसी करे न सब । निर्विकल्प की करे और अनुभव की करे । समझ में आया ?

आज विरोध आया है रजनीश का स्थानकवासी में । ... सब भ्रमित नहीं हो जाओ, उसमें वीतरागमार्ग से विरुद्ध है । यह किसी का लेख है । बहुत जैन उसमें... एक व्यक्ति ने लिखा है । जैनशासन के प्रमाण की उसकी एक भी बात नहीं । गप्प ही गप्प चलती है । दुनिया कौन जाने ऐसी... सब चले दुनिया में । यह बात आयी न, इसलिए बाहर में ऐसा हुआ कि यह कुछ दूसरी बात करते हैं । तब ऐसी दूसरी कोई बात दूसरे प्रकार की करनेवाले मिले तो यह । परन्तु दूसरे जाति की है या दूसरे प्रकार की है या... आहाहा ! सम्प्रदाय का क्या काम है ? बापू ! तुझे आत्मा का काम है या सम्प्रदाय का काम है ? आहाहा ! सम्प्रदाय कोई तिरा दे, ऐसा नहीं है । आहाहा ! ७२ हुई, ७३ (गाथा) ।



गाथा - ७३

आगे इसी अर्थ को, विपक्षी को दूषण देकर दृढ़ करते हैं— देखो!

२००) देउ गिरंजणु इउँ भणइ णाणिं मुक्खु ण भंति।

णाण-विहीणा जीवडा चिरु ससारु भमंति ॥ ७३ ॥

‘देउ गिरंजणु इउँ भणइ’ देखो! शब्द देखो! ‘देउ गिरंजणु इउँ भणइ’ वापस ‘गिरंजणु इउँ भणइ’ ऐई! वीतराग बोलते हैं, ऐसा कहते हैं। वीतराग का ऐसा है, ऐसा कहना है। देखो, वजन देते हैं।

देउ गिरंजणु इउँ भणइ णाणिं मुक्खु ण भंति।

ज्ञान ही मोक्ष है, भ्रान्ति नहीं। देव गिरंजन सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं। है न?

णाण-विहीणा जीवडा चिरु ससारु भमंति ॥ ७३ ॥

कहो, यह तो बहुत सादे शब्द, सादे हैं ऐसे। ‘देउ गिरंजणु इउँ भणइ’ सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोक के नाथ ऐसा कहें। वाणीवाले भगवान लिये। ऐसा ‘भणइ’ लिया न? ‘णाणिं मुक्खु ण भंति’ ज्ञान से मोक्ष है, भ्रान्ति नहीं, भ्रान्ति नहीं, भ्रान्ति ‘णाण-विहीणा जीवडा’ आत्मा के ज्ञानरहित जीव। वे ‘चिरु संसारु’ अनन्त काल संसार में भटकेंगे। आहाहा! समझ में आया? ‘णाण-विहीणा’ आता है न? समयसार, पुण्य-पाप अधिकार में।

अनन्त ज्ञानादि गुण सहित,... गिरंजन की व्याख्या। अनन्त ज्ञानादि गुण अर्थात् पर्याय प्रगट सहित, हों! गुण अर्थात् पर्याय। जिसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय सब पूरा आत्मा प्रगट हुआ है। ऐसे गुणसहित और अठारह दोषरहित,... लो! अस्ति-नास्ति की। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव, जिन्हें सर्वज्ञपना पूर्ण प्रगट हुआ, अठारह दोषरहित हैं, उन्हें कोई क्षुधा, तृषा (होते नहीं)। बोलने की वाणीवाले भगवान की बात ली है, हों! समझ में आया? उन्हें क्षुधा-तृषा नहीं कि आहार-पानी खाये और शरीर को रोग हो—ऐसा भगवान को होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे भगवान ‘इउँ भणइ’ ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया?

जिसे ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त परमात्मा प्रगट हुए आत्मा में। अनन्त ज्ञान आदि प्रगट हुए, अठारह दोषरहित हो गये। शरीर में रोग न हो, क्षुधा न हो, तृषा न हो, राग-द्वेष नहीं। उन अठारह दोषरहित, अनन्त गुणसहित, अनन्त पर्यायसहित और यह दोष की पर्यायरहित। **जो सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं,...** लो! **‘णिरंजणु’** की व्याख्या यह की। और **‘देउ’** अर्थात् सर्वज्ञ दिव्य शक्ति जिनकी। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिन्हें तीन काल, तीन लोक (एक) समय में ज्ञात हुए, ऐसे सर्वज्ञ वीतरागदेव। देखो, है न? आहाहा! ऐसा कहते हैं। आचार्य स्वयं सब बात करते हैं। अरे! सर्वज्ञ परमेश्वर भी ऐसा कहते हैं न भाई! वे **‘देउ णिरंजणु इउँ भणइ’** आहाहा! जिन्हें अंजन—मैल रहा नहीं, ऐसा। अन्दर में मैल। निरंजन शब्द प्रयोग किया न? अर्थात् वह मैल अठारह दोषरहित, ऐसे सहित अनन्त गुणसहित, ऐसा निकाला उसमें से। उस शरीर में रहा हुआ आत्मा, अठारह दोषरहित और अनन्त गुणसहित, पर्यायसहित प्रभु हुए। ऐसे देव निरंजनों, ऐसा पढ़ते हैं भाई! ऐसा वे कहते हैं। समझ में आया? क्या (कहते हैं)?

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान से ही मोक्ष है,... ज्ञान से ही मोक्ष है। वह आत्मा वसतु भगवान आत्मा का अन्तर सम्यग्दर्शनसहित का ज्ञान, रागरहित की दशा। ऐसा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, वीतराग अभेद स्वसंवेदनरूप **सम्यग्ज्ञान से ही मोक्ष है, इसमें सन्देह नहीं है।** भ्रान्ति न कर, भाई! **‘मुक्खु ण भंति’ ‘णाणिं मुक्खु ण भंति’** भगवान! भ्रान्ति न कर, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुछ-कुछ दूसरा होगा या नहीं? ऐई! धर्मचन्दजी! आहाहा! परमात्मप्रकाश। यह तो आत्मा को रुचे, ऐसा है। अनात्मा को और राग-द्वेष की प्रीतिवाले को यह रुचे, ऐसा नहीं। समझ में आया? आत्मा सर्वज्ञ ने कहा हुआ, वह आत्मा को रुचे, ऐसा है।

भगवान आत्मा राग के भाग से, भाव से, भाग से भिन्न ऐसा। भाग में तो अनन्त ज्ञान आदि पड़े हैं। ऐसा भगवान का ज्ञान, रागरहित स्थिरता, ऐसे स्वरूप की प्रतीति। ऐसा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, वह एक ही मोक्ष को देनेवाला है। भ्रान्ति न कर, दूसरा भ्रम न कर। बीच में कुछ व्यवहार आयेगा, कुछ सहायता करेगा या ऐसा करेगा—ऐसी भ्रमणा न कर, भाई! ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? बहुत संक्षिप्त शब्द और

बहुत महत्वशाली। आहाहा! भाई! तेरे अवलम्बन से तुझे मोक्ष होगा, हों! वीतराग स्वसंवेदनज्ञान अर्थात् तेरे अवलम्बन का ज्ञान, ऐसा। आहाहा!

वाणी डाली न? वीतराग भणई। परमेश्वर ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! आचार्यदेव को भी बीच में परमेश्वर को लाना पड़ा। हम छद्मस्थ हैं, इसलिए हम कुछ कहते हैं, भगवान दूसरा कहते हैं, ऐसा नहीं। परमेश्वर ऐसा कहते हैं, हों! परमेश्वर अर्थात् जो परमेश्वर अनन्त गुण के ईश्वर हो गये। जिन्हें कुछ भी दोष का कण रहा नहीं न, वे 'भणइ'—उनकी दिव्यध्वनि में तो ऐसा आया था। ऐसा आया है, परन्तु भगवान! आप तो पाँचवें काल में हुए और फिर देव ऐसा कहते हैं इतना अधिक जोर कहाँ से लाये? समझ में आया? काल-फाल आत्मा को है कहाँ? समझ में आया?

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर, वे वीतराग जिसे व्यवहारश्रद्धा में विकल्प में वर्तते हैं, ऐसे जीव को कहते हैं कि यह तेरा आत्मा तेरे आश्रय से अवलम्बन हो, वह मोक्ष का कारण है। हमारी श्रद्धा का विकल्प है, वह हो भले। हमारी श्रद्धा का विकल्प तुझे हो भले, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा वीतराग कहते हैं, लो! गजब बात, भाई! परन्तु तुमको माने और मोक्ष हो, ऐसा तो कहो। ऐई! ना, ना, कहते हैं। यह उसे माने और उसे जाने और उसमें स्थिर हो, उसका मोक्ष होता है, ऐसा हम कहते हैं—परमात्मा कहते हैं। आहाहा! परन्तु भगवान! आपने कहा उसका कुछ तो रखो न। 'भणइ' कहा न? उसका कुछ तो रखो न। वह सुनता है, उसके ओर की तुम्हारी श्रद्धा है, उससे मुक्ति हो ऐसा थोड़ा, थोड़ा कुछ तो रखो। समझ में आया? ऐई! आहाहा! यह सब बहुत... आहाहा! हम मानो कहाँ कितना हम अनेकान्त पा गये हैं। यह तो एकान्त... एकान्त... अरे! भगवान! बापू! भाई! इसका योगफल खोटा और तेरी शुरुआत खोटी है। योगफल खोटा किसका निकले? जिसकी शुरुआत खोटी हो, उसका योगफल खोटा निकले न! पहले अंक खोटे हों, उसका योगफल खोटा होगा न! भाई! यह अनेकान्त तू माने, ऐसा नहीं है, भाई!

निरंजनदेव परमात्मा दोषरहित निर्दोष हो गये। ऐसे भगवान कहते हैं कि 'णाणिं मुख्खु ण भंति' यह तेरे वीतरागीस्वरूप आत्मा का (ज्ञान), जिसे तेरे ज्ञान में पर की

अपेक्षा नहीं, तेरी श्रद्धा में पर की अपेक्षा नहीं, तेरी वीतरागता में पर की अपेक्षा, व्यवहार की अपेक्षा नहीं। देखो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह दूसरे ढंग से बात करते हैं। भगवान! तेरा जिसमें अपेक्षारूप से श्रद्धा, ज्ञान में वर्तता है, वह वीतराग के आत्मा अपेक्षा से वर्तता है। उसका मोक्ष है, भ्रान्ति न कर, भाई! भ्रमणा न कर। दूसरी बात को अन्दर बैठने न दे, ऐसा कहते हैं, शंका होने न दे, ऐसा कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं है। अस्ति से की। अब, और स्वसंवेदनज्ञानकर रहित... यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु, इसका अन्तर में स्व का ज्ञान, प्रत्यक्ष स्वसंवेदनज्ञान, प्रत्यक्ष स्वसंवेदनज्ञान, राग के अवलम्बनरहित आत्मा के अवलम्बन का ज्ञान, ऐसा वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान। समझ में आया? उससे रहित जो जीव हैं, वे बहुत काल तक संसार में भटकते हैं। ओहोहो! लो! ऐसा आत्मा का वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, उस वीतराग बिना, उसके बिना दूसरा चाहे जो हो व्यवहार तेरा, ऐसा कहते हैं। व्यवहार हो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम। भटकेगा, ऐसा कहते हैं, देखो! वह स्पष्टीकरण आयेगा उसमें, भाई! समझ में आया? आहाहा! वह ज्ञान से मोक्ष जायेगा, यह चिरकाल भटकेगा, वह छूटेगा, यह अनन्तकाल रहेगा जहाँ है वहाँ बन्धन में, ऐसा कहना है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक-एक शब्द की शैली ही ऐसी है यह। दिगम्बर सन्तों-मुनियों की शैली ही कोई ऐसी है। एक-एक अक्षर में अनेक आगम भरे होते हैं। समझ में आया? एक-एक का अधिक विस्तार करने जाये तो लम्बा-लम्बा (हो जाये), बहुत प्रकार आते हों न। यह तो एक-एक में ऐसी शैली है। यह न हो तो वह व्यवहार अनन्त काल संसार में भटकायेगा, ऐसा यहाँ तो कहते हैं, लो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार कहाँ है? राग मन्द है। वह कुछ वस्तु नहीं। मोक्ष के लिये वह वस्तु नहीं। यहाँ ऐसा कहा है, परन्तु अन्यत्र? परन्तु अन्यत्र वह यहाँ से कहीं विरुद्ध कहे? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह तो व्यवहारनय से कथन दूसरे

बहुत आते हैं। ऐसा न हो और कहे ऐसा आवे, इससे कहीं वस्तु सत्य दो हो जाये, सत्य दो हो जाये, (ऐसा नहीं है)। सत्य तो एक ही रहता है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ वीतरागस्वसंवेदनज्ञान में यद्यपि सम्यक्त्वादि तीनों हैं,... लो! समझ में आता है न? ज्ञान शब्द पड़ा है न मूल पाठ में तो? तो ज्ञान में तीनों आ जाते हैं। ज्ञान कहा, वहाँ पूर्ण आत्मद्रव्य की प्रतीति भी इकट्ठी आयी। उसके बिना ज्ञान किसका? सत्यस्वरूप परमात्मा स्वयं उसके दर्शन-प्रतीति बिना, उसके दर्शन बिना ज्ञान किसका? और उस ज्ञान में पर से विमुख न हो, अनादि ऐसा था, वह ऐसा वापस पर से, राग से न हटे तो इस ओर की स्थिरता रागरहित आवे कहाँ से? समझ में आया? पूर्ण अस्ति की प्रतीति और राग के अभावरूप स्थिरता, ऐसा जो ज्ञान, उसे सम्यक् प्रतीतिवाला ज्ञान और राग के अभाववाला ज्ञान, उसमें वीतराग स्वसंवेदनज्ञान कहने से तीनों बोल, पहला और अन्तिम दोनों आ जाते हैं। बीच का कहने से दो आ जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तो भी मुख्यता सम्यग्ज्ञान की ही है। तीनों आ जाते हैं, परन्तु अभी ज्ञान की मुख्यता से बात है। समझ में आया? क्योंकि श्री जिनवचन में ऐसा कथन किया है कि जिसका कथन किया जावे, वह मुख्य होता है,... अभी ज्ञान की मुख्यता से बात आती है तो वह मुख्य हो जाये। दर्शन और वीतरागता गौण है, परन्तु साथ में होते हैं, कथन में गौण-मुख्य है। ऐसा कहा न 'विवक्षितो मुख्य' कथन की पद्धति में उसकी मुख्यता है, भाव में तो एक साथ है। समझ में आया? कहीं सम्यग्दर्शन से मुक्ति कहे। दर्शन की मुख्यता दर्शन की है, उसमें ज्ञान और चारित्र आ जाते हैं। चारित्र, वही मुक्ति का कारण है, ऐसा कहे। चारित्र, वही मुक्ति का एक ही कारण है, ऐसा कहे। 'विवक्षितो मुख्य' कथन में मुख्यता वह आयी (परन्तु उसमें) दर्शन, ज्ञान इकट्ठे आ गये। समझ में आया? गजब! यह सब दिखता है, उसकी बात नहीं, कहते हैं। लोग कहते हैं। परन्तु दिखता नहीं कौन? दिखता नहीं कौन? वह देखनेवाला स्वयं देखे अपने को। आहाहा! समझ में आया? पर्याय के अस्तित्व में क्या दिखता है? वह दिखता है? उसके अस्तित्व की पर्याय दिखती है। वह पर्याय किसकी? उस पर्याय का अस्तित्व पूरे अस्तित्व को स्वीकार कर बताता है। समझ में आया?

कहते हैं, यहाँ तो 'विवक्षितो मुख्य' इसलिए ज्ञान से मोक्ष कहा, उसमें उसकी मुख्यता से बात है। गौणरूप से अर्थात् गौणरूप से अर्थात् ज्ञान के समय दर्शन, चारित्र नहीं, ऐसा नहीं। उसका कथन अभी मुख्य नहीं, बाकी तो ज्ञान कहने से दर्शन, चारित्र एक साथ तीनों हैं। ज्ञान मुख्य है और दर्शन-चारित्र परिणमन में गौण है, कथन में ऐसा है। समझ में आया? अन्य गौण होता है,... कथन में, ऐसा कहा न? पाठ ऐसा है न, 'विवक्षितो मुख्य इति वचनादिति' लो! 'सम्यग्ज्ञानस्यैव मुख्यता' संस्कृत है न, बहुत सरस (अर्थ है शब्द का)। ओहोहो!

★ ★ ★

गाथा - ७४

आगे फिर भी इसी कथन को दृष्टान्त और दार्ष्टान्त से निश्चित करते हैं:— इस बात को दृष्टान्त देकर, इस सिद्धान्त को दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्त अर्थात् यह सिद्ध को सिद्धान्त से सिद्ध करते हैं, दृष्टान्त देकर—

२०१) णाण-विहीणहँ मोक्ख-पउ जीव म कासु वि जोइ ।

बहुएँ सलिल-विरोलियइँ करु चोप्पडउ ण होइ ॥ ७४ ॥

देखा! 'णाण-विहीणहँ मोक्ख-पउ जीव म कासु वि जोइ।' कहीं न देख, कहते हैं। 'बहुएँ सलिल-विरोलियइँ' पानी को बहुत बिलौने से, वह 'करु चोप्पडउ ण होइ' हाथ चिकना नहीं होगा। यह निश्चयरहित अकेले व्यवहार को अकेला करने से हाथ हरा (चिकना) नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपने कहावत नहीं? लोक में कहावत है। पानी को बिलौने से कहीं मक्खन निकले? मक्खन की चिकनाई कहाँ से आवे वहाँ? कहाँ थी उसमें? इसी प्रकार आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना अकेले तेरे व्यवहार के विकल्प को बिलौकर कभी चिकना हाथ अर्थात् आत्मा को शान्ति, मुक्ति मिले नहीं। समझ में आया? इसकी व्याख्या विशेष करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १५, शनिवार, दिनांक ०५-०२-१९६६

गाथा - ७४ - ७५, प्रवचन - ११९

गाथा फिर से, देखो !

२०१) पाण-विहीणहँ मोक्ख-पउ जीव म कासु वि जोड़ ।

बहुएँ सलिल-विरोलियइँ करु चोप्पडउ ण होइ ॥ ७४ ॥

जो सम्यग्ज्ञानकर रहित मलिन चित्त है,... क्या कहते हैं ? जिनके अन्तर में ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा रुचि में, अन्तर दृष्टि में बसा नहीं। समझ में आया ? आत्मा सच्चिदानन्द आनन्दकन्द का जिसे चित्त में, अर्थात् कि श्रद्धा में वह आत्मा पूर्ण आनन्द है, वह जिसके चित्त में बसा नहीं अथवा वह आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अन्तर ज्ञान रागरहित स्वभाव की एकता का बहुमान होकर आत्मा का ज्ञान जिसके अन्तर में हुआ नहीं, वह मलिन चित्त है। ओहो ! उसका चित्त मलिन है। निर्मलानन्द प्रभु चैतन्य निर्मलानन्द हीरा, अखण्ड आनन्द का कन्द प्रभु, उसकी जिसे अन्तर में ज्ञान में, श्रद्धा में महत्ता आकर, उस ओर की—स्व सन्मुख की एकताबुद्धि, ऐसा श्रद्धा और ज्ञान हुआ नहीं, उसके चित्त में मलिनता वर्तती है।

अर्थात् अपनी बड़ाई... अपना स्वरूप आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय, उसमें चित्त में, श्रद्धा में, ज्ञान में बसा नहीं, इसलिए उसे पर की बड़ाई का भाव ही उसे महत्त लगता है। समझ में आया ? कहो, मनीषभाई ! समझ में आया इसमें ? यह भाई नये व्यक्ति हैं। स्पष्ट थोड़ासा कहा। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का हीरा है। अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञानानन्दस्वरूप, उसकी जिसे अन्तर में ज्ञान में और श्रद्धा में प्रीति, रुचि, दृष्टि में वह ज्ञान और आत्मा बसा नहीं, उसे यह पर की बड़ाई की मिठास अन्दर में से हटती नहीं।

मुमुक्षु : दृष्टान्त दो तो कुछ खबर पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त अब यह निकले तब आवे न परन्तु वापस।

पर की बड़ाई अर्थात् ? कुछ शास्त्रज्ञान हुआ हो। समझ में आया ? कुछ बाह्य क्रिया में राग की मन्दता(रूप) त्याग वर्तता हो... समझ में आया ? अथवा जिसकी कुछ महत्ता जगत को लगती हो, ऐसी राग की मन्दता और शास्त्र के ज्ञान की, ऐसी महत्ता देनेवाले में उसे प्रसन्नता होती हो। प्राणभाई ! भगवान आत्मा अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसका ज्ञान अर्थात् कि रागरहित उसका ज्ञान, उसकी महिमा, उसका वेदन, उसकी अधिकता, उसकी महत्ता। ऐसे अन्तर ज्ञान में वह भगवान आत्मा अन्तर (में) बसा नहीं, उसके चित्त में पर की बड़ाई बसी है। या शास्त्र का पठन हो या राग की मन्दता(रूप) त्याग हो, या बाह्य के वेश में पण्डिताई और महत्ता शरीर में और महत्ता में कुछ दिखती हो, इससे दूसरे उसे बड़े मानते हों, उसमें स्वयं में भी बड़ा हूँ, ऐसा जो माने, उसे आत्मा की बड़ाई की खबर नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा स्वयं अन्दर में है या बाहर में ? कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा !

आचार्य तो जरा दृष्टान्त देकर कहेंगे, भाई ! प्रभु ! तू केवलज्ञान का कन्द प्रभु है, हों ! तेरा हीरा तेरी दृष्टि में अनादि से खो गया। तेरा हीरा, तेरा हीरा दृष्टि में से खो गया। तेरे ज्ञान ने तेरा हीरा की कीमत की नहीं। समझ में आया ? वह कौन है ? वह क्या चीज़ है ? ऐसे अनन्त शक्ति का सत्त्व प्रभु आत्मा, उसकी जिसे अन्तर में ज्ञान में... यहाँ ज्ञान प्रधान से बात है, परन्तु दर्शन और रागरहित वीतरागचारित्र के साथ में आंशिक होता है। भगवान आत्मा जिसके मन में 'णाण-विहीणहँ' यह शब्द है अकेला। भगवान आत्मा आनन्द और अनाकुल शान्तरस का चैतन्यतत्त्व पदार्थ है, उसकी जिसे अन्तर में बहुमान, कीमत, दृष्टि, एकत्वता, श्रद्धा आत्मा के स्वभाव का अन्तर स्पर्श होकर यह आत्मा ही अधिक और बड़ा है, ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान सम्यक्—सत्य—सच्चा हुआ नहीं, उसे तो चित्त में दूसरे बड़े कहे तो वह बड़ा ही माने। कहो, समझ में आया इसमें ? पैसे से, स्त्री से, पुत्र से, परिवार से, राग से जो धूल है पर। अभी तो लौकिक कहकर फिर यहाँ... पहले अन्दर ली थी, यह थोड़ी बाहर की ली। जेचन्दभाई ! आहाहा ! जिसे बहुत

पैसे हों, स्त्री-पुत्र बहुत हों, ऐसे बहुत अच्छे पुण्य के (ढेर दिखाई देते हों), उसकी इसे बड़ाई लगती है। मूढ़ जीव को आत्मा के चैतन्य की बड़ाई अन्दर लगती नहीं। यह तो बाहर से लौकिक बात की।

अन्तर में भी कुछ ज्ञान का उघाड़-विकास परद्रव्य को जानने का हुआ हो, दूसरे को समझाने की किंचित् क्षयोपशम की योग्यता भी हुई हो, उसकी जिसे महत्ता अन्दर में वर्तती है। क्योंकि आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति है, उसके अन्तर में, सम्यग्ज्ञान में, उसका भावभासन हुआ नहीं। समझ में आया? इसलिए उसे गहराई में उसकी बाहर की मिठास रहती है कि हाश! कुछ अपने को आया, कुछ अपने सीखे, कुछ हमने किया सही कुछ। आगे बढ़े। अज्ञान में बढ़ा और बढ़ा, ऐसा मानता है। आहाहा! रतिभाई! अज्ञानी है।

प्रतिष्ठा... कुछ प्रतिष्ठा जमे तो यह ऐसा माने कि हम कुछ हैं, हों! नहीं तो दुनिया कुछ माने? ऐसे शास्त्र में पठन, बोलने की कुछ कला आयी हो, वह तो जड़ की कला है। समझ में आया? और कुछ छहकाय के जीवों की दया के भाव से ऐसा मानो डरता हो हिंसा से, ऐसी क्रिया में जिसे प्रतिष्ठा लगती है कि हम कुछ विशेष हुए। उसे चित्त की मलिनता अन्दर है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे प्राणी हो और ऐसे बचाने (जाता हो), डर लगे इससे, इसलिए उसे ऐसा हो कि आहाहा! हमने कुछ विशेष किया, हों! और कुछ विशेष करते हैं और दूसरे की अपेक्षा हम कुछ अधिक हैं। परन्तु चैतन्य को भूलकर इस भाव में आ गया है, इसलिए उसका चित्त मलिन है।

मुमुक्षु : क्रिया से अधिक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक बिल्कुल नहीं। समझ में आया?

प्रतिष्ठा लाभ आदि। किंचित् लाभ तो मिलेगा। लोगों का, सेवा-चाकरी का। लोग अनुकूल बोलेंगे, अपने कुछ ऐसी दया पालते हैं, कुछ शरीर का ब्रह्मचर्य पालते हैं, कुछ पठन करते हैं, हमको कुछ आता है, ऐसा लोगों का इसे ख्याल आ गया है, इससे कुछ अपने को अच्छे रूप से बोलेंगे, उसका लाभ तो मिलेगा न। कहो, आहाहा! अरे! भगवान भूला, वह कहाँ गया? खो गया पूरा परमेश्वर स्वयं। परमेश्वर स्वयं अनन्त गुण

का धनी आनन्दकन्द भगवान, वह भिखारी होकर सकोरा हाथ में लेकर माँगता है। जैसे चक्रवर्ती भूल गया। समझ में आया ?

चक्रवर्ती का कोई बालक हो, वह चक्रवर्ती स्वयं होनेवाला हो, चला जाता है न वह नहीं, क्या हरिश्चन्द्र का आता है कुछ ? चक्रवर्ती होनेवाले थे, चले गये। कहीं अन्यत्र... छोड़कर। यह नहीं आता ... रथ निकालने के लिये। करते-करते अकेले चले गये। उसे तो ख्याल था कि मैं चक्रवर्ती होनेवाला हूँ। भले अभी अकेला हूँ, अभी इस स्थिति में। इसे तो खबर नहीं होती। भूल गया पूरा। मैं लोकालोक का जाननेवाला छह खण्ड का—पूरी दुनिया का छह द्रव्य का एक समय में मुझे जानते हुए जाननेवाला मैं चक्रवर्ती हूँ। एक राग का भी कर्ता नहीं, शरीर के रजकण का भी कर्ता नहीं। राग और रजकण का जिसके स्वभाव में अस्तित्व नहीं। और पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनन्त गुण का समुद्र भगवान, उसे भूलकर यह बाहर में शोधने ... लगा, कहीं मैं हूँ।

बाह्य प्रतिष्ठा, लाभादि,... किंचित् सन्तोष हो उसे। अच्छा कहे, माने सब। समझ में आया ? लाभादि। दूसरे ठीक कहे कि यह बहुत लाखों, करोड़ों ठीक कहे तो कुछ ठीक होगा मुझमें, तब ठीक कहते होंगे न ? वह तो मूढ़ जीव तो ठीक कहे, परन्तु उसमें तुझे क्या है ? वह परीक्षा, उसकी बुद्धि कितनी ? कि तुझे ठीक कहे, इसलिए तू ठीक हो गया। मोहनभाई ! आहाहा ! रतिभाई ! प्रतिष्ठा, लाभादि... आदि अर्थात् कुछ मिला, कुछ धारणा की शक्ति हुई जानने की, यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की कुछ शक्ति हुई। वह सब राग भाग है। पंच महाव्रत के कुछ परिणाम हुए, वह भी राग भाग है। समझ में आया ? यह कहेंगे आगे। और बाहर त्याग में बाहर व्रत जैसा त्याग दिखाई दे पंच महाव्रत जैसा त्याग दिखाई दे। कहते हैं कि बगुले जैसा वेश लेकर तू बैठा है। चैतन्यमूर्ति आनन्द की प्रीति और दृष्टि तो हुई नहीं। आहाहा ! कहते हैं, देखो !

ऐसे भावों से, दुष्ट भावों से जिसका चित्त परिणत हुआ है,... ओहोहो ! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द प्रभु में चित्त की परिणति नहीं होकर, ऐसे विकल्प की जाल (उसमें अपने को माना)। समझ में आया ? और मन में ऐसा जानता है कि हमारी

दुष्टता को कोई नहीं जान सकता,... अर्थात् ? कि भले शुद्ध का भान नहीं, परन्तु इतना तो मेरे पास है न, ऐसा तो है न। राग की मन्दता है, यात्रा कराये, भक्ति कराये, पूजा कराये, लाखों-करोड़ों खर्च करके संघ निकालें। समझ में आया या नहीं ? ऐसा तो हमारे पास कुछ है या नहीं ? ऐसा मानकर गहराई में उसे शुद्धता का भान नहीं और ऐसा जाने कि यह शुद्धता का भान नहीं, परन्तु दुनिया को कहाँ खबर है ? हम तो धर्मी हैं, ऐसा दुनिया मानती है। कहते हैं कि हमारी दुष्टता को कोई नहीं जान सकता, ऐसा समझकर... सूक्ष्म बात है, धर्मचन्दजी ! आहाहा ! विकल्प के जाल में पड़ा है और मानता है कि दूसरे धर्मी मानते हैं न, अपने कहाँ... ? अन्दर की शुद्धता का भले भान नहीं, परन्तु लोग तो धर्मी कहते हैं, ऐसा है। दिक्कत कहाँ है ?

मुमुक्षु : वह जानता नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता क्या, भान नहीं न फिर। भान नहीं न। धर्मी चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द ज्ञायक का अन्दर भान नहीं, उसका ज्ञान नहीं, उसका भरोसा नहीं। वरना इस बात में इतना उसे महत्ता—अधिकपना कैसे हो जाये ? यहाँ तो 'णाणसहावाधियं' इसके बदले रागभाव अधिक। ऐसे गुलाँट खाती है बात। समझ में आया ? यह आचार्य ने दूसरी शैली से बात की है। समयसार कुन्दकुन्दाचार्य का जो कथन, वह तो चौदह पूर्व, बार अंग का पूरा सार है। उनके सूत्र में तो ... सूत्र के सूत्र भरे हैं उसमें। समझ में आया ?

भाई ! भगवान आत्मा की पवित्रता के अन्तर के प्रेम और दृष्टि और रुचि के भान बिना, उसके प्रेम में हम पड़े हैं, ऐसी लोगों को कहाँ खबर है ? ऐसा कहते हैं। इसलिए कहते हैं कि हमारी दुष्टता को कोई नहीं जान सकता,... ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? राग की मिठास, यश की मिठास, कीर्ति की मिठास, दूसरे महत्ता दे, उसकी मिठास, उसमें रंगा हुआ ऐसा जानता है कि हमारे में यह भाव है, वह दुनिया कहाँ जानती है ? हम तो धर्मी हैं, ऐसा जानती है न। समझ में आया ? ऐसा समझकर वीतराग परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि को नहीं करता,... देखो, उसमें ही रुक गया है फिरते... फिरते... फिरते... अनादि से दूसरे प्रकार से रुका था।

यहाँ सूक्ष्मता के अन्दर विकल्प के जाल में रुक गया। वीतराग परमानन्द भगवान आत्मा रागरहित चीज शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु ऐसा परम अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति आत्मा के सुख का अनुभव—स्वाद, ऐसी स्वाद की चित्त की शुद्धि को नहीं करता,... उसका स्वाद लेकर मन को शुद्ध नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

तथा बाहर से बगुला का सा भेष मायाचाररूप लोकरंजन के लिये धारण किया है,... यहाँ तो इतनी ही बात है सीधी। भगवान आत्मा... अरे! जिसे चैतन्य की कीमत नहीं अन्दर की, वह विकल्प की कीमत लेना चाहता है, दुनिया से लेना चाहता है। समझ में आया? यह हमने इतना तो काम किया, इतने मन्दिर बनाये, इतने शास्त्र रचे, इतने शिष्य किये, इतने धर्म को रक्षणरूप से रखा, इतना तो हमने किया है या नहीं? कहते हैं, ऐसे बगुले का वेश है, कहते हैं। तूने किया है कुछ नहीं। दिगम्बर मुनि है, दिगम्बर मुनि को कहाँ दुनिया से कुछ लेना है? नागा बादशाह से आघा। यह है, बापू! समझो तो समझो, नहीं तो वस्तु तो यह है। बगुला का सा भेष मायाचाररूप... हम साधु हैं, हम जाननेवाले हैं, हम महाव्रत पालते हैं, दया पालते हैं, दया का जगत को उपदेश देते हैं। अन्दर में ज्ञान की शुद्धि चैतन्यमूर्ति विकल्परहित, उसका सम्यग्ज्ञान-दर्शन है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मैले पाप के परिणाम हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अकेले मैले मिथ्यात्व के ही परिणाम हैं। राग की अधिकता में प्रेम करना, वह मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा वीतरागी चिदानन्द प्रभु की अन्तर रुचि का सम्यग्ज्ञान भूलकर उसमें इसका प्रेम विकल्प के शुभराग में, बाह्य त्याग में, बाहर के वेश में, बाहर की चेष्टा में (इसका प्रेम वर्तता है)। त्याग जैसी चेष्टा हो, बाह्य ब्रह्मचर्य जैसी चेष्टा हो, सज्जनता के आचरण जैसा आचरण बाहर में दिखता हो। अन्दर में सत् जन सत् वीतरागस्वभाव है, उसका तो भान नहीं, इसलिए कहते हैं कि वह बाहर से बगुला का सा भेष... है।

बगुला ऐसे मछलियाँ निकले तो पकड़ने जाता है न? बगुला (एक पैर) में खड़ा हो, एक पैर ऊँचा हो, मानो महन्त खड़ा हो, एक पैर ऊँचा। मछली ऐसे (निकले)।

कादव में खड़ा हो, देखा है ? बगुले का एक पैर ऊँचा हो और एक पैर... परन्तु दो पैर में से कोई गिर जाये तो ? मछली चलती हो। दो पैर ऐसे गिर जाये तो ... दो लगे ठीक से। एक पैर हो तो भूले तो आगे चला जाये। वहाँ इसे ख्याल में आ जाये, इसलिए एकदम पकड़े।

उसी प्रकार जिसकी एकान्त बुद्धि विकल्प और अशुभ में (वर्तती है), वह भाव ही सब मलिन है शुभाशुभभाव। ऐसे भाव में जिसकी एकत्वबुद्धि है, वह एकान्त में गया है। सम्यक् चैतन्यमूर्ति भगवान् आत्मा की दृष्टि—ज्ञान किया नहीं। यह तो योगीन्द्रदेव दिगम्बर आचार्य हैं। जंगल में, वनवास में बसते, उसमें शास्त्र रच गये हैं। उन्हें कहीं दुनिया की पड़ी नहीं। दुनिया ठीक माने तो वह जाने और न ठीक माने तो उसके घर में रहे। दुनिया से कुछ लेना नहीं। समझ में आया ?

बगुला का सा भेष मायाचाररूप... वह तो मायाचार है, कहते हैं। शुद्धता का भान नहीं होता और अशुद्धता के प्रेम में अधिकपने पड़ा और धर्मी कहलाता है और धर्मी का मान दुनिया से लेता है, वह मायाचार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! मिथ्या शल्य, माया शल्य में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन! हसमुखभाई! देखो, यह सन्त, दिगम्बर मुनि योगीन्द्रदेव जंगल में नौ सौ वर्ष पहले थे। विचारकों को विचार लेना। **लोकरंजन के लिये धारण किया है,**... आत्मरंजन हुआ नहीं। भगवान् आत्मा ज्ञान की मूर्ति अनाकुल आनन्द रसकन्द का रंग नहीं लगा अन्दर में। इसलिए लोग प्रसन्न होते हैं, लोग रंजन हो, दुनिया प्रसन्न हो और दुनिया से स्वयं प्रसन्न हो। दुनिया प्रसन्न हो और या उससे स्वयं प्रसन्न हो, वह सब लोकरंजन है। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया अर्थात् ? जो राग, विकल्प और देह की एकताबुद्धि में पड़े, उस दुनिया की कीमत कितनी ? वह दुनिया उसे अभिनन्दन दे, उसे बहुत अच्छा कहे, उसकी कीमत कितनी ? समझ में आया ? आहाहा!

एक माँस के भोग के सहज कण के समक्ष ऐसे गलगलिया करके पूरा अर्पित हो

जाता है चैतन्यमूर्ति को भूलकर। भगवान आनन्दरस कन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के जिसके एक समय के स्वाद के समक्ष जिसे लोकालोक, इन्द्र के सुख भी जिसे तृण (जैसे लगें)। आचार्य तो कहते हैं कि तीन लोक का राज भी मुझे नहीं चाहिए। आहाहा! समझ में आया? अरे! आत्मा के आनन्द की मिठास के समक्ष चक्रवर्ती के भोग, छियानवे हजार स्त्रियाँ, उसे भी जहाँ अन्दर में जहर जैसे लगते हैं। जहर जैसे लगते हैं। अरे! यह क्या? यह क्या? यह क्या? वे छियानवे हजार स्त्रियाँ सम्मान दें। इन्द्राणी जैसी, हों! बड़ी। खम्मा अन्नदाता! अन्नदाता! अर्धांगिनी ऐसी स्त्रियाँ जिसे पुकार ऐसे मलमल ऐसे-ऐसे करे। अन्दर राग में जहर लगे। प्रभु! मेरा अनाकुल आनन्द मेरा आत्मा, मेरा राजसाहेबा अन्दर खो जाता है राग में। अरे! यह क्या? समझ में आया? ऐसे वृन्द में पड़ा, परन्तु आनन्द की मिठास को अन्दर भूलता नहीं और उस राग तथा पर के रस में एकाकार होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

धूल, माँस की हड्डियाँ और ऐसे छियानवे हजार स्त्रियाँ, हों! ऐसे रूपवान सुन्दर। अरे! यह तो हड्डियाँ जड़ और पुद्गल, अरे! ललचाने की ओर उनके कारण से नहीं, परन्तु मेरी वृत्ति उठती है, वह जहर-जहर, दुःख-दुःख है। अरे! यह एक उपसर्ग आया। आहाहा! जैसे सर्प काटने आवे और भागे। ऐसे फण उठाता काला नाग हो ऐसा। पाँच हाथ का, सोटी जैसा लम्बा हो और जाड़ा और ऐसे (फण) मारता आवे, ऐसे भागे, उसी प्रकार उस राग में से ऐसे भागने लगता है। अरर! यह क्या? भोग का राग काले नाग जैसा डसे, (ऐसा) उसे लगता है। समझ में आया? आहाहा!

उसमें जो कहते हैं कि यह तो अशुभ परन्तु, उस शुभ में प्रेम में पड़ा है, वह जहर में पड़ा है। यह मायाचारी बगुला जैसा वेश धारण किया है। आहाहा! यह दिगम्बर आचार्य हैं। इन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं। कहो, समझ में आया? समाज को यह ठीक लगेगा या नहीं, उसके घर में रहा। मार्ग यह है। जिसने परमात्मा को अन्तर में, प्रेम में, दृष्टि में, अनुभव में लिया नहीं, आनन्द को अधिक नहीं किया और ऐसे विकल्प के जाल से अधिकरूप से, बड़ाईरूप से, महत्तारूप से मानकर फँसा, (वह) बगुले जैसा मायाचार लोकरंजन है। यही सत्य है, इसी भेष से हमारा कल्याण होगा,...

यह वेश अर्थात् यह राग उठा और यह जानपना हुआ और कुछ बाह्य का त्याग दिखाई दिया, उसमें से अब मेरा कल्याण हो जायेगा।

मुमुक्षु : क्रम-क्रम से आगे बढ़ा जाये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी क्रम से नहीं बढ़े। यह यहाँ कहते हैं। देखो न, अभी तो दृष्टान्त देंगे पूरा। समझ में आया ? आहाहा !

इत्यादि अनेक विकल्पों की कल्लोलों से अपवित्र है,... लो ! समझ में आया ? यह वेश विकल्प के जाल शुभाशुभराग, विकल्प उठे वासना वृत्तियाँ, उसमें से कुछ कल्याण होगा, उसमें से कल्याण होगा, उसमें कुछ है। दूसरों की अपेक्षा कितने बढ़े हैं ! संसार में भटकनेवालों की संख्या में बहुत दिखता है। उसकी अपेक्षा मैंने कुछ त्याग किया, ऐसा वेश है, ऐसी निवृत्ति है, जंगल में रहा। परन्तु यह भगवान आत्मा अकेला विकल्पातीत चिदानन्द ज्ञानज्योति आनन्दकन्द जिसकी दृष्टि में अधिकपने बसा नहीं, ऐसा जिसका ज्ञान, उसे स्वीकारा नहीं, उसके चित्त में इस जाति की मलिनता का वास रहा करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया इसमें ?

ऐसे किसी अज्ञानी के मोक्ष-पदवी हे जीव, मत देख,... मत देख। आहाहा ! ऐसे विकल्प के जाल और बाहर के ज्ञान के उघाड़ के क्षयोपशमवाले और दुनिया उन्हें माने कि ओहोहो ! क्या इसका उघाड़ और क्या इसकी कषाय की मन्दता ! समझ में आया ? ऐसे अज्ञानियों को तू मोक्ष होगा, ऐसा हे जीव ! मत देख। आहाहा ! समझ में आया ? रतिभाई ! मिथ्यात्व से मुक्ति नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

कहते हैं, भगवान योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि नौ सौ वर्ष पहले जंगल में बसते थे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त (हुए)। वे तो भगवान के पास गये थे और फिर शास्त्र बनाये। पश्चात् यह अभी से नौ सौ वर्ष पहले यह योगीन्द्रदेव नग्न दिगम्बर सन्त जंगल में आत्मध्यान आनन्द में बसनेवाले (हुए)। एक विकल्प आया शास्त्र रच डाला। अरे ! प्राणी भगवान आनन्द के घर में प्रविष्ट नहीं हुआ, उसके ज्ञान के अधिकपने अनुभव नहीं किया, तेरे चित्त में यहाँ अधिकपना बसता है, दुनिया न जाने कि यह मेरी अधिकता यहाँ है, यह कौन जानेगा ? परन्तु तुझे खबर-भान

नहीं कि मैं यह क्या करता हूँ ? समझ में आया ? आहाहा !

ऐसी वाणी तो दिगम्बर सन्तों के बिना कहीं होती नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! देखो इसमें डाला है, भाई ! यह अमरचन्द का आया है न अमर वाणी ? हाथी के हौदे मरुदेवी को केवलज्ञान हो गया। कोपी करने जाते हैं सब, समयसार सब पढ़-पढ़कर। यह है न, स्थानकवासी है। भगवान के दर्शन करने जाती थी मरुदेवी, हाथी के हौदे विचार करते-करते... विवेक की बात करने जाती है। चिन्तवन में से ही मोक्ष होता है। इसलिए हाथी के हौदे मरुदेवी जाये, वहाँ भगवान मेरा पुत्र कहाँ होगा ? अरे ! भरत कहते हैं कि माता ! वे तो केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। उन्हें देव पूजते हैं। कहाँ है, कहाँ क्या ? हैं ! वह तो सामने किसका देखे ? विचार करते-करते हाथी के हौदे, स्त्री को वस्त्र में, स्त्री का देह (उसमें) केवलज्ञान को प्राप्त हुए। कितनी (विपरीतता) ! परन्तु ऐसा तीन काल में होता नहीं। कितना लगाकर ? और वापस ऐसे अन्दर लगे कि हम तो बराबर दूसरे को समझाते हैं और हमें बराबर आत्मज्ञान, इसका नाम कहलाता है। आहाहा ! ... ! पहले तो स्त्री को केवलज्ञान हो सकता नहीं। उसमें हाथी के हौदे पुरुष बैठा हो तो केवलज्ञान नहीं होता। उसमें मात्र अकेला चिन्तवन करते हुए, वस्त्र-बस्त्र सब पड़े हैं, चिन्तवन करते हुए केवलज्ञान हो गया। अभी वस्त्र के प्रति प्रेम छूटा नहीं, स्त्री का देह है, उसे चिन्तवन में केवलज्ञान हो जाये, (- ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं, यह बाहर का देखनेवालों में ऐसा कहे कि आहाहा ! गजब भाई ! एकाग्रता की चिन्तवना में आत्मा की कितनी स्थिति कि अब ऐसी स्थिति में केवलज्ञान पाये। ऐसा होता नहीं। आहाहा !

अभ्यन्तर में जिसे आत्मा का भान हुआ है, वह तो स्वरूप की रमणता में तो उसे मन, वचन, काया से स्वयं ही सब वस्त्र, पात्र आदि का त्याग हो जाता है। अन्तर आनन्द के सम्यग्दर्शन भानसहित, हों ! समझ में आया ? तब अन्तर में चारित्र की रमणता हो जाती है, बाह्य में नग्नदशा हो जाये और वह पुरुष वेद में हो, स्त्री वेद में कभी हो नहीं।

स्त्री वेद में तो बाह्य स्त्री हो, उसे साधुपद नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी आत्म चीज़ को भूलकर... यह बाहर में साधारण ऐसी स्थिति में केवलज्ञान हो गया, लो! लोग कहे, ओहोहो! आत्मा की शक्ति भी वर्णन करते हैं न! यह शक्ति का वर्णन नहीं, उसे ... भान भी नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अर्थात् बिना सम्यग्ज्ञान के मोक्ष नहीं होता। 'मा द्राक्षीः' 'मा द्राक्षीः' गुरु शिष्य को कहते हैं कि हे जीव! ऐसे जीवों को मुक्ति होती है या सम्यग्दर्शन होता है, (ऐसा) न देख... न देख... न देख। आहाहा! ऐई! हाय... हाय! उसका दृष्टान्त कहते हैं। बहुत पानी के मथने से भी हाथ चिकना नहीं होता। लो! लाख करोड़ मण पानी को मथे। पूरे दिन लाख, करोड़, अरब मण पानी को मथा करे, हाथ चिकना होता नहीं। इसी प्रकार कहते हैं कि शुभ-अशुभ विकल्प के जाल में पड़ा है, परसन्मुख के लक्ष्य के उघाड़ में पड़ा है, पर की श्रद्धा में पड़ा है, ऐसे लाख चिकना करोड़ में ... कर परन्तु आत्मा की मुक्ति नहीं होती तुझे, ले। आहाहा! समझ में आया? पानी के मथने से भी हाथ चिकना नहीं होता। कहाँ गये तुम्हारे? नहीं? और क्या हुआ? खाली जगह है न। क्या कहा? समझ में आया इसमें? कितने पानी मंथन से हाथ चिकना होगा? इसी प्रकार कितने बाहर के ज्ञान और बाहर के क्रियाकाण्ड से आत्मा को सम्यग्दर्शन होगा? यह ऐसा कहते हैं। लो! समझ में आया? पानी की संख्या कितनी लेना कि हाथ में जरा चिकनाई आवे भीनी? पानी के मथने से भी हाथ चिकना नहीं होता। चिकना होता नहीं।

क्योंकि जल में चिकनापन है ही नहीं। दृष्टान्त देखो! जल में चिकनापन नहीं। इसी प्रकार बाह्य क्रिया और वेश और बाह्य के महाव्रत के परिणाम और राग के तथा बाहर के ज्ञान के क्षयोपशम में चिकनापन है ही नहीं। इसलिए उसमें आत्मा के ज्ञान की गन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लोग कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते यह होगा, ऐसा करोगे तो यह होगा। यहाँ कहते हैं कि करोड़ मण पानी को मंथन कर तो भी हाथ चिकना नहीं होगा। इसी प्रकार तेरी राग की मन्दता और बाह्य वेश की करोड़ अरब अनन्त क्रिया हो, सम्यग्दर्शन नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई!

धर्मचन्दजी ! आहाहा ! बहिर्मुख की कौनसी चीज़ अन्तर्मुख की, दो चीज़ें ही पूरी भिन्न हैं। आहाहा ! किस शैली से बात करते हैं ! समझ में आया ?

जैसे जल में चिकनाई नहीं है, वैसे बाहिरी भेष में सम्यग्ज्ञान नहीं है। बाहर वेश अर्थात् शस्त्र का उघाड़, बाहर व्यवहारश्रद्धा और पंच महाव्रत और बारह व्रत के विकल्प, वह सब बाह्य वेश है। समझ में आया ? यह बाद में विस्तार करेंगे, परन्तु इसमें यहाँ सामान्यरूप से ले लिया इन्होंने। बाह्य वेश में, वह बाह्य वेश है। भगवान् आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु, उसके अन्तर में बिल्कुल बाह्य वेश—जो बाह्य का जानपना या बाह्य का क्रियाकाण्ड का राग मन्द भाव, वह वस्तु में है ही नहीं।

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु होता ही नहीं, केवलज्ञान उसे होता ही नहीं। वस्त्र हो तब तक केवलज्ञान होता ही नहीं। पहले मुनिपद अन्दर ले, नौ कोटि से मन, वचन, काया से वस्त्र-पात्र (का) करना, कराना, अनुमोदना छोड़े, तब उसे मुनिपना आता है। अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) होता है परन्तु किसे ? वस्त्र-पात्र छूट गये हों, नग्न दिगम्बर हो, सम्यग्दृष्टि हो और अनुभव में स्थिर हो, उसे अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) हो। कहो, समझ में आया ? यह वस्त्र पहने हो और गहने पहने हो और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो जाये, ऐसा तीन काल में नहीं होता। क्योंकि काया से त्याग का विकल्प छूटे बिना कहाँ से मुनिपना आयेगा ? काया से वस्त्र, पात्र (आदि) कोई भी चीज़ है, वह सब छूटनी चाहिए। छूट जाये, वह विकल्प छूटे, सब छूट जाते हैं, छूट जाते हैं। समझ में आया ? कहो, जेठाभाई !

देखो, **सम्यग्ज्ञान के बिना महान तप करो,...** यह आत्मा सम्यक् चिदानन्दस्वरूप के अन्तर निश्चय के भान बिना बाहर तप करो, महान तप करो, ऐसा लिखा है। बारह-बारह महीने के उपवास करके मर जा, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं होगा, हाथ चिकना नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तो भी मोक्ष नहीं होता। महान तप अर्थात् मुनिपना कहना है, हों ! महान मुनिपना। पंच महाव्रत, उपवास क्रियाकाण्ड, दया-दान, व्रत, महा बहुत लाखों लोग, करोड़ों लोग जिसके बोध से ऐसा समझे कि ओहोहो ! यह सब

बाह्य, सम्यग्ज्ञान बिना का बाह्य तप है, शुभभाव है कदाचित्। पुण्य बाँधेगा, यह कहेंगे बाद में। सम्यग्दर्शन नहीं होगा। सम्यग्दर्शन अर्थात् ही मुक्ति। मिथ्यात्व से मुक्ति है न? वह अव्रत से मुक्ति, प्रमाद से मुक्ति, सब मुक्ति है। समझ में आया? आहाहा! यह गले उतरना भारी कठिन।

मुमुक्षु : व्रत करावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे करावे? धूल के? तुम्हारे न करना हो तो सबको पैसा दे दो तो करा डाले, ऐसा। पैसेवाले हैं न। दो-दो रुपये दे देवे प्रौषध करनेवाले को। क्या कहलाता है वह? प्रभावना, प्रभावना। प्रभावना।

मुमुक्षु : पारणा करा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पारणा करा दे बस ऐसा है, देखो! सेठिया व्यक्ति है न, पारणा करा दे, जाओ सबको जिमा दो भाई! लो! प्रौषध करे उसे दो-दो रुपये और उपरान्त पारणा। धूल में भी नहीं सम्यग्ज्ञान बिना। वह भी सम्यग्ज्ञान बिना करनेवाले मूढ़ जीव हैं, उन्हें धर्म कब था? समझ में आया या नहीं? आहाहा!

वीतरागमार्ग जैन परमेश्वर के उपदेश सहन करना भी कठिन, सहन करना। आहाहा! ऐसे उकताहट आ जाये। अररर! यह क्या? प्रभु वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा है न! उसमें से वीतरागता, अनन्त-अनन्त वीतरागता अर्थात् चारित्र निकाला है न उसमें से? अनन्त वीतरागचारित्र, अनन्त वीतरागचारित्र, अनन्त केवलज्ञान। ऐसा भगवान चैतन्य हीरा, ऐसे भगवान आत्मा का अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं, महान तप करके मर जा, परन्तु कल्याण होगा नहीं। समझ में आया?

क्योंकि सम्यग्ज्ञान का लक्षण वीतराग शुद्धात्मा की अनुभूति है,... देखो, आहाहा! भगवान आत्मा के स्वसन्मुख की रागरहित की अनुभूति सम्यग्ज्ञान, उसे यहाँ सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। वीतराग स्वानुभूति की अनुभूति। वीतराग शुद्धात्मा। देखो, आत्मा कैसा है? कि वीतराग शुद्धात्मा। आत्मा कैसा है? कि वीतराग शुद्धात्मा। उसका सम्यग्ज्ञान लक्षण क्या है? कि उसकी अनुभूति। सम्यग्ज्ञान का लक्षण, सम्यग्ज्ञान का लक्षण वह है। बारह अंग पढ़ा या ग्यारह अंग पढ़ा, वह उसका लक्षण नहीं। वह

सम्यग्ज्ञान का लक्षण नहीं। सम्यग्ज्ञान का लक्षण एक बात, लक्षण कि शुद्ध वीतराग शुद्धात्मा। दूसरा बोल, द्रव्य आत्मा वीतराग शुद्धात्मा की अनुभूति, वह शुद्ध सम्यग्ज्ञान का लक्षण है। उसका अनुभव वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण है। समझ में आया ?

लोगों को ऐसा ही लगे बेचारों को, हों! एकान्त है। ऐसा समझे, बेचारे क्या करें? अरे! भाई! भगवान! बापू! ऐसा नहीं होता, हों! मार्ग तो जो है, ऐसा रहेगा। दुनिया कोलाहल करे और न माने, इससे कहीं मार्ग बदल जाये, ऐसा है? अभी ऐसा मार्ग सुनकर जहाँ निषेध करते हैं, उन्हें अन्तर में रुचने का काल कहाँ से आयेगा? समझ में आया? एक बार श्रद्धा का स्वभाव शुद्ध सन्मुख की श्रद्धा का सपाट भाग... समझ में आया? क्या कहलाता है वह? समुद्र में बाँधे वह? नहीं था, रामचन्द्रजी ने बाँधा उसे क्या कहते हैं? सेतु। सेतु का दूसरा क्या शब्दार्थ। पुल-पुल। शुद्धस्वभाव सागर का श्रद्धा के पुल में इस ओर जाना। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान-चारित्र्य इस ओर में से है, ऐसा श्रद्धा का पुल अन्दर जाने का निर्णय नहीं करे, तब तक अन्दर में जा नहीं सकेगा। समझ में आया? वह समुद्र में पत्थर नहीं किये थे, देखो न रामचन्द्रजी ने, नहीं? पुल बाँधा था। यहाँ तो अन्दर से बँधता है।

भगवान आत्मा उस श्रद्धा के पुल से चैतन्य में अन्तर में जाया जाता है। कैसी श्रद्धा? कि निर्विकल्प श्रद्धा। राग के अवलम्बन और निमित्त के अवलम्बन बिना अन्तर में जाया जा सकता है। ऐसी श्रद्धा का पुल पक्का बाँधे बिना भगवान आत्मा का ज्ञान और उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? भीखाभाई! अभी हीराभाई नहीं, गये हैं। आयेंगे और सवेरे। वहाँ से मोटर में आनेवाले हैं।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण वीतराग शुद्धात्मा की अनुभूति है,... ओहोहो! वही मोक्ष का मूल है। वह सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शनादि से भिन्न नहीं है, तीनों एक हैं। ओहोहो! यह सम्यग्ज्ञान चैतन्य भगवान आत्मा का ज्ञान सम्यग्दर्शनरहित वह नहीं होता, उसका ज्ञान राग के अभाव बिना का नहीं होता। साथ में सब होता है। यहाँ तो वीतरागता सिद्ध करनी है। क्योंकि आत्मा वीतराग शुद्धात्मा है। उसकी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति भी वीतराग अनुभूति है। सम्यक्त्वसहित, रागरहित वीतराग अनुभूति है। उसके बिना सम्यग्ज्ञान हो

नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? कहो, इसमें तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? गुणवन्तभाई! समझ में आये ऐसा है। तुम जवान लोगों को न समझ में आये ऐसा होगा? नया लगे तब जरा लगे यहाँ। परन्तु अन्तर वस्तु है या नहीं यह वस्तु बड़ी महान? महा प्रभु विराजता है अन्दर आत्मा, उसकी कीमत नहीं होती। समझ में आया? आहाहा!

माँ के हाथ में से लड़का छूट गया हो। फिर भूल जाये माँ को और दूसरे रास्ते चढ़ जाये। जहाँ उसे और याद आवे कि अररर! ... कहाँ गया? कहाँ मेरी माँ है? दूसरे रास्ते और चढ़ गया तो भूल जाये थोड़ी देर। ... खाने का कुछ दे तो भूल जाये, लड्डू दे तो भूल जाये। ... बैठकर ऐसा कि उसे लड़का ऐसा ... उसे मोटर में ले जाये तो प्रसन्न हो जाये और वह भूल जाये। जहाँ वह याद आवे, अरे! मेरी माँ?

इसी प्रकार यह अनादि काल का वस्तु चिदानन्द भूलकर, कहीं न कहीं फँस गया। या तो देव के सुख में और या प्रतिष्ठा में और या कीर्ति में और या तो त्याग में और या तो स्त्री में और या तो व्यापार में और या तो अधिक होने में। यह शास्त्र के बहाने भी जानपने में अधिक होने में फँस गया तो वहाँ फँस गया। वह याद आता नहीं कि मैं वह कौन हूँ यह? भीखाभाई! आहाहा! और वह वीतराग प्रभु आत्मा है। आहाहा! जिसमें एक विकल्प तीर्थकरगोत्र बँधे, ऐसे भाव की भी जिसमें गन्ध नहीं। आहाहा! ऐसे शुद्धात्म भगवान को भूलकर कहते हैं कि अन्यत्र तुझे प्रसन्नता (कैसे होती है)? उस प्रसन्नता के रास्ते कैसे चला गया? दूसरे प्रसन्नता के रास्ते कितने वेग से गया, कुछ खबर है वेग की? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर में

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर तो अब स्थूल हो गया। उसकी तो बात ही कहाँ रही? यहाँ तो मन्द कषाय और शास्त्र के ज्ञान के खूँटे में चढ़ गया, वह खूँटे में चढ़ा वहाँ फँस गया, यह आत्मा रह गया। आहाहा! समझ में आया? यह खूँटा दूसरा हो गया। आहाहा!



गाथा - ७५

आगे निश्चयकर आत्मज्ञान से बहिर्मुख बाह्य पदार्थों का ज्ञान है,... देखो! यह बाह्यपदार्थ में छह द्रव्य का और भगवान का, शास्त्र का, गुरु का ज्ञान, उससे प्रयोजन नहीं सधता,... आहाहा! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल, औषध जो भव रोग के कायर को प्रतिकूल।' ऐसे कलेजा (कांप जाये), अररर! क्या करता है यह? वीतराग शास्त्रकार क्या कहते हैं यह? परन्तु हम कहाँ चिपटे? अभी तीव्र राग में से उसमें से मन्द में (तो लाओ)। परन्तु मन्द में आवे तो भी वह का वह है, सुन न! एकताबुद्धि, विकल्प के प्रेम की बुद्धि तो एक ही प्रकार है, उसमें दूसरा कोई प्रकार है नहीं। वेश बदला उसमें तत्त्व कहाँ बदला है अन्दर? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयकर अर्थात् सत्यदृष्टि से देखे तो, आत्मज्ञान से बहिर्मुख... भगवान आत्मा उसकी अन्तर की अनुभूति का वीतरागी ज्ञान, उसे बहिर्मुख बाह्य पदार्थ का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान, शिष्यों को इकट्ठा करने का ज्ञान, मन्दिर बनाने का ज्ञान, अरबों रुपये खर्च करने की कला। हम अरबों रुपये खर्च करा देते हैं दूसरों से, सेठियों को ऊँचा करके। यह सब अज्ञान है, कहते हैं। आहाहा! धर्मचन्दजी! उससे प्रयोजन नहीं सधता,... देखो, है न? 'यन्निजात्मबोधज्ञानबाह्यं ज्ञानं तेन प्रयोजनं'। ज्ञान से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, बाह्य ज्ञान से, ले। आहाहा! अन्तर ज्ञानमूर्ति चैतन्य सूर्य प्रभु के अन्तर के ज्ञान बिना बाह्य के ज्ञान से कुछ प्रयोजन सिद्धि है नहीं। यह जहाँ दो शब्द आये, वहाँ कहे मुझे आये, हों! इसका उत्तर मुझे आया। समझ में आया? शास्त्र की बात करना आयी हो, बोलना आती हो। कैसा व्याख्यान, देखा! एक घण्टे कोई बोले नहीं, ऐसी कला हमारे पास है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कैसे कैसा लगे तुमको? क्या धूल लगे? सुन न! वाणी जड़ की है, विकल्प राग है, उघाड़ पर की ओर का है, वह जड़ है। सुन न अब तू! समझ में आया? आहाहा! कठिन लगे परन्तु, हों!

ऐसा अभिप्राय मन में रखकर कहते हैं— भगवान योगीन्द्रदेव आचार्य दिगम्बर मुनि वन में बसते यह श्लोक ताड़पत्र पर लिखे गये हैं, ताड़पत्र के ऊपर, हों!

२०२) जं णिय-बोहहँ बाहिरउ णाणु वि कज्जु ण तेण ।

दुक्खहँ कारणु जेण तउ जीवहँ होइ खणेण ॥ ७५ ॥

देखो, प्रयोजन का अर्थ कार्य किया है। आहाहा! गजब, हों! आचार्यों की शैली भी कोई...! दिगम्बर सन्तों ने तो धर्म के स्तम्भ (होकर) धर्म को स्थिर रखा है। महा सन्तों ने (कही हुई) तत्त्व की बात को लोग समझ सके नहीं। समझ में आया? यह तो नौ सौ वर्ष पहले का ग्रन्थ है। यह कहीं नया किया हुआ सोनगढ़ का नहीं।

जो... 'निजबोधात्'। भाषा है, देखो! 'निजबोधात्' अपने ज्ञान से, आत्मा के ज्ञान से। भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य के स्वसंवेदन... स्वसंवेदन... स्वसंवेदन—ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, निज का ज्ञान, इसके अतिरिक्त बाहर ...से रहित, ऐसे ज्ञान से बाहर, आत्मज्ञान से बाहर, आत्मा के स्वबोध के भान बिना के बाहर, शास्त्र वगैरह का ज्ञान भी है,... वह शास्त्र इत्यादि का ज्ञान। कला, बहत्तर कला। जहाँ हो वहाँ ... हो सबको। व्याकरण आवे, कवित्व आवे, लेख आवे, फलाना आवे, एक-एक। समझ में आया? ऐसे हजारों शास्त्र पड़े हो, उनकी खबर हो, इस लाईन में यहाँ है और इस लाईन में यहाँ है। ऐई! तेरा कार्य उससे सरे (सिद्ध हो) ऐसा नहीं। प्रेमचन्दजी! ऐसी कठिन, परन्तु बात दिल्ली में सुनाई देती है? कठोर पड़े न लोगों को। खलबलाहट-खलबलाहट। ...अरे! भगवान, सुन बापू! आहाहा! कहते हैं, अरे! शास्त्र वगैरह का ज्ञान भी है, उस ज्ञान से कुछ काम नहीं,... कार्य नहीं, देखो भाषा! यह व्यवहारिक ज्ञान शास्त्र का ज्ञान हों व्यवहार, उस ज्ञान से कुछ आत्मा को लाभ नहीं, कुछ कार्य नहीं। यह वह कहीं बात! राग का तो भुक्का उड़ाया है या नहीं? समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं कि ...! तेरा मूल राजा तू, उसका भान नहीं और अब यह सब प्रजा पर की सिरपच्ची की सब। बाहर के शास्त्र से 'तेन कार्यं न' 'तेन कार्यं न' शास्त्र में ऐसा पाठ है यहाँ तो। उससे कुछ कार्य होता नहीं। पर से तो ज्ञान होता नहीं, परन्तु अपने को शास्त्र का ज्ञान हुआ, उससे आत्मा का कुछ कार्य होता नहीं। आहाहा!

नेमिदासभाई ! आहाहा ! यह तो इतना तो ले । भाषा है न आचार्य की ! 'जं णिय-बोहहं बाहिरउ णाणु वि कज्जु ण तेण' जरा भी कार्य कर सकता नहीं । आहाहा ! परन्तु अब कितने भेदभंग आवे, कितने प्रश्नोत्तर करे तो आवे, बोलना आवे, समझाना आवे सबको, लो ! कहो ! कहते हैं, उससे आत्मा का कुछ कार्य होनेवाला नहीं, ले ।

मुमुक्षु : नम्बर किसका लगाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नम्बर लगाना आत्मा का । यह आत्मा का ज्ञान (हो), उसमें (दूसरा) कुछ न हो तो उसका नम्बर लग गया । नम्बर लगे अर्थात् क्या कहते हैं ? नम्बर लग गया । कहीं है सही । लॉटरी में । हाँ... हाँ... लॉटरी में । उस लॉटरी में उसका नम्बर लगा ।

क्योंकि वीतरागस्वसंवेदनज्ञान रहित... आत्मा के रागरहित सम्यक् चैतन्यमूर्ति के ज्ञानरहित तप । शीघ्र ही जीव को दुःख का कारण होता है । कार्य नहीं, ऐसा (कहकर) इतने से अटके नहीं वापस । दुःख ही है । आहाहा ! भगवान आत्मा चैतन्य के सम्यक् अन्तर बोध बिना, वे सब शास्त्र के ज्ञान आदि, वह सब दुःख का कारण है । (यह कहीं) बात है ! इसका विशेष चलेगा....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण १, रविवार, दिनांक ०६-०२-१९६६

गाथा - ७५, प्रवचन - १२०

योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर मुनि नौ वर्ष पहले हुए हैं, उन्होंने यह शास्त्र सर्वज्ञ के अनुसार जो बोध अनादि का था, उस बोध से लिखा है। ७५ (गाथा) देखो! फिर से लेते हैं, हों शब्दार्थ।

२०२) जं णिय-बोहहं बाहिरउ णाणु वि कज्जु ण तेण।

दुक्खहं कारणु जेण तउ जीवहं होइ खणेण ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ :- जो... 'निजबोधात्' आत्मज्ञान से बाहर (रहित)... क्या कहते हैं? यह आत्मा जो है, वह शुद्ध शान्तरस का पिण्ड आत्मा है। अकषाय शान्त... शान्त... शान्त... पिण्ड... ऐसे आत्मा का अन्दर ज्ञान, उस शान्ति के-शान्ति के आनन्द के साथ प्रगट हुआ ज्ञान, उस ज्ञान(मय) आत्मा को ही ज्ञान कहा जाता है। उस ज्ञान से बाहर... समझ में आया? आत्मा का ज्ञान अर्थात् कि स्वरूप शुद्ध चैतन्य जो अकषाय वीतराग शान्तरस का तत्त्व पूरा, उसका ज्ञान (कि) जिसमें आत्मा को उस ज्ञान से शान्ति हो शान्ति। ऐसे आत्मज्ञान की शान्तिरहित ज्ञान को बाहर (रहित) शास्त्र वगैर का ज्ञान भी है,... लौकिक की बात तो नहीं, लौकिक की यह बुद्धि यह संसार की वकालत की, डॉक्टर की, वह सब तो दुःखमय है, वह बुद्धि दुःखमय है, परन्तु आत्मा के ज्ञानरहित शास्त्र आदि का ज्ञान, वह ज्ञान... शास्त्र वगैरह का ज्ञान भी है, उस ज्ञान से कुछ काम नहीं,... उस ज्ञान से भी आत्मा का कुछ जरा भी कार्य होता नहीं। आहाहा! नवनीतभाई! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत का ज्ञान, वह दुःखरूप विशेष। यह शास्त्र का ज्ञान दुःखरूप थोड़ा, परन्तु दुःखरूप यह है। अशुभभाव है और यहाँ शुभभाव है, इतनी अपेक्षा से। मिथ्यात्व की अपेक्षा से समान। शास्त्र के पठन में शुभ का विकल्प है,

शास्त्रज्ञान। लौकिक ज्ञान में अशुभराग का भाव है। वह महान दुःखरूप है।

यहाँ तो अन्तर में आत्मज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा जिसके ज्ञान में अन्तर शान्ति, अनन्तानुबन्धी का अभाव, उतनी शान्ति (हुई है), मिथ्यात्व का अभाव उतना निःसन्देह प्रतीति का भाव है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना शास्त्र का ज्ञान भी कुछ प्रयोजन का नहीं। आत्मा को कुछ कार्यकर नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : दुःख का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी अब आयेगा। यह तो कुछ प्रयोजन नहीं, इतना सिद्ध नहीं करे। परन्तु आत्मा के अन्तर ज्ञान में भानरहित जितना जानपना (हो), वह दुःखरूप है। उसे अभिमान हो, उसे यह हो, यह किया और यह जाना.. यह किया, भटका भटक विकल्प के जाल में।

कहते हैं कि **क्योंकि वीतरागस्वसंवेदनज्ञान रहित...** आत्मा का, राग और विकल्परहित स्व चैतन्य का प्रत्यक्ष ज्ञान, ऐसे स्वसंवेदनज्ञान रहित **तप शीघ्र ही जीव को...** मुनिपना हो, बाहर पंच महाव्रत हो। दो बातें लीं—एक तो शास्त्र का ज्ञान और मुनिपना। वह **जीव को दुःख का कारण होता है।** शीघ्र ही दुःख का कारण है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? संसार के भाव संसार के लिये हों शुभ-अशुभभाव, वह तो दुःखरूप है ही। दुःख का ही कारण है। वस्तु दुःखरूप नहीं, हों, उसका भाव। वस्तु दुःखरूप नहीं। यह बाहर की चीजें, वे कहीं दुःखरूप नहीं, सुखरूप नहीं। इसने किये हुए विकारी भाव, वे दुःखरूप हैं। समझ में आया? यहाँ तो तदुपरान्त जरा शास्त्र के पढ़नेवाले, देव-गुरु को माननेवाले और मुनिव्रत के पालनेवाले, उन्हें कहते हैं कि तेरा पठन, वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब रिकॉर्डिंग में उतरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रिकॉर्ड में उतरने के लिये तो उतरता है यह। यह है क्या, देखो न!

दो बात—‘ज्ञानमपि’ और ‘तपः’ दो शब्द लिये। भाई! भगवान आत्मा अकेला शान्तस्वरूप, चैतन्य की शान्ति जिसमें अकेला अकषायस्वभाव, जिसके शान्त... जैसे

बर्फ है, उसी प्रकार प्रभु आत्मा शान्त शिला है, शान्त शिला अरूपी है। भगवान आत्मा अकषाय (स्वरूप है)। पुण्य-पाप के जितने विकल्प राग हैं, वह दुःखरूप है, उनसे रहित उसका स्वरूप शान्त... शान्त... शान्त... अकेला पिण्ड। यह और वह याद आया था तुम्हारा। शीतल शिला शशिकान्त की जहाँ विश्रान्ति लही। यह और मस्तिष्क में आ गया। वह उसमें यहाँ आ गया, यहाँ आया। 'शीतल शिला शशिकान्त की...' समवसरण (स्तुति) में यह बात आती है। भगवान के पास जाते हैं न इन्द्र, तब बीच में शीतल शिला शशिकान्त की (आती है), वहाँ इन्द्र प्रविष्ट करते हुए जरा बैठते हैं। कहते हैं कि वह तो नहीं। 'शीतल शिला शशिकान्त की....' भगवान आत्मा जिसमें शास्त्र के ज्ञान का भी विकल्प उठे, वह अशान्ति है। आहाहा! कठिन बात, भाई! उसके बिना की शिला शान्त... शान्त... शान्त... 'शीतल शिला शशिकान्त की जाने' चन्द्रमा की शीतल किरणें फूटती हों, वैसे शीतल-शीतल स्वरूप भगवान आत्मा में इन्द्र विश्रान्ति ले। आत्मा में एकाकार होकर विश्रान्ति ले, ऐसे ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? उस ज्ञानरहित, कहते हैं कि शास्त्र का ज्ञान हो, व्याकरण और यह और अर्थ और शब्दार्थ... समझ में आया? संस्कृत और शास्त्र का ज्ञान आचारांग और सूयगडांग, ठाणांग और समयसार, प्रवचनसार और नियमसार... आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ देव फरमाते हैं, भाई! यह तो मुनि कहते हैं। दिगम्बर मुनि नौ सौ वर्ष पहले सन्त जंगल में बसते थे, वे कहते हैं कि अरे! भगवान परमात्मा ऐसा फरमाते थे और ऐसा है। भाई! तेरा ज्ञान अन्तर में शान्ति को स्पर्शकर जो ज्ञान आवे, जिसमें अविकारी सम्यग्ज्ञान शान्त-शान्त वीतराग पिण्ड प्रभु, वीतरागी अकेला पिण्ड, जिसमें विकल्प का उठना भी दुःखरूप लगे, शास्त्र का पठन भी जहाँ दुःखरूप है। भीखाभाई! आहाहा! उससे रहित, जो शान्त प्रभु चैतन्य भगवान, उसे अन्तर स्पर्शकर, चैतन्य की निर्विकल्प शान्ति को स्पर्शकर जो ज्ञान हो, वह ज्ञान प्रयोजनभूत है। वह आत्मा को शान्ति और मोक्ष का कारण है। इसके अतिरिक्त, कहते हैं कि बापू! तेरा शास्त्र का ज्ञान-पठन अभिमान करके मार डालेंगे तुझे। आहाहा! शशीभाई! ऐ... रतिभाई! अब इसमें रुपये क्या करते होंगे?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये आकुलता नहीं करते, उस ओर का ममता भाव, वह आकुलता दुःख, दुःख और दुःख।

यहाँ तो कहते हैं कि राग घटाकर—मन्द करके कोई दान में दे, वह राग मन्द, वह दुःख। आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि पंच महाव्रत के परिणाम होना राग, वह मन्द का विकल्प है, वह दुःख। सूक्ष्म बात है, बापू! इसने कभी आत्मा की बात, भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सत्-शाश्वत् आनन्द का कन्द, उसकी बात इसने सुनी नहीं। धर्म के बहाने इसने ढोंग किये। परन्तु धर्म किसे कहना? भाई! जिसमें शान्त होकर स्थिर हो। आहाहा! शान्त... शान्त... शान्त... यहाँ तो भगवान आचार्य कहते हैं। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि जंगल में बसनेवाले, उन्हें कहाँ दुनिया की पड़ी है कि यह दुनिया को ठीक लगेगा या नहीं ठीक लगेगा? नवनीतभाई! यह तो भाई! प्रभु! तेरा रस शान्त और अकषाय रस है न, बापू! उसमें शास्त्र के पठन का विकल्प भी दुःखरूप है। आहाहा! यह वह कोई....

मुमुक्षु : कषाय मन्द हो और आत्मा खुल्ला हो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मन्द हो, वह दुःखरूप भाव है, ऐसा कहते हैं। वह खुल्ला नहीं होता, वह दुःख में बँध जाता है। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाते हैं न।

भगवान! शान्त हो, बापू! तेरा स्वरूप ही (ऐसा है)। ऐसे विकल्प की वह खदबदाहट उठना, ऐसे शास्त्र की ओर का विकल्प उठना, भाई! वह दुःखरूप है। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह तो शान्त अकषायस्वरूप का ही अकेला सागर आत्मा है। अकषाय कहो या वीतराग कहो या शान्त... शान्त... शान्त... उसमें जितना ऐसे पठन की ओर—शास्त्र के बोझा की ओर जाना, वह कहते हैं विकल्प का बोझा है, दुःख है, भाई! आहाहा! नवनीतभाई! अब यह कहते हैं कितने ही तो भगवान भाई! यह तो बात समझने के लिये, हों! इस व्यवहार से यह होता है। भाई! शास्त्र के ज्ञान से भी कहते हैं कि मुझे काम नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरा प्रयोजन उससे सिद्ध नहीं होता। अरे! यह नहीं परन्तु तप, मुनिपना। तप है न? वीतराग स्वसंवेदनज्ञान रहित तप महाव्रत, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (पालन करे), महीने-महीने के

अपवास, शरीर के टुकड़े करके नमक छिड़के तो क्रोध न करे, ऐसी जिसकी क्रिया। तप, वह भी यह अन्तर ज्ञानानन्द प्रभु शीतल... शीतल... शीतल.... छाया जिसकी, उसकी ओर ढला नहीं, उसका झुकाव अन्तर अनुभव किया नहीं, उससे रहित तेरे तप आदि सब शीघ्र दुःख का कारण है। ओहोहो! समझ में आया? दूसरी भाषा में कहें तो निश्चयरहित व्यवहाररत्नत्रय दुःख है और यह निश्चयसहित हो तो वह तो दुःख ही है, ऐसा कहते हैं, लो! नवनीतभाई! वह निमित्त कहा था न? नियत का हेतु और कारण।

भगवान! भाई! तू तो कौन है, तुझे खबर नहीं, भाई! उसमें गर्दन ऐसी ऊँची करना, ऐसा भगवान कहते हैं, ऐसा सुनने का विकल्प करना, वह कहते हैं दुःखरूप है। आहाहा! इसकी महत्ता इसे कैसे बैठे? जहाँ-तहाँ भिखारी होकर माँगा करता है। कोई मुझे बड़ा कहे, कुछ जानपने से बड़ा कहे, कुछ ब्रह्मचारी हूँ, ऐसा करके बड़ा कहे, कुछ मैं त्यागी हूँ व्रत का, व्रत का त्यागी हूँ। बाहर में त्यागी हूँ, ऐसा कहो। लो! मैंने कुछ किया। अरे... भगवान! क्या है परन्तु तुझे? रतिभाई! बहुत बात परन्तु यह...! अब यह तुम्हारे पैसेवालों का सुख कहाँ गया? धूल में भी नहीं। कौन कहता है? कौन कहता है कि पैसेवाले सुखी हैं? भगवान कहते हैं कि दुःखी है। पैसे के कारण से नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ पागल तो, पागल के अस्पताल में पागल ही बातें करे न! पागल हैं सब पागल। नवनीतभाई! पागल तो पागल की बातें करे।

यहाँ तो भगवान तीन लोक के नाथ जैन वीतराग परमेश्वर जिनकी वाणी में आया... यहाँ तो अन्तिम में अन्तिम बात तत्त्व की है। आहाहा! भाई! तू तो प्रभुता के शान्त स्वभाव के रस से भरपूर, ऐसे-ऐसे यह विकल्प की वृत्ति का उत्थान उठता है वह, यह... भाई! कहते हैं, उससे मुझे क्या प्रयोजन? समझ में आया? आत्मा को उससे क्या कार्य की सिद्धि है? ऐसा कहते हैं। जिसे कारण कहा दूसरी जगह, उससे यहाँ इनकार किया कि उससे मेरा कुछ कार्य हो, ऐसा नहीं। लो! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! मैं स्वयं ही अतीन्द्रिय आनन्द का रस हूँ, उसमें से मुझे यह विकल्प उठाना पठन शास्त्र का, हों! या कषाय मन्द से अभिमान से उठावे कि हम

ऐसे हैं, हमको आता है, वह तो और महान दुःखी के सरदार हैं। समझ में आया ? हमको आता है, तुमको आता नहीं, हम कुछ आगे बढ़े हैं जानने में, ऐसे अभिमानी तो महा दुःखी, दुःखी और दुःखी, मिथ्यात्वसहित दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। रतिभाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : घोषणा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह घोषणा करते हैं अपनी कि मैं कुछ हूँ, ऐसा मुझे कहो, गिनो, कुछ गिनो। ऐसा भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो अन्दर में जिसे शास्त्र का ज्ञान हुआ है अभी परसन्मुख के झुकाववाला ऐसा विकल्प, वह मेरे कार्य को क्या सिद्ध करेगा ? आहाहा ! समझ में आया ? हिम्मतभाई ! यह कठिन बातें, भाई ! आहाहा !

प्रभु ! यह तेरे घर की बात है, हों ! परन्तु इसे घर की बात सुहाती नहीं। बाहर बाहर से कुछ बाहर के झुकाव से अन्दर किंचित् धर्म हो जाये न। अररर ! कहते हैं कि बाहर का विकल्प वह शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान ही नहीं, वह व्यभिचारी ज्ञान है। आहाहा ! समझ में आया ? और पंच महाव्रत के परिणाम, वे शुभराग, वह व्यभिचारी भाव है। भाई ! तुझे खबर नहीं, वे दुःखरूप हैं। आहाहा ! कहाँ घुस गया और घुस गया कहाँ, इसकी इसे खबर नहीं होती वापस। और कोई बात करे तब कहे, नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं। बहुत अच्छी बात है, बापू ! भटक। नवनीतभाई ! अनादि से है, भाई ! निगोद का पेट बड़ा है, बापू ! निगोद का पेट बड़ा। यहाँ मरकर सबको इकट्ठा करेगा वह। एक शरीर में अनन्त जीव। बाह्य तत्त्व का विरोध करनेवाले, ऐसा तत्त्व है, यह नहीं समझनेवाले, उन्हें बड़ाई और प्रतिष्ठा का मान और समाविष्ट / प्राप्त, वे सब मरकर निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा ! उस निगोद का पेट बड़ा कि बहुत जीव जाकर वहाँ संग्रहित हों। एक शरीर ही निगोद का कहा था न एक बार ? कितने सागरोपम तक शरीर एक, हों ! उसमें निगोद के जीव आये और जाये, आये और जाये, शरीर वह का वह। वह अन्तर्मुहूर्त स्थितिवाला... यह तो बड़ा शरीर है औदारिक। आहाहा ! भाई ! तेरा स्वभाव अत्यन्त निवृत्त। हीराभाई ! आहाहा !

इसलिए कहते हैं, उस ज्ञान से कुछ काम नहीं,... है ? ऐसे शास्त्रज्ञान से। दूसरे पठन के अभिमान और उससे तो क्या, कुछ धूल भी नहीं। समझ में आया इसमें ?

वकालत का और वह क्या कहलाता है तुम्हारा ? डॉक्टर का, एम.ए. का पूंछड़ा और यह सब धन्धा-व्यापार का और पुस्तकों का। इन नवनीतभाई को क्या कहलाये वह ? क्या कहलाये ? पावर हाउस का। आहाहा ! वीतराग को कहीं किसी की शर्म है ? आहाहा !

प्रभु ! भाई ! तुझे शान्ति चाहिए हो तो यह रास्ता ले। वह सब भूल जा, भूल जा, हों ! उस शास्त्र के ज्ञान से मुझे ऐसा कुछ तो होगा या नहीं ? कुछ तो होगा न ? धूल भी नहीं होगा, कहते हैं, ले ! और हम दया, दान पालते हैं, राग मन्द करते हैं, महाव्रत पालते हैं, महीने-महीने के अपवास करते हैं, कुछ तो होगा न ? धूल भी नहीं होगा कार्य, ले। दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यह वह वीतराग कहते हैं यह, हों ! समझ में आया ? क्योंकि शीघ्र ही जीव को दुःख का कारण होता है। इतना शब्दार्थ किया।

भावार्थ :- निदानबन्ध आदि तीन शल्यों को आदि ले... मायाशल्य, मिथ्याशल्य, समझ में आया ? निदानशल्य। गहरे-गहरे में तीन शल्य पड़े हैं अज्ञानी को। चाहे जितनी बातें करता हो, परन्तु उसे अन्दर मिठास... मिठास... मिठास... राग की मिठास वर्तती है। कहते हैं कि निदान ही है तुझे तो। मिथ्यात्व का निदान, माया का निदान, गहरे में उसका फल, उसका फल कुछ मिले, ऐसी ही इच्छा अन्दर है। आनन्द की शान्ति का अन्तर अनुभव नहीं। समझ में आया ? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भव रोग के कायर को प्रतिकूल।' वीतराग के वचन शान्तरस को समझानेवाले, भगवान शान्त वीतरागरूप से आत्मा, उसे वे बतलानेवाले हैं, वे ऐसा कहते हैं, वीतराग के वचनामृत ऐसा कहते हैं कि तेरे अमृत के स्वाद के भानरहित ज्ञान, वह तुझे कार्यसिद्धि में किंचित् भी सहायता नहीं करता। भाई ! वह तुझे दुःखरूप है। यह कायर जीवों को... अररर ! यह तो लोप हो जाता है।

मुमुक्षु : किसका ? अज्ञान का या ... किसका ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का लोप हो जाता है। ऐई ! नवनीतभाई ! यह सब सुना है न इसने बहुतों के पास। आहाहा ! यह कहते हैं, भाई ! परम शान्तरस मूल। यह वाणी, यह तेरे निर्विकल्प शान्तरस को बतलाने के लिये वाणी है। वह व्यवहार विकल्प

है, वह तो अन्दर भान हुआ, इसलिए जानने के लिये हो, आदरने के लिये नहीं, वह दुःखरूप है।

निदानबन्ध आदि तीन शल्यों को आदि ले समस्त विषयाभिलाषरूप... विषय अर्थात् पर की अभिलाषा। स्व का वेदन, चैतन्य की शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकेला जिसके शान्तरस के एक स्वाद के समक्ष जिसे यह विकल्प दुःखरूप लगे, उसका उसे उत्साह कैसे हो? समझ में आया? **मनोरथों के...** इसके मन का रथ ही वहाँ घूमता है, कहते हैं। भगवान् आत्मा अकेला अरागी वीतरागस्वभावस्वरूप ऐसी जिसे अन्तर दृष्टि और ज्ञान हुआ नहीं, उसके मनोरथ तो विकल्प में ही दौड़ा करते हैं। इसका ऐसा है... इसका ऐसा है.... इसका ऐसा है.... इसका ऐसा है।

विकल्पजालरूपी अग्नि की ज्वालाओं से... आहाहा! देखो! यह शुभ आदि विकल्प की जाल है, अग्नि की ज्वाला है, कहते हैं। समस्त कहा है न? सब विकल्प जाल। शुभ शास्त्र के पठन का विकल्प, पढ़े हुए को ज्ञान के भाव का विकल्प। कहो, दास! यह लोगों को जरा कठिन पड़े, हों। परन्तु अब तो बहुत अभ्यस्त हो गये हैं या नहीं? रतिभाई! ऐसी ज्वाला अग्नि की उठती है, कहते हैं, विकल्प की। आहाहा! उससे रहित जो निज सम्यग्ज्ञान है,... देखो, जो निज सम्यग्ज्ञान है। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य का अन्तर ज्ञान है, ज्ञान का ज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान नहीं, ज्ञान का ज्ञान है, अन्तर में वेदन में ज्ञान शान्ति को वेदता है, ऐसा जो निज ज्ञान। **उससे रहित बाह्य पदार्थों का शास्त्र द्वारा ज्ञान है, उससे कुछ काम नहीं।** इससे बाह्य पदार्थ... वे सब, निज पदार्थ के अतिरिक्त बाह्य पदार्थ—ऐसा लेना। निज और पर, वह सब शास्त्र का ज्ञान, छह द्रव्य सब बाह्य पदार्थ का ज्ञान है। भीखाभाई! आहाहा!

कहते हैं, भगवान् निज सम्यग्ज्ञान **उससे रहित बाह्य पदार्थों का शास्त्र द्वारा ज्ञान है, उससे कुछ काम नहीं।** उससे आत्मा का कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता। आहाहा! **कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है।** है? कार्य तो एक भगवान् आत्मा ज्ञान का ज्ञान, वह ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान, उससे कार्य है। लो! इसमें तो एक ही मार्ग कहा वापस, भाई! आहाहा! दो मार्ग, ऐसा नहीं कहा, भाई! यह 'दुविहं पि मोक्खहेउं' कहा

न ? छहढाला में कहा, सर्वत्र कहा। यहाँ कहा वह तो वहाँ कथनमात्र प्रकार से कहा था। वस्तु वह नहीं रे नहीं। वस्तु तो एक कार्य निज आत्मा का ज्ञान, वह एक ही कार्य है। दूसरा ज्ञान को, व्यवहार ज्ञान को मोक्षमार्ग में निमित्तरूप से गिनकर व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया था, वह यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया ? **कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है।** ओहोहो ! फिर शास्त्र पढ़ा हो या न पढ़ा हो। पढ़ा हो तो, कहते हैं कि कार्य उससे नहीं, फिर प्रश्न क्या ? आहाहा !

मुमुक्षु : शास्त्र पढ़कर कुछ किया तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी है नहीं। वह तो कार्य में सहायता की, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो एकदम निरपेक्ष वस्तु ऐसी है कि जिसे बाहर के पठन की बिल्कुल अपेक्षा है नहीं। कहो, जमुभाई ! यहाँ कहीं बनिया के छूट छाट नहीं अन्दर। थोड़ा यहाँ पोचा (ढीला) रखे और थोड़ा यह करे न। यह बनिया करे न, पाँच हजार का लेना हो तो वह कहे, हजार से एक (अधिक) ऐसा पैसा नहीं देना। यह कहे, पाँच हजार में से एक पाई भी कम नहीं लेना। ऐसा करते-करते दो हजार आये बीच में। ऐसा होगा यहाँ कुछ वीतराग मार्ग में ? शान्तिभाई ! संसार में ऐसा चलता है। वह किसान से माँगता हो न पाँच हजार रुपये। किसान कहे परन्तु भैंसों बेचें तो भी हजार हो, ऐसा है मुश्किल से। हराम एक हजार से अधिक देना हो तो। वह कहे, हराम पाँच हजार में से पाई कम लूँ तो। पाँच हजार माँगते हैं। (ऐसा) करते-करते तब वह कहे, बारह सौ लो, यह कहे कि तब चार हजार दो, वह कहे पन्द्रह सौ लो, यह कहे तीन हजार। अब ऐसा करते-करते दो हजार में बीच में आ जाये ऐसा होगा यहाँ कुछ ? गोपालदासभाई ! क्या होगा ? एक मार्ग वीतराग का जिसमें कोई अपवाद और छूट-छाट की बात है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? दूसरे से न हो और इससे हो, इसका नाम अनेकान्त है। दूसरे से भी हो और इससे सभी हो, यह वाणी में आवे, वस्तु में नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ देवाधिदेव जिनवर की दिव्यध्वनि में आयी हुई यह बात सन्तों ने शास्त्र में ईशारारूप से रची है।

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया, ... कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है। इसका

अर्थ ले लेना कि कार्य तो एक आत्मा की श्रद्धा से ही है, कार्य तो एक आत्मा की शान्ति की स्थिरता से ही है। यहाँ ज्ञान की व्याख्या है। उसके साथ श्रद्धा और स्थिरता—चारित्र तीनों आ गये। भाई! समझ में आया? व्यवहारचारित्र, व्यवहार शास्त्र का ज्ञान और व्यवहार श्रद्धा से कार्य आत्मा को बिल्कुल नहीं कर सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार श्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार श्रद्धा निमित्तरूप का ज्ञान कराते हैं न! ऐसी ही व्यवहारश्रद्धा का विकल्प और ज्ञान, उसे ऐसा ही होता है, इससे उल्टा नहीं होता। कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र को मानता हो और उसे निमित्त ऐसा हो और अन्दर निश्चय हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा बताते हैं। ऐसा निमित्त है, इसलिए यहाँ है, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। व्यवहार निमित्तरूप से सच्चा है, इसलिए निश्चय है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया, कि निदानबन्ध रहित आत्मज्ञान तुमने बतलाया, उसमें निदानबन्ध किसे कहते हैं? निदानबन्ध बड़ा कहा, निदानबन्ध किसे कहते हैं आप? समझ में आया? उसका समाधान—जो देखे, सुने और भोगे हुए इन्द्रियों के भोगों से जिसका चित्त रँग रहा है,... लो! यह व्याख्या। समझ में आया? यह आत्मा कभी देखा नहीं, उसे कभी जाना नहीं, उसे कभी अनुभव किया नहीं। यह देखे हुए, सुने हुए और भोगे हुए। जिसे बाहर का ही लक्ष्य है। इन्द्रियों के भोगों से जिसका चित्त रँग रहा है,... उसके बाहर के विकल्प से जिसका चित्त रँग गया है। ऐसा अज्ञानी जीव रूप-लावण्य सौभाग्य का अभिलाषी... चैतन्य के रूप की और चैतन्य के लावण्य की और चैतन्य के आनन्द की जिसे खबर नहीं, इसलिए उसे बाहर के रूप, शोभा और अभिलाषा का प्रेम अन्दर पड़ा है। समझ में आया?

वासुदेव चक्रवर्ती-पद के भोगों की वांछा करे... गहराई में (ऐसा है कि) इसमें से कुछ अच्छा पद मिलेगा। इस निजपद की तो खबर नहीं। निजपद अखण्ड आनन्दकन्द अनाकुल शान्त-शान्त... भगवान को सुनने में विकल्प भी अशान्त। आहाहा! नवनीतभाई! कहते हैं, ऐसे निजपद की इच्छा, धारणारहित और **चक्रवर्ती-पद के**

भोगों की वांछा करे; दान, पूजा, तपश्चरणादिकर... यह दान करे, पूजा करे, भगवान की भक्ति करे, यात्रा करे। तपश्चरणादि शब्द है न? तपस्या करे, महीने-महीने के अपवास करे, मुनिव्रत पालन करे, अट्ठाईस मूलगुण का (पालन करे) आदि। यात्रा आदि। करोड़ों, अरबों रुपये का दान करे, लाखों मन्दिर बनावे, विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें करे, हाथी बुलावे, दस-दस हाथी, तपश्चरण करे बड़ा, अन्दर में ऐसी जर्जरित हो जाये, हड्डियाँ खड़के तपस्या कर-करके, इतनी तपस्या। उसके भोगों की अभिलाषा करे। निज स्वरूप का ज्ञान नहीं। आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान की शान्तिवाला ज्ञान जो चाहिए, वह तो है नहीं। इसलिए इसके **भोगों की अभिलाषा करे, वह निदानबन्ध है,...** समझ में आया? हेतु वहाँ पड़ा है, ऐसा कहते हैं। यहाँ हेतु स्वभाव है, कारण है शान्ति का (उसे छोड़कर) यह... यह... उसमें हेतु रुचि वहाँ घुस गयी है।

मुमुक्षु : दिखता तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता नहीं, इसे भान नहीं, इसलिए नहीं दिखता। आहाहा! एक ओर भगवान शान्त अविकारी चैतन्यप्रभु का जहाँ अन्तर निज ज्ञान नहीं, उसे पर की अभिलाषा अन्तर से गहरे-गहरे हटती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सो यह बड़ी शल्य (कांटा) है। समझ में आया? जिसे रागवाला ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान और यह रागवाली क्रिया शुभ, वह जिसके ज्ञान में अधिकरूप से—अधिकरूप से, विशेषरूप से—विशेषरूप से भासित होती है, उसे वहाँ रति और हेतु ही वहाँ पड़ा है पूरा। समझ में आया? **इस शल्य से रहित जो आत्मज्ञान...** ऐसे शल्य से रहित जो आत्मज्ञान। देखो! गुलाँट मारती है बात। यह तो पुस्तक है या नहीं हाथ में? उसमें से तो यह अर्थ चलता है। अरे! इसने कभी बात सुनी नहीं, हों! ऐसा का ऐसा मूढ़रूप से प्रभु को मिटा दिया। बाहर की धमाधम (करके) उससे मानो मोक्ष हो जायेगा। समझ में आया? कहते हैं कि भाई! ऐसे विकल्प के जाल में तेरा आत्मा अशान्ति को भोगता है, प्रभु! भगवान आत्मा, उस विकल्प के जालरहित चीज़ है। उसके निज ज्ञान का भान, शान्तरस का अर्थात् आत्मा शान्तरस है, उसका भान नहीं। इसलिए वह स्थिर नहीं हुआ, अर्थात् उद्धत होकर ऐसे विकल्प के जाल में निज को भूल गया है। ऐसे निज

शल्य से रहित आत्मज्ञान, उसके बिना, ऐसे आत्मज्ञान बिना शब्द-शास्त्रादि का ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। यह शास्त्र का ज्ञान, वह शब्द का ज्ञान है, यह शब्द का ज्ञान, आत्मा का नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! फिर ऐसा नहीं कि उस शब्द का अन्दर ज्ञान। ज्ञान है शास्त्र का, वह शब्दज्ञान है, आत्मा का ज्ञान नहीं। सूत्र देखा न? सूत्र शब्द कहे, शब्द है। यह बात है। आहाहा! छह काय के जीव, वे चारित्र। यहाँ शब्द, वह ज्ञान समझे न? नौ तत्त्व, वह श्रद्धा। ऐसा वहाँ कहा है न, (समयसार) बन्ध अधिकार में, वह सब विकल्प है, कहते हैं, भाई! व्यवहार है, वह आत्मा को बिल्कुल कार्यकारी नहीं। होता है, निश्चय भान में आगे बढ़ा हुआ न हो, उसे व्यवहार ऐसा होता है, परन्तु होता है, वह कार्यकारी (होता है या) आत्मा को निरपेक्ष श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति जो मोक्ष का मार्ग, उसमें वह सहायता करता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रहे उसके साथ अर्थात्? कहो। आहाहा! बड़ा राजा हो, उसमें उसके साथ एक नौकर रहे, लकड़ी उठानेवाला, छतरी उठानेवाला, लो न। उसमें राजा का क्या कार्य हुआ? आहाहा!

मुमुक्षु : राजा की सेवा तो की न।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने की? उसने की है या राजा ने की है? उसने तो बिल्कुल की नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल नहीं। अकेला हो तो राजा को राजारूप से पहिचाने। उसकी खोपड़ी दिखाये? 'राजा छुपे नहीं भभूत लगाया' अकेला जंगल में हो तो लगे कि यह कोई राजा लगता है। समझ में आया? उसका पुण्य, उसका तेज, उसकी बैठक, उसकी गति, उसकी दशा, उसका उठना, वह सब जाति ही अलग होती है, जो महा पुण्यशाली हो उसकी। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! परन्तु यह वह आचार्य की बात! परमात्मा को प्रकाशित

करते हैं। यह परमात्मा के पोत प्रकाशित किये और व्यवहार के पोत को खोटा ठहराया। आहाहा! समझ में आया? भगवान! तेरी चीज़ में तो प्रभु महान आनन्द पड़ा है न, नाथ! आहाहा! अरे! तब यह बाहर के डोकिया से तुझे आनन्द मिलेगा जरा भी? आर्थत् कि आत्मा मिलेगा जरा भी? वह तो अनात्मा है। क्या कहा? और दूसरा आया वापस। शास्त्रज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम, नौ तत्त्व की श्रद्धा अनात्मा है। इसलिए उसे दुःखरूप कहा है। ऐई! कहाँ गये चिमनभाई? समझ में आया इसमें? आहाहा! अरे! किसका अभिमान? बापू! यहाँ तो कुछ पाँच, पच्चीस लाख हो और दो लाख खर्च करे वहाँ हम धर्म में सामने हैं, हों! अरे! किसका धूल में? सुन न अब! तेरे दस लाख क्या, करोड़ खर्च कर तो भी धूल है, वह तो अजीव है। उसमें तेरी राग की कोई मन्दता हुई हो तो पुण्य है और वापस उसमें से लाभ माने तो मिथ्यात्व साथ में है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हाँ तो करते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हाँ करते हैं? भान नहीं होता, वह हाँ करे। दूसरे कहे, दूसरे पागल-पागल इकट्ठे हुए हों तो कहे।

मुमुक्षु : पैसे खर्च करते हों तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे किसके बाप के थे, वह खर्च करे? वह तो अजीवतत्त्व है, अजीव को खर्चे कौन?

मुमुक्षु : शुभभाव का परिणाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ परिणाम का परिणाम दुःख है। वह शुभ परिणाम स्वयं ही दुःख है। शान्तिभाई! यह तो बात ही दूसरी है। यह शुभ विकल्प है, वृत्ति उठती है, वह दुःख है। दुःख है यहाँ आया न पहला। वह दुःख है। भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द, वह सुख है। यह बात पूरी दूसरी है। आहाहा! अरे! इसका इसे माहात्म्य (नहीं), वहाँ कहीं है, उसमें कुछ है, उस शुभ विकल्प में कुछ है, ऐसा माननेवाला आनन्द को मानता नहीं। समझ में आया? बापू! यह बातें तो परमस्वरूप की हैं। परमस्वरूप में यह हीनरूप की अधिकता मानने जाये, वह स्वरूप की अधिकता उसे दृष्टि में नहीं रहती। समझ में आया?

ज्ञान, वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, देखो, **क्योंकि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरहित तप भी दुःख का कारण है।** तप महीने-महीने के अपवास, नग्न शरीर, जंगल में रहे, सूर्य की धूप में बैठे, खाने जाये तो एक मुरमुरे और पानी पीवे। समझ में आया? ऐसी क्रियायें तपस्या (की), परन्तु भगवान आत्मा ज्ञानानन्द की अन्तर दृष्टि शान्तरस की, उसके स्वाद बिना उसका स्वाद उसे प्रतिकूल है, ऐसा भासित नहीं होता। और वह तप का भाव शुभ और विकल्प मन्द है, उसमें उसकी प्रीति, उसे एकाग्र है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? यह कहे न, व्यवहार अच्छा है... व्यवहार अच्छा है... अरे! सुन न, भगवान! व्यवहार अच्छा किसे कहते हैं? अभी तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ व्यवहार जो विकल्प है, उनका कहा हुआ ज्ञान, उनका कहा हुआ व्यवहार तप... समझ में आया? दूसरे की तो बात भी क्या करना? दिगम्बर अवस्था जिनकी, उनके वस्त्ररहित जिनकी दशा, जिनके पंच महाव्रत का विकल्प चुस्त। समझ में आया? वह व्यवहार भी निश्चय बिना का व्यवहार झूठा और दुःखरूप है। यह निश्चयसहित हो तो भी वह भाव है, वह तो दुःखरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कहीं मोक्ष मिलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला मोक्ष मिले ऐसा है। ऐसा कहते हैं, कहीं मोक्ष मिले, ऐसा नहीं। मोक्ष अर्थात् कहीं किसी से कुछ मदद मिले, ऐसा नहीं। कहा, अकेला मोक्ष मिले, ऐसा है। आहाहा! भाई!

यह शास्त्र की एक बात की। आत्मज्ञानरहित शास्त्र (ज्ञान) वह दुःखरूप है, ऐसा कहा और यह **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान रहित तप भी दुःख का कारण है।** आत्मा को मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का नाश होकर आत्मा का स्वसंवेदन, चैतन्य के ज्ञानसहित की स्थिरता, उससे रहित तप करे, अकेले महाव्रत पालन करे, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, नग्न दिगम्बर रहे। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' समझ में आया?

कहते हैं, वीतराग—रागरहित ज्ञान के प्रत्यक्ष वेदनवाली स्थिरता बिना, वह तप भी दुःख का कारण है। ओहोहो! ज्ञानरहित तप से जो संसार की सम्पदायें मिलती हैं,...

भगवान आत्मा की ज्ञानस्वरूप की सम्पदा अन्तर भान द्वारा, अन्तर के ज्ञान के आत्मज्ञान द्वारा अन्तर सम्पदा मिले। उस बिना के ऐसे तपस्या और क्रियाकाण्ड करे, बड़े मास-मास खमण के पारणा और अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वस्त्ररहित दिगम्बरदशा रखे—ऐसे शुभभाव में, कहते हैं **संसार की सम्पदायें मिलती हैं,...** यह देव और राजा, धूल के राजा और धूल के देव होंगे। आहाहा! आचार्य को भी पूछे न, उघाडी समणी है, उघाडी समणी (सोनी का चिमटा) है। किसी की रखी नहीं यह वाड़ावालों को कि ऐसा होगा या वैसा होगा। वह सुहायेगा या नहीं? नवनीतभाई! रुचे, न रुचे, तुम्हारी स्वतन्त्रता है। मार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर का यह है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्पदा

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्पदा धूल की। सम्पदा कही न? सम्पदा-आपदा इसका दूसरा अर्थ है। धूल मिलेगी। उसमें धूल मिलेगी अर्थात् किसे मिलेगी? यह तो उसकी ममता मिलेगी। संसार की सम्पदा, वह आत्मा की सम्पदा सम्यग्ज्ञान-दर्शन अनुभव बिना ऐसे क्रियाकाण्ड सारे, हों! राग की मन्दतावाले। संसार की सम्पदा मिलती है, वह क्षणभंगुर है वह तो। पैसेवाले दुःखी, निर्धन दुःखी, बाहर की चिन्ता भी दुःखी, वह तो ठीक, परन्तु यों ही राग करता है उसके ऊपर—पैसे के ऊपर, वह भी दुःखी। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह तो सत्, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। उसके आनन्द के भान बिना, यह सब विकल्प के जाल सम्पदा सब दुःखरूप है, कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का ऐकड़ा ऐसा है। भगवान कहते हैं, वह बात यह है। समझ में आया? अब कोई कहे कि यह सोनगढ़ का है, ऐसा नहीं, ऐसा वापस कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की बात यह है। तीन काल-तीन लोक में यह वस्तु है। समझ में आया? ... भगवान! रहने दे, बापू! भाई! इन वीतराग का पंथ ही यह है। व्यवहार करते-करते होगा, यह इनकार करते हैं, इसलिए पंथ अलग है। अरे! प्रभु! पंथ अलग, वीतराग का पंथ है यह। इसके बिना दूसरे प्रकार से माने, वह वीतरागपंथ से (अलग) अज्ञानपंथ में पड़े हैं। नवनीतभाई! इसमें तो किसी की सिफारिश-बिफारिश, मक्खन-

बक्खन रहे, ऐसा नहीं कुछ इसमें। आहाहा! यह उत्साह माना हो, वह नीचे पड़ जाता हो। उत्साह माना हो कि इसमें से कुछ होगा, इसमें से कुछ होगा, वह नीचे पड़ जाता है। हाय... हाय...! कहते हैं, यह सम्पदा, वे क्षणभंगुर हैं। भगवान् आत्मा का अन्तर ज्ञान और अन्तर्दृष्टि निश्चय, वह आत्मा केवलज्ञान लक्ष्मी का कारण है। समझ में आया ?

इसलिए यह निश्चय हुआ,... इसलिए निर्णय हुआ कि आत्मज्ञान से रहित... आत्मा के निज स्वरूप के भानरहित, जो शास्त्र का ज्ञान और तपश्चरणादि हैं, उनमें मुख्यताकर पुण्य का बन्ध होता है। मुख्यताकर अर्थात् ? मिथ्यात्व तो साथ में है, मुख्य से ऐसे बाहर दिखाई दे पुण्य, ऐसा। धर्म गौणरूप से हो, ऐसा प्रश्न यहाँ नहीं। मुख्यता अन्दर पुण्य की ऐसी दिखाई देती है न शुभभाव और यह लक्ष्मी, ऐसा। अन्दर मिथ्यात्व है, वह दुःखरूप तो है। आहाहा! पुण्य का बन्ध होता है। वहाँ तो बन्ध होता है, कहते हैं। वह आत्मा के ज्ञान बिना शास्त्रज्ञान से भी बन्ध होता है। आहाहा! और यह तपस्या और क्रियाकाण्ड जो जितने ऊँचे में ऊँचे कहलाते हैं, उनसे तो बन्ध, पुण्य का बन्ध होता है। समझ में आया ? यह ... पुण्य कहा है क्यों ? कि अन्दर में मिथ्यात्व तो है, गौणरूप से पाप तो है। ऐसा कहना है, हों! गौणरूप से दूसरा धर्म, ऐसा यहाँ नहीं। मिथ्यात्व का पाप तो साथ में है, परन्तु बाह्य में ऐसे आचरण और क्रिया शास्त्रज्ञान किया, उसमें से पुण्य बाहर पुण्य बँधा, (इसलिए) बाहर में मिले। गौणरूप से अन्दर में मिथ्यात्व पड़ा है, उसकी तो इसे खबर नहीं। यह लक्ष्मी की खबर पड़ती है। आहाहा! ... मिले, यह मिला, यह राज मिला, देव हुए, बड़ा ... हुआ। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का दुःख बहुत, परन्तु मिथ्यात्व के पाप के बन्धन की इसे खबर नहीं। यह खबर पड़े कि इस शुभभाव से यह पुण्य बँधता है, यह मिला, सम्पदा मिली, ऐसा। अन्दर सम्पदा कितनी लुटी, मिथ्यात्व से, इसकी खबर नहीं। यह शुभभाव ऐसे हुए और उसमें से पुण्य बँधा। आहाहा!

कहते हैं, उस पुण्य के प्रभाव से जगत की विभूति पाता है,... विभूति अर्थात्

धूल। जगत की विभूति मिलेगी, राजा, महाराजा। बहुत क्रियाकाण्डी हो तो कदाचित् देव और भूतड़ा हो। आहाहा! फोटो निकाला है यहाँ तो व्यवस्थित। वह क्षणभंगुर है। वहाँ भी कहा था न, सम्पदायें मिलती हैं, वे क्षणभंगुर हैं। यहाँ पुण्य के प्रभाव से जगत की विभूति पाता है, वह क्षणभंगुर है। उसमें आत्मा नित्यानन्द भगवान कहाँ आया उसमें? आहाहा! लो! दो में बात की। इसलिए अज्ञानियों का तप... आत्मज्ञानरहित आत्म भान-अनुभव दृष्टि सम्यक् चैतन्य की शान्ति की प्राप्तिरहित यह महाव्रत आदि तप और श्रुत यद्यपि पुण्य का कारण है, तो भी मोक्ष का कारण नहीं है। पुण्य बँधे, आत्मा को मोक्ष का बिल्कुल जरा भी कारण नहीं। ऐसा इसे निश्चय और सम्यग्ज्ञान में श्रद्धा बराबर करनी चाहिए। लो! एक गाथा पूरी हुई।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण २, सोमवार, दिनांक ०७-०२-१९६६

गाथा - ७६, प्रवचन - १२१

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की ७६वीं गाथा। ७५ में कहा, धर्मी जीव को आत्मा के आनन्द की अनाकुलस्वभाव की दृष्टि और सम्यग्दर्शनसहित हो, इससे अपने शुद्ध स्वभाव के भान में व्यवहारिक जो विकल्प शास्त्रज्ञान आदि का व्यवहार है, वह भी अपने काम में—कार्य में कुछ भी मदद नहीं करता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विघ्न करता है। परन्तु वह अभी कुछ करता नहीं, दुःख करता है, ऐसा कहते हैं। भगवान् आत्मा अनन्त गुण के रत्न से भरपूर तत्त्व, ऐसे चैतन्य रत्न की जहाँ दृष्टि हुई है, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, ऐसा जो आत्मा का ध्यान अथवा धर्मदृष्टि, उसे ऐसी दृष्टि में भाव होता है कि शरीर, वाणी, मन यह सब परपदार्थ तो मुझे कुछ करते नहीं, वे मेरे काम में सहायता करते नहीं, उनका कुछ मैं करता नहीं। सम्यग्दृष्टि हों चौथे गुणस्थान से। आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। अनन्त रत्न का पूरा समुद्र है। अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि का स्वभाव। अतीन्द्रिय आत्मा की अन्तर में आगे शुद्धि की वृद्धि में आत्मा को चलाता है। उसे आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ शरीर, वाणी, मन, पैसा, वे मुझे कुछ काम के नहीं, मैं उनके काम का नहीं, उनका काम मैं कर सकता नहीं। ओहोहो! कैसी बात!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ चलाता धूल भी नहीं। यहाँ तो जानता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! अनन्त रत्न से भरपूर... आगबोट या जहाज हो, वह जहाज वेग से चलता हो, वेग से। उसमें कहीं... रूप से उससे लकड़ी का टुकड़ा नीचे से निकालकर काम में ले, ऐसा बने?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तापण नहीं तो सुलगा डालो वह। लाओ लकड़ी निकाल डालें। लोहे का टुकड़ा निकाल डालो।

अनन्त चैतन्य रत्न से भरपूर जहाज, सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को वह जहाज चलाने की जहाँ दृष्टि हुई है, उसका परिणमन (हुआ है)। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् कि मोक्ष के महल की पहली सीढ़ी। ऐसा जहाँ अन्तर में अपने स्वभाव के आश्रय से शान्ति और आनन्द है, मेरा आत्मा ऐसी दृष्टि से आगे बढ़ता हुआ, उसे बीच में छिद्र पड़े और माल रहे, ऐसा बनता नहीं। समझ में आया? वह पर से काम ले, ऐसी मान्यता उसे श्रद्धा में ही नहीं। वह तो नहीं, यहाँ तो पुण्य की बात की। व्यवहाररत्नत्रय आदि हों! व्यवहार समकित के आठ आचार, व्यवहार समकित स्वयं, व्यवहार शास्त्र का ज्ञान स्वयं, पंच महाव्रत के परिणाम स्वयं—उससे भी मेरा कार्य सिद्ध नहीं होता। क्योंकि वह तो राग है। राग से, आत्मा वीतरागी चैतन्य रत्न का भण्डार भगवान, उसके कार्य में वह राग क्या काम करे? समझ में आया? आहाहा! यह वह कहीं मार्ग! ऐई! रतिभाई! कहो, समझ में आया इसमें?

जिसके अन्तर में आत्मा जिसकी दृष्टि में बसा है, परमात्मा जिसकी श्रद्धा के ज्ञान में आया, आत्मा स्वयं आया है, ऐसे आत्मदृष्टिवन्त धर्मी को दूसरे राग से क्या काम है? आवे राग, होता है। समझ में आया? भूमिका प्रमाण निर्बलता का विकल्प व्यवहार का भी आता है। अरे! उससे भी मुझे क्या काम है? ओहोहो! राग से भी जहाँ उपेक्षा है और वीतरागभाव की जिसमें अन्तर अकेली अपेक्षा है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७६

कहते हैं, अरे! आगे जिससे मिथ्यात्व रागादिक की वृद्धि हो,... वहाँ आत्मज्ञान कैसा? वहाँ धर्मबुद्धि कैसी? समझ में आया? वह आत्मज्ञान नहीं है,... है? पहली लाईन। क्या कहना चाहते हैं? ऐसा निरूपण करते हैं—

२०३) तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ ।

दिणयर-किरणहँ पुरउ जिय किं विलसइ तम-राउ ॥ ७६ ॥

आहाहा! कहते हैं, भगवान! हे जीव! वह वीतराग नित्यानन्द अखण्डस्वभाव परमात्मतत्त्व का परिज्ञान,... है, परिज्ञान है। वहाँ तो उसकी आशा पर की, राग की, वृद्धि की हो नहीं। ऐसा जहाँ नहीं... समझ में आया? सम्यग्दर्शन में आत्मा अन्तर अकेला वीतरागीस्वरूप है, शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान जहाँ नहीं, वहाँ राग की वृद्धि अन्धकार बढ़ता है। समझ में आया? आहाहा! रतिभाई! जहाँ चैतन्यसूर्य आनन्दस्वरूप की अन्तर दृष्टि और ज्ञान नहीं, वहाँ उसे पुण्य-पाप के राग की वृद्धि होती है। उसे राग की वृद्धि ही होती है। वह अन्धकार की जहाँ वृद्धि है, वहाँ चैतन्य का सूर्य नहीं। समझ में आया? जहाँ भगवान चैतन्यसूर्य की दृष्टि अन्दर पड़ी है, उसे राग और पुण्य-पाप के विकल्प की वृद्धि (होती नहीं)। पहले ७५ में ऐसा कहा कि राग विकल्प हो व्यवहार, वह काम करता नहीं, वह दुःखरूप है, ऐसा कहा, भाई! अब इससे जरा बढ़ाया है काम इसमें। समझ में आया? आहाहा!

बापू! वीतरागमार्ग अन्तरस्वरूप ऐसी चीज़ है कि निरपेक्ष तत्त्व भगवान आत्मा है, ऐसा जिसे अन्तर ज्ञान, आत्मदर्शन और दृष्टि व्यक्त हुई, कहते हैं कि वहाँ राग से काम तो न ले, परन्तु राग बढ़े, ऐसा कैसे हो? शुभराग बढ़े, वह नहीं होता, ऐसा कहते हैं, भाई! यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? जहाँ भ्रमणा और राग की वृद्धि है, वहाँ आत्मज्ञान कैसा? जहाँ राग की तीव्रता अन्दर में हो, यह करूँ और यह लूँ और इससे यह होगा और इससे यह होगा, वह मिथ्यात्वभाव है। उसके साथ राग के विकल्पों की जहाँ वृद्धि है वहाँ, कहते हैं कि भगवान आत्मा की दृष्टि कैसी? मोहनभाई! कहते हैं, जहाँ यह राग से ऐसे काम लूँ, विकल्प से ऐसे काम लूँ, ऐसे विकल्प करूँ तो ऐसा

होगा, यह ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, ऐसी जहाँ मिथ्यात्व की भ्रमणा और राग की धारा जहाँ बढ़ती है, वहाँ चैतन्य भगवान वीतराग की वृद्धि का कारण उसका ज्ञान कहाँ है वहाँ? क्या कहा? समझ में आया? मोहनभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा तो अकेला अनन्त चैतन्य रत्न का भण्डार है। धन्धा-व्यापार का किसने कहा? अन्दर राग की वृत्तियों का अधिकपना अन्दर में बढ़ जाये, राग की एकता और राग की अस्थिरता बढ़े और ऐसा कहे कि हमको आत्म दृष्टि का ज्ञान है, कहते हैं कि ऐसा तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? यह चौथे से बात है, हों! वापस कोई ऐसा न माने कि यह तो (ऊपर के) गुणस्थान की बात है। आहाहा! पूरा भण्डार भगवान... आहाहा! जिसमें एक-एक शक्ति में अनन्त-अनन्त शक्तिवाले रत्न प्रभु ऐसा पूरा चैतन्य रत्नाकर समुद्र बढ़ा... आहाहा! उस सम्यग्दर्शन द्वारा जहाँ अन्दर संसार कटता जाता है, राग कटता जाता है, ऐसा कहते हैं। वहाँ ऐसा कोई कहे कि उसका हमको ज्ञान है और राग बढ़ता है, तुझे वस्तु का भान नहीं। समझ में आया?

हे जीव! वह वीतराग नित्यानन्द अखण्डस्वभाव परमात्मतत्त्व... भगवान अतीन्द्रिय आनन्दरूप, उसका जिसे ज्ञान नहीं, अर्थात् अपना। जिससे परद्रव्य में प्रीति बढ़े,... उसे परद्रव्य में प्रीति बढ़ती है। स्वद्रव्य में जिसकी दृष्टि और रुचि का भान है, उसे परद्रव्य में प्रीति घटती जाती है। आसक्ति हो, एकता तो नहीं। एकता नहीं, परन्तु आसक्ति है, वह घटती जाती है। अज्ञानी को आत्मदृष्टि-वीतरागस्वरूप से चैतन्य है, उसकी दृष्टि में भगवान आत्मा का माहात्म्य आया नहीं, उसका ज्ञान नहीं। इसलिए विकल्प में एकता और विकल्प की वृद्धि है। समझ में आया? परमात्मप्रकाश की बात ही दूसरे ढंग की है। दृष्टान्त देंगे, देखो!

जिससे परद्रव्य में प्रीति बढ़े,... भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्द प्रभु पूर्णानन्द की प्रीति जिसे नहीं, उसे परद्रव्य की प्रीति का प्रवाह बहता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह बाहर के प्रमाण में ऐसा नहीं कि यह बाहर छोड़ दिया, इसलिए इसे यह राग छूट गया है और इसे छह खण्ड के राज हैं, इसलिए इसे राग बढ़ा हुआ है, ऐसा प्रमाण नहीं है। महान चैतन्यप्रभु अनन्त गुणसागर आत्मा की दृष्टि के अनुभव से जिसके

जहाज चलते हैं मोक्ष के सामने। समझ में आया ? संसार के किनारे, मोक्ष के ... उसे कहते हैं कि राग की एकता तो नहीं, परन्तु राग की उसे वृद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु जहाँ आगे आत्मद्रव्य की रुचि और अन्तर प्रेम नहीं, उसे परद्रव्य का प्रेम हुए बिना रहता नहीं। इसलिए गहराई में उसमें राग की वृद्धि ही उसे है। मिथ्यात्वसहित शुभराग की भी जिसे वृद्धि है, वह मिथ्यात्व है वहाँ तो। वीतरागस्वरूप चैतन्य सूर्य-दिनकर के पास अन्धकार कैसा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... जैसा लगे न। नवनीतभाई !

कहते हैं कि भाई ! परन्तु यह आत्मा ही ऐसा है, हों ! कि तेरे पास ऐसे शान्ति... शान्ति... शान्ति... विकल्प का उत्थान हो, वह तेरी चीज़ में ही नहीं। आहाहा ! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस भाव का स्थान आत्मा है ही नहीं। आहाहा ! वह तो राग और विकल्प है। उसका वह स्थान है ? वह तो मोक्ष का गुठली (जैसे ज्वार या बाजरा का) पके अतीन्द्रिय आनन्द का, उसका वह आत्मा बीज है। समझ में आया ? आत्मद्रव्य ही वह है वस्तु... वस्तु... वस्तु। जिसकी चोंट लगने से अन्दर में, प्रेम लगने से जो प्रेम से प्याला प्रस्फुटित हुआ आत्मा का सम्यग्ज्ञान में, कहते हैं कि उसे राग की एकता तो नहीं, परन्तु राग की वृद्धि भी नहीं। ... परन्तु वृद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! फिर उसका बाहर से माप निकाले कि यह स्त्री, पुत्र छोड़े, इसलिए देखो, इसे राग कितना छूट गया !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी छोड़ा नहीं। परद्रव्य के परमाणु आदि की क्रिया का मैं कर्ता हूँ, कर सकता हूँ और राग आवे शुभाशुभ, उसकी प्रीति की रुचि और एकत्वबुद्धि है, वह राग से मुझे काम होता है, क्योंकि वह काम... है न उसे। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, यात्रा के भाव से मेरा कल्याण होगा, यह माननेवाले मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव को बाह्य का त्याग वर्ते, परन्तु अन्दर मिथ्यात्व की पुष्टि होती जाती है।

यह गाथा पहले कहने के बाद यह ली है न ? कि भाई ! सम्यग्दृष्टि को इच्छा

उत्पन्न होती है, वह इच्छा है ही नहीं, कहते हैं। और जो इच्छा दया, दान के, व्रत के विकल्प उठें देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, उस इच्छा से मेरा कार्य सिद्ध होगा, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता ही नहीं। आहाहा! इच्छा से वीतराग का कार्य सिद्ध होगा? आत्मा तो वीतरागस्वरूप चिदानन्द अकषायस्वरूप है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और व्यवहार सम्यग्ज्ञान-चारित्र दोनों विरुद्ध हैं। दोनों के फल अलग हैं, दो का विरोध है, दो का आश्रय भिन्न है, दो की दिशा भिन्न है। आहाहा! यह बात यहाँ करते हैं। समझ में आया? रतिभाई! कहते हैं, अरे! जहाँ भगवान आत्मा दृष्टि में बसा नहीं, उसे ही विकार की आसक्ति और एकताबुद्धि होती है, उसे आत्मज्ञान है ही नहीं।

यहाँ कहते हैं, सूर्य की किरणों के आगे अन्धकार का फैलाव कैसे शोभायमान हो सकता है? है? सूर्य की किरणें जहाँ हो, वहाँ अन्धकार किस प्रकार हो सकता है? देखो! दृष्टान्त देकर दिगम्बर सन्तों की कड़काई भी दृष्टान्त भी कैसे सूचित करते हैं! सूर्य की किरणें जहाँ प्रकाश हुआ, ऐसे प्रकाशरूप निकली, तीव्र-तीव्र प्रकाश, उसमें अन्धकार कैसे होगा? शोभा पावे अर्थात्? शोभा पावे। भाषा ऐसी ली है न? 'किं विलसति' कैसे होगा? इसका अर्थ शोभा कैसे पावे अर्थात् होता नहीं। ऐसा। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा दिनकर-चैतन्यसूर्य, ऐसे अनन्त-अनन्त रत्न का भगवान भण्डार। वह पुण्य के लिये और पुण्य के भाव के लिये... दृष्टान्त दिया है न। ... पुण्य के अधिकार में आता है। चन्दन का वन है, एक राख थोड़ी चाहिए, उसके लिये चन्दन का वन जला डाले। ... लोगों को ... लगे, बाकी तो यह क्या कहते हैं, कुछ समझते नहीं। थोड़ा खुल्ला आया तो फिर भड़के। चाण्डाल का नहीं? उपाश्रय के पीछे नहीं थे अभी लड़के? एक आया था। वहाँ व्याख्यान चला था। एक आया था नहीं? वह पीछेवाला। वह चन्दन का वन है न। एक राख चिमटी भर चाहिए है, उसमें उस चन्दन के पूरे वन को जलाकर राख लेता है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला शीतल... शीतल... शीतल... आनन्दस्वरूप को जलाकर पुण्य की इच्छा और दुनिया की अभिलाषा करता है। समझ में आया?

आहाहा! कहा नहीं? पहले दृष्टान्त दिया न? श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द से भरपूर भगवान की दृष्टि और ज्ञान की गति करता हुआ पूरा जहाज जैसे हो अनन्त रत्न से भरा हुआ और एक लोहे का टुकड़ा चाहिए हो तो नीचे से तोड़े, उसी प्रकार मूर्ख अनन्त-अनन्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र के रत्न से भरपूर भगवान जिसकी श्रद्धा, ज्ञान में आया हो और फिर कहे कि नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए... मूढ़! पूरा चैतन्य रत्न से भरपूर जहाज डूब जायेगा तेरा। समझ में आया? भीखाभाई! कठिन बात, भाई! गृहस्थाश्रम में भी ऐसा? यह आत्मा वह गृहस्थाश्रम में कहाँ है? वह तो आत्मा आत्मा में है। बारह व्रत के विकल्प में भी आत्मा कहाँ है? और बारह व्रत के विकल्प से आत्मा का कार्य कहाँ सिद्ध होता है? आहाहा! समझ में आया? आवश्यक हो श्रावक को। देव पूजा, गुरु सेवा... विकल्प हो शुभराग, उससे आत्मा के मोक्ष का शुद्धता का कार्य कहाँ सिद्ध होता है? ऐसा कहते हैं। तो फिर ऐसे वीतरागी स्वभाव की जहाँ दृष्टि और ज्ञान नहीं, वहाँ ही राग की वृद्धि का अन्धकार होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परम आनन्द... लो! देखो, भावना से उत्पन्न कहा, हों! कहीं उस भावना का अर्थ आता है। भावना अर्थात् समझे न? ध्यान अर्थात् एकाग्रता और भावना अर्थात् चिन्तवन। उस ध्यान के भेद नहीं आते चार? ध्यान के चार भेद आते हैं न? जयसेनाचार्य में। ध्यान अर्थात् एकाग्रता और भावना अर्थात्... परन्तु वह यह भावना नहीं, यह भावना वह नहीं। यह तो और सर्वत्र लागू कर दे। यह ऐसा नहीं। यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति वीतराग का पिण्ड ही आत्मा है। उसका एक समय में जो क्षणिक विकृतभाव दिखता है, उस विकाररहित चीज़ को आत्मा कहते हैं। वह परम वीतरागी आनन्दरूपी मक्खन से भरपूर भगवान की भावना—उसकी एकाग्रता। उसकी एकाग्रता से क्या उत्पन्न होगा? कहते हैं कि राग उत्पन्न होगा? व्यवहाररत्नत्रय उत्पन्न होगा? आहाहा! विषय वासना आदि अशुभभाव तो नहीं, परन्तु शुभभाव वीतराग शुद्धात्मा की एकाग्रता से क्या शुभराग उत्पन्न होगा? वह तो पहले निषेध किया। शुभराग जितना हो, वह भी आत्मा के धर्म की शुद्धि के लिये बिल्कुल कार्यगत नहीं। आहाहा! पुराने लोगों को कठिन

पड़े, नहीं ? प्रेमचन्दजी ! तुम्हारी ... कहता हूँ। इन्होंने तो सुना न हो। नहीं ? अभी तो समझे नहीं यह भाषा गुजराती। यह क्या कहते हैं ? भक्तामर गिनो, भगवान की पूजा करो, धर्म हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि लाख तेरे भक्तामर गिन और भगवान की करोड़ पूजा कर तो वह शुभराग है। उससे सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा और उससे धर्म भी नहीं होगा। लो !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाव आये बिना रहता नहीं। होवे, वह अलग बात है। ऐई ! वह तो इन्हें कराना है। अब पंचकल्याणक करायेंगे। रुपये के प्रमाण में करेंगे या नहीं यह ? ऐसी बात आती है। बड़े सेठिया हैं। ... वेदी प्रतिष्ठा... अब वह तो होनेवाली क्रिया तो होनेवाली वह जड़ से होती है, बापू ! पर की आत्मा से नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! और उस समय का शुभभाव हो, उससे वह काम नहीं होता और शुभभाव से आत्मा की सिद्धि का भी काम नहीं होता।

मुमुक्षु : बाहर का नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर का भी नहीं होता और यहाँ का भी नहीं होता। आहाहा ! बाहर का न हो, वह तो पहली बात, वह तो बड़ी। शुभभाव से वहाँ मन्दिर रचा जाये, एक लाख रुपये या पाँच लाख दिये, इसलिए मन्दिर रचा जाये, यह बात है ही नहीं। परमाणु का वह जगत है। वह परमाणु का जगत स्कन्ध है, उससे विशेष उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति अर्थात् पर्याय। उन स्कन्धों की उत्पत्ति से वह मन्दिर होता है।

यहाँ तो कुछ बात भी नयी अपूर्व हो तो बात, नहीं तो वे बातें तो सब सुनते हैं। चिड़िया लायी चावल का दाना और चिड़ा लाया मूँग का दाना, उसकी बनाई खिचड़ी। यह तो वीतराग कथा है, भाई ! वीतराग धर्मकथा है। वीतराग परमात्मा वीतराग... वीतराग... वीतराग... देखो, आता है न आत्म अवलोकन में ? आत्म अवलोकन है दीपचन्दजी का बनाया हुआ, भाई ! दीपचन्दजी। ... मुनि तो वीतराग... वीतराग... वीतराग की ही कथा करते हैं। दूसरी बात नहीं। वीतराग-वीतराग मूहु-मूहु-बारम्बार वीतराग, आत्मस्वभाव वीतराग, सम्यग्दर्शन वीतरागी, आत्मा का ज्ञान वीतरागी, आत्मा

की स्थिरता वीतरागी। उसका फल अकेला वीतरागी। देखो! वे गृहस्थाश्रम में रहे हुए थे, समझे न? दीपचन्दजी। दिगम्बर साधर्मी। मुनियों के मुख में तो... और उसमें भी आता है न अपने तुम्हारे छहढाला में नहीं? अमृत झरता है छहढाला में पाठ नहीं आता? मुनियों के मुख में से अमृत झरता है। है या नहीं? क्या? अन्तिम बोल में नहीं? कहाँ गया? दूसरा श्लोक है।

अंतर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दसधा तें टलै।
परमाद तजि चउकर मही लखि, सुमति ईर्या तें चलै।
जग सुहितकर सब अहित हरि, श्रुत सुखद सब संशय हरै।
भ्रम रोग हर जिनकै वचन, मुखचंद्र तें अमृत झरै॥

वीतरागता वीतरागता। समझ में आया? मुनि तो उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अन्तर में आनन्द के अमृत का उछाला आया है। अतीन्द्रिय आनन्द का अधिक उछाला अनुभव में हुआ है और 'जिनकै वचन, मुखचंद्र तें अमृत झरै' मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाले। यह वीतराग वाणी झरती है। वीतराग-वीतराग। वह अमृत झरे, उसमें वीतरागभाव है। नवनीतभाई! समझ में आया? राग, वह अमृत नहीं। विकल्प तो जड़ है, यह वाणी। राग तो जड़ अन्धेरा वह तो यहाँ है।

भगवान् आत्मा उन पुण्य-पाप के विकल्प से रहित ऐसा प्रभु, अकेला अमृत का वीतरागी सागर उछलता प्रभु भगवान्, उसकी बात मुनि उनके मुख से यह बात करते हैं। अरे! जीवो! वीतरागी आत्मा की दृष्टि करो, वीतरागी आत्मा का अन्तर ज्ञान करो, वीतरागी भगवान् में स्थिर होओ वीतरागभाव से; यह मोक्षमार्ग है। समझ में आया? दूसरी लाईन आयी। दूसरी कड़ी में, समझ में आया? ... फिर कहा। अपना कहकर वह कहा। वह वचन कहना है न? समझ में आया?

षट् काय जीव न हननतें, सब विधि दरव हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारते, हिंसा न भावित अवतरी।
जिनकें न लेश मृषा न जल, त्रण हूं बिना दियौ ग्रहै।
अठदश सहस विधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहै॥

अपने को निज लिया। 'चिद्ब्रह्म में नित रमि रहै' मुनि उन्हें कहते हैं, बापू! मुनि अर्थात् कहीं वस्त्र बदले और नग्न हो गये, इसलिए मुनि हो गये?

मुमुक्षु : पंचम काल में तो ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में गुड़ का गारा होता होगा? पंचम काल में अर्थात् घी, गुड़ और सूखड़ी (मिठाई) होती होगी। घी, गुड़ और आटा की। या गारा, पानी और ... का दूध डालकर होती होगी? समझ में आया? आहाहा! 'चिद्ब्रह्म में नित रमि रहै' ऐसा कहकर फिर यह दूसरी कड़ी ली है। समझ में आया? फिर यह शैली ली है, हों! 'मुखचंद्र ते अमृत झरें' उपदेश निकले अर्थात् अमृत झरे। वह अपनी बात आयी। विकल्प उठा है और उपदेश होता है। मुनि ऐसे वीतराग... वीतराग... वीतराग... भगवान आत्मा अनाकुल अमृत से भरपूर प्रभु है न, भाई! उसके अन्तर में... दृष्टि करो, ज्ञान करो। ऐसी वाणी सन्तों के मुख में से निकलती है। नवनीतभाई! लो, यह (छहढाला) नवनीतभाई को तो मुखाग्र है ... आहाहा! इतना भरा है उसमें। छहढाला में गागर में सागर भरा है। ऐसे हिन्दी भाषा सादी। उसमें तो कोई संस्कृत, व्याकरण की कुछ आवश्यकता पड़े, ऐसा नहीं। पहले चिद् ब्रह्म में रमे और फिर यह बात कही। उपदेश निकले तो यह निकले। शान्त... शान्त... शान्त... भगवान! तेरे शान्तसागर में झूल, दृष्टि कर, ज्ञान कर। विकल्प उठे, वह देखना भी नहीं, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या परन्तु? वह है, हो, परन्तु वह बड़ा भगवान है न बड़ा। अनाकुल अमृत का समुद्र भरा है अमृत का। उसे देख, श्रद्धा कर और स्थिर हो। निश्चय की बात करते हैं, देखो, मुनि मुख में से ऐसी बात करते हैं। बात पहले कर गये। निश्चय समकित और व्यवहार। परन्तु उनके भी मुख में यह बात आती है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सीधी-सादी है, परन्तु आड़ मारी है न। दौड़ गया अन्यत्र,

इसलिए यह डोर इसे हाथ आती नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, ओहो! शुद्धात्मा की भावना। भगवान आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु सागर, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न। यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं कि भाई! तेरी चीज़ में एकाग्रता से क्या उत्पन्न होगा ? कहीं दया, दान और व्रत के विकल्प उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हों, भाई ? आहाहा ! उसमें ऐसा कहा था कि व्यवहार शास्त्र का ज्ञान आत्मा को कुछ काम करता नहीं, बिल्कुल आत्मा का कार्य करता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? और शास्त्र का उपदेश का विकल्प जो हो, वह भी आत्मा को कुछ काम और धर्म में सहायता करता नहीं। गजब बात है न ! वाणी से तो कुछ नहीं, परन्तु विकल्प से भी कुछ नहीं। यह वह कहीं बात है ! वस्तु है ऐसी। समझ में आया ?

तब यहाँ कहते हैं कि भगवान ! तू जो शुद्धस्वरूप है, उसकी एकाग्रता से क्या वह व्यवहाररत्नत्रय उत्पन्न होगा ? समझ में आया ? पहले व्यवहार के विकल्प से कार्य नहीं होता, ऐसा सिद्ध किया, भाई ! अब कहते हैं कि तेरी एकाग्रता से क्या व्यवहार उत्पन्न होगा ? वह तो अस्थिरता से उत्पन्न हुआ विकल्प है। समझ में आया ? भगवान पूर्णानन्द का सागर आत्मा की एकाग्रता से तो वीतराग परमसुख आनन्द उत्पन्न (होता है)। आहाहा ! ऐसा कहकर यह कहते हैं कि प्रभु ! तेरी एकाग्रता में तो व्यवहाररत्नत्रय की उत्पत्ति भी एकाग्रता का फल नहीं, वह तो अस्थिरता थी। इसलिए तेरा कार्य सिद्ध हो, ऐसा नहीं और तू एकाग्र हो तो वह उत्पन्न हो, ऐसा नहीं। समझ में आया ? तेरी चीज़ ऐसी है शुद्ध भगवान अनाकुल शान्तरस से भरपूर तत्त्व। आहाहा !

निरोग शरीर, जवान हो। खाता-पीता शरीर अच्छा और करोड़ों की सम्पत्ति नजर पड़ती हो और कोमल शरीर, भविष्य में रोग होने की भी आशा वर्तमान दिखती न हो। उन दो की प्रीति के प्रेम में उसका उल्लास। समझ में आया ? वह तो जहर का उल्लास है। इसी प्रकार आत्मा के धर्म के यौवनकाल का समय। बीस वर्ष की ऐसी कन्या पद्मिनी जैसी ऐसे प्रत्येक अवयव से हृष्ट-पुष्ट बराबर ऐसी दिखाई दे माँस के हड्डियों की। सामने भी वह पच्चीस वर्ष का जवान हृष्ट-पुष्ट सब अवयव से फैला हुआ और दो, पाँच करोड़ की पूँजी और वर्तमान में फिर रोग होगा, ऐसा अन्दर में जरा

भी आवागमन दिखता न हो कि होगा या कुछ होगा, ऐसी निरोगता, उसके प्रथम प्रीति के काल में उल्लास का जो प्रेम... समझ में आया ? वह जहर का मजा उसे—अज्ञानी को ऐसा लगता है। समझ में आया ?

बापू ! भगवान आत्मा बालपना छोड़कर—अज्ञानपना छोड़कर जहाँ पूर्णानन्द भगवान आत्मा के यौवनदशा की क्रीड़ा में आया और जहाँ पूर्णानन्द की शान्ति के रस से, सूखड़ी से भरपूर भगवान... आहाहा ! समझ में आया ? वह जब एकाग्र होकर खाने बैठे, उसके मन की बात क्या करना ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी दिखता नहीं। इसके लिये तो बात की।

छह हाथ का लम्बा शरीर और रूपवान ऐसा बड़ा अंग्रेज जैसा हो और बड़ा रूपवान शरीर। तेज पड़ता हो ऐसे ... जैसा। दोनों व्यवस्थित शरीर हों वापस। और वह यौवन से हृष्ट-पुष्ट हो, हृष्ट-पुष्ट हो अन्दर से और चारों ओर की व्यवस्थितता और माँ-बाप को इकलौते दोनों हों। दोनों को इकलौते हों अर्थात् पुत्री एक ही हो और उसको पुत्र एक हो। चारों ओर से ऐसा। सब ओर से उसे व्यवस्थितता जहर की लगती हो न। यह जहर है, परन्तु इसे प्रेम कैसा लगे ! जगत में मानो, इसके अतिरिक्त कुछ दूसरा है ही नहीं। बस, ओहोहो ! आहाहा !

यहाँ तो जरा यह 'भावना' शब्द पड़ा है न, वहाँ लक्ष्य गया है। ओहो ! भगवान चैतन्य अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु उसका धर्मकाल जहाँ यौवन काल धर्म का वर्तता है, वृद्धकाल तो उसके फल केवलज्ञान और केवलदर्शन है। नवनीतभाई ! यौवनकाल। आहाहा ! यह इतने उत्साह से अन्दर एकाग्र होता है कि अनुत्साह तो कहाँ है जगत में, इसकी खबर नहीं। और प्रमाद है या नहीं जगत में, इसकी खबर नहीं। ऐसा भगवान आत्मा... आता है न, आवे वह ऐसा का ऐसा होओ। समयसार में आता है, हों ! यह शब्द। समयसार के सब शब्द अकेले वीतराग के झरना हैं। अन्दर भरा है, ऐसा भगवान चैतन्यरत्न, उसमें एकाग्र हुआ, कहते हैं कि उसमें से उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द। उस जवानी में उत्पन्न हुआ प्रेम अकेला राग और जहर है। समझ में आया ?

उसमें कोई उसे कहे, विवाह हुआ हो और तुरन्त ज्योतिषी (कहे कि) यदि तुम आज पहली रात्रि सुहाग की निकालोगे तो तब मर जाओगे। तुम्हारा ज्योतिष ऐसा कहता है। ऐसा है भाई! राजा को सम्बन्ध किया हुआ। ... यह तो सब दृष्टान्त तैयार। जामनगर दरबार यह ... उनके काका था रणजीतसिंह उनका सम्बन्ध किया जमींदारनी के साथ। ज्योतिषी ने कहा कि जिस दिन तुम्हारा विवाह होगा, दोनों इकट्ठे होओगे उस दिन मृत्यु। यह कहते हैं बात ऐसी अद्भुत से नहीं होती, सब कहीं उसमें... कहा न? क्या कहते हैं यह अपने को खबर नहीं। विवाह किया ही नहीं। बाई ऐसी की ऐसी कुँवारी रह गयी। उसका सम्बन्ध लड़की का... उसे ले कौन? वह जाये कहाँ अन्यत्र? लड़की ने इनकार किया। यहाँ तो दूसरा कहना है। समझ में आया?

ऐसी आयी जहाँ वह व्यवस्थित पहले कही और उसमें विवाह हुआ और जहाँ मिलाप हुआ और किसी ज्योतिषी ने आकर कहा। यदि यह दोनों गाँठें इकट्ठी हुई और मिलाप हुआ तो देह छूट जायेगी। दुनिया कहे कि रंग में पड़ा भंग। यह स्थिति कहाँ जाये वापस? यह सब हो स्थिति हो ऐसी की ऐसी। दोनों जवान माँ, बाप को इकलौता पुत्र। करोड़ों रुपये सब बराबर हों। अच्छा ज्योतिषी, हों! बराबर जिसका विश्वास उपजे ऐसा। ऐसे ज्योतिषी होते हैं न?

मुमुक्षु : विश्वास करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्वास हो गया। पहले बहुत बार... बड़ा राजा हो न, इसलिए बहुत बार आया हुआ हो। और कितने ही ज्योतिष (भविष्यवाणी) उसकी सच्ची पड़ी हो। हाय! हाय! ऐसा ... एकदम अन्दर गया ... गया।

उसी प्रकार भगवान ज्योतिषी ऐसा कहते हैं, परमात्मा तू शुद्ध आत्मा है, प्रभु! तेरी एकाग्रता के आनन्द में तुझे इतना आनन्द आयेगा कि तू इस राग के आनन्द में जायेगा तो मर जायेगा, तेरा जहर होगा, जहर होगा आनन्द का। समझ में आया? राग में एकाग्र होने जायेगा तो आनन्द का जहर हो जायेगा। आहाहा! शुभाशुभराग की जहाँ रुचि छूटी, पर की रुचि तो गयी, यह भगवान आत्मा की एकाग्रता वीतराग परमानन्द।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो यह बन्ध जल जाये एकदम, ऐसा कहते हैं। शुभाशुभ में से उत्पत्ति रुक जाये, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वह बन्ध आ गया ऐसा का ऐसा। नहीं आता? वह विजया सेठ और विजया रानी का (कथानक) आता है न। उन्होंने विवाह किया, दोनों ने विवाह किया था। एक कथा आती है। एक को था शुक्ल का नियम विवाह से पहले और एक को था कृष्ण (पक्ष) का। शुक्ल पक्ष का नियम ब्रह्मचर्य पालने का। एक को कृष्ण का। दोनों का विवाह हुआ। पहली सुहागरात में बात होने पर कि मुझे शुक्ल का नियम है, वह कहे मुझे कृष्ण का। आजीवन ब्रह्मचर्य ले लिया। समझ में आया? कथा में आता है। यहाँ तो ऐसी प्रीति के काल में जहाँ एक क्षण में कितनी देर लगी? भाई! ऐसा कहता हूँ। दोनों को ऐसा था जहाँ कि ओहो! आज पति को इकट्ठे होंगे, पति जाने कि पत्नी से इकट्ठे होंगे। ऐसी सुहागरात है, पहली रात है। समझ में आया? ऐसा कहा, मुझे यह शुक्ल का ... वर्ते। ... वर्ते मुझे शुक्ल का नियम है। वह कहे, मुझे कृष्ण का नियम है। भगवान ... समझ में आया? सज्जन को दूसरा हो? बहिन और भाई जैसा अपने सम्बन्ध है। बाहर कहना नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा के श्रद्धा के ज्ञान में आत्मा ऐसा आनन्दमय है, उसकी जहाँ एकता हुई जहर का, जहर का प्रेम छूट गया अन्दर से। अब मुझे और राग को कुछ सम्बन्ध नहीं। ... अनादि का ... है। उससे उत्पन्न हुए ऐसे उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की... देखो, भाषा। शत्रु है। आहाहा! समझ में आया? पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषी... अभिलाषा, हों! सम्यग्दृष्टि को अभिलाषा नहीं। राग होता है, तथापि अभिलाषा नहीं, अभिलाषा भगवान आत्मा की है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो विशेष एकाग्रता होने के लिये कहते हैं कि उसे अभिलाषा की वृत्ति की उत्पत्ति ही होती नहीं।

जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है,... जिसमें पर विषय का प्रेम, विषय शब्द से अकेला भोग, ऐसा नहीं। पाँचों ही इन्द्रिय के विषय रूप, गन्ध, रस, इज्जत, कीर्ति आदि की वासना। समझ में आया? अणीन्द्रिय भगवान आत्मा का जहाँ ज्ञान है, वहाँ यह पाँच इन्द्रियों के विषय की अभिलाषा का जहर कहाँ से होगा? जहाँ सूर्य उगे,

वहाँ अन्धकार कहाँ से होगा ? और अन्धकार है, वहाँ दिन करनेवाला सूर्य है नहीं। वह दिनकर—दिन का हाथ नहीं। कर कहे न, उसकी किरणें ? दिनकर, वह सूर्य का हाथ है। इस आत्मा का हाथ नहीं। जिसे राग की अभिलाषा, वहाँ आत्मा का अधिकार—हाथ नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, अरे ! पाँच इन्द्रिय के विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध, इज्जत, कीर्ति का बहलावे, वे सब आत्मा के आनन्द के वैरी हैं। समझ में आया ? कहो, भीखाभाई ! वाणी निवार सकता है न ? होशियार व्यक्ति है न। कहना भी आता है या नहीं ? आहाहा ! भगवान् आत्मा... कहते हैं कि जिसमें एकाग्रता से जिसके शान्त झरना झरे, ऐसा प्रभु। उसके वैरी पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा जहाँ हो, वहाँ आत्मज्ञान कैसा ? वहाँ आत्मा की दृष्टि कैसी ? उसे परमात्मा दृष्टि में बसा कैसा ? यह बाहर की बात नहीं, हों ! इसलिए लोग मानो कि बस तब अपने विषय छोड़ दो, स्त्री छोड़कर ब्रह्मचर्य पालते हैं तो अपने को अभिलाषा छूट गयी, ऐसा नहीं। यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियों से छूटकर स्वभाव की दृष्टि करे, तब उसकी अभिलाषा छूटे। समझ में आया ?

ज्ञान नहीं है,... आहाहा ! एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। जहाँ भगवान् आत्मा की रुचि की भावना है, वहाँ यह राग की भावना कैसी ? राग की भावना, वहाँ भगवान् की भावना कैसी ? एक में दो नहीं होते। समझ में आया ? यह शुभराग में भी पुण्य फलेगा और उसके फल दुःख है स्वर्ग के। वह विषय का ही फल, पुण्य का फल ही विषय है। स्व विषय उसका फल है ही नहीं। भगवान् कहते हैं कि समकिर्ती को पुण्य रह जाये न, फल बाँधे स्वर्ग में। वह राग के अंगारों से सिंकता है। आहाहा ! उन स्वर्ग के फल के राग में भगवान् की शान्ति कहाँ है वहाँ ? शान्ति तो जितनी एकाग्र होकर प्रगट हुई, वह है। उस राग के फल में, देव में यह अनुकूलता इन्द्राणियों का और ऐसा देखो तो। ओहोहो ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय दाह, हाँ यह। आहाहा ! तब बात की थी।

कहते हैं, भगवान् आत्मा के शान्तरस की रुचि के प्रेम में, एकाग्रता में, ऐसी

वासना का उठना कहाँ से हो ? और ऐसी वासना अन्दर में उठे, वहाँ आत्मज्ञान कैसा हो ? समझ में आया ? **अज्ञान ही है**। चाहे तो त्यागी होकर बैठा हो, मुनि होकर बैठा हो, अन्दर के राग के विकल्प की अभिलाषा पड़ी है, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा ! राग के वेग में बहता, उसे चैतन्य का ज्ञान नहीं। समझ में आया ? **जिस जगह वीतरागभाव है, वही सम्यग्ज्ञान है**। देखो ! क्या कहा ? जहाँ आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प की अभिलाषारहित का वीतरागभाव दृष्टि-ज्ञान में है, वहाँ सम्यग्ज्ञान है। जहाँ अभिलाषा में और प्रेम में राग भाग पड़ा है, वहाँ सम्यग्ज्ञान कैसा ? समझ में आया ?

जिस जगह वीतरागभाव है,... अर्थात् कि जिसकी श्रद्धा-ज्ञान में वीतराग परमात्मा निर्मलानन्द प्रभु बसता है, उसे सम्यग्ज्ञान है। आहाहा ! यह शास्त्र-बास्त्र के ज्ञान की तो बात ही निकाल डाली। यह तो पहले निकाल डाली। समझ में आया ? आहाहा ! वीतरागमार्ग वह कोई वीतरागमार्ग है न ! आहाहा ! कायर को प्रतिकूल 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त... शान्त... शान्त... शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर को ऐसा लगता है कि ऐसा होगा ? ऐसा मार्ग होगा ? ऐसा मार्ग होगा ? उस नपुंसक को कभी वीर्य होता नहीं। इसी प्रकार कायर मिथ्यात्व से पुष्ट हुए उन्हें यह वीतराग की यह बात (प्रतिकूल लगती है)। विकल्प राग रत्नत्रय, वह आत्मा को काम करता नहीं और आत्मा की एकाग्रता से वह राग उत्पन्न होता नहीं। समझ में आया ?

इसी बात को दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं, सो सुनो। हे जीव ! जैसे सूर्य के प्रकाश के आगे अन्धेरा नहीं शोभा देता,... शोभा नहीं देता अर्थात् होता ही नहीं, ऐसा। वह शोभे वहाँ यह शोभे कहाँ ? होवे (नहीं तो) कहाँ से शोभे ? अस्ति ही न हो। आहाहा ! सूर्य के प्रकाश के आगे अन्धेरा नहीं शोभा देता, वैसे ही आत्मज्ञान में विषयों की अभिलाषा नहीं शोभती। समझ में आया ? यह निश्चय से जानना। भगवान आत्मा का ज्ञान, उसका दर्शन, उसका भान, वहाँ विषय की अभिलाषा कैसे स्फुरित हो ? जहाँ आनन्द स्फुरित हो, वहाँ यह कहाँ से स्फुरित हो ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अस्थिरता की थोड़ी वृत्ति आवे, उसे यहाँ गौण करके बात की है। अज्ञान है न, ऐसा कहा है न ? यहाँ तो अज्ञान और ज्ञान दोनों की बात की है, भाई ! ऐसा नहीं कि यहाँ वह वीतरागस्वरूप है... अरे ! भगवान ! भाई ! बापू ! तुझे चैतन्य के माहात्म्य की खबर नहीं, भाई ! यह शास्त्र से कुछ पार पड़े ऐसा नहीं। तत्त्व की दृष्टि समझे बिना...

यह भगवान आत्मा ऐसे गृहस्थाश्रम में पड़ा समकिती भान है। इन्द्र ऊपर से उतरे, इच्छा नहीं होती, इच्छा नहीं होती। अरे ! हमारे शान्तरस की एकाग्रता में हम आते हैं या हम तो राग की एकाग्रता में आते हैं ? अस्थिरता से उत्पन्न हो जाये, अलग बात है, परन्तु एकाग्र करके यह करनेयोग्य है, ऐसी मिठास सम्यग्दृष्टि को राग की उत्पत्ति में रहती नहीं। समझ में आया ?

शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो,... देखो ! शास्त्र का ज्ञान किया, नौ पूर्व पढ़ा और बाहर हजारों लोगों को रिझावे, लाखों लोगों को डोलावे। अमरचन्दभाई ! क्या धूल हुई उसमें ? आहाहा ! शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो,... अन्तर निराकुल वस्तु की दृष्टि और निराकुल ज्ञान न हो, वह शास्त्रज्ञान क्या करे उसे ? अमरचन्दभाई ! आहाहा ! और आकुलता के उपजानेवाले आत्मीक-सुख के वैरी रागादिक जो वृद्धि को प्राप्त हों, तो वह ज्ञान किस काम का ? वह ज्ञान किस काम का है ? वह ज्ञान काम का क्या ? जिसमें अन्तर स्वरूप की दृष्टि और निर्विकारी ज्ञान शान्त होकर स्थिर हुआ नहीं, उसे ज्ञान कौन कहे ? वह ज्ञान काम का क्या ? कहते हैं। विशेष थोड़ा कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण ३, मंगलवार, दिनांक ०८-०२-१९६६

गाथा - ७६ से ७८, प्रवचन - १२२

परमात्मप्रका, दूसरा भाग (अधिकार), ७६ गाथा। अन्तिम दो लाईन है। पहले तो ऐसा कहा कि आकुलता के उपजानेवाले आत्मीक-सुख के वैरी रागादिक जो वृद्धि को प्राप्त हों, तो वह ज्ञान किस काम का? क्या कहा? आत्मा... जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ, ज्ञान तो उसका नाम कहा जाता है कि जिसमें ज्ञान के साथ शान्ति प्रगट हो। क्योंकि आत्मा वह शान्त और आनन्दस्वरूप है। इसलिए उसका ज्ञान होने से, जिसका ज्ञान करता है, उसका ज्ञान होने से उसमें जो शान्ति और आनन्द है, ऐसा उसमें ज्ञान में आना चाहिए। समझ में आया इसमें? आत्मा का ज्ञान कहा न? आत्मा का ज्ञान अर्थात्? आत्मा अर्थात्? अकषायस्वभाव और आनन्द—ऐसा आत्मा, उसका ज्ञान होने से उसमें जो शान्ति और आनन्द है, ऐसी ज्ञान में शान्ति और आनन्द न आवे तो वह ज्ञान किसका? समझ में आया?

आकुला बढ़े, जानपना करे और आकुलता और अन्तर में राग की एकता बढ़े, विकार बढ़े, अशान्ति बढ़े, वह ज्ञान किसका? क्योंकि जिसका ज्ञान है उसमें शान्ति और आनन्द है, उसमें आकुलता और दुःख नहीं। समझ में आया? जब दूसरे शास्त्रों का अकेला ज्ञान करे तो दूसरे में कहीं आत्मा नहीं और दूसरे में कहीं आनन्द नहीं। समझ में आया? इसलिए ज्ञान और आनन्द जिसमें नहीं, उसका ज्ञान करने से वह ज्ञान कहलाता ही नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान होने से आकुलता बढ़े, वह ज्ञान किसका? सूक्ष्म बात है जरा अन्दर, हों! बात अन्तर से कहते हैं।

ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। उसका नाम ज्ञान। शास्त्र का अधिक पठन किया या दूसरे को समझाना आया... समझ में आया? वह ज्ञान नहीं, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! जहाँ भूख लगे तो यह भूख लगी, उसकी अशान्ति है। भूख किसकी है? भूख लगी उसे क्या मिला? राग हुआ उसमें राग। शान्ति कहाँ आयी?

शान्ति तो आत्मा के आनन्द में है। आत्मा है उसमें से शान्ति आवे ? उसमें कहीं रोटियों में शान्ति है ? रोटियों के विकल्प में शान्ति है ? कहाँ से शान्ति आयी ? समझ में आया ? जिस मनुष्य को उस सम्बन्धी का ज्ञान हो, उस सम्बन्धी के ज्ञान में वह निःशंक होता है या नहीं ? कि हाँ, मुझे बराबर आता है यह। प्रेमचन्दभाई ! बात बराबर है ? बात तो ... लड़के... हमको यह बराबर आता है। बराबर आता है ? हाँ। निःशंक हो ? हाँ। बताओ हाथ में निकालकर। हाथ में निकालकर बताओ कि तुम तुम्हारे ज्ञान में निःशंक हो, यह हमको बताओ। धर्मचन्दजी !

इसी प्रकार आत्मा का अस्तित्व जो है, आत्मा का अस्तित्व है, उसका यदि ज्ञान हो तो निःशंकरूप से उसमें शान्ति हो। दूसरा कहे, हमको बताओ। वह दूसरे को नहीं बतायी जाती। दूसरा किस प्रकार से जाने ? जिसके वेदन का विषय है, वह जाने या दूसरे का वह वेदन का विषय है ? यहाँ तो कहना है कि स्व ज्ञान में वेदन आता है। परज्ञान में वेदन होता नहीं तो वह विषय नहीं। पर का विषय वेदन तो नहीं और शास्त्र का बोध या राग की मन्दता की क्रिया या फिर उसमें शान्ति नहीं। समझ में आया ? वह वेदन शान्ति का नहीं। शान्ति अर्थात् ? परन्तु तुम तुम्हारी दुकान के धन्धे के व्यापार में कुशल थे या नहीं ? वह कुशलता तुमको ख्याल में थी या तुमको सन्देह था ? वह निःशंकरूप से था या नहीं ? या उसमें ऐसा... ऐसा... ऐसा... था ? इतनी वहाँ आगे उस प्रकार की डर की आकुलता नहीं थी। थी ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति वस्तु का जो ज्ञान हो, वह निःशंकरूप से स्वयं जानता है कि यह ज्ञान। अब ऐसा जानते हुए उसमें शान्ति और आनन्द है, उसका भी अन्दर वेदन आवे न ? वेदन न आवे तो यह आत्मा है, उसका ज्ञान कहाँ आया ? उसमें निःशंक कहाँ हुआ ? समझ में आया ? सूक्ष्म परन्तु अब... इसका अर्थ यह है। तुम्हारी पुस्तक का तुमने जानपना किया था या नहीं ? नोवेल। वह ख्याल तुमको है ? नोवेल का ख्याल था या नहीं ? वह ख्याल तुमको नहीं था ? अब ख्याल कैसा था, वह लाओ बताओ हमको। वह तुम्हारा विश्वासवाला था तो तुम्हारे... समझ में आया ? वह विश्वास ऐसा हो उसे कि मैं ऐसा ही हूँ, बराबर मैं उसमें निपुण हूँ। वह स्वयं हाथ में

न देखे, दूसरे को बता न सके, तथापि उसके भाव में वह निःशंक उसका विश्वास उसे होता है, उस प्रकार का।

इसी प्रकार भगवान् आत्मा, वह वस्तु है न ? उसका जो ज्ञान, उसका ज्ञान, उस ज्ञान में उसका विवास आने पर उसे शान्ति और आनन्द का साथ में वेदन हो, उसे ज्ञान कहते हैं। ऐसा कहते हैं। ऐसा होगा या ऐसा होगा ? ऐसा होगा वहाँ तो उसे एकत्वबुद्धि पर में रही। यहाँ तो हुई नहीं। पठन पढ़ा, शास्त्र पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा। कहो, समझ में आया ? यह जरा यहाँ ऐसी बात ली है न, सवेरे यही आयी थी। आरम्भ और कषाय में, विषय में वर्तता है, वह वर्तता है, यह कहा है, वह आसक्ति की अपेक्षा से कहा है। वर्तता नहीं। आसक्तिरूप से वर्तता है, वस्तुरूप से वर्तता नहीं। वस्तु तो ज्ञान में आनन्द का ज्ञान है, भान है, वह उसमें (विषय में) वर्तता ही नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। यह शब्द की बात नहीं यह। यह पठन बाहर के पठन में इस जाति का पठन हो तो उसे निःशंक हो जाता है या नहीं ? निःशंक हो जाये, उसे उस जाति की जानने की आकुलता रहती है उसे ? उस जाति की जानने की आकुलता रहे ? लो, रामजीभाई को यह सब वकालात का... यह बड़े करते तो उसमें उस जाति की इन्हें आकुलता थी ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी जाति की जैसे राग के ज्ञान में निःशंकता और आकुलता का ज्ञान है वह। क्योंकि यह आत्मा का आनन्द और यह शान्ति, यह उसका ज्ञान कहाँ है ? वह तो बाहर का है। उसमें आनन्द, अपना आनन्द और शान्ति जिसमें नहीं, उसका ज्ञान है वह तो। वह उसका ज्ञान अर्थात् वह आत्मा का ज्ञान नहीं। ऐई ! आहाहा !

यहाँ तो ज्ञान आत्मा का ज्ञान कहना है न ? आत्मा का कहना है न ? या शास्त्र का या राग का या उसका या फलाना का ? आत्मा का ज्ञान। तो कहते हैं, ज्ञान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान ऐसा होता है कि जो आत्मा का ज्ञान, तो आत्मा में ज्ञान, शान्ति और आनन्दसहित जो है, उसका ज्ञान। उसका ज्ञान उसमें से ज्ञान आया सम्यक्, शान्ति आयी और आनन्द आया, तब उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। तब आत्मा का ज्ञान कहा

गया है। जिसमें आकुलता नहीं मिटे और आकुलता उत्पन्न हो या आकुलता बढ़े, वह आत्मज्ञान ही कहाँ है ? समझ में आया या नहीं इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थिरता इतना साथ है न। आकुलता नहीं, वह साथ में शान्ति और आनन्द इकट्ठा है, कहा न। वह शान्ति और आनन्द इकट्ठा, तब ही उसे ज्ञान कहा, ऐसा कहता हूँ। आत्मा में शान्ति है न ? वह शान्ति कहो या चारित्रगुण कहो। यह तो भाषा दूसरी की। आनन्द कहो या सुख गुण कहो। ऐसे सुख और आनन्दवाला ज्ञान, उसमें सुख और शान्ति इकट्ठी होती है या नहीं स्थिरता में ? वह आकुलता का अभाव होता है या नहीं ? शान्ति हो, हो या नहीं इकट्ठी ? आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी किसका ? किसका ज्ञान ? राग का ? शरीर का ? शास्त्र का ? स्त्री-पुत्र का ? किसका ज्ञान ? ज्ञान किसका ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है, वहाँ कहाँ है अब ? समझने जैसी बातें हैं। सबका कलेजा देखते हैं न अन्दर। परन्तु कदाचित् किसी को बाहर की चिन्ता न हो तो वह परसन्मुख का ज्ञान, वह पर में कहाँ यह शान्ति है ? यह आत्मा शान्तस्वरूप है, आत्मा आनन्दस्वरूप है, यह शान्ति और आनन्द किसमें है ? इसका शान्ति और आनन्द किसमें है ? दूसरे में आत्मा की शान्ति और आनन्द का ज्ञान हो, वह आत्मा, परन्तु उसका दूसरे का होने से इसका न हुआ, वहाँ यहाँ शान्ति, आनन्द कहाँ से आवे ? समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान तो वह है, पाठ क्या कहता है ? 'तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवइढइ राउ।' उसे ज्ञान कहते हैं कि उसमें राग बढ़े नहीं, अर्थात् कि उसे ज्ञान कहते हैं कि जिसमें अनाकुलता हो और अनाकुलता बढ़े। समझ में आया ? बात... क्या हो ? यह हीराभाई, लो ! इन्हें चूड़ियों का और फलाने का कितना अन्दर ख्याल होगा ? फलाने प्रकार और फलाने प्रकार और फलाने प्रकार की। उसमें यह

निःशंक होकर पड़े है या नहीं ? यह निःशंकपना कैसा है अन्दर, बताओ हमको । ... तो वे जानते हैं । इसी प्रकार आत्मा, आत्मा... आत्मज्ञान कहते हैं न यहाँ ? दूसरे सबकी बातों का ज्ञान यहाँ नहीं । दुनिया का, शास्त्र का भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं । वह परद्रव्य है । परद्रव्य में आत्मा का ज्ञान और आनन्द नहीं है । यह तो अपने पहले आ गया न ! ज्ञान... तो नहीं आया था ? शुद्ध को जानने से । पहले कलश में नहीं आया था ? आया था या नहीं ? कहाँ गया ?

यह वस्तुस्थिति है । इसका अर्थ बहुत सरस किया है, अपने तब अर्थ किये हैं सब । समयसार कलश । अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं । उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं । कहाँ का कहाँ आ गया । लक्ष्य ... यह जरा विस्तार होते-होते आता है न । 'शुद्ध जीव के सुख है और ज्ञान भी है । उसको जानने पर, अनुभवने पर जाननहारे को सुख और ज्ञान भी है ।' बहुत सरस बात है । मार्मिक बात रखी है, मर्म की बात रखी है । समझ में आया ? यह बात ... जहाँ अन्दर क्या चीज़ है, उसके ज्ञान बिना की बातें करे, उसके ज्ञान बिना की बातें करे, उसके ज्ञान में जो शान्ति और आनन्द है, वह तो उसे होता नहीं । इसलिए जो ज्ञान आकुलता को बढ़ावे, वह ज्ञान आत्मा का ही नहीं । समझ में आया ? क्योंकि आकुलता उसमें नहीं । आत्मा में आकुलता नहीं, आत्मा में तो अनाकुलता और शान्ति है । सूक्ष्म बात बहुत नहीं ! गुणवन्तभाई ! तुमको सुनने को तो मिलता है । यह तो गुणवन्त आत्मा की बात चलती है, लो ! आहाहा !

जिसमें आनन्द और शान्ति भरी है, उसके ज्ञान में आकुलता बढ़े या आकुलता घटे ? घटे वह तो नास्ति से बात हुई, परन्तु यहाँ तो शान्ति और आनन्द हो, उसे आत्मा का ज्ञान कहते हैं । और शान्ति और आनन्द बढ़े, ज्ञान भले कम हो जानपना । समझ में आया ? विशेष बोलने का, जानने का, समझाने का, शास्त्र का, परन्तु उसका ज्ञान है, इसलिए वह ज्ञान क्रम-क्रम से शुद्धि में बढ़ते हुए आकुलतारहित अर्थात् अनाकुल और शान्ति की वृद्धि हो, उसे ज्ञान कहते हैं । ऐसा है, ऐसा है । समझ में आया इसमें ? ... समझ में आया ?

कहा न एक बार, भाई ! हमको ऐसा बहुत छल-कपट नहीं आता ? माल ...

करते थे न। दो पैसे क्या कहलाये ? पास। यह रेल में ले जाये न ! दो पैसे का पास लेकर इतने में (बहुत माल ले जाये)। कहा, भाई हमको ऐसा नहीं आता। तब कहे, भगतडा... अरे ! तुम बड़े चक्कर लगाते हो इतने। यह क्या करते हो परन्तु तुम ? ऐसा कहा। यह तो बहुत छोटी उम्र की बात है, हों ! लगभग (संवत्) १९६५-६६ की बात होगी। मुम्बई में माल लेने गये हुए थे हम। तो दो टिकिट थे। पौण-पौण मण (तीस किलो) हो एक व्यक्ति का। पाँच-छह मण वजन था। डालो न रेल में। ... फिर एक व्यक्ति था ... चार व्यक्तियों के दो-दो पैसे के पास लेकर अन्दर घुसे और माल रखा। ! परन्तु यह क्या करते हो तुम ? ... तब पागल लगता था। यह हमारे भारी संसारी लगता है। कैसे हो और कैसे नहीं... ? क्योंकि अपने यहाँ चढ़ाना है न, वहाँ तो अपना गाँव है पालेज। वहाँ तो पोर्टर अपने घर के, वहाँ कोई हमको पूछेगा नहीं। वहाँ तो हम उतरेंगे इसलिए वहाँ एकदम। पहुँच। परन्तु यह चोरी करके ले जाना, यह वह कहीं मार्ग है ? उसमें होशियार। वह आकुलता है, हों ! पर का ज्ञान, वह आकुलता, खेद और चिन्ता। भय... भय... भय...

भगवान आत्मा का ज्ञान... आहाहा ! (समकिती) वह विषय में वर्तता है, वह तो आसक्ति जितनी बात है। यह अभी कहेंगे। समझ में आया ? आदर नहीं। अब वह आदर नहीं और यहाँ आदर है, उसे जाने कौन ? वह तो जाननेवाला जाने या दूसरा जाने उसे ? जा तू ला तो मुझे बता यह लाया वह। परन्तु किस प्रकार बतावे तेरे भाव का ? हमको बता, ले। तेरा यह भाव है। परन्तु हमको जानने में आवे सामनेवाले का भाव, परन्तु वह भाव कहीं बता दिया जाये उसे ? कि भाई देखो, यह तुम्हारा। किस प्रकार बताना उसे ?

मुमुक्षु : बताने का कुछ रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ख्याल में नहीं आवे, तब तक बताना, वह कैसे काम आवे ? क्योंकि ख्याल तो उसे करना है। ऐसे इसके ख्याल में यह लेना है। यह ख्याल में आये बिना यह क्या है और इसका क्या वेदन है, वह दूसरे को क्या खबर पड़े ? समझ में आया ? तथापि दूसरा बराबर ज्ञानी आदि हो तो उसे भी उसका ख्याल आ जाये

कि वेदन बदला है। उसका वेदन न आवे, परन्तु ऐसा वेदन बदल गया है। ज्ञान आवे, परन्तु वह ज्ञान आने पर कहीं आनन्द आवे? क्या कहा? समझ में आया? यहाँ तो यह कहते हैं, अरे! जिसे सच्चा ज्ञान है, उसे आकुलता और राग की वृद्धि की उत्पत्ति कैसी? उत्पत्ति कैसी? वह आसक्ति का भाव, वह अभी गौण है, हों! वह बात में है नहीं। वह सब टलता जाता है। उसमें रस नहीं। समझ में आया? सवेरे यह कहा था न जरा?

मुमुक्षु : सदा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा। वह सदा ही भले पड़ा हो तीन कषाय का उसमें, तथापि उसे आकुलता का रस नहीं। आहाहा! समकिती वास्तव में निश्चय से निर्विकल्प ध्यान में हो, तो भी उसे तीन कषाय में उसकी आसक्ति तो वहाँ भी पड़ी है। आहाहा! इससे उसे आकुलता के साथ एकता है और अनाकुलता के आनन्द की एकता टूट गयी है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। आहाहा! चिड़ा देखा है गर्मी में? यों ही बैठे हो तो ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे... कषाय बहुत है न अन्दर। यह तो स्थूलता में भी उसकी क्रिया के आचरण में आ जाता है कि इसे कषाय तीव्र है। समझ में आया? पंख-बंख ऐसे-ऐसे हो। देखे हैं चिड़े? ऐसा कहते हैं कि जिसे परसन्मुख का ज्ञान और परसन्मुख की श्रद्धा और परसन्मुख का आचरण है, वहाँ तो पर में अपने को सुख और आनन्द नहीं ज्ञान और शान्ति, इसलिए उसे तो आकुलता ही है, भाई! उसे अन्दर आकुलता ही है। बाहर से नग्न मुनि होकर बैठा हो तो भी उसे आकुलता ही है। यह नहीं—भगवान नहीं। समझ में आया?

इससे यह निश्चय हुआ, कि बाह्य पदार्थों का ज्ञान... देखो, यहाँ यह सिद्धान्त है। इन्होंने न्याय दिया है। किसलिए? कि 'विशिष्टमोक्षाभावादिति' ऐसा है न पाठ में? जिसका फल आकुलता का छुटकारा न हो, उसे ज्ञान ही नहीं कहते। अन्तिम शब्द है न, भाई! अन्दर टीका में 'कस्मात् विशिष्टमोक्षाभावादिति' इसकी फिर व्याख्या की। इतनी आकुलता के अभावरूप मोक्ष ऐसा फल उसे—बाह्य पदार्थ के ज्ञानवाले को नहीं, इसलिए उसे ज्ञान कहते नहीं। यह तो फिर उसमें से निकाला, भाई! समझ में आया

इसमें ? बाह्य पदार्थ... भगवान आत्मा के अतिरिक्त जो अपना चारित्रस्वभाव, शान्तस्वभाव, अनाकुल लक्षणरूप आनन्दस्वभाव, यह आनन्द और शान्ति दूसरे पदार्थ में नहीं। इसलिए दूसरे पदार्थ का ज्ञान, वह आकुलतारहित और शान्तिसहित नहीं। आकुलतासहित और अशान्तसहित है। समझ में आया ? वह भले ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो, वह बाह्य पदार्थ का ज्ञान है, आत्मा का नहीं। आहाहा!

बाह्य पदार्थों का ज्ञान मोक्ष-फल के अभाव से... देखो ! पाठ में तो यह लिया... हों ! इसलिए इसमें से यह निकाला। स्पष्टीकरण किया है। जिसमें अनाकुलता और आनन्द की उत्पत्ति का अभाव, वह बाह्य पदार्थ का ज्ञान है इसलिए। बाह्य पदार्थ में अनाकुलता की उत्पत्ति नहीं और अनाकुलता की उत्पत्ति का जिसमें अभाव, ऐसा बाह्य पदार्थ का ज्ञान वह कार्यकारी नहीं है। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ७७

आगे ज्ञानी जीवों के निज शुद्धात्मभाव के बिना अन्य कुछ भी आदरनेयोग्य नहीं है, ऐसा दिखलाते हैं :—

२०४) अप्पा मिल्लिवि णाणियहँ अण्णु ण सुंदरु वत्थु ।

तेम ण विसयहँ मणु रमइ जाणंतहँ परमत्थु ॥७७॥

आत्मा को छोड़कर... भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम, उसका जिसे ज्ञान... समझ में आया ? आत्मा को छोड़कर ज्ञानियों को अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती,... आहाहा ! देखो न किस भाषा से बात करते हैं ! भगवान आत्मा जिसके ज्ञान और श्रद्धा में प्रभु बसा है, अनाकुल रस का कन्द आत्मा और अकेला अकषाय चारित्रस्वरूप तत्त्व प्रभु जिसके ज्ञान में बसा है, उसे वह वस्तु छोड़कर कोई चीज़ अच्छी नहीं (लगती)। वह शुभराग भी उसे अच्छा नहीं लगता। आहाहा ! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी अच्छा नहीं लगता, कहते हैं। देखो तो सही ! ऐई ! समझ में आया ? जिसे बाहर के पदार्थ की मिठास उड़ गयी है, जिसकी मिठास अन्तर के

आत्मा में चिपटी है। अरे! मक्खी जैसा जानवर भी फिटकड़ी के स्वाद को चखकर शक्कर के ऊपर आवे तो उस शक्कर को लड़के का थूक गया हो, पंख चिपक जाये, परन्तु स्वाद के मारे उठे नहीं। इसी प्रकार जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद है... सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अर्थात् क्या? समझ में आया? ऐसे ज्ञान और आनन्द के समक्ष कोई चीज़, यह आत्मा के अतिरिक्त कोई चीज़, आत्मा के अतिरिक्त कोई चीज़... कोई में कौनसी रही? शुभ-अशुभभाव, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, स्वर्ग, चक्रवर्ती की सम्पदा, समवसरण का दिखाव (वह कुछ अच्छे नहीं लगते)। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, **अन्य वस्तु...** अन्य वस्तु। भगवान आत्मा के अतिरिक्त, जिसका प्रेम भगवान आत्मा के साथ लगा। समझ में आया? **अच्छी नहीं लगती,...**

इसलिए परमात्म-पदार्थ को जाननेवालों का मन... परम आत्मा भगवान आत्मा वह साक्षात्-प्रत्यक्ष व्यक्तरूप द्रव्य है, प्रगट द्रव्य है। वस्तु तो वस्तु ही है। अनन्त गुण की राशि ऐसा चैतन्यप्रभु, उसके जाननेवाले का मन **विषयों में नहीं लगता**। आहाहा! उसका मन कहीं विषय में, इज्जत में, कीर्ति में, रूप में, खाने में, रस में, यह लड्डू और मैसूर में... समझ में आया? कहीं मन चिपटता नहीं। समझ में आया? अज्ञानी का मन विषय के अतिरिक्त कहीं आत्मा में लगता नहीं। बाह्य पदार्थ के प्रेम और रुचिवाले को कहीं आत्मा खोजा हुआ हाथ में आता नहीं, गन्ध दिखती नहीं। समझ में आया? एक म्यान में दो (तलवारें) नहीं रहतीं, ऐसा कहते हैं। जिसे प्रभु का प्रेम, उसे परपदार्थ में प्रेम होता नहीं और जिसे पर में प्रेम, उसे स्व में प्रेम नहीं। स्व और पर जिसने भिन्न जानकर भिन्न विवेक से ज्ञान किया है... समझ में आया? उसे विषयों में, विषय शब्द से यह भोग आदि अकेले, ऐसा नहीं, उसका ऐसे बाहर के लक्ष्य में विकल्प आदि हो, उसमें उसे रस लगता नहीं। वह विषय है। समझ में आया?

भावार्थ :- मिथ्यात्व, रागादिक के छोड़ने से... देखो, दो बातें ली। विपरीत श्रद्धा और राग की एकता का जो भाग है, उसे छोड़ने से। **निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर...** देखो, पुण्य-पाप में प्रेम और परवस्तु के प्रेम की रुचि जिसे छूट गयी है, इसलिए उसके साथ अनन्तानुबन्धी का आसक्ति भाव भी छूट गया है। समझ में आया?

यह तो धमाल और धमाल और बड़े करते हों न क्रिया। आहाहा! यह धर्मी और धर्म का प्रभाव करनेवाला, प्रभावना करनेवाला। भीखाभाई! आहाहा! जिसके अन्तरंग में पर के राग की, रजकण की रुचि टल गयी है, मिथ्यात्व टला है ऐसा, और यह रागादि भी उतने प्रमाण में छोड़ा-छूटा है।

निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर... देखो, भगवान आत्मा अपना शुद्ध स्वरूप द्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर जिनका चित्त परिणत हो गया है,... जिसका चित्त परिणत हुआ है, परिणत हुआ है। उसके साथ परण गया है। आहाहा! परणना यह होगा? क्या होगा और? वह क्या होगा, यहाँ तो और यह मस्तिष्क में आया। परणना-परणना क्या? उसमें नहीं आता मीराबाई में? क्या कहलाता है? मीराबाई में। ... परणना, पर नमना, परणना, पर में नमना। है न शब्द? तुमको संस्कृतवालों को आता है, अपने को कहाँ ऐसा आवे? पर में नम गया है पूरा। यहाँ अपने में नम गया है पूरा। समझ में आया? मीराबाई, यह मीराबाई नहीं कहती थी उनकी भक्ति के वे... 'परणी मारा पीयूजीनी साथ बीजाना मंडोल नहि रे बांधु।' इस प्रकार की उन्हें भक्ति, हों! इस प्रकार की भक्ति। तत्त्वदृष्टि नहीं, वस्तु की खबर नहीं।

यहाँ आत्मा का जहाँ रंग लगा है, आहाहा! वह मीराबाई का नाटक देखा था एक बार वहाँ भरूच-भरूच। डाह्याभाई का... अन्दर ऐसे धुन लगावे न! ऐसा लगे न एकबार मानो वहीं के वहीं बैठे रहे। तब, हों! तब। सब साधु इकट्ठे हों, लाल कपड़े।.... हाथ में तम्बूरा। सिर पर सफेद वस्त्र सब सफेद। होवे तो आदमी वह। आदमी हो परन्तु दिखाव ऐसा करे। पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ रुपये एक दिन के, हों! तब। एक रात्रि के पन्द्रह सौ। ऐसे इतने रसवाले अन्दर देखने आते, ऐसा। ऐसा उसका रस आता था। एक सप्ताह में तीन (शो करते थे), भाई! कहते थे। क्या कहलाता है वह? तीन-तीन। तीन सप्ताह। तीन कुछ था। एक बार मौके से गये हम वहाँ साधु ऐसे... आये थे। मैं और फावाभाई गये थे। उसमें ... नाटक देखें। ... ऐसी धुन लगे... ऐसी धुन लगे वैराग्य की। वाह! संसार एक बार कहाँ है, ऐसा उस समय उस धुन में (लगता था)। उसे तो कल्पना। वहाँ कहाँ (वैराग्य था)? वह तो पैसावाला। नौकरी (करे)। परन्तु जिसे आत्मा का रंग

लगा है, कहते हैं... आहाहा! उसका चित्त परिणित हो गया है। परिणित लो! यह परिणित, परिणम गया है। रग-रग में आत्मप्रदेश में..., आहाहा! समझ में आया?

ऐसे ज्ञानियों को शुद्ध, बुद्ध परम स्वभाव परमात्मा को छोड़के... देखो, समझ में आया इसमें? शुद्ध, बुद्ध परम स्वभाव। यह तो व्याख्या की वापस आत्मा की। कैसा है प्रभु भगवान? अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... द्रव्य वस्तु वस्तु। बुद्ध—अकेला ज्ञान का पिण्ड और परम स्वभाव, परम स्वभाव। अकेला ध्रुव ध्रुव स्वभाव। ऐसा जो आत्मा। परमात्मा अर्थात् अपना स्वरूप, परम स्वरूप। (उसको) छोड़के दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती। आहाहा! समझ में आया? जिसे दूधपाक का स्वाद आया हो, मिठास ली हो, उसे वह रोटियाँ छिलके की-फोतरे की, ज्वार के छिलकों की रोटियों का प्रेम लगता होगा? इसी प्रकार आत्मा अनाकुल... इन्द्र के इन्द्रासन में जिसे परसन्मुख के झुकाव में उस सुख की गन्ध नहीं, ऐसे सुख के भास में दूसरी कोई चीज़ सुन्दर लगती नहीं। स्वप्न में भी कोई विकल्प हो, वह भी उसे अच्छा नहीं लगता। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध-परमात्मा स्वयं पवित्र, बुद्ध-अकेला ज्ञानघन, अकेला ज्ञानशक्ति रस। ऐसा भगवान, उसे छोड़कर दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं लगती। समझ में आया?

इसलिए उनका मन कभी विषय-वासना में नहीं रमता। हों! उनका मन विषय में रमता नहीं, सुहाता नहीं, वहाँ विश्राम लेता नहीं। आहाहा! फिर इसका अर्थ ऐसा कर डाले (कि) हमने विषय छोड़े हैं न, इसलिए हमारे सम्यग्ज्ञान है। विषय छोड़े हैं, हमारे विषय का त्याग है। ऐसा नहीं। हम यह त्यागी हुए हैं। लो! धर्म के। अन्दर वस्तु परमात्मा स्वयं चिदानन्दस्वरूप क्या है? महान अनन्त आनन्द का कन्द उसके ज्ञान और श्रद्धा में आये बिना जहाँ रुचि छूटे नहीं, वहाँ आसक्ति किस प्रकार छूटे? समझ में आया? और आसक्ति छूटे बिना बाह्य का त्याग व्यवहार से किया, ऐसा कैसे कहना? समझ में आया? विषयों में नहीं रमता। चौथे गुणस्थान से, हों! ...विषय की वासना नहीं। 'मनसि ण लग्गइ न लगति न रोचते न प्रतिभाति।' इतने शब्द पड़े हैं, नहीं अन्दर? है या नहीं? ७८, ७८ चलती है न? ७७। वह ऊपर, वह 'सुन्दरं समीचीनं वस्तु

प्रतिभाति येन कारणेन तेण ण विसयहं मणु रमइ तेन कारणेन' ऊपर है न। 'ण सुंदरु वत्थु। तेम ण विसयहं मणु रमइ जाणंतहं परमत्थु' ऐसा हेतु दिया। विषय-वासना में रमता नहीं, ये विषय कैसे हैं। जो कि शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु हैं। ये पाँच इन्द्रिय की ओर के विषय के विकल्प वे भगवान आत्मा शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु, आड डालनेवाले हैं। समझ में आया ? शुद्ध भगवान आत्मा की प्राप्ति में पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का राग, वह शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु हैं, वैरी हैं।

ऐसे ये भव-भ्रमण के कारण हैं,... वह तो भव-भ्रमण का कारण है। शुभराग वह तो उदयभाव, भव का कारण है। भव के परिभ्रमण का (कारण) हैं। भगवान आत्मा मोक्ष के कारणरूप परमात्मा है। ऐसे आत्मा की, काम-भोगरूप पाँच इन्द्रियों के विषय उनमें मूढ़ जीवों का ही मन रमता है,... काम-इच्छा और भोग भोगना, राग का अनुभव, ऐसे इन्द्रिय के विषय में मूढ़ जीवों का ही मन रमता है,... आत्मा के आनन्द के अनुभव के समक्ष ज्ञानी का मन विषय में नहीं रमता। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि का मन नहीं रमता। यह क्या करना, वह कहते हैं। हमारे प्रसन्न होना न ? सवेरे नहीं कहते थे ? मैंने पूछा था भीखाभाई को, यह क्या कहते थे यह ? हमारे तो प्रसन्न होना चाहिए न, सुनकर। सुनकर। सुनकर प्रसन्न होना न ? फिर मैंने भीखाभाई को पूछा सवेरे ऐसे जाते हुए। क्या कहते थे तुम्हारे भाई सब ? सुनकर प्रसन्न होना। यह समझकर प्रसन्न होना। इसका नाम है समझकर प्रसन्न होना। समझ में आया ? आहाहा ! मैंने कहा, इसका अर्थ भीखाभाई को ... है। कहा था न, खबर है ? यह तो आत्मा बात क्या कहते हैं, कैसा अर्थ तुम्हें करना, ऐसा अर्थ करते हैं या दूसरा अर्थ करते हैं ? ऐसा।

सम्यग्दृष्टि का मन नहीं रमता। परमात्मप्रकाश है न यह ? परमात्मा का प्रकाश जिसके सम्यग्दर्शन में हुआ, उसके प्रकाश में राग के अन्धकार का प्रेम उसे होता नहीं। समझ में आया ? यह कल कहता था। प्रवचनसार, परमात्मप्रकाश, बहुत अच्छा। कौन कहता था ? ... परमात्मप्रकाश बहुत अच्छा। समयसार, प्रवचनसार सब अच्छा है। आत्मा अच्छा तो सब अच्छा। कौन कहता था ? तुम कहते थे ? बाहर। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि,... देखो, अब वापस व्याख्या। जिन्होंने वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख में तन्मय

परमात्मतत्त्व को जान लिया है। देखो, यह ज्ञान। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि अर्थात् कि धर्मी? अर्थात् कि धर्म के करनेवाले धर्मी कैसे होते हैं? जिन्होंने आत्मा के रागरहित सहज आनन्द एक स्वरूप जो है अन्दर... 'एक' शब्द पड़ा रहा है। समझ में आया?

वीतराग सहजानन्द एक पारमार्थिक सुख। अखण्ड सुख में तन्मय... देखो, क्या है? एकरूप परमात्म तत्त्व, वापस अखण्ड सुख में एकरूप भगवान है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के एकरूप सुख से भगवान एकरूप है, एकरूप। दो रूप नहीं उसके। वह आत्मा द्रव्य कहा तो उसका अखण्ड आनन्द उसका गुण, उस गुण से तन्मय एकरूप आत्मा है। समझ में आया? जिसे वीतराग सहजानन्द स्वाभाविक आनन्द, ऐसा एक अखण्ड सुख परमार्थ से ... एक कहो या अखण्ड कहो। वरना परमार्थ सुख में तन्मय। परमात्म तत्त्व भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द से एकरूप प्रभु आत्मा है। उसने जाना है, देखो, उसने जान लिया है। समझ में आया? 'ऐगं जाणहि सव्वं जाणहि।' यह जाना, उसने सब जाना, सब जाना, ऐसा। यह जाने बिना सब नहीं जाना। जाना, वह नहीं जाना। आया, वह नहीं आया। कहो, समझ में आया? और यह जाना उसने सब जाना। आहाहा!

कैसा है? सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की, हों! कैसा सम्यग्दृष्टि? कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धावाला है, नौ तत्त्व की श्रद्धावाला सम्यग्दृष्टि, ऐसा नहीं कहा यहाँ। समझ में आया? 'ज्ञानिनां' शब्द है पहला? 'ज्ञानिनां' शब्द पड़ा है न? 'णाणियहं' इसका अर्थ किया है, ज्ञानी कैसा है? सम्यग्दृष्टि कैसा है? ज्ञानी कैसा है और सम्यग्दृष्टि कैसा है, ऐसा। समझ में आया? अब यह आठवें गुणस्थान की बात और दूसरी चौथे गुणस्थान की दूसरी। ऐसा नहीं यह। अरे! भगवान! यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु ही ऐसी आत्मा चीज़ है कि जिसके अरागी स्वाभाविक आनन्द का एकरूप जिसमें परमार्थ से एकरूप पड़ा है। ऐसा ही आत्मा, वह आत्मा उसे ही कहते हैं। वह आत्मा का ज्ञान जाना, उसने आत्मा को जाना।

इसलिए यह निश्चय हुआ कि जो विषय-वासना के अनुरागी हैं,... देखो, विषय-वासना के अनुरागी हैं,... समझ में आया? इसमें से यह निकाला। ऐसा अनुराग

जिसे विषय के प्रेम में, भोग में, राग में, विकल्प में, प्रेम और रस में पड़ा है, अनुरागी है। देखो, ज्ञानी को अनुराग नहीं, राग आता है, परन्तु उसका राग का राग नहीं। स्वभाव की रुचि छूटकर, आनन्द छोड़कर कोई वस्तु अच्छी लगती नहीं। यह तो विषय-वासना का अनुराग, वह अन्दर है न? राग के रास्ते राग, आसक्ति के रास्ते रुचि। वे अज्ञानी हैं,... कहो, समझ में आया?

और जो ज्ञानीजन हैं, वे विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं। यह तो उसमें से है। धर्मी जीव विषय से विरक्त ही है। समझ में आया? यह तो सवेरे शब्द नहीं आया? ... शब्द पड़ा था न। विषय-वासना ... उसमें से विरक्त निकाला है टीकाकार ने। विषय वासना होने पर भी विरक्त है। आरम्भ होने पर भी अति विरक्त है, ऐसा निकाला है। भाई! वह गाथा नहीं स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में? सदा विषय आरम्भ में और विषयों से आरम्भ... अति का अर्थ ऐसा किया है टीका में। ऐसा होने पर भी अति विरक्त है। ... विरक्त है, ऐसा कहा, देखा! ... समझ में आया? उसमें ऐसा कहा, 'इन्द्रियाणां...' ऐसी ही व्याख्या की है। यह अति विरक्त है। यह विषय 'गतोपि विरक्त'। 'गतोपि विरक्त' (अर्थात्) विषय में गया होने पर भी विरक्त, आरम्भ में वर्तता होने पर भी विरक्त। यह कैसी बात! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर दृष्टान्त दिये हैं।

ज्ञानीजन हैं, वे विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं। यह वह विरक्त शब्द आया न, तो याद आ गया। सम्यग्दृष्टि जीव तीन कषाय के विषय में वर्तता होने पर भी और सब आरम्भ के भाव में वह ... अन्तर वर्तता होने पर भी दृष्टि के आनन्द के समक्ष कोई चीज़ सुन्दर लगती नहीं, इसलिए अन्तर विरक्त है। आहाहा! समझ में आया? यह विरक्ति हुए बिना दूसरी विरक्त आवे कहाँ से? क्या कहा? समझ में आया?

आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञान के भान बिना, रागादि की आसक्ति की विरक्त दशा हुए बिना विरति कहाँ से आवे? दृष्टि में विषय और कषाय की विरक्ति बिना आगे बढ़कर उसके अभाव की विरति कहाँ से आवे? समझ में आया? सदा विरक्त, लो! यहाँ सदा

आया, हों! यह डाला है उसमें। उसमें है न सहजानन्द एक परमात्मा। ... सदा उसमें एक है न, ऐसे ऐसा सदा अज्ञानी... वह सदा विकाररहित यहाँ है, वह (अज्ञानी) विकारसहित है। लो! विकाररहित सदा ही है। समझ में आया? बात का कौनसा रूप है, यह समझने में न आवे, तब तक सब थोथा-थोथा लगे इसे। कि यह क्या है इसमें? वह विरक्त, जो आसक्ति से विरक्त हो, उसका ज्ञान ही कहाँ है भेदज्ञान? आसक्ति विरक्त नहीं, उसे ज्ञान ही कहाँ है? उसका अर्थ क्या? आस्रव के परिणाम हैं, उनका भेदज्ञान न करे, उनसे भिन्न न पड़े, उसे ज्ञान कहाँ है उनका? ऐसी बात है इसमें। ७६ में आता है न? ... ज्ञान का फल विरति है। यह आता है न, भाई! ज्ञान का फल विरति है। ... ज्ञान हो इतनी विरति। ... अरे! सुन तो! बाहर खोजने जायेगा या अन्दर? इसकी खबर नहीं होती। पूरे तत्त्व के आनन्द की बर्फी की खबर नहीं होती और बाकी सब खबर सब। ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो और... समझ में आया? ... भगवान् आत्मा विकल्प और पर के लक्ष्य की रुचि छोड़कर, पूर्णानन्द प्रभु की रुचि में स्थिर होना। बस, उसे कोई दूसरी चीज़ सुन्दर लगती नहीं। वह यहाँ तात्पर्य कहने का है। कहो, समझ में आया? ७७ हुई। ७८ में अब दृष्टान्त देते हैं, हों!

★ ★ ★

गाथा - ७८

‘अथ तमेवार्थं दृष्टान्तेन समर्थयति-’ वह की वह बात को दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं।

२०५) अप्या मिल्लिवि णाणमउ चित्ति ण लग्गइ अण्णु।

मरगउ जें परियाणियउ तहुँ कच्चें कउ गण्णु॥७८॥

जिसे मरकत मणि रत्न मिला, उसे काँच के टुकड़े की क्या कीमत? समझ में आया? आहाहा! ... हो या दूसरी हो? ... उसे क्या कहते हैं? जिसमें अनाकुल आनन्द का सागर भगवान् वह जहाँ रुचा, उसकी क्या उपमा? वह तो बाह्य... के जगत को मरकत मणि की, बहुत महिमा है न? महिमा-महिमा। उस महिमा से बात करते हैं। ...

आता है न लोगस्स में नहीं आता ? 'चंदेसु निम्मलयरा सागरवर गंभीरा।' यह सब उपमा है। वहाँ कहाँ अन्दर लागू पड़ता है यह ? यह आता है, हों, उसमें भी आता है। भगवान सिद्ध कैसे हैं ? भाई ! 'चंदेसु निम्मलयरा' चन्द्र से भी निर्मलतर। चन्द्र तो जड़ है, उसकी किरणें जड़ हैं, उनसे निर्मल दूसरी... बापू ! उसकी उपमा दी, भाई ! उसकी किरणें शान्त स्थिर... स्थिर... स्थिर... निर्मल। उसी प्रकार भगवान आत्मा शान्त स्थिर शुद्ध भगवान निर्मल। 'आईय्येसु अहियं पयासयरा।' आदि अर्थात् सूर्य, सूर्य की यह प्रकाश का आदि करनेवाला ऐसा सूर्य... अधिक प्रकाश करनेवाला ऐसे सिद्ध भगवान। यह ... चन्द्र करे प्रकाश, इससे अधिक प्रकाश करते होंगे सिद्ध भगवान ? उसे खबर भी न हो अर्थ की। पहाड़ा हाँककर पूर्ण कर सामायिक। णमो... अरिहंताणं... जाओ। मिच्छामि दुक्कडम... थी कब तो दोष लगे ? भीखाभाई ! यह कहते हैं यहाँ तो मरकत मणि की उपमा देकर सिद्धान्त (यह कहते हैं)।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक ०९-०२-१९६६

गाथा - ७८ से ७९, प्रवचन - १२३

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की ७८ वीं गाथा।

२०५) अप्पा मिल्लिवि णाणमउ चित्ति ण लग्गइ अण्णु।

मरगउ जें परियाणियउ तहुँ कच्चें कउ गण्णु॥७८॥

‘ज्ञानमयं आत्मानं’ यह आत्मा ज्ञानमय, अकेला चैतन्यमय है। ऐसा कहते हुए टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है कि ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान नहीं, परन्तु केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी आत्मा... है। कोई और आत्मा को अकेला ज्ञान-ज्ञान करे और उसे आत्मा जाने (-माने) तो वह आत्मा का ऐसा स्वरूप नहीं। आत्मा ज्ञान आदि केवलज्ञान, केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसे केवल दर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य—ऐसे अनन्त गुण आत्मा में हैं। देखो, यहाँ अस्ति स्थापित करते हैं। समझ में आया? आत्मा को अस्तित्वरूप से सिद्ध करते हैं। पश्चात् उसे रागरहित, ऐसी जिसने परीक्षा करके ज्ञान किया है। समझ में आया? केवलज्ञान आदि अनन्त गुणमय वापस, अनन्त गुण ऐसा। एक, दो, चार गुण, ऐसा नहीं। यह आत्मा एक आत्मा एक, हों! अपना एक। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द — ऐसे अनन्त संख्या से गुण हैं। समझ में आया?

ऐसे अनन्त गुणमयी आत्मा को छोड़कर... अर्थात् कि जिसने आत्मा को जाना है ऐसा। अन्तर में परीक्षा करके जाना है। अन्य अज्ञानी आत्मा को कहते हैं, उसके अतिरिक्त सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा है आत्मा... समझ में आया? ऐसा जो आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक-एक आत्मा अनन्त ज्ञानादि गुण से सहित देखा, ऐसा जिसने आत्मा अपने में अनन्त ज्ञान गुणसहित अन्तर निश्चय परीक्षा की और अनुभव दृष्टि की है, उसने आत्मा को जाना है। समझ में आया? इसका अर्थ हुआ कि उसे छोड़कर दूसरी वस्तु ज्ञानियों के मन में नहीं रुचती। अर्थात् उसमें यह न्याय दिया कि भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद गुण से सम्पन्न... है, उसकी जिसे अन्तर रुचि हुई अर्थात् पर्याय

बदल गयी। श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आदि हो गये। पर्याय से निश्चय किया न आत्मा का? समझ में आया? अनन्त गुणमय आत्मा, उसका जिसने अन्तर निर्णय अनुभव में किया। वह निर्णय, अनुभव, वह पर्याय है; गुण हैं, वे ध्रुव हैं, परन्तु अनन्त हैं। वस्तु है, वह अनन्त गुण का एकरूप है। लो, तीनों आ गये। समझ में आया?

जिसने अनन्त ज्ञानमय आत्मा, अनन्त गुणमय एक समय में, हों! अनन्त काल रहेगा, ऐसा नहीं। वर्तमान में जिसमें अनन्त गुण हैं। बेहद केवलज्ञान, बेहद आनन्द, बेहद शान्ति अर्थात् चारित्र, बेहद वीर्य, बेहद स्वच्छता, प्रभुता, विभूता, कर्ता, कर्म, करण आदि। एक ही समय में ऐसे अनन्त गुणोंमय भगवान। ऐसा कहा न, 'ज्ञानमय' अर्थात् अभेद कहा। समझ में आया? ऐसे आत्मा को छोड़कर। ऐसा आत्मा जिसने अन्तर में जाना है सम्यग्ज्ञान में परीक्षा करके। परीक्षा तो रत्न में है, परन्तु यहाँ रखा है। ... यहाँ अर्थ नहीं किया, परन्तु वह चाहिए। समझ में आया? सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे आत्मा कहते हैं, उनकी अपेक्षा सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा जिसने अन्तर में परीक्षा करके (जाना है)। यहाँ तो सर्वज्ञ पहले रखा है, हों! धर्म के ... पहले सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ के बिना जो कोई बात करे, उसकी एक भी बात सच्ची होती नहीं। समझ में आया? परमेश्वर जिसे एक समय में सर्वज्ञपना... और तब ही वस्तु पूरी होती है। वस्तु और वस्तु के अनन्त गुण, उसकी पर्याय की परिपूर्णता सर्वज्ञ हो, तब होती है। तब वह वास्तव में पूरा आत्मा होता है। समझ में आया? ऐसे पूरे आत्मा से ज्ञान में अनन्त आत्मायें और छह द्रव्य देखे। उसमें भगवान ने देखा ऐसा अनन्त... क्योंकि बेहद की दशा जिसे प्राप्त हो, उसने जो देखा, ऐसा ही यह आत्मा है। ऐसा जो स्वयं परीक्षा करके ऐसे केवलज्ञानमय आत्मा को जानता है। राग-विकल्प से रहित, विकल्प से रहित, विकल्प से रहित, परन्तु अनन्त गुणों से सहित। समझ में आया? अकेला विकल्प-विकल्प नहीं, विकल्प नहीं—ऐसा नहीं। यह तो नास्ति हो गयी, इसलिए यहाँ से अस्ति से पहले शुरु किया है। बस विकल्प... वह तो नास्ति हुई। इसलिए आचार्य ने ऐसा कहा, वह वस्तु ही खोटी है, ऐसी वस्तु है नहीं।

ज्ञानमय आत्मा स्वयं वस्तु को... करके कहते हैं, ऐसा उसे अन्तर में भान हुआ, उसे छोड़कर दूसरी वस्तु ज्ञानियों को नहीं रुचती। 'मनिस ण लग्गइ' हों! वह मन में

नहीं लगती अर्थात् नहीं रुचती, अर्थात् नहीं प्रतिभाति, ऐसा यहाँ तो कहा वापस अर्थ में। उसके जैसी चीज़ दूसरी उन्हें लगती नहीं। समझ में आया? आहाहा! दूसरी वस्तु ज्ञानियों के मन में नहीं रुचती। उन्हें विषय की वासना वृत्ति आती है, रुचती नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा को सम्यग्दर्शन में जाना, इसलिए कहीं अब आत्मा को छोड़कर—उसे रखकर अन्य दूसरे को लक्ष्य में लेकर रुचि हो, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? नहीं रुचती... ‘लगति’ का अर्थ यह किया न? समझ में आया? ‘चिति मनसि ण लगगइ न लगति न रोचते न प्रतिभाति।’ ‘न प्रतिभाति।’ अर्थात् उसके जैसी दूसरी लगती नहीं और इसलिए उसमें प्रेम होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ... पर्याय में होता है वह। यह वस्तु ऐसी है, यह वस्तु ऐसी दूसरी रागादि नहीं। समझ में आया?

उसका दृष्टान्त यह है कि जिसने मरकत मणि (रत्न) (परीक्षा करके) जान लिया,... परीक्षा शब्द संस्कृत में है। ‘तहुँ रत्नपरीक्षापरिज्ञानसहितस्य’ ऐसा। जिसने रत्न की परीक्षा (की है कि) यह रत्न है। देखो, यहाँ दो बातें कीं, काँच के टुकड़े आदि दूसरी चीज़ें वे हैं चीज़ें दूसरी अवश्य, परन्तु यह मणिरत्न ऐसे मरकत कहा। क्या कहा? मरकत। मकरत क्या होता होगा? कोई झबेरी नहीं? अपने को क्या खबर पड़े? मरकत ऐसा मणि विशेष होता होगा, रत्न बहुत ऊँचा।

मुमुक्षु : लाल माणेक।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाल माणेक। हाँ, ठीक। यह लाल माणेक होता है वह यह। अपने यह रखा है वह। लाल माणेक। यह झबेरी है न। लाल माणेक, बात सच्ची। लाल माणेक ऊँचा (कीमती) होता है न।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे भाई कहते थे न हमारे वीरजीभाई कहते थे। एक बार नींबू में से माणेक निकला था। वहाँ आगे गये थे न। नींबू, नींबू है न यह? उसमें से माणेक हुआ। मुझे ऐसा याद है कि लगभग बीस हजार का माणेक, ऐसा कहते थे। बीस हजार का एक माणेक। यह नींबू का बीज हों। नींबू जो था, उसे ऐसे खोतने पर उसके

बीज के बदले माणेक पका हुआ। और शास्त्र में पाठ है, वह तो यह प्रवचनसार में। प्रवचनसार में पाठ है शास्त्र में। नींबू न बीज। जो बीज न पककर वहाँ माणेक पके। क्या है ? प्रसन्न है ? धूल में भी नहीं। यह तो दृष्टान्त समझाने के लिये है। वे वीरजीभाई कहते थे। वकालत में गये थे कहीं कलकत्ता गये थे। वहाँ गये थे तो कहे बीस हजार का माणेक का सुना है। वह नींबू में से निकला हुआ और शास्त्र में पाठ है कि नींबू में ऐसे माणेक पकते हैं। वह माणेक एकदम लाल जैसा अन्दर कीमती। देखो न अपने उसमें नहीं था ? और उसमें है या नहीं ? यह ॐ है ॐ, देखो ! ॐ माणेक है। ॐ है न माणेक है। देखो ॐ। अभिनन्दन ग्रन्थ में भी वह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' शब्द पड़ा है, वह सब माणेक का पड़ा है। नहीं ? नीचे।

जिसने परीक्षा करके रत्नमणि-माणेक को देखा, देखा, जान लिया, उसको काँच से क्या प्रयोजन है ? पाठ में इतना है, फिर अर्थकार कहेंगे काँच का टुकड़ा। समझ में आया ? कहो, जिसने मरकतमणि की परीक्षा करके लिया अथवा जाना, उसे काँच के टुकड़े वह क्या है ? समझ में आया ? उसे काँच की कुछ कीमत नहीं। अर्थात् क्या कहा ? वह ऊपर का दृष्टान्त दिया। वह ७७ में कहा था उसका। समझ में आया ? क्या कहा ? **कभी विषय वासना में नहीं रमता।** वहाँ ऐसा कहा था न ? उसके साथ यह दृष्टान्त है। धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में अपना आत्मा अनन्त गुणमय जिसने अन्तर में जाना, विकल्परहित जाना, शरीर, कर्मरहित वस्तु सब, हों ! उनसे रहित जाना और परिज्ञान जहाँ हुआ, कहते हैं कि उसे विषय भोग की रुचि होती नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। मणिरत्न की परीक्षावन्त को मणिरत्न प्राप्त हुआ मरकत, उसे काँच के टुकड़े का क्या काम है ? आहाहा !

इसी प्रकार जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है आत्मा तो। एक गुण नहीं, ऐसे अनन्त। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य है। ऐसी जिसने अन्तर में प्रतीति विकल्परहित भान करके, परीक्षा करके, निर्णय करके किया। उसे अब विकल्प और भोग की वासना—काँच के टुकड़े का उसे क्या प्रयोजन ? समझ में आया ? आहाहा ! वह छह खण्ड के राज हों न तो उसे जहर जैसे, अन्दर में राग उठे, जहर जैसा लगता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? (अज्ञानी) बाथ

भरता है ऐसे मानो यह पैसा, यह स्त्री, यह पुत्र, यह मकान। हजीरा अर्थात् ? मकान-मकान। लाख, दो लाख के मकान हो न। दस-दस लाख के मकान। आहाहा! यहाँ घुसने का यहाँ, यह निकलने का, यहाँ निकलने का। ऐसा हो न अन्दर सब ? डाले हों खिड़की-दरवाजे और ऐसे। यह खिड़की-दरवाजे तो कैसे वापस ! पॉलिस ऐसा करके ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे लकड़ी के ऐसा करे। अकेला दरवाजा देखकर दूसरा प्रसन्न हो जाये, यह वह कैसा बँगला होगा अन्दर !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसे बड़े हैं न वे मैसूर में देखा था न, वहाँ मैसूर में देखा था न। नहीं ? कितना ? तीन करोड़ का। तीन करोड़ का एक बँगला है मैसूर में। देखने गये तो एकदम खाली। अब हो गया दरबार... निकाल दिया दरबारों को। तीन करोड़ का खाली पड़ा था। देखने गये थे वहाँ मैसूर।

मुमुक्षु : दृष्टान्त दिया तो सिद्धान्त के लिये ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त किसलिए है ? उस तीन करोड़ के बँगले का दृष्टान्त है ? श्मशान जैसा बँगला लगे, ऐसा कहते हैं। जहाँ आत्मा का रस चढ़ा है, आत्मा के आनन्द के रस की खुमारी—सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें बँगला है, उसमें राग उत्पन्न हो, वह जहर जैसा लगता है। वह चीज़ तो ज्ञेय है। समझ में आया ? आहाहा !

वह अपने लिये ऐसा जानता है और दूसरे के लिये, बहुत पाँच, दस करोड़ का आसामी हो और बहुत सुन्दर और बहुत स्त्री और बहुत परिवार और बहुत चौड़े विषय और बहुत विस्तृत इज्जतवाला (हो), उसे वह सुखी नहीं मानता। मूलचन्दभाई ! अरे ! यह राग कितना करते हैं और कितना एकत्व है, यह तो महा जहर को पीते हैं। इसी प्रकार ज्ञानी पर के लिये भी ऐसा जानता है। समझ में आया ? अब उसे किसकी अदेखाई आवे ? उसे बहुत स्त्री और पुत्र। और कितनों को तो स्त्रियाँ बहुत होती हैं। राजा आदि को होती है न। पुत्र बड़े लोहे जैसे और पुत्रियाँ पढ़ी हुई एल.एल.बी. और बड़ी डिग्रियाँ लगायी हों। दस-दस लाख की, बीस-बीस लाख की आमदनी प्रतिदिन की हो।

अरे ! चैतन्य रत्न के आनन्द के समक्ष, निर्विकल्प भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके भान और प्रतीति के समक्ष उस सब बात में कहीं रुचि, कहीं रुचि (नहीं), मन कहीं लगता नहीं । समझ में आया ? और दुनिया के जीव को भी ऐसे संयोग में देखकर उसे ऐसा नहीं लगता कि ओहो ! इसे बहुत साधन, हों ! वह ऐसा जानता है कि यह तो जितना राग करता है, उसकी ओर का उतना वह दुःखी है । कहो, गुणवंतभाई ! यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं ? एकदम लो ! आहाहा !

भगवान आत्मा, यह आत्मा ही ऐसा है कि सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने... अनन्त तीर्थकर हुए, अनन्त होंगे, वर्तमान में विराजते हैं, वे सब आत्मा में से हुए हैं । समझ में आया ? उनकी वाणी में जो आत्मा आया, आहाहा ! वह आत्मा, उसकी जिसने अन्तर में परीक्षाएँ की है, ... परीक्षा किये बिना माना है, वह मान्यता सच्ची है ही नहीं । समझ में आया ? किसी भी चीज की कसौटी में चढ़ाकर निश्चय किया नहीं, वह निश्चय उसका सच्चा होता नहीं और वह निश्चय टिकता नहीं । समझ में आया ?

यह एक शब्द आता है, भाई ! हम सम्प्रदाय में कहते थे । यह आता है । ... वह व्याख्यान में आया है बहुत (वर्ष पहले) । (संवत् १९७३-७४-७५) जिसने तत्त्व को परीक्षा करके देखा, जाना, निर्णय किया नहीं, उसे किसी प्रकार से सन्देह टलता नहीं, किसी प्रकार से सिद्धि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की और मुक्ति की उसे सिद्धि है ही नहीं । समझ में आया ? यहाँ तुम परीक्षा करके कुछ लेते होंगे या नहीं ? दाना देखो तो ऐसे मिलाओ । यह ज्वार ऐसी है और ढींकणा ऐसा है, वस्त्र ऐसा है ।

मुमुक्षु : सब्जी लेने जाये तो भी परीक्षा करे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो ! सब्जी लेने में भी परीक्षा करे । यह छोटी है और यह सड़ी हुई है और यह ढींकणा है और यह दाग है, क्या कहलाता है ? दाग पड़ा है यह करेला में और उसमें गहरा होगा अथवा यह आता है न हरड-हरड, हरड बहुत ऊँची आती है । हरर में जरा ऊपर से जरा चोंच मारी हुई हो तो कहते रस खा लिया गया है । इसकी कीमत नहीं । दाग बिना की एक हरड इतनी छोटी हो तो उसकी बहुत कीमत होती है । अच्छी ऊँची हो । ... पकती है सम्मेदशिखर में । समझ में आया ?

उसी प्रकार भगवान आत्मा जिसमें विकल्प का खण्ड पड़ा नहीं, ऐसा भगवान अनन्त गुण का पिण्ड, जिसने अन्तर में परीक्षा करके, प्रतीति करके जाना है, उसे जगत के विषय भोग अब रुचते नहीं। यह नहीं प्रतिभाति अर्थात् कि अब भासित ही नहीं होते। अर्थात् भासते नहीं, ज्ञान तो करता है, परन्तु ऐसा है वह भासता नहीं। ऐसा यह है, ऐसा वह भासता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी का क्या काम है ? किसका काम है ? तुम यह पुस्तकें लिखकर... परीक्षा करायी होगी तुमने ? यह तो पुस्तकों में, परन्तु तुमने जो निर्णय किया था कि ऐसा हो, उसकी परीक्षा किसी से करायी थी ? समझ में आया ? भीखाभाई !

अथवा यह मेरी स्त्री है, ऐसा तुमने निर्णय किया था, वह निर्णय किसी को बताया था तुमने ? नहीं, नहीं, यह बात हो गयी हमारे, हों ! वे भाई कहते थे न अपने नरभेरामभाई थे न। वे नरभेरामभाई थे, वे थे न उनके पिता। (संवत्) १९८७ में हम गये। ऐसे बातें करे वकालत की मानो ऐसा-ऐसा। कोई कुछ सन्देह हो, ऐसी बात होती नहीं। साधारण बात तुमको ऐसी होती होगी न झवेरभाई बैठे थे। वे झवेरचन्दभाई। ... के बहनोई। ... बहनोई कुछ पूछो, नरभेरामभाई ! महाराज को पूछो। तब उन्होंने मुझे ऐसा कहा, मुझे कहते हैं पूछने का यह कहते हैं कि, वह निःसन्देह होगा। ऐसा करके उसे अपमान लगा। अरेरे ! दुनिया को भी देखो ! नरभेरामभाई ! कुछ पूछो महाराज को। वे ... गये न फिर। तब क्या तुम ऐसा मानते हो कि कोई निःसन्देह होता है ? सन्देहरहित तुम हो गये हो, ऐसा ? अरे ! नरभेरामभाई ! मैं पूछूँ तुमको एक, कहा। पूछूँ ? कहे, हाँ। तुम जब पहले दिन स्त्री से विवाह किया, उससे पहले तो परीक्षा नहीं करते थे स्त्री की, हों ! यह माँ-बाप परीक्षा कर आवे। वह पहले दिन जब वह स्त्री थी, तब तुमको शंका पड़ी थी कि यह मुझे मार डालेगी ? बहुत राजाओं की रानियों ने मार डाला है राजा को। पहले दिन में मार डाला है। कंकण बन्धन होता जहर दिया है। सुना है ? रानी ने, हों !

मुमुक्षु : रानी दे, उसकी माँ भी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : माँ भी दे। यह तो बाई-रानी दे कंकण बन्धन होता। न सुहावे

न जरा, कुछ ख्याल में आ गयी बात, रानी जहर दे, उसकी माँ जहर दे, कंकण बन्धन होते रात्रि में। समाप्त ! बने हैं न सब दृष्टान्त। कहा, ऐसी बातें तुमने साहित्य में पढ़ी हों। तुमको शंका पड़ी थी ? यह कन्या सोलह वर्ष की है, किसकी है, मुझे खबर नहीं। नाम सुना है कि उनकी पुत्री और फलाना। परन्तु वह कैसी है ? मैं तो देखने गया नहीं। माँ-बाप ने पसन्द की। उसमें शंका पड़ी थी ? उसमें शंका किसकी हो ? किसलिए ? प्रीति है। जिसका जिसे प्रेम, उसमें उसे शंका होती नहीं। रहने दो ऐसी बातें करना, कहा। ऐसा कहे, शंका बिना के तुम (हो गये हो) ?

इसी प्रकार जिसे वस्तु की परीक्षा करके आत्म धर्म निःसन्देह जाना हो, उसे उसमें सन्देह होता नहीं। समझ में आया ? उसमें शंका (होवे कि) ऐसा होगा या ऐसा होगा ? तुमको ऐसा होगा या होगा ऐसा हुआ था तब ? कहा। ८७ में कहा था, हों ! क्या कहा ? पूछते थे, यह क्या ? ऐसी वकालत काम नहीं आती। बाहर की होशियारी दूसरे को पूछने का तुमको अपमान लगा ? नरभेरामभाई वकील थे न। कहो, समझ में आया ? और यह वकील इनका पुत्र। उसी प्रकार जिसे जिसकी रुचि और जिसका भान है, शंका कैसी ? तीन काल-तीन लोक में यह वस्तु तो ऐसी ही है। समझ में आया ? इस प्रकार जिसने परीक्षा करके आत्मा को जाना है, निर्णय किया है, अर्थात् कि दृष्टि में, अनुभव में लिया है, ऐसा। उसे विषय के भोग की वासना की कुछ कीमत नहीं। भोग की, स्त्री की, पुत्र के, हीरा के, माणिक के ऐसे ढेर पड़े हों ढेर घर में अकेले हीरा और माणिक के ढेर। समझ में आया ? धूल में भी नहीं। हमारे चैतन्य के रत्न के समक्ष कोई जगत हमको खींच जाये और वृत्ति करके हमको राग करावे, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया ? और प्रतिकूल चीज़ देखकर कोई हमको खींचकर द्वेष करावे और हम खा जायें-निगल जायें, ऐसी कोई चीज़ दुनिया में है नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ :- कहते हैं, जिसने रत्न पा लिया,... बस पा लिया परीक्षा करके (प्राप्त किया), ऐसा लेना है। उसको काँच के टुकड़ों की क्या जरूरत है ? समझ में आया ? उसे अन्यमतियों ने और अन्य धर्मों ने कहे हुए तर्कों में, विकल्प में भी उसे क्या कीमत है ? और विषय-वासना की वृत्ति में भी उसे क्या भासित होता है ? समझ में आया ?

आत्मा ऐसा भासित नहीं होता। पर में ऐसा आत्मा भासित नहीं होता अर्थात् पर की रुचि और प्रेम लगता नहीं।

उसी तरह जिसका चित्त आत्मा में लग गया,... जिसका चित्त भगवान आत्मा के साथ लगा उसके दूसरे पदार्थों की वांछा नहीं रहती। लो! किसी पदार्थ की वांछा समकिती को है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अनन्त आनन्द के, ज्ञान के खजाने के समक्ष कौनसी कीमत उसे अधिकरूप से भासित हो कि जिसकी वासना उत्पन्न करके प्रेम हो? चौदह ब्रह्माण्ड में कोई आत्मा के आनन्दस्वरूप को जिसने जाना, उसे दूसरी किसी चीज़ में उसको रुचि आती नहीं। मन लगता नहीं, रुचता नहीं, ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि वह आत्मा की होड़ में आवे। समझ में आया? आहाहा! दूसरे पदार्थों की वांछा नहीं रहती। समझ में आया? निःकांक्ष स्वभावभाव, निःशंक भावस्वभाव का भान (हुआ है) कि इस ओर का निःकांक्षभाव उत्पन्न हुआ, ऐसा कहते हैं। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव जहाँ प्रतीति और ज्ञान में भासित हुआ, वह अस्तिरूप से निःशंक हुआ। उसे उसके अतिरिक्त किसी पदार्थ की वांछा नहीं, अर्थात् उनकी नास्ति है उसमें। आहाहा! समझ में आया? यह वांछा नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! चारित्रमोह का उदय (है न)? वह नहीं, कहते हैं। सुन न! देखो, यह आत्मदर्शन और आत्म सम्यग्दर्शन का माहात्म्य! समझ में आया? ७८ (गाथा) हुई।

परमात्मप्रकाश है न। अरे! जिसे परमात्मा का प्रेम हुआ, उसे जगत का कौनसा पदार्थ और वासना प्रतिभासित हो, उसके जैसी कि जिसमें उसे प्रेम हो? आहाहा! तीर्थंकर पद का समवसरण आदि भी, कहते हैं, उसे ललचा नहीं सकते, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! (देवों के) ऐसे झुण्ड आकर ऊपर से उतरें, यह इन्द्र और इन्द्राणियों के नृत्य ललचा नहीं सकते समकिती को, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो एक भूतड़ा यदि आया हो ठीक सा। ओहोहो! वह देव आया देव। क्या है? अरे! तू देवाधिदेव है न! किसकी कीमत तुझे लगी पर की? कोई पैसा देनेवाला हो ऐसा, मन्त्र, तन्त्र को समझे न, देखो न! हैरान-हैरान हो गये है न! क्या कहलाता है? वह बाबा

फकीर निकला है। साईबाबा। चल निकला है परन्तु जैन के नाम से जैन हों! नाम से जैन। क्या है? जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन कोई वाडा नहीं, जैन कोई एकपक्षी चीज़ नहीं। जैन अर्थात् एक-एक आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड भगवान, वह स्वभाव का आश्रय करके विकार को जीते, उसे जैन कहा जाता है। वह तो वस्तु का स्वभाव है। समझ में आया? ऐसा जिसे अन्तर (में) रुचा, उसे कोई दुनिया ललचा नहीं सकती। समझ में आया?

एक बार उस ध्रुव का दृष्टान्त नहीं दिया था? नाटक देखा था बहुत वर्ष पहले। भावनगर में ६८ का वर्ष होगा लगभग। संवत् १९६८, भावनगर में ध्रुव का नाटक। एक थियेटर है भावनगर में। बोरीबन्दर के ऊपर है? बोरीबन्दर तो यहाँ मुम्बई में आया। स्टेशन के पास एक था। बोरीबन्दर तो वह फिल्म-फिल्म। नहीं? बोरी बन्दर... है न? वहाँ फिल्म थी। उसने नाटक किया था ध्रुव का। बालक ऐसे रोवे। पर्दा हरा ऐसे दो टुकड़े एकदम। आधा ऐसा और आधा ऐसा, हों! लकड़ी की होती है न। यह तो नजर से देखा है न, भावनगर में। दो हरे पर्दे फटे। दो अप्सरायें उतरी थीं, वे अप्सरायें उतरी थीं। वह लकड़ी का होता है न लकड़ा ऐसा। डोरी बाँधे, डोरी ऊपर से खींचे तो उतरे पैर नीचे ऐसे डोरी पकड़कर। इन्द्र ऊपर से उतरे। उतरकर फिर उसे ललचाती है।

यह ध्रुव चैतन्य भगवान आत्मा की दृष्टि हुई, उसे दूसरी इन्द्राणियाँ ललचा सकती नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह ध्रुव का तो दृष्टान्त था। वह ध्रुव ऐसा बैठा था न। बहुत छोटी उम्र का लगभग आठ वर्ष की उम्र। उसकी नयी माता थी तो ... बाल ऐसे अद्धर लटकते और हू-ब-हू लगे लोगों को। इन्द्राणी बहुत ललचाती है। यह हमारे कोमल यह देखो, यह देखो। ऐसे यह... यह... रक्त के थक्के देखो, अँगुलियों में वह किये हुए न फिर लाल करे न अन्दर। लाली लगावे हाथ को। ऐसे-ऐसे। ओहो! स्वयं ऐसा ऊँचा देखता नहीं। अरे! परन्तु ध्रुव! ऊपर तो देख, ऊपर तो देख। बहुत सुनकर फिर (ध्रुव) कहता है, माता! क्या कहूँ तेरे शरीर की सुन्दरता के अवयवों की रचना! कदाचित् अवतार बाकी होगा न, माता! तेरे गर्भ में अवतरित होऊँगा, हों! दूसरी बात हराम स्वप्न में है। ऐसा बोला था लो अन्दर। समझे? वह तो साधारण मनुष्य नाटक में होता था।

हे माँ! तेरे सुन्दर अवयवों के एक-एक की तू महिमा करती है, वह मैंने सुना और मुझे सुन्दर लगे, परन्तु इस बात में इतनी बात है कि मेरे शरीर से तेरे शरीर का स्पर्श हो, यह बात तो तीन काल में स्वप्न में नहीं, परन्तु एकाध अवतार बाकी हो तो तेरे गर्भ में आकर फिर पूरा करूँगा, बाकी दूसरा है नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा के अनाकुल आनन्द के समक्ष इन्द्राणियाँ आकर कहे कि परन्तु तुम इस जगह जानेवाले हो न, इस जगह हमारे आओ यहाँ। तुम आठवें देवलोक में जानेवाले हो अथवा पाँचवें देवलोक में ब्रह्मलोक में स्त्रीरहित जीव में जानेवाले हो, ऐसा हमको लगता है, परन्तु हमारे साथ जरा सकाम आचरण (स्वार्थ भावना से निमन्त्रण) करो न तो दूसरे देवलोक में आओ। ऐई! समझ में आया?

आया था न? रामचन्द्रजी को हुआ था न, रामचन्द्रजी ध्यान में थे न जब! सीताजी ... उस समय और ऐसा विकल्प आ गया देखो न अस्थिरता का। सवेरे नहीं कहते थे तुम? बारहवें देवलोक में अहमिन्द्र है अथवा इन्द्र आदि इन्द्र। अब ऐसे ध्यान में थे। अन्तर्मुहूर्त में तो रामचन्द्रजी को मोक्ष जाना है, डिगाने आये। अरे! रामचन्द्रजी! जरा-सी वृत्ति बदलो। थोड़ा सा हमारे ऊपर प्रेम करो। हम भोग लेते हैं, चलो स्वर्ग में। आहाहा! वृत्ति अर्थात् अस्थिरता की, हों! चारित्र्यदोष की वृत्ति है, एकत्वबुद्धि नहीं। आहाहा! देखो न, चारित्र्य का दोष क्या करता है! अन्तर में भेद है, हों! अन्दर में एकत्व नहीं, मिठास नहीं। यह वह कहीं बात! रामचन्द्रजी सामने देखते नहीं। क्षपकश्रेणी चढ़कर, केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं।

रामस्वरूप भगवान रामरूप से होकर मुक्ति को प्राप्त करता है। आत्माराम में आत्मा रमणता पूरी हो गयी। सामने देखते नहीं। जिसके लिये कोलाहल किया। मेरी सीता। ऐसे सीता खो गयी तो वृक्ष को पूछे, मेरी सीता? ऐई! पर्वत कहीं आवाज? कहीं सीता की आवाज तो सुना मुझे। अरे! उनके नुपुर की आवाज, उसकी अलग जाति की ध्वनि। उनकी गति को देखकर उनकी चाल हथिनी जैसी, उनके हथिनी चाल में उनके नुपुर जो पहने हुए, उनकी गति की आवाज अलग प्रकार की थी। वह यहाँ सामने देखते नहीं अब। समझ में आया? आहाहा! सीताजी! अब आओ वापस। वह (अग्नि) परीक्षा करके कहा न? आओ वापस। मैं तुमको पटरानी बनाऊँ। अरे रामचन्द्रजी! अब

हृद हुई संसार की। हम सती, हम धर्मात्मा, ऐसा तुम्हारे ज्ञान में, तुम्हारी प्रतीति में था, तथापि राज के राग में पुरुषोत्तम पुरुष को ऐसा कराया? हृद संसार की। अब नहीं। समझ में आया? अब यहाँ सीताजी वापस आती हैं, तब रामचन्द्रजी सन्मुख देखते नहीं। देखो न, कल्पना से रहित आत्मा के भान के बाद भी ऐसी कल्पना होती है, तथापि उसकी भावना नहीं। आहाहा! यह वह मैल निकालने... धर्मचन्दजी! लगता नहीं, चित्त कहीं लगता नहीं, कहीं चित्त चिपटता नहीं। इसका नाम आत्मदर्शन और आत्मज्ञान कहा जाता है। ७९ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ७९

आगे कर्म-फल को भोगता हुआ जो राग-द्वेष करता है, वह कर्मों को बाँधता है....

२०६) भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु मोहइँ जो जि करेइ।

भाउ असुंदरु सुंदरु वि सो पर कम्मु जणोइ ॥७९॥

भाषा सादी है। बहुत ऐसी संस्कृत नहीं, यह तो दूसरे प्रकार की प्राकृत है। जो कोई भगवान् आत्मा, जो कोई जीव होकर जीव जीता है। जीव कहा न? आहाहा! भगवान् आत्मा चैतन्य सम्यक् होकर, वह जीव होकर जी रहा है, वह जीव। 'निजकर्मफलं' भाषा वापस कैसी है? अपने कर्मों के फल को... अर्थात् पूर्व में जो कर्म बाँधे थे न, शुभाशुभभाव उनके थे, ऐसा वापस सिद्ध करना है। पूर्व में इसने शुभाशुभभाव अज्ञानरूप से किये हुए, उन शुभाशुभ परिणाम का बाँधा हुआ कर्म। उस कर्म के फल काल में भोगता हुआ भी... वर्तमान में बाह्य दृष्टि से उन्हें भोगता है, ऐसा कहने पर भी। समझ में आया?

मोह से भले और बुरे परिणामों को करता है, वह केवल कर्म को उपजाता (बाँधता) है। ज्ञानी यह भले-बुरे परिणाम करता नहीं, ऐसा निकालना है इसमें से। समझ में आया? भगवान् आत्मा शुद्ध अनाकुल आनन्द के प्रेम के अतिरिक्त जो शुभाशुभ

परिणाम किये हुए, उनसे बँधे हुए कर्म, उनके फल में अज्ञानी (अर्थात्) शुद्ध-स्वरूप की प्रीति और रुचि से भ्रष्ट हुए, अपना आनन्द, शान्तस्वभाव, उसकी प्रेम की दृष्टि से भ्रष्ट हुए, पूर्व में शुभाशुभभाव से बाँधे हुए कर्म, उनके फल में प्रसन्न होकर उन्हें भोगता है। समझ में आया ? उस अज्ञानी को नये कर्म बँधते हैं। समझ में आया ? उसके सामने ज्ञानी को बँधते नहीं। उसमें आया था, ७८ में आया था। समझ में आया ?

भावार्थ :- वीतराग परम आह्लादरूप शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत... देखो न, कितनी बात करते हैं ! आत्मा-भगवान आत्मा जो शुद्धात्मा वीतराग परम आनन्दरूपी शुद्धात्मा। रागरहित भगवान आत्मा, परम सुखरूप। आह्लाद की व्याख्या ही की। आह्लाद अर्थात् सुख। ऐसा शुद्धात्मा। यह शुद्धात्मा की व्याख्या, उस आत्मा की यह व्याख्या। भगवान आत्मा, वह पुण्य-पाप के संकल्प-विकल्प से रहित अर्थात् वीतराग, परम आनन्दरूप ऐसा आत्मा। वह शुद्धात्मा, वह वस्तु कही वस्तु। उसकी अनुभूति, वह पर्याय कही। उसका अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि। ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव, वह अनुभूति, वह पर्याय है। उससे विपरीत। अनुभूति प्रतीति हुई थी न विपरीत, ऐसा नहीं। यहाँ तो समझाना है। ऐसा भगवान आत्मा, उसका तो अनुभव-अनुभूति होना, वही उसका स्वरूप है, ऐसा। समझ में आया ?

उनसे विपरीत जो अशुद्ध रागादिक विभाव... लो ! फिर चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। वह अशुद्ध रागादि परिणति विभाव। भगवान आत्मा शुद्ध आत्मा उसे कहते हैं कि जो परम आह्लाद वीतराग आनन्दरूप, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को अनुसरकर होती अनुभूति, उसे छोड़कर निमित्त को अनुसरकर होता अशुद्ध राग, अशुद्ध में दो—शुभ और अशुभ; दया, दान, व्रत, भक्ति, तप यह शुभ दया, दान, चिन्तवन विकल्प शुभ और अशुभ हिंसा, झूठ आदि, वह सब अशुभराग है। शुद्ध भगवान आत्मा की परिणति से विपरीत परिणति-पर्याय। आहाहा ! कितना सिद्ध करते हैं ! परिणति-पर्याय ऐसा वापस। पर्याय-पर्याय अन्यत्र होती नहीं। पर्याय शब्द भी नहीं आता बातें करे उसमें कहीं। समझ में आया ?

अन्यमति आत्मा की बात करे, बड़ी-बड़ी करे, परन्तु उसमें कहीं पर्याय या

द्रव्य, यह बात आती नहीं, परन्तु उसे वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो प्रत्येक गाथा में द्रव्य और पर्याय, द्रव्य और पर्याय। आहाहा ! उससे विपरीत। वापस अशुद्ध रागादि होते हैं। अनादि से वस्तुस्वरूप शुद्ध और आत्मा आनन्दमूर्ति होने पर भी अशुद्ध रागादि परिणति होती है। समझ में आया ? वह अशुद्ध रागादि कर्म से हुए, ऐसा नहीं लिया सीधे। ऐसा बाद में कहा, उनसे उपार्जन किये हुए शुभाशुभ कर्म, ऐसा लिया है। समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी उत्पन्न नहीं होता। वह कर्म तो निमित्त है। कर्म कौन उत्पन्न करावे ? समझ में आया ? तत्त्व की बात बहुत बदल गयी न, इसलिए यह... छोटाभाई ने सवेरे याद कराया था न ? क्या कहलाता है तुम्हारा ? अन्तिम लिखा बेचारे ने। कोई अभी आगम प्रमाण श्रद्धा-ज्ञान में कोई दिखता नहीं। दिगम्बर में दिखता नहीं, ऐसा कहा, अन्यत्र तो है ही कहाँ ? समझ में आया ? यह अपने आ गया है पहले, हों ! यह बात तो वाँचन हो गयी है, पूरा वाँचन हो गया है। परन्तु आज और भाई ने सवेरे याद किया छोटाभाई ने, वह अनन्तानुबन्धी का। कल-कल याद किया, नहीं ? कल याद किया। कहते हैं, साक्षात् गृहीत मिथ्यात्व पोषने से... अभी ऐसा दिखता है। 'जिनमत में वक्ता हुए, अधिष्ठाता हुए। जिनसूत्र के अर्थ अन्यथा करने लगे। इससे भोले जीव उनके बताये अनुसार प्रवृत्ति जिसमें प्रवर्तते हैं। नहीं है सत्य सूत्र का ज्ञान जिनको, इससे मौन शास्त्र का ज्ञान, उनके अगोचर हुआ, उससे मूढ़ता को प्राप्त हुए। हीन शक्ति के हुए सत्य वक्ता, सच्चे जिनोक्त सूत्र के अर्थ ग्रहण करनेवाला कोई रहा नहीं।' देखो यह तब कहते हैं। 'कोई रहा नहीं। इसलिए सत् जिनमत का तो अभाव हुआ।' उस समय, हों ! कितना समय हुआ होगा ? २५० (वर्ष)। दीपचन्दजी, यह सब है न। 'सर्व धर्म के पराङ्मुख हुए, तब कोई-कोई गृहस्थ सुबुद्धि संस्कृत प्राकृत के वेत्ता हुए, उन्होंने जिनसूत्र को अवगाहा, तब ऐसा प्रतिभासित हुआ कि सूत्र के अनुसार एक भी श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं, प्रवृत्ति नहीं करते हैं। आचरण की प्रवृत्ति नहीं करते हैं।' ऐसी पुकार है। तब, हों ! यह २५० वर्ष पहले। यह तो खुल्ला रखा उन्होंने।

'बहुत कहा गया मिथ्या श्रद्धान आचरण की प्रवृत्ति को गाढ़ता को प्राप्त हुए,

मुख कहे माने नहीं।' मुख से कहें तो मानते नहीं। चलो बताओ। एकान्त है तुम्हारा। 'तब जीवन का कल्याण होता जानकर करुणाबुद्धि से देशभाषा में शास्त्र रचना की तब ... सुबुद्धियों को सच्चा बोध हुआ।' समझ में आया? 'अब अवसर में ज्ञान की शक्ति के... जो भाषा शास्त्र के भी ज्ञान कर सके नहीं। इसलिए उन महन्त शास्त्र का प्रयोजन वस्तु निकाल-निकाल कर छोटे-छोटे प्रसंग करके....' उसमें निकाला है। इसलिए 'ऐसे अवसर में सम्यग्ज्ञान के कारण भाषा शास्त्र है।' संस्कृत, व्याकरण समझे नहीं। यह भाषाशास्त्र इसलिए बनाया है। देखो, उन्हें कितनी लगी है उस समय! चिल्लाहट मचा जाये कि अरे! तब कोई नहीं। कोई नहीं, कोई नहीं था। आहाहा! यह अभी बनाता हूँ, उसके सार-सार छोटे-छोटे टुकड़े उसमें से निकालकर सार ... ऐसा कहते हैं। थोड़ा-थोड़ा सार निकालकर बनाता हूँ। बहुत हो गया, बहुत हो गया। दिगम्बर जैनधर्म में, हों! अन्य में तो है ही कहाँ कहीं बात? समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग निर्मलानन्द प्रभु, उसके कथन, उसकी पद्धति, उसके गुरु, उसके शास्त्र, उसके तत्त्व, जो तीन काल में दूसरा कोई जाने नहीं, कोई कह सके नहीं।

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा ऐसा पदार्थ जिसे रुचा, उसे पुण्य-पाप रुचते नहीं। और उसके बदले पुण्य के कारण से धर्म होता है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये। पुण्य को विष्टा कहें तो चिल्लाहट मचाये। वह तो आया था। नहीं आया था? वेश्या का प्यार। वेश्या का प्यार अपने आया था न, सवेरे आया था। वेश्या के प्यार की उपमा दी! कि भाई! इस कारण से दी है, सुन न! वापस कोई भड़क न जाये। गणिका का प्यार। गणिका अर्थात् नगरवधु। इसलिए सब व्यभिचारी जैसे मनुष्य सब आवे। उसकी उपमा दी। समझ में आया? उसका प्यार जैसे नहीं, उसी प्रकार धर्मी को आत्मा के प्रेम के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्रेम नहीं। ऐसा दृष्टान्त कहा। समझाने के लिये दृष्टान्त कहा, वहाँ भड़क जाये, इसलिए फिर स्पष्टीकरण किया। समझ में आया?

आत्मा ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा शुद्ध कहा, तब ऐसा हुआ कि उसकी पर्याय में अशुद्धता तो अनादि की है। वह अशुद्ध रागादि, वह अशुद्ध रागादि अनादि काल में अकेले पाप का ही अशुद्ध किया है इसने? नौवें ग्रैवेयक के स्वर्ग में अनन्त बार गया। कितने दया, दान, व्रत, भक्ति कितने किये होंगे भाव में इसने। ऐसे शुभ परिणाम भी ऐसे

अभी तो ऐसे शुभ परिणाम होते नहीं, जिनसे नौवें ग्रैवेयक जाया जाये। ऐसे शुभाशुभ परिणाम, उन्हें यहाँ अशुद्ध परिणाम कहा है। उस अशुद्ध से तो कर्म उपार्जन होता है। उनसे कहीं धर्म हो, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? आहाहा!

अशुद्ध रागादिक विभाव उनसे उपार्जन किये... उनसे उपार्जन किये हुए। कर्म जैसा है उदय आया, उसी प्रमाण विकार हुआ और तत्प्रमाण उपार्जित किये, ऐसा नहीं यहाँ। समझ में आया? **शुभ-अशुभ कर्म, उनके फल को भोगता हुआ जो अज्ञानी जीव मोह के उदय से...** अर्थात् मिथ्यात्वभाव से। मोह शब्द पड़ा है न मूल में? समझ में आया? **‘मोहड़’** मोह है न? **‘निर्मोहशुद्धात्मप्रतिकूलमोहोदयेन’** वापस ऐसा लिया न? समझ में आया? **‘निर्मोह’**—ऐसा, **‘निर्मोहशुद्धात्मप्रतिकूलमोहोदयेन’** ऐसा। उससे प्रतिकूल है, हों! अर्थात् कर्म नहीं, वह विकार है। समझ में आया? **‘निजोपार्जितं’** ऐसा है न? **‘निजोपार्जितं’** उससे उत्पन्न किए हुए। पाठ में ऐसा है न? **‘निजोपार्जितं’** स्वयं उपार्जित किये हुए अर्थात् कि उससे उपार्जित किए हुए, ऐसा हुआ। परन्तु स्वयं ने उपार्जन किये हैं, ऐसा।

भगवान् आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो पर्याय में प्रगट किया, ऐसा ही भगवन द्रव्यस्वरूप से ऐसा है। उसकी अनुभूति की पर्याय से विपरीत ऐसी शुभाशुभ परिणति, वह अशुद्ध पर्याय। वह निज से की हुई और निज से उपार्जित। क्या? शुभाशुभ कर्मफल। समझ में आया? **उनके फल को भोगता...** ज्ञानी उनके फल को भोगता नहीं, ऐसा पहले कहा था। अज्ञानी को आनन्द के फल की खबर नहीं, इसलिए वह कर्म के फल को भोगता हुआ अज्ञानी, **मोह के उदय से हर्ष-विषाद भाव करता है...** समझ में आया? हाँ, बहुत ठीक है। प्रेम नहीं। विषयभोग ... इन्द्र आदि, देव, वैभव, विभूति, शरीर, दूसरी सब सामग्री। मूढ़ जीव शुद्धात्मस्वरूप से भ्रष्ट हुए, अपने आनन्दस्वभाव को भूलकर इस सामग्री में ठीक है, ऐसा अज्ञानी हर्ष को करता है। अपने शुद्धस्वभाव को भूलकर प्रतिकूल सामग्री **‘यह ठीक नहीं... यह ठीक नहीं... यह ठीक नहीं’** ऐसे द्वेष को करता है। समझ में आया? हर्ष-विषाद। विषाद अर्थात् खेद। शरीर में रोग हो, निर्धनता हो, **‘यह ठीक नहीं’**। परन्तु क्या ठीक नहीं? धूल वह तो जगत की चीज़ है। उसमें ठीक नहीं (—ऐसा) तुझे आया कहाँ से उसमें? समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक अर्थात् अच्छा माना, ऐसा दूसरा माना है। है कहाँ अच्छा वहाँ? माना, ऐसा भाव। समझ में आया? झगड़ालु स्त्री और झगड़ालु पुत्र और सब मकान भी ऐसे और पैसे ऐसी और सब स्थिति ऐसी हो, मूढ़ जीव ऐसा माने उंहें... यह नहीं। विषाद खेद... खेद... खेद... मूढ़ है, कहते हैं। भगवान आत्मा को भूलकर खेद करता है? अज्ञानी को नया कर्म बँधता है। सब आज्ञाकारी स्त्री और आज्ञाकारी पुत्र और आज्ञाकारी स्त्री, बहू। सब ऐसा। क्या कहते हैं तुम्हारी मीठी भाषा में? आज्ञाकारी परिवार। आज्ञाकारी कुटुम्ब कहते हैं न? सब ऐसा बराबर देखे। पैसे सब। मूढ़ है? भगवान आत्मा को ठीक माने बिना यह ठीक कहाँ से आया तुझे?

मुमुक्षु : दिन फिरे (अच्छे दिन आवे) तब ठीक हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका दिन फिरे कहलाये? दिन तो आत्मा का स्वकाल फिरे उसे दिन फिरना कहा जाता है। अशुद्ध परिणति में गया वह शुद्ध परिणति में आवे, उसका दिन फिरना कहा जाता है। बाकी दिन कहाँ फिरे? पानी फेर दिया गया है इसका। यह कठिन बात है भाई! समझ में आया?

वह विषाद भाव करता है, वह नये कर्मों का बन्ध करता है। लो! ऐसा भाव करे, वह नये कर्म को बाँधे, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया? वही नये कर्मों का बन्ध करता है। राग-द्वेष अज्ञानी करता है, वह अज्ञानी नये चिकने कर्म बाँधता है, ज्ञानी को ऐसा बन्धन है नहीं। यह बतलाने के लिये सामने यह बात की है, हों! ऐसी की ऐसी सामग्री, ऐसी की ऐसी प्रतिकूलता में, ऐसी की ऐसी अनुकूलता में पड़ा हो ज्ञानी। उसे पर में ठीक-अठीक कुछ नहीं लगता। आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा के भान के समक्ष कोई ठीक-अठीक दूसरा नहीं। इसलिए उसे वास्तव में अशुद्ध भाव होते नहीं। इसलिए उसे वास्तव में बन्धन है नहीं और अज्ञानी को बन्धन है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक १०-०२-१९६६

गाथा - ८० - ८१, प्रवचन - १२४

गाथा - ८०

८० गाथा ।

२०७) भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु जो तहिँ राउ ण जाइ ।

सो णवि बंधइ कम्मु पुणु संचिउ जेण विलइ ॥ ८० ॥

जरा सूक्ष्म बात करते हैं थोड़े में। जो कोई आत्मा... 'निजकर्मफलं' ऐसा शब्द पड़ा है न? ऐसा सिद्ध किया कि आत्मा है, वह अनादि है। वह अनादि-अनन्त गुण सम्पन्न है, तथापि अपने स्वरूप के भान बिना अपने किये हुए कर्मों के फल, ऐसा शब्द पड़ा है। आत्मा वस्तु अनन्त गुण सम्पन्न अनादि की है। और उसकी पर्याय में—अवस्था में अनादि की भूल है। दो बात सिद्ध की। समझ में आया? तो क्या भूल की उसने? कि अपना शुद्ध आत्मा ज्ञानानन्द, ज्ञाता-दृष्टा वीतरागस्वभाव है, उसको भूलकर अज्ञानभाव से पुण्य-पाप का भाव जो उपार्जन किया, उसने अपने बाँधे कर्म। जो 'निजकर्मफलं' है न? उसने पूर्व पर्याय में अपनी दशा, अपने स्वभाव को भूलकर मैं ज्ञानानन्द हूँ, आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ, वीतराग मेरा स्वभाव शुद्ध है—ऐसा न जानकर पर्याय में भूल है अनादि की ऐसी। वस्तु शुद्ध है, ऐसी पर्याय भी शुद्ध थी अनादि की—ऐसा है नहीं। और भूल है तो भूल अपने से है, कोई दूसरे से नहीं। किसी ने कराया है भूल तो होती है, ऐसा नहीं। अपने बाँधे हुए कर्मफल को... देखो, कर्म है, पर्याय में भूल थी, कर्म बँधा और उसका फल आया। इतनी बात सिद्ध की। कर्म जो बँधा, उसका फल आया—पाक (आया)।

भोगता हुआ भी... देखो, वो कर्म के फल में लक्ष्य होने पर भी राग-द्वेष नहीं आत्मा में। मैं तो ज्ञाता हूँ। वीतराग शुद्ध चैतन्य मेरा स्वभाव है। अनुकूल हो या प्रतिकूल, उसमें विकल्प में राग-द्वेष नहीं करके, ज्ञाता-दृष्टा होकर अपनी शान्ति का

अनुभव करता है, तो जो जीव राग-द्वेष को नहीं प्राप्त होता... देखो, पहले दो बात कही। पूर्व में राग-द्वेष अज्ञान से किया था, उससे बन्ध किया, उसका फल आया। वर्तमान में दशा पलट गयी। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरी चीज़ कोई दूसरे से मुझे प्राप्त होती नहीं, दूसरा कोई प्राप्त करा सकता नहीं। समझ में आया? और विकल्प जो है, उससे भी मेरी चीज़, शुभराग से भी मेरी चीज़ मुझे प्राप्त नहीं होती। ऐसा अपना स्वभाव ज्ञायक शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट करके, पूर्व का बँधा फल को भोगते हैं। भोगते हैं का अर्थ संयोग में आता है तो राग-द्वेष नहीं करते। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हो, मेरी चीज़ में है नहीं। मैं तो उसका जानने-देखनेवाला हूँ। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। वह चीज़ मेरी है और मुझे भोगनी पड़ती है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, धर्मी जीव अपने में ऐसा मानता नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया?

फिर कर्म को नहीं बाँधता... नये कर्म नहीं बँधते। आत्मा शुद्ध चैतन्य के भान में, अभान से बँधा कर्म भान में नहीं बाँधता। समझ में आया? यह क्रिया उसकी है। मैं ज्ञाता-दृष्टा, अनन्त आनन्दस्वरूप ऐसी दृष्टि हुई, अपना आनन्द का स्वतन्त्र स्वभाव शुद्ध का, आनन्द का वेदन हुआ, मैं शान्तस्वरूप हूँ, आनन्द हूँ—ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ, उस स्वाद के आगे दूसरी चीज़ में कहीं उसको राग और प्रीति-अप्रीति होती नहीं। समझ में आया? गजब काम। देखो, पहले बाँधे हुए कर्म भी नाश होता है। ऐ...

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा के ज्ञान के अभाव से... वहाँ प्रीति का लिया। भगवान आत्मा निज अर्थात् अपना, हों। भगवान का आत्मा भगवान के पास। गुरु का आत्मा गुरु के पास। कोई से मिलता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... है नहीं। गुरु कहते हैं हम तुमको समझा के.... ... समझ में आया? कौन समझावे? दूसरा कोई समझा दे, ऐसा अभिमान है?

मुमुक्षु : कर्तव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्तव्य भी है नहीं। क्या कर्तव्य है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सुनाना, परन्तु समझाना-समझाना किसे ? उसे समझे, तब उसने सुना ऐसा कहने में आता है। कौन समझे ? कौन समझावे ? आहाहा ! समझने में समझने में समझना किसको है ? हो रहा समाप्त हुआ। यही कहते हैं कि निज शुद्धात्मा। देखो, शब्द ऐसा लिया है। गुरु ने कहा, सर्वज्ञ ने कहा। परमात्मा त्रिलोकनाथ थे, लो ! समवसरण में। परन्तु वह समझे, स्वयं से समझा, तब गुरु ने कहा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऐसा है ही नहीं।

निज शुद्धात्मा के ज्ञान के... ऐसा लिया है, देखो ! अपना आत्मा चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड है। उसका पहला निज शुद्धात्मा लिया। द्रव्य। वह अपना द्रव्य लिया है। वस्तु। उसका ज्ञान, वह पर्याय ली है। समझ में आया ? बात यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा है। ऐसा वीतराग परमेश्वर हुआ, ऐसा ही उसका स्वभाव है। निज शुद्ध चैतन्य प्रभु राग आदि है, उससे भिन्न निज स्वरूप है। निज शुद्धात्मा। उसको आत्मा कहते हैं, देखो ! अपना शुद्ध आत्मा अनन्त गुण शान्त आनन्द वीतरागस्वरूप, जिसमें पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं। उसका ज्ञान; उसका ज्ञान, वह पर्याय हुई। ऐसा शुद्ध भगवान् आत्मा, उसका ज्ञान। अर्थात् आत्मा का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान। उसका अभाव से उपार्जन किये... ऐसा किया देखो ! कर्म का कारण से उपार्जन किया, पूर्व का कर्म का बन्ध पड़ा, उससे यहाँ अज्ञान हुआ — ऐसा नहीं कहा है।

मुमुक्षु : दूसरी जगह कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह कहा, वह निमित्त से कथन है। वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया ? 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' दूसरा कोई उसको भुलाता है, ऐसा है नहीं। और अपने को आप भूला, वही भूल अपने से टलती है। मैं तो ज्ञान हूँ, मैं तो शान्त आत्मा हूँ। आत्मा में कोई विकल्प है नहीं, राग है नहीं, कर्म है नहीं, शरीर है नहीं। स्वतन्त्र वस्तु है, स्वतन्त्र पदार्थ है। ऐसा आत्मा के 'ज्ञान के अभाव से' ऐसा लिया है। कोई कर्म का जोर के कारण से उसने नया कर्म बाँधा, ऐसा है नहीं।

समझ में आया ? भारी बात, भाई ! यह अन्तर्मुख क्या चीज़ है, उसने अनन्त काल में दृष्टि दी नहीं। वह कारण से उपार्जन किया। ऐसा कहा देखो।

ज्ञान के अभाव से... तब उसका अर्थ हुआ कि आत्मा के अज्ञान से, स्वरूप के बेभान से। मैं कहाँ हूँ ? शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द हूँ, विकल्प की गन्ध नहीं उसमें। जिस भाव से परगति मिले, वह भाव भी उसमें नहीं। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी वस्तु में नहीं। वस्तु में क्या ? ऐसा आत्मा का अज्ञान। देखो ! ज्ञान से अभाव अर्थात् अज्ञान। वही अज्ञान से उपार्जन किये **शुभ-अशुभ कर्म...** देखो ! शुभभाव किया दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का भाव, तो पुण्य बँध गया। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग किया तो पाप बँध गया। **शुभ-अशुभ कर्म, उनके फल को...** देखो, अब। वह कर्म जो बँधा, उतनी बात सिद्ध करते हैं। एक ओर आत्मा सिद्ध किया शुद्धात्मा, उसका ज्ञान का अभाव सिद्ध किया। अज्ञान है। और अज्ञान से कर्म बँधा। जड़ चीज़ है दूसरी। वह बँधा, उसका फल भोगता। उसका फल फल आया पाप। बँधा था, उसका पाक आया और उसका भोक्ता हुआ। देखो !

ज्ञानी वीतराग चिदानन्द परम... चिदानन्द 'एक' शब्द पड़ा रहा न। परम डाल दिया। **वीतराग चिदानन्द...** एक स्वभाव है न ? इसलिए परम शब्द डाल दिया है। **वीतराग चिदानन्द परमस्वभावरूप...** यह रूप डाला। समझ में आया ? ओहोहो ! सम्यग्दर्शन में वीतराग चिदानन्द परमस्वभावरूप। मैं तो आत्मा। जिसमें विकल्प से समझूँ और मैं पर से समझूँ, ऐसी विकल्प की जिसमें चीज़ नहीं। ऐसा वीतराग जिसमें पुण्य-पाप का विकल्प नहीं। जो विकल्प था, वह पर्याय में था; स्वरूप में नहीं। स्वरूप वीतराग शान्तरस से भरा चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञानानन्द। देखो, अकषाय ऐसा ज्ञानानन्द एक परमस्वभाव। मेरा आनन्दस्वरूप मेरा है। ऐसा सम्यग्दर्शन। ऐसा सम्यग्दर्शन। समझ में आया ?

परमस्वभाव-परमस्वभाव। वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभाव ऐसा शुद्धात्मतत्त्व। भगवान् परमानन्दमूर्ति, उसकी भावना। भावना क्या ? एकाग्रता। भगवान् आत्मा शुद्ध आनन्द है, उसमें एकाग्रता, अन्दर एकाग्रता। जो पुण्य-पाप के भाव में एकाग्रता थी, एकाग्रता तो थी, परन्तु अज्ञानरूप थी। भगवान् ज्ञानस्वरूप प्रभु में अनन्त आनन्द आदि है, उसमें एकाग्रता, वह पर्याय है। परमस्वभाव तत्त्व द्रव्य है, भावना उसमें संवर-

निर्जरा हुई। जीवतत्त्व ऐसा वीतराग चिदानन्द परमस्वभाव जीवतत्त्व और उसमें एकाग्रता वह संवर-निर्जरातत्त्व। संवर-निर्जरा लोक कहे, ऐसा नहीं, हों! अन्तर में आनन्द में एकाग्रता होना उसका नाम आत्मा की भावना, उसका नाम संवर और निर्जरातत्त्व। उससे उत्पन्न। देखो, उत्पन्न। आनन्द तो त्रिकाल है, परन्तु पर्याय में आनन्द आया, उसका नाम संवर-निर्जरा कहते हैं। समझ में आया ?

अतीन्द्रियसुखरूप अमृत से तृप्त हुआ... आहाहा! भगवान आत्मा शान्त... शान्त... शान्त... अविकारी-अकषायस्वरूप ऐसी अन्तर एकाग्रता करके शान्ति से, शान्ति से तृप्त हुआ, शान्ति से अतीन्द्रिय आनन्दरूप अमृत से। देखो, सम्यग्दृष्टि उसको कहते हैं। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में भी हो तो भी अपने अमृतरस के स्वाद के समक्ष रागी-द्वेषी नहीं होता। ओहोहो! समझ में आया ? छह खण्ड का राज उसको ललचा सकता नहीं। छह खण्ड का राज उसको ललचा नहीं सकता। और उसको प्रतिकूल अग्नि का परीषह हो, जला नहीं सकता (अर्थात्) द्वेष नहीं करा सकता। मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसा सम्यक् भान होने से अतीन्द्रिय सुख अमृत का तृप्त हुआ। आहाहा! अपना भाव शुद्ध चैतन्य की शान्ति से तृप्त हुआ। रागी-द्वेषी नहीं हुआ। अपनी शान्ति से जहाँ तृप्त है, वहाँ संयोग अनुकूल-प्रतिकूल इष्ट-अनिष्ट वृत्ति उत्पन्न होती नहीं। आहाहा! गजब बात। समझ में आया ? रागी-द्वेषी इन्द्रिय का ... विकल्प ... नहीं। प्रतिकूलता में जरा अंश दोष आया, प्रेम नहीं। संयोग का स्पर्श नहीं। अन्तर्मुख भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, उसकी अन्तर में एकाग्रता से, अतीन्द्रिय आनन्द की तृप्ति से तृप्त हुआ, संयोग में राग-द्वेष होता नहीं। सम्यग्दृष्टि को संयोग में, अन्तर में राग-द्वेष होता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

वह जीव फिर ज्ञानावरणादि कर्मों को नहीं बाँधता है... समझ में आया ? वास्तविक अपना स्वरूप क्या है ? अनन्त-अनन्त शान्ति जिसमें पड़ी है। बर्फ की शिला है, जैसे बर्फ की शिला। ऐसे आत्मा अकेली शान्त शिला है शान्त अकषाय शान्त। ऐसा अन्तर में तृप्त हुआ ज्ञानी। समझ में आया ? रागी-द्वेषी नहीं होता तो नया कर्म नहीं बाँधता। **और नये कर्मों का बन्ध का अभाव होने से...** सम्यक् भान में नया कर्म का बन्ध नहीं होता और **प्राचीन कर्मों की निर्जरा ही होती है।** पूर्ण पूर्व का कर्म है, वह

उदय आकर खिर जाता है। संवरपूर्वक निर्जरा भाषा की है, भाई! देखो, इसलिए स्पष्टीकरण किया। समझ में आया?

यह संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल है? देखो, तीन लिये। संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल। तीनों लिये—संवर-निर्जरा और मोक्ष। पुण्य-पाप का भाव वह आस्रव था। उससे नया बन्ध पड़ता था, वह बन्ध था। वह बन्ध और आस्रव से दृष्टि हटाकर अपना चिदानन्दस्वरूप अबन्धस्वभाव उसकी दृष्टि करने से एकाग्रता से जो शान्ति का तृप्तपना आया, वह संवर है। उससे नया कर्म बँधता नहीं और उसमें उग्रता से ठहरता है तो पूर्व के कर्म खिर जाते हैं। वह निर्जरा हुई। ... निर्जरा कैसे होती है, वह कहते हैं, भाई! ... ज्ञानावरणीय नहीं बँधते?

भगवान् आत्मा पूर्ण अरागी स्वरूप का अतृप्तपना जो राग और पुण्य का प्रेम में आत्मा का तृप्तपना टूटकर विकार का तृप्तपना था। अनादि से पुण्य-पाप का विकार का तृप्तपना मानकर अन्दर मिथ्यात्व में पड़ा था। उससे हटकर भगवान् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु के अन्दर में तृप्त एकाग्र होकर संवर हुआ। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह संवर हुआ। स्वरूप की स्थिरता हुई, वह भी संवर हुआ। तो उससे नये कर्म बँधते नहीं। गजब पद्धति कठिन। समझ में आया?

और प्राचीन कर्मों की निर्जरा ही होती है। यह संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल है? देखो, नौ तत्त्व में यह तत्त्व ले लिया। उसमें कुछ सात लो न सात, आस्रवतत्त्व में पुण्य-पाप गिना जाता है न। तो सातों आ गया देखो! सात तत्त्व का श्रद्धान कहा है न शास्त्रकार ने? सात तत्त्व के श्रद्धान का अर्थ क्या आया? कि आत्मा ज्ञानानन्द तत्त्व है शुद्धात्मा, उसमें एकाग्र होकर श्रद्धा-ज्ञान हुआ, वह संवर-निर्जरा और बाकी जो थोड़ा विकल्प आदि रहा, वह आस्रव, (रुका) वह बन्ध, उसका ज्ञान आ गया। वह मेरे में नहीं ऐसा ज्ञान आया। उसका अनुभव नहीं। और आत्मा से भिन्न अजीवतत्त्व कर्म है। कर्म के फल में मैं हूँ नहीं। ... बन्ध का अभाव हुआ दृष्टि में से ज्ञान। और संवर-निर्जरा की उत्पत्ति हुई। और उसकी संवर-निर्जरापूर्वक आगे बढ़कर पूर्ण शुद्ध हुआ, वह मोक्ष हुआ। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, उनके शिष्य उमास्वामी । तत्त्वार्थसूत्र मोक्षशास्त्र । वह तो पहला सूत्र है 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनं । सात तत्त्व की श्रद्धा । तो सात तत्त्व कैसा ? समझ में आया ? सब समा दिया देखो उसमें । मैं तो ज्ञायक चिदानन्द वीतरागस्वरूप हूँ—ऐसी दृष्टि हुई तो आत्मा की प्रतीति हुई । दृष्टि हुई, संवर हुआ । और उस कारण से आस्रव-बन्ध मेरे में अभाव है तो मुझे आस्रव-भावबन्ध है ही नहीं । और अजीव मेरे में है नहीं । मेरे स्वभाव में एकाग्र होने से नया कर्म नहीं बँधा (वह) । संवर हुआ, और शुद्ध एकाग्र होकर पूर्व का कर्म छूट जाता है और अशुद्धता टल जाती है, उसको निर्जरा कहते हैं । और पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं । भीखाभाई ! सात तत्त्व की श्रद्धा का यह स्वरूप है । यह दुनिया माने बाहर से मान लिया । समझ में आया ?

देखो न, उन्होंने तो बहुत स्पष्टीकरण किया है । समझ में आया ? यह क्या जानना है ? भगवान ने सात तत्त्व देखे और कहा, वही जानना, दूसरा क्या जानना है ? क्या जानना दूसरा ? घड़ा कैसे बने ? कपड़ा कैसे बेचना, वह जानना है ? इंजेक्शन कैसे लगाना ? दवा यह सब जानना है ? वह धूल की बात तो अनादि से जानी है । भगवान चिदानन्दस्वरूप अनन्त-अनन्त बेहद शान्ति का समुद्र प्रभु है । ऐसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा है । ऐसा उसने अन्तर में जाना । तो जाना तो संवर हो गया । वह संवरपूर्वक की अपेक्षा से । तो पूर्व के कर्म झरते हैं तो वहाँ निर्जरा हो गयी और वही संवर-निर्जरा पूर्वक ही पूर्ण शुद्धता प्राप्त होती है । एक आस्रवपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होती है, पुण्य-पाप का परिणाम है, पुण्य के परिणामपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं । धूल में पुण्य से संवर नहीं होता । आत्मापूर्वक संवर और संवरपूर्वक निर्जरा और निर्जरापूर्वक मोक्ष । क्या कहा ? देखो !

भगवान आत्मा । देखो, क्या कहा ? इतने में ले लिया । शुद्धात्मतत्त्व, वह आत्मपूर्वक हुआ । भावना, वह आत्मा में से निकला संवर और निर्जरा, उसपूर्वक अतीन्द्रिय तृप्त हुआ । रागी-द्वेषी न हुआ, आस्रव-बन्ध न हुआ । समझ में आया ? और **प्राचीन कर्मों की निर्जरा ही होती है** । ये तो महासिद्धान्त हैं । लौकिक में तुम्हारे बहियाँ जाँचते हैं, परन्तु उसमें क्या ब्याज-ब्याज करते हैं । लेनदेन करते हैं या नहीं ? पाँच-दस लाख

रुपये दिये हो तो आठ आना रूप से ब्याज निकालते हैं या नहीं बनिया ? चक्रवृद्धि ब्याज निकाले। मोहनभाई ! दस लाख दिया हो। तब आठ आना था। अब तो बढ़ गया है, नहीं ? अब तो बढ़ गया है। अब तो ब्याज बढ़ गया है। एक-एक दिन का ब्याज लेकर ब्याज चढ़ा दे। दस लाख दिया हो तो आठ आना का ब्याज। एक दिन का जो ब्याज आया, वह चढ़ा दे। और दूसरे दिन वह दस लाख और उसका ब्याज एक दिन का, उसमें आना लगा दे। उसका नाम चक्रवृद्धि ब्याज। वहाँ बहुत चतुराई करते हैं अज्ञानी। ...भाई ! अब तक क्या किया ? समझ में आया ?

यहाँ भगवान परमात्मा कहते हैं कि अब दूसरा धन्धा कर, दूसरा बदल। अपने आत्मा का व्यापार कर दे। वह तो अज्ञान का, राग-द्वेष का व्यापार हुआ। उसमें तो हैरान-हैरान चार गति में हुआ। समझ में आया ? आत्मा ... पूर्वसंचित कर्म ऐसे वीतराग परिणाम ... वह वीतराग परिणाम। संवर और निर्जरा, वह वीतरागभाव है। समझ में आया ? अध्यात्म की बात ऐसी सूक्ष्म है। कभी अभ्यास किया नहीं। कभी अनन्त काल में शास्त्र पढ़ लिया। समझ में आया ? व्रत-नियम भी अनन्त बार लिया, परन्तु तत्त्व क्या है ? अन्तर में गम्भीर नजर नहीं की। सम्पूर्ण संसार का विकल्प मेरी चीज़ में नहीं। और है तो फिर मेरी शान्ति से मेरा आत्मा का हूँ। शान्ति कहो या वीतरागभाव कहो। ऐसा आत्मा में एकाग्र होकर नया कर्म बँधते नहीं और पुराना कर्म ... होता है। उस पूर्वक ... होता है। क्या कहा ?

आत्मा की श्रद्धा में आत्मपूर्वक। श्रद्धा आत्मा की, ज्ञान आत्मा का, स्थिरता आत्मा में। वह आत्मपूर्वक श्रद्धा-ज्ञान से और संवर-निर्जरापूर्वक मोक्ष होता है। आस्रव और जीव निकाल दिया। समझ में आया ? देखो, पाठ में ऐसा लिया। 'वीतराग-परिणामेन विलयं विनाशं गच्छतीति।' देखो, भगवान आत्मा अपने स्वभाव-सन्मुख होकर जो अविकारी परिणाम वीतराग पर्याय होती है, उससे ही पूर्व का कर्म का विलय-नाश होता है। दूसरे किसी उपाय से कर्म का नाश नहीं। निर्जरा कहते हैं। समझ में आया ? तब गुरु को प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। गुरु को शिष्य ने प्रश्न किया।

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया... योगीन्द्रदेव मुनि थे। ९०० साल पहले दिगम्बर मुनि जंगल में बसते थे। महा दिगम्बर मुनि सनातन सर्वज्ञ का पंथ

वीतराग का है। उसका आराधन करते थे जंगल में। ध्यान में दिगम्बर मुनि। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया। कुन्दकुन्दाचार्य के बाद ११०० साल के बाद हुए लगभग। भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि दो हजार वर्ष पहले हुए। उनके पीछे यह योगीन्द्रदेव परमात्मप्रकाश के कर्ता। दिगम्बर सन्त जंगलवासी, वनवासी उन्होंने यह बनाया।

ऐसा गुरु ने कहा योगीन्द्रदेव। उसने प्रभाकर भट्ट। उसने प्रश्न किया कि महाराज! तुम ऐसा कहते हो कि हमको प्रश्न है। समझ में आया? ... योगी-योगी कहते हैं। हे प्रभो,... शिष्य प्रश्न करता है। गुरु ने ऐसा कहा तो शिष्य ने प्रश्न किया। समझ में आया? **कर्म के फल को भोगता हुआ भी ज्ञान से नहीं बँधता, ऐसा सांख्य आदि भी कहते हैं,**... अन्यमति भी कहते हैं। जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यमति भी है, वे भी कहते हैं कि ज्ञान कर लो भैया! ज्ञान कर लो। ज्ञान से मोक्ष होता है, ज्ञान से मोक्ष होता है। अन्यमति सांख्य आदि कहते हैं न, देखो! **कर्म के फल को भोगता हुआ भी ज्ञान से नहीं बँधता, ऐसा सांख्य आदि भी कहते हैं,**... वेदान्त कहते हैं, सांख्य आदि कहते हैं। बस, ज्ञान कर लो भैया, दूसरा कुछ करना नहीं। तो फिर उसका झूठा क्यों ठहराते हो? समझ में आया?

शिष्य ने प्रश्न किया, महाराज! आप तो आत्मज्ञान से, आत्मदर्शन से, आत्मा से... आत्मा से कर्म खिरते हैं और आत्मा से मोक्ष होता है। तो वे भी ऐसा कहते हैं। ज्ञान-ज्ञान करते हैं। **उनको तुम दोष क्यों देते हो? उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं। है?** हम तो आत्मज्ञानसंयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं,... वह तो अज्ञानी (बाह्य) जानपना (करता है)। परन्तु आत्मज्ञान, यहाँ तो आत्मा का ज्ञान। अकेला ज्ञान-ज्ञान ऐसा नहीं। आत्मा भगवान् पूर्णानन्द प्रभु, उसका ज्ञान। ऐसा अन्यमत में है नहीं। वे तो ज्ञान-ज्ञान करते हैं। आत्मा कौन है? कैसा है आत्मा? कितना है आत्मा? कितना गुण है? वह आत्मा-बात्मा नहीं। ज्ञान करो, बस ज्ञान करो। ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। परन्तु किसका ज्ञान? कैसा है आत्मा? एक समय में अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु भगवान्, ऐसे आत्मा के ज्ञान की बात हम करते हैं। अज्ञानी कहे, ज्ञान करो भाई! ज्ञान। दूसरा कुछ नहीं भाई यह ज्ञान करो। ज्ञान से मुक्ति होती है। समझ में आया?

कहते हैं, हम तो आत्मज्ञानसंयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं,... क्या कहा ? ... है वह । आत्मा एक समय में अस्तित्व महान अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है । यहाँ आत्मा अपना निजस्वरूप । पर से भिन्न है, पर से व्यापक नहीं । यह आत्मा । अनन्त-अनन्त गुण का पिण्डरूप आत्मा, उसका ज्ञान । उसका ज्ञान तो राग और पुण्य से हटकर अपना आत्मा सन्मुख का ज्ञान हुआ, उसका नाम ज्ञान कहते हैं । मात्र शास्त्र की बातें करना, बोलना ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है नहीं । समझ में आया ? ... कि द्रव्य-ब्रव्य है या नहीं ? गुण है या नहीं ? कि ऐसा कुछ जानना नहीं । वह मिटा दो पुण्य । कैसे मिटा दे ? वस्तु अखण्ड एक समय में पूर्ण द्रव्य कैसा है ? ऐसा लक्ष्य में ऐसा महान सत् आये बिना वस्तु के स्वभाव सन्मुख झुकना, वह विकल्प उसमें है नहीं । ऐसा महान सत्ता की श्रद्धा बिना विकल्प छूटेगा कहाँ से ? यहाँ तो रागरहित ज्ञान बताना है । समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात, भाई !

हम तो आत्मज्ञान संयुक्त... ऐसा कि आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड शान्त-शान्त वीतरागी परमात्मा अपना निजस्वरूप, हों ! उसका ज्ञान । शास्त्र का ज्ञान नहीं, गुरु का ज्ञान नहीं, देव का नहीं । देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान, वह विकल्प है । समझ में आया ? योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त महामुनि जंगल में बसनेवाले । जब यह कहा, आत्मा में अपने स्वरूप का भान होकर शान्ति से तृप्त सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ और राग का अभाव उसमें हुआ । क्योंकि राग वह करता नहीं । ऐसा अन्तर में होने से नये कर्म बँधते नहीं, पुराने कर्म टलते हैं । तो ऐसी बात तो अन्यमति भी कहते हैं अज्ञानी वेदान्त आदि बहुत कहते हैं । समझ में आया ? ज्ञान करो भाई दूसरा कुछ नहीं, लो । एक ... है नहीं । कर्म ऐसी दूसरी चीज़ है नहीं । समझ में आया ? आत्मा भी अनन्त है, ऐसा भी है ही नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कर्म है, हमें तो कर्म था, हम तो आत्मा हैं, एक आत्मा मोक्ष जाता है और दूसरा आत्मा संसार में रहता है, ऐसा भेद नहीं । ऐसा अज्ञानी कहते हैं, उसको दूर करने को यह बात करते हैं । समझ में आया ?

हम तो आत्मज्ञान... ऐसा है न ? 'निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतराग-चारित्रनिरपेक्षा वदन्ति' ऐसा कहते हैं, लो ! 'निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं' देखा ! निज शुद्धात्मानुभूति । आत्मा शान्त अविकारी स्वरूप भगवान् आत्मा शुद्धात्मा । शुद्धस्वरूप पवित्र । अनुभूति—उसका अन्तर अनुभव, आत्मा का अनुभव । तो ऐसा लक्षणवाला वीतरागचारित्र । उससहित, विकार, पुण्य-पाप के राग से रहित, आत्मज्ञानसहित, राग से रहित । समझ में आया ? ऐसा संयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं, वे ज्ञान के प्रभाव से कर्म-फल भोगते हुए भी राग-द्वेष भाव नहीं करते । लो ! ऐसा अपना आत्मा, अपना शुद्धस्वभाव वीतरागस्वभाव को जानकर रागभाव, द्वेषभाव विकारी पर्याय का अभाव करता है, ऐसा आत्मज्ञानी रागरहित स्थिरता के द्वारा शान्ति को वेदता है, ऐसा शुद्ध आत्मा अनुभूति । शुद्ध आत्मानुभूति वीतरागलक्षण चारित्र । ऐसा ज्ञान से युक्त संवर-निर्जरा होती है । मात्र बात करने से या ऐसी भाषा करने से होती नहीं । समझ में आया ?

इसलिए उनके नये बन्ध का अभाव है, और मिथ्यादृष्टि... देखो, ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जितकर्म-फल को भोगते हुए... मिथ्यादृष्टि अर्थात् झूठी दृष्टि है, आत्मा क्या चीज़ है ? आत्मा के स्वभाव की महत्ता क्या है ? आत्मा में अनन्त गुण की अचिन्त्यता क्या है ? उसके ज्ञान का अभाव से । मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि । ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जितकर्म-फल को भोगते हुए रागी-द्वेष होते हैं,... जानपनामात्र से यह चीज़ ठीक है, अठीक है, ऐसा अनुभव उसमें आये बिना रहता नहीं अज्ञानी को । चैतन्य सन्मुख का तो भाव है नहीं । वस्तु पूर्ण है, उस ओर की दृष्टि नहीं है, मात्र पर के ऊपर लक्ष्य है । समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जितकर्म-फल को भोगते हुए... न समझे उसको आत्मतत्त्व का भान नहीं, वीतरागस्वभाव भगवान् की पहिचान नहीं, तो राग का अभाव करने का उसके पास भाव है नहीं । तो राग आये बिना अन्दर में सूक्ष्मरूप से विकल्प जो उठते हैं सूक्ष्मरूप से, यदि न उठते हो तो निर्विकल्प आनन्द क्यों न आया ? समझ में आया ? तो विकल्प उठते हैं, उसके भोग में उसकी दृष्टि पड़ी है । ...में लगे ऐसा है कि ओहोहो ! हम तो अनुभव करते हैं । समझ में आया ? आत्मा का अनुभव करते हैं । अनुभव नहीं है, राग का अनुभव है गहरे । आत्मा चीज़ कैसी है, ऐसी चीज़

तो दृष्टि में आयी नहीं। सुनी नहीं, समझी नहीं, महात्म्य तो दृष्टि में आया नहीं। जैसा है वैसा दृष्टि में आया नहीं। तो विकल्प टूटते ही नहीं उसको। विकल्प टूटे नहीं और विकल्प टूटते हैं, ऐसा मानते हैं कि हमारा विकल्प ध्यान में टूटा। मूढ़ है। ... इसका अर्थ क्या? ये तो विकल्प है या नहीं ऐसा भी विचार नहीं करना। ... नहीं करना तो विकल्प आस्रव था या नहीं? वह अनादि की भूल है, वह निर्णय नहीं करना? भूल नहीं है तो फिर अनादि की निर्मलता होनी चाहिए। तो नया समझना या नया ध्यान करना, वह तो कुछ रहता नहीं। ध्यान करो, ध्यान करो — ऐसा एक शब्द आया। एक ध्यान... करो। किसमें? कि आत्मा में। आत्मा कैसा है? कैसा है? ऐसा समझे बिना किसका ध्यान करे? और ध्यान करो, ऐसा हुआ तो उसका अर्थ कि नयी पर्याय हुई वहाँ। ध्यान करो, उसे ऐसा हुआ तो विकार का ध्यान था, पुण्य-पाप था, उसमें एकाग्र था। उससे छूटकर अन्दर एकाग्र हुआ, आस्रव-बन्ध का ज्ञान भी हुआ। समझ में आया?

मूल मनुष्य ऐसा कहे सब छोड़ दो, बस ध्यान करो, भाई! ध्यान अर्थात् क्या? ध्यान अर्थात् कोई द्रव्य है? वस्तु है? कोई गुण है त्रिकाली? कि कोई वर्तमान पर्याय है? ध्यान अर्थात् क्या चीज़ है? ध्यान करो, तो उसको ऐसा हुआ कि अनादि की शक्ति नहीं। ध्यान करो, ऐसा हुआ तो वह अनादि की शक्ति-गुण न रहा। गुण अनादि की चीज़ है, द्रव्य अनादि की चीज़ है। तो ध्यान करना, वह अनादि की चीज़ नहीं, वह नयी चीज़ हुई। समझ में आया? पर्याय हुई वह तो। पर्याय की खबर नहीं कि पर्याय कितने काल रहनेवाली है? और पर्याय का क्या स्वरूप है? और पर्याय किसमें से आती है? कैसा द्रव्य-गुण है? ऐसे भान बिना अकेला ज्ञान-ज्ञान करे, ध्यान-ध्यान करे, वह खरगोश के सींग जैसा ध्यान है। ससला समझे न? खरगोश। खरगोश कहते हैं न? वह कहते हैं। अज्ञानी ध्यान बहुत करते हैं। ॐ... ॐ... ॐ... ध्यान क्या हुआ? किसकी सत्ता में तेरा लक्ष्य जाता है? वह सत्ता कितनी और कैसी है? यह क्या... क्या काम है? अन्धेरे में घुसो।

आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा है ऐसा आत्मा, ऐसा उसका वस्तु का स्वभाव लक्ष्य में आये बिना... आत्मा और पर्याय पलटती है। क्योंकि ध्यान करो, उसका अर्थ क्या आया? कि विकार की पर्याय में तेरी

एकाग्रता है तो वह पर्याय पलटती है। तो उस पर्याय का ज्ञान होना चाहिए। पलटनेवाली पर्याय है। रहनेवाला द्रव्य-गुण है, उसका ज्ञान हुए बिना ध्यान किसका करना? समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें स्थिर हुए परन्तु किसमें? स्थिर अर्थात् क्या? स्थिर किसमें होना? किसमें से निकलना? स्थिरता का अर्थ क्या, उसका ज्ञान किये बिना? इसलिए भगवान ने सात तत्त्व कहे हैं। यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आस्रव, बन्ध की पर्याय में से हटकर, पर्याय से। द्रव्यस्वभाव में वस्तु में... पर्याय नयी हुई। सम्यग्दर्शन आदि नयी पर्याय हुई। और वह नयी पर्याय की पूर्णता प्रगट हो तो उसका नाम मोक्ष है। वडील कहना किसे? शरीर में मोटा अर्थात् वडील (बड़ा) कहना? बोलना आवे बहुत इसलिए वडील? वडील का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : ध्यान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान करे, बहुत ध्यान करता है, कहा न। समझ में आया? वह बैल नहीं होता बैल? उस बेचारे को मारकर बैल नहीं बैल? उसको ... दो सौ व्यक्ति हो ... बैल को पूछे कि किसकी जेब में घड़ी है? उसके पास जाकर बताता था। वहाँ आये थे न। यह हमारे ... भाई गये थे नहीं? तब हमारे टीका होती थी। पंचास्तिकाय की? पंचास्तिकाय की टीका करते थे अपने पण्डितजी। पूछा तो पंचास्तिकाय की टीका कौन करता है अभी। तो वह व्यक्ति उसका ... वह कुछ समझे नहीं। पंचास्तिकाय की टीका क्या। बैल ने कहा ... उस टीपी ने ऐसा बेचारे को मार-मारकर विद्या सिखाया। कि ऐसे ... भाई! ... बैल था। उसने ... पंचास्तिकाय की टीका। वह तो नाम भी सुना नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य का जो ग्रन्थ है पंचास्तिकाय। उसकी टीका पण्डितजी करते थे। तो प्रश्न ऐसा किया बैल को। कि पंचास्तिकाय की टीका कौन करता है? ... वहाँ खड़ा रहा। ... ज्ञान है? वह तो मूढ़ता है। ऐसी विद्या मार-मारकर बेचारे को सिखावे। वह विद्या... उसमें आत्मा क्या आया? समझ में आया? तब कहा था कि भाई! यह बात ही दूसरी है। भगवान सर्वज्ञ का मार्ग भिन्न है। यहाँ तो आत्माज्ञान।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तो ... परन्तु उसमें क्या खोजे ? क्या हुआ ? लगन था । दो बालक है । कोई कहता था । माता-पिता ... मेरी ऐसी ... भावनगर में । एक ... बाई । ऐसी लड़की है ... वर्ष की । अपने कुछ आया राजुल का । परन्तु बाहर नहीं आया । अपने तो यह लड़की का प्रत्यक्ष है या नहीं ? राजुल यह । एक लकड़ी है सेठ ! यहाँ । अभी नहीं है । पाँच साल की लड़की है । ढाई वर्ष से कहती है कि मैं जूनागढ़ से आयी हूँ । वह आयेगी । ... हम पण्डितजी हमारे । पाँच वर्ष की है । ढाई वर्ष की थी, तब कहती थी । कि मैं जूनागढ़ से आयी हूँ । वहाँ ताव । ताव समझते हो ? बुखार-बुखार । बुखार में हमारा देह छूट गया । बुखार में हम... समझ में आये । यहाँ आठ दिन आयी थी । बहुत लोग देखने आये । वह महोत्सव में आयेगी । यह महोत्सव होता है न अपना ? ... भगवान का दिवस है न फाल्गुन शुक्ल दूज । २५ वर्ष होते हैं भगवान के मन्दिर को । तब आयेगी । ... सवा पाँच वर्ष की है । ... गये थे । सब गये थे । तब निश्चित किया । यह हमारे पूर्व की माता, यह मेरे पिता, यह मकान, वहाँ रहती थी । सब बताया । हमारे पण्डितजी साथ में गये थे न । यह पण्डितजी हमारे । यह हिम्मतभाई है न । ... भाई की लड़की है । अभी पाँच वर्ष की है । पाँच वर्ष की है । वहाँ ढाई वर्ष में देह छूट गया ।

लुहार क्या कहते हैं ? वह लुहार होता है न ? एक लुहार होता है । उसकी लड़की थी जूनागढ़ में । ढाई वर्ष की, तब देह छूट गया । अब यहाँ आयी है । वांकानेर में । सब बोला उसने वहाँ जाकर । मैं यह मन्दिर में जाती थी, वह यह उसका पगथिया है । पगथिया समझे न ? वहाँ आरती उतरती थी, मैं भोजन करती थी । और यह मेरी पूर्व भव की माँ है, यह मेरा पप्पा है, यह मेरा काका है । यहाँ ... सब कहा । पेडा मैं खाती थी । सब बात वह तो ... भाई । सब बात ... कह दी । है या नहीं पुनर्जन्म ? तो इतनी बात में लोगों को विस्मय आता है लो । यह तो अलौकिक आत्मा की बात है । वह कोई विस्मय की बात ऐसी नहीं है । समझ में आया ? वह भव की बात है थोड़ी । यहाँ से यहाँ आया । यह तो अनन्त काल से आत्मा कैसा है, उसका भान हो, वही चमत्कारी आश्चर्यकारी बात है । बाकी तो समझने की... समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि ज्ञानभाव से अकेला राग-द्वेष करता है और मानता है कि हमारे धर्म

होता है। समझ में आया? अवश्य बन्ध होता है। इस तरह सांख्य नहीं कहता, वह वीतरागचारित्र से रहित कथन करता है। अज्ञानी को। क्या? राग से सहित क्रिया का उसको ज्ञान मानकर मोक्षधर्म कहते हैं। मैं तो आत्मा वीतरागस्वरूप हूँ, उस तरफ जाने से राग से हटने से शान्ति वीतरागता उत्पन्न होती है। उसे मोक्ष कहते हैं। हमारे कथन में और अज्ञानी के कथन में पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। उगमणा-आथमणा क्या कहते हैं? पूर्व-पश्चिम। यह भाषा ऐसी है न। पूर्व-पश्चिम कहते हैं न? पूर्व और पश्चिम। ऐसा वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का कथन और अज्ञानी के कथन में पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। कुछ मिलान है नहीं। बात तो बहुत करते हैं अज्ञानी कि हमें ज्ञान करना है, ऐसा करना है। सब भूल जाओ, बोध भी भूल जाओ। परन्तु बोध भूल जाये तो किसका बोध करना? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा महान सत्ता-अस्तित्व। सब पदार्थ भिन्न सर्व आत्मा से और सर्व रजकण से और सब राग से। ऐसा रागरहित भ्रान्ति के द्वारा ज्ञान जो आत्मा का होता है। अस्ति-नास्ति की। आत्मा का ज्ञान परन्तु रागरहित। पर में राग-द्वेष नहीं। ऐसा ज्ञान राग-द्वेषरहित अपना चैतन्य का ज्ञान, उसको हम मुक्ति कहते हैं। वह संवर-निर्जरा है। अज्ञानी के पंथ में वह बात है नहीं। समझ में आया? इसलिए उन सांख्यादिकों को दूषण दिया जाता है। ऐसा पाठ है। ८० हुई ८० (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ८१

अब ८१ में क्या कहते हैं? आगे जब तक परमाणुमात्र भी (सूक्ष्म भी) राग को नहीं छोड़ता-धारण करता है, तब तक कर्मों से नहीं छूटता,... परमाणु अर्थात् राग का एक विकल्पमात्र। शुभराग का विकल्पमात्र भी अपना मानता है, तब तक उसको धर्म और सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? अनासक्ति से कर्म करना, (ऐसा) कहते हैं न? क्या अनासक्ति? अभी करते कौन हैं कि अनासक्ति से करे? समझ में आया? ज्ञाता-दृष्टा होकर पर का कार्य कर सकता नहीं। हमारा अधिकार पर रजकण शरीर आदि क्रिया का करना, फेरना हमारे में है नहीं। ऐसा भान होकर क्रिया का कर्ता नहीं

होता, उसका नाम अनासक्ति है। करते हैं और कर तो सकते हैं, अनासक्ति रखना। उसका अर्थ ही मिथ्यात्व है। पर का कर सकते नहीं। वह कहते हैं कि थोड़ा भी पर का करना और मैं कर सकता हूँ, ऐसी इच्छा में पड़ा है। इतना रागमात्र से उसको देह कर्म से छूटना नहीं होता। समझ में आया? आगे आयेगा। यह तो वीतरागमार्ग है। अत्यन्त विपरीत। लोगों को तत्त्व क्या है, वीतराग केवली क्या है, उसकी बात की खबर नहीं होती। भव्य, अभव्य और यह और वह। गप्प ही गप्प मारे। ऐसा कि यह करूँ, यह कहे यह करूँ। परन्तु ... क्या चीज़ है? शरीररहित क्या चीज़ है? निर्भय होते हैं तो पर्याय कैसी होती है? उस चीज़ को माने बिना भय-अभय कहाँ से होता है? समझ में आया? जिसको अभी द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं, उसको भय-अभय कहाँ से आया? प्रेमचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

... कहते हैं, अपना ज्ञायकमात्र भिन्न तत्त्व। उससे थोड़ा भी परद्रव्य का एक रजकण का भी कर्ता होता है कि मैं कर सकता हूँ, मैं बोल सकता हूँ, समझ में आया? मैं दूसरे को समझा सकता हूँ, ऐसा एक विकल्पमात्र का कर्ता होता है, तब तक वह ज्ञानी है नहीं। वह कर्म से छूटनेवाला नहीं। सम्यग्दर्शन होता नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक ११-०२-१९६६

गाथा - ८१ - ८२, प्रवचन - १२५

गाथा ८१ ।

२०८) जो अणु-मेत्तु वि राउ मणि जाम ण मिल्लइ एत्थु ।

सो णवि मुच्चइ ताम जिय जाणंतु वि परमत्थु ॥ ८१ ॥

अब क्या कहते हैं ? जब तक परमाणुमात्र भी राग को नहीं छोड़ता-धारण करता है,... नहीं छोड़ता और धारण करता है । तब तक कर्मों से नहीं छूटता, ऐसा कथन करते हैं—

जो जीव थोड़ा भी राग... क्या अर्थ है इसमें ? आत्मा अन्तर राग, विकल्प से भिन्न आत्मतत्त्व है । राग जो शुभराग है या अशुभराग है विकार, उसकी अन्तर स्वभाव में से एकत्वबुद्धि नहीं छोड़ता, उसको राग की ही अभिलाषा है । कहो, समझ में आया ? अणुमात्र राग अर्थात् ग्रन्थी यहाँ लेना है । आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप परमानन्दमूर्ति है और राग शुभ या अशुभराग मैल, विकार । यह विकार और स्वभाव दो की एक मान्यता है, उसका नाम ग्रन्थी । ग्रन्थी अर्थात् गाँठ, गाँठ अर्थात् मिथ्यात्व कहते हैं । समझ में आया ? जब तक राग की एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व है, तब तक उसको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, मुक्ति होती नहीं । समझ में आया ?

मन में से जब तक इस संसार में नहीं छोड़ देता है,... भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र वीतरागस्वभाव सम्पन्न उसमें राग की थोड़ी भी एक कचाश, अल्पराग है, उसकी भी एकत्वबुद्धि रखता है, उसको परपदार्थ विषय की ही अभिलाषा है । समझ में आया ? अन्तर आत्मस्वभाव की भावना उसको नहीं । जिसके अन्तर में भगवान आत्मा ज्ञान शुद्ध चैतन्य मूर्ति परमानन्द, उसमें एक थोड़ा भी राग । कहा न ? अणुमात्र भी राग । अणुमात्र राग । परन्तु राग विकल्प है, मलिन है और भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्ध निर्मल है । वह

आत्मा को छोड़कर राग की जो भावना भाता है, अथवा राग की एकत्वबुद्धि नहीं छोड़ता है इस संसार में नहीं छोड़ देता है तब तक हे जीव! निज शुद्धात्मतत्त्व को... भगवान निजशुद्धात्म। देखो, निज शुद्धस्वरूप। पवित्र अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु। उसको शब्द से केवल जानता हुआ भी... शब्द से जाने कि आत्मा शुद्ध है, पवित्र है। एक शब्दमात्र ज्ञान से आत्मज्ञान नहीं होता। समझ में आया ?

ज्ञान शब्द से नहीं होता। शब्द से देखो न! 'जानन्नपि' शब्द से केवल जानता हुआ भी... अन्तिम शब्द ऐसा रखा है अन्तिम। 'निजशुद्धात्मस्वभावज्ञानेऽपि' दो बात ली हैं। पहला 'शब्द' भी लिया है। 'शब्दमात्रेण जानन्नपि' ऐसी दो बात ली। फिर वह 'परमत्थु' शब्द है न? उसमें और यह डाला है वापस। भाई! समझ में आया? दो शब्द हैं। 'जानन्नपि' एक शब्दमात्र से जाने। शब्द अर्थात् विकल्प से जाने, ऐसा कहते हैं। फिर भी वीतराग अनुष्ठान से रहित है वह। समझ में आया? वीतराग अनुष्ठानरहित है। अर्थात् आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित है, उसका शुद्ध अनुष्ठानरहित है। अशुद्ध अनुष्ठान है। समझ में आया? शब्द से केवल जानता हुआ भी नहीं मुक्त होता। सम्यग्दर्शन नहीं होता और परमार्थ जब तक राग की अस्थिरता भी थोड़ी है, तब तक वीतराग चारित्ररूप होकर कर्म से नहीं छूटता। दो अर्थ लिये हैं। समझ में आया ?

भावार्थ :- जो वीतराग सदा आनन्दरूप... रूप में एक समा जाता है। 'एक' शब्द पड़ा है न। 'एक' शब्द पड़ा है। 'वीतरागसदानन्दैकशुद्धात्मनो' यह व्याख्या कही। कि यह आत्मा, आत्मा अर्थात् वीतराग सदा आनन्दरूप... एकस्वरूप स्वभाव उसका नाम आत्मा। शरीर, वाणी, मन वह तो पर, जड़ रह गया। कर्म जड़ रह गया। शभु-अशुभराग होता है, वह भी चैतन्य से विपरीत आस्रवतत्त्व में गया। आत्मा वीतराग। रागरहित सदा अर्थात् त्रिकाल आनन्द एक शुद्धात्मभाव से... आनन्दरूप शुद्धात्मभाव से... आनन्दरूप शुद्धात्मा, उसके भाव से रहित पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है,... देखो, इच्छा मन में राग की इच्छा, कोई भी अन्दर विकल्प की भावना है, उसको विकल्प पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा है। परविषय रहित ज्ञानानन्द भगवान आत्मा उसकी दृष्टि का अभाव है। समझ में आया ?

पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है,... अनीन्द्रिय आत्मा जो है। ऐसा कहते हैं, देखो। वीतराग सदा आनन्दरूप शुद्धात्मभाव... जो अनीन्द्रिय है। यह अनीन्द्रिय की जिसको अन्तर दृष्टि नहीं, उसको राग की भावना की दृष्टि है। और राग की भावना की दृष्टि है, उसको इन्द्रिय के—पंचेन्द्रिय के विषय की ही अभिलाषा है। सूक्ष्म-सूक्ष्म तत्त्व। लोगों ने अन्तर में... चीज़ ही पूरी भिन्न है। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्यसूर्य। चैतन्यसूर्य। वह तो पुण्य-पाप के राग से भिन्न ऐसी चीज़ की जिसको दृष्टि नहीं और सूक्ष्म राग का भी जिसमें अन्तर में प्रेम पड़ा है। एकत्वबुद्धि है, उसको ग्रन्थी-गाँठ मिथ्यात्व की है, ऐसा भगवान कहते हैं। गाँठ कहे गाँठ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह थोड़ा राग अर्थात् यह। पाठ में लिया न। 'वीतरागा-नुष्ठानरहितः सन् शब्दमात्रेण जानन्नपि।' लिखा है या नहीं अन्दर? टीका में है टीका। अभिलाष लिखा है, देखो न!

मुमुक्षु : अभिलाष में वापस राग लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग की अभिलाषा है, ऐसा कहते हैं। टीका में है, देखो!

मुमुक्षु : वह संस्कृत में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु संस्कृत में है न। इतनी संस्कृत वाँचनी नहीं आती। अब तुमने इतने वर्ष निकाले। ठीक है। कितनी पुस्तकें छपायें और कितनी चतुराई की और कितना किया है बाहर में। कहो, समझ में आया? पुस्तकें बहुत छापते थे। नोबेल... नोबेल... नोबेल... कथा। नहीं? कितनी छापी होगी? एक हजार। प्रकार एक हजार। ऐसे तो लाख कितनी होगी? लाख की बहुत लाखों। कितनी लाखों। उसमें क्या दिमाग लगा? आत्मा के चैतन्य के भान बिना दिमाग में दीमक पड़ा है। दिमाग में जीव पड़े हैं। दिमाग में जीवड़ा कहते हैं न? दीमक कहते हैं न? दीमक कहते हैं न? कीड़ा पड़ा है। दिमाग में दीमक पड़ी है।

भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित जिसकी दृष्टि में नहीं, उसका ज्ञान भी सब कीड़ा खा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुक्ति तो मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्तो कहाँ था? युक्ति... युक्तो कहाँ था वहाँ? समझ में आया? वह तो कुज्ञान है। सांसारिक जितना ज्ञान है, वह सब कुज्ञान है। व्यापार का, डॉक्टर का, वकालात का, वह सब कुज्ञान है। समझ में आया? है अन्दर अर्थ में। वरना तो अणुमात्र भी ऐसी गाथा बहुत आती है न अपने भाई समयसार में आती है न। प्रवचनसार में आती है, समयसार में आती है, अष्टपाहुड़ में आता है कि थोड़ा राग का अर्थ वह है अनन्तानुबन्धी का राग। उसका अर्थ है ऐसा। समझ में आया? पण्डित जयचन्द। पण्डित जयचन्द हुए हैं न? कहाँ? जयपुर में। उन्होंने भी ऐसा अर्थ किया है। उसमें ऐसा अर्थ किया है। समझ में आया?

मन में थोड़ा सा भी राग रखता है,... ऐसी बात करते हैं। थोड़ी-थोड़ी। थोड़ा का अर्थ? एकत्वबुद्धि का राग। वह बात यहाँ है। समझ में आया? **यह आगमज्ञान से आत्मा को शब्दमात्र जानता हुआ...** शब्दशास्त्र जाने, ग्यारह अंग जाने, नौ पूर्व पढ़ ले। कुछ उसको आत्मा का लाभ है नहीं। शास्त्र पढ़े। पण्डित होकर बड़ा-बड़ा हजारों-लाखों लोगों में भाषण दे। कहते हैं कि वह शब्दज्ञान है, आगमज्ञान, शास्त्रज्ञान है। **आगमज्ञान से...** देखो, अकेले शास्त्रज्ञान से आत्मा को शब्दमात्र जानता हुआ भी **वीतरागचारित्र की भावना के बिना...** ऐसा लिया है। समझे न? **‘परमार्थशब्दवाच्य-निजशुद्धात्मतत्त्वमिति’** देखो, परमार्थ का अर्थ वह किया। समझ में आया? **निजशुद्धात्मत्व।** निर्विकल्प शुभ-अशुभरागरहित आत्मा का भाव जिसके पास नहीं, वह राग की भावना में ग्रन्थी में एकाकार है, वह आत्मा मोक्ष को नहीं पाता।

बिना मोक्ष को नहीं पाता। अन्तरस्वरूप की दृष्टि और स्वरूप की एकाग्रता के बिना उसको मुक्ति होती नहीं। कहो, समझ में आया? बराबर यहाँ लिया या नहीं? पृष्ठ में आया। ग्रन्थी लिया और फिर वीतराग चारित्र लिया। कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार में ऐसा लिया है। अरे! हमने हमारे आत्मज्ञान द्वारा मोहग्रन्थी का नाश किया है और वीतरागचारित्र द्वारा हम चारित्र को प्राप्त हुए हैं। उससे हमारे मुक्ति होगी, दूसरे से मुक्ति नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त-मुनि दो हजार वर्ष पहले जंगल में रहते थे।

पौत्रुरहिल । मद्रास के निकट । भगवान के पास गये थे । देखा, यह कहते हैं । अभी देखा या नहीं ? १४० पृष्ठ है न ? देखो, ऐसा कहा देखो, भाषा ऐसी ली । ‘अति विस्तार से बस हो, जयवन्त वर्तो...’ स्याद्वादमुद्रित जिनेन्द्र शब्दब्रह्म’ भगवान वीतराग परमेश्वर की वाणी । जिनेन्द्र ब्रह्म । भगवान की ॐ ध्वनि । जिसमें ध्वनि शब्द निकला । जयवन्त हो । अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं । नौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि । उसकी टीका करते हैं कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक की वह टीका करते हैं । जयवन्त हो, जयवन्त वर्तो । स्याद्वादमुद्रित जिनेन्द्र शब्दब्रह्म । शब्दब्रह्म जिसका मूल है, ऐसी वाणी । देखो, भगवान की वाणी भी जयवन्त वर्तो । निमित्त है न ? जयवन्त वर्तो शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्व उपलब्धि देखो, क्या कहते हैं ?

भगवान जिनेन्द्र परमेश्वर की जो दिव्यध्वनि तीर्थंकर की है, वही अपने आत्म अनुभव में निमित्त होती है । अन्य अज्ञानी की वाणी, कोई जैन के अतिरिक्त, परमेश्वर के अतिरिक्त किसी की वाणी आत्मज्ञान में सम्यग्दर्शन में निमित्त होती नहीं, ऐसा कहते हैं । है ? शब्दब्रह्म... मूलक आत्मतत्त्व, देखो, ‘शब्द ब्रह्म जिसका मूल कारण है, ऐसी आत्मतत्त्व की प्राप्ति...’ भगवान आत्मा... भगवान परमेश्वर ने, त्रिलोकनाथ ने जो वाणी कही, सर्वज्ञदेव । पहले मुनि सर्वज्ञदेव को याद करके कहते हैं । समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, उसकी वाणी निकली, वह आत्मा की उपलब्धि-प्राप्ति में निमित्त है । निमित्त वह शब्दब्रह्म है । इसके अतिरिक्त अन्य अज्ञानी, वीतराग परमात्मा सर्वज्ञ की वाणी के अतिरिक्त किसी की वाणी आत्मज्ञान में निमित्त होती नहीं । समझ में आया ? अभी सर्वज्ञ वीतराग कौन है, उसकी खबर नहीं । एक समय में तीन काल—तीन लोक जानते हैं भगवान । और आया है न । यह तो ठीक कहा है । समझ में आया ? एक समय में भगवान तीन काल—तीन लोक जाने, ॐ ध्वनि निकली, दिव्यध्वनि । तो कहते हैं ऐसा शब्दब्रह्म जिसका मूल है, ऐसा आत्मतत्त्व उपलब्धि... भगवान की वाणी ऐसा बताते हैं वीतराग । तो वीतरागवाणी ने क्या बताया ? कि रागरहित आत्मतत्त्व है । ऐसा भगवान ने बताया, ऐसी प्राप्ति हुई । क्या कहा समझ में आया ? शब्दब्रह्ममूलक का अर्थ क्या आया ? कि भगवान की वाणी जिसका मूल है । किसमें ? आत्मतत्त्व की प्राप्ति में । तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति वाणी में कैसे कहा था ? वाणी में कैसा कहा था भगवान ने ?

कि यह विकल्प पुण्य-पाप की वृत्ति से रहित तेरी चीज़ है, उसका नाम आत्मा, ऐसा शब्द में आया था। भगवान की वाणी में ऐसा आया था? समझ में आया या नहीं?

शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्व... सर्वज्ञ की वाणी में जैसा आत्मा आया और कहा कि पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न तेरी चीज़ है। ऐसा वाणी में कहा। उस वाणी में ऐसा कहा, ऐसे उसकी प्राप्ति हुई। विकल्प से रहित मेरी चीज़ ऐसा आत्मा है। ऐसा भान हुआ तो उस भान में भगवान की वाणी निमित्त है। सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की, उसके अतिरिक्त सन्त कहते हैं वह भी वीतराग की वाणी से कहते हैं। अपने घर से नहीं। समझ में आया? देखो न पहले कहते हैं। नमस्कार पहले शुरू किया। अनन्त तीर्थंकरों को नमस्कार शुरू करके प्रवचनसार कहा। भूतकाल के तीर्थंकर हो गये, वर्तमान में विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र भविष्य में होंगे, उन सबको नमस्कार करते हैं। बाद में प्रवचनसार सिद्धान्त का सार बनाया। और समयसार में भी 'वंदितु सव्व सिद्धे' महासमयसार अभी चौदह ब्रह्माण्ड का, चौदह पूर्व का सार लिया। तो उसमें पहली गाथा ऐसी ली। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि। 'वंदितु सव्व सिद्धे' ओहो! अनन्त सिद्धों को नमस्कार। कितनी भाषा है उसमें। अनन्त सिद्ध अभी तक हुए, वह अनन्त सिद्ध है। एक ही आत्मा नहीं, ऐसा उसमें निकला। अनन्त सिद्ध हुए हैं। आत्मा का भान करके, वीतरागदशा करके अनन्त परमात्मा हुए हैं। कोई एक ही आत्मा माने, सिद्ध में भी एक आत्मा माने। सबको उड़ा दिया। अनन्त सिद्ध हुए। सब सिद्ध ऐसा कहते हैं न! 'सव्व सिद्धे' अभी तक मेरे पहले सब अनन्त सिद्ध अनन्त पुद्गलपरावर्तन में हुआ, वन्दन करता हूँ। मेरी ज्ञान की दशा में सब सिद्धों का आदर करता हूँ।

देखो, कितना आया? आत्मा अनन्त तो सिद्ध हुआ। उससे अनन्तगुना आत्मा दूसरा संसार में (है), वह भी उसमें सिद्ध हो गया। समझ में आया? कोई एक ही आत्मा कहे, कोई जड़ है ही नहीं ऐसा कहे, वह सब अज्ञान से है। सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया कि अनन्त आत्मा है। उसमें से (स्व) आत्मा का भान करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त (करके), अन्तर अनुभव करके अनन्त सिद्ध हुए हैं। अभी तक तो

अनन्त मोक्ष में विराजते हैं। तो अनन्त मोक्ष में विराजते हैं, उसका अर्थ हुआ कि उससे अनन्तगुना संसार में है। समझ में आया ? उसको मैं वन्दन करता हूँ। उसका अर्थ ? मेरी ज्ञान की दशा में ऐसा अनन्त सिद्ध को ही मैं आदर देता हूँ। दूसरों को मैं आदर देता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

इतने एक शब्द में। समयसार का पहला शब्द। पहला कहते हैं न ? प्रथम शब्द। 'वंदितु' आहाहा ! गजब बात की है न ! तो उनके टीकाकार ने क्या कहा ? अमृतचन्द्राचार्य ने। कि हम हमारे आत्मा में अनन्त सिद्ध को प्रतिष्ठित-विराजमान करते हैं। हे श्रोताओं ! तुम्हारे ज्ञान में भी हम अनन्त सिद्धों को विराजमान करते हैं। और फिर तुम सुनो। आहाहा ! समझ में आया ? कितना विनय है ! और कितनी महत्ता ! सिद्ध अनन्त अशरीरी हुए, उनका पर्याय में आदर है। तो मुझे भी अनन्त सिद्ध का आदर है, तुम भी अनन्त सिद्ध की प्रतिष्ठा करो। तुम्हारे भी राग और निमित्त का आदर नहीं रहे, तब अनन्त सिद्ध की आपकी ज्ञानपर्याय में प्रतिष्ठा होगी। समझ में आया ? इतनी गम्भीरता है ! ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य जैसे पहले 'वंदितु सर्व सिद्धे' 'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो' में समयप्राभृत श्रुतकेवलियों ने कहा, सर्वज्ञ भगवान ने जो कहा और श्रुतकेवलियों का (कहा), वह समयसार कहूँगा। मेरी कल्पना की बात नहीं और सर्वज्ञ ने जैसा कहा, वैसा मेरा ज्ञान में आया है, ऐसा मैं कहूँगा। समझ में आया ?

वह कहते हैं कि हम कहते हैं... हम कहते हैं... हम कहते हैं कि ऐसा धर्म है। हम कहते हैं, ऐसा क्या ? भगवान क्या कहते हैं ? समझ में आया ? हमारा अनुभव ऐसा है कि धर्म ऐसा है, परन्तु सर्वज्ञ कहे ऐसा है या सर्वज्ञ से विरुद्ध है ?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ की बात नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बात करना तो उसकी बात नहीं सुनना। यहाँ तो पहली बात है। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर जिसे त्रिकाल ज्ञान है, वे ऐसा कहते हैं और वही सिद्ध परमात्मा की दशा से हुआ ऐसी बात बिना हम कहते हैं... हम कहते हैं... हम कहते हैं... कहाँ तुम कहते हो ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि हमें शब्दब्रह्ममूलक आत्मा की प्राप्ति हुई। जिसके प्रसाद से

क्या हमारा आत्मा आनन्दकन्द है। देखो, अभी सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। 'अनादि संसार से बँधी हुई मोहग्रन्थी तुरन्त ही छूट गयी।' हमारा आत्मा भगवान शुद्ध आत्मा ऊपर अन्तर अनुभव दृष्टि हुई, राग की एकता की बुद्धि का हमारा अन्तर में नाश हुआ। वह भास होता है या नहीं? कि भगवान को पूछने जाते हैं? यहाँ तो पंचम काल के मुनि कहते हैं कि मुनि को खबर न पड़े निश्चय समकित। भाई! आज यह सब बात बहुत आ गयी है। यह तो उसमें आयी है। जैनदर्शन (पत्रिका)। उसमें आयी है। परन्तु वह तो शुभयोग से धर्म हुआ, शुभयोग से यह सब बात आयी है। समझ में आया? यह तो ... साधु आया है न उसमें आया। श्वेताम्बर का है न उसमें। यह निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। हो रहा जाओ।

यहाँ तो पंचम काल के मुनि, नौ सौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त आत्मज्ञानी, अमृतचन्द्राचार्य मुनि जंगल में बसते थे। वह कहते हैं कि हमारी अनादि संसार से बँधी हुई मोहग्रन्थी तुरन्त ही टूट गयी। इस प्रकार जहाँ पर्याय उत्पन्न हुई, वहाँ उस पर्याय का नाश हुआ। समझ में आया? कितनी बात तो की सम्यग्दर्शन की। आहाहा! वह जयवन्त वर्तों। परमवीतराग चारित्र शुद्ध उपयोग। देखो, कोई कहते हैं कि अभी शुद्ध उपयोग होता नहीं। ऐसा... अमृतचन्द्राचार्य आदि सन्त कहते हैं, जयवन्त वर्तों। परमवीतराग चारित्ररूप शुद्ध उपयोग कि जिसके प्रसाद से यह अपना आत्मा स्वयमेव धर्म हुआ। ऐसा कहते हैं। धर्म होगा ऐसा नहीं। कहते हैं न कितने? कि अभी शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र है नहीं। शुद्ध उपयोगरूपी धर्म है? आचार्य कहते हैं कि है। समझ में आया? देखो, कहते हैं कि जयवन्त वर्तों परमवीतराग। पश्चात् परमवीतराग चारित्र। यथाख्यात की यहाँ बात नहीं। उसके अपने उपयोग सामायिक चारित्र की उपयोग की बात है।

शुद्धोपयोग के जिसके प्रसाद से यह आत्मा स्वयमेव। देखो, किसी की मदद बिना, किसी की सहायता बिना अपने से धर्म हुआ। अब धर्म हुआ। हम आत्मा धर्मरूप हुआ। धर्म अर्थात् चारित्र जो पहले से कहा था। प्रवचनसार में पहले से कहा था कि हम धर्म (रूप) हुआ है। धर्मी आत्मा ही पर्याय में धर्मरूप हुआ है। समझ में आया? वही बात यहाँ परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव कहते हैं कि जिसको आगमज्ञान का इतना

ज्ञान है, परन्तु जो आत्मा रागरहित का आत्मभान नहीं, उससे आत्मा की मुक्ति-बुक्ति होती नहीं। उसको सम्यग्दर्शन होता नहीं, उसको सम्यग्ज्ञान होता नहीं, तो उसको चारित्र तो होता नहीं। है ?

वीतरागचारित्र की भावना के बिना मोक्ष को नहीं पाता है। वह आखिर का शब्द है अन्तिम। ८१ हुई ८१।

★ ★ ★

गाथा - ८२

आगे जो निर्विकल्प आत्म-भावना से शून्य है, वह शास्त्र को पढ़ता हुआ भी तथा तपश्चरण करता हुआ भी परमार्थ को नहीं जानता है,... दो बात ली। ८२ (गाथा)।

२०९) बुझइ सत्थइँ तउ चरइ पर परमत्थु ण वेइ।

ताव ण मुंचइ जाम णवि इहु परमत्थु मुणेइ ॥ ८२ ॥

ऐसा कहते हैं कि शास्त्रों को जानता है... शास्त्र को पढ़ता है, बहुत शास्त्र पढ़ें। और तपस्या करता है,... मुनिपना भी पालता है। अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत आदि पालता है। लेकिन परमात्मा को नहीं जानता है... आहाहा! परन्तु वह विकल्प से, शास्त्रज्ञान से पार आत्मा है, उसको जो नहीं जानते हैं। समझ में आया ? है न शब्द ? लेकिन परमार्थ... परमार्थ अर्थात् परम अर्थ, परम अर्थ अर्थात् पदार्थ आत्मा। वीतरागस्वरूप निर्विकल्प अर्थात् रागरहित आनन्दघन आत्मा अपना, उसको शास्त्र पढ़ते हुए और मुनिपना की क्रियाकाण्ड करने पर भी जो आत्मा नहीं जानते। ऐसा आत्मा का ज्ञान-श्रद्धा नहीं है। जब तक पूर्व कहे हुए परमात्मा को नहीं जानता,... यह शास्त्र पढ़ने से और क्रियाकाण्ड इतनी करने से भी आत्मा का भान बिना, आत्मा का ज्ञान उसको होता नहीं। समझ में आया ?

या अच्छी तरह अनुभव नहीं करता है,... जैसा आत्मा में राग और शास्त्र का पढ़ने से भिन्न, ऐसा आत्मा का अनुभव करते नहीं। क्योंकि वह क्रियाकाण्ड राग है,

शास्त्रज्ञान भी राग है। आहाहा! अच्छी तरह अनुभव नहीं करता है,... शास्त्रशब्द से (ज्ञान) करते हैं। ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा है, ऐसा आत्मा है। आत्मा शुद्ध है, वीतराग है, ऐसा शब्द से कहते हैं। और क्रियाकाण्ड में मानते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, परिणाम हो, परन्तु यह आत्मा का ऐसा अन्तर बोध न हो तो उसको परमार्थ का कुछ ज्ञान नहीं है। समझ में आया? कठिन बात है जगत को।

देखो, भावार्थ है न? यद्यपि व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है,... देखो, यह भी बात। भावार्थ है न? यद्यपि व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है,... समझ में आया कुछ? 'व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते' ऐसा संस्कृत शब्द पड़ा है। उसका अर्थ किया। 'व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादक-शास्त्रेण' यह परमात्म प्रतिपादक शास्त्र है न? यह परमात्मप्रकाश उसका नाम है। समयसार का नाम भी परमात्मप्रकाश ही है। यह समयसार अर्थात् आत्मा, तो कहते हैं 'व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते' जानने में आता है तो वह शास्त्र परम अध्यात्म शास्त्र ही जानने में आता है। कहते हैं परन्तु इतना शास्त्र जानते हुए भी। देखो, फिर स्पष्टीकरण क्या किया? 'व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते' जिसमें आत्मा का कथन है। परमात्मस्वरूप अपना निरावरण निर्मल। ऐसा परमात्मस्वरूप का जिसमें अध्यात्म शास्त्र में कथन है। दूसरे शास्त्र में व्यवहार आदि कथन है परन्तु परमार्थ शास्त्र अध्यात्म में है। देखो पाठ लिया न?

व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है, तो भी निश्चयनय से... सत्य दृष्टि बिना... वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से ही जाननेयोग्य है,... यह जाननेयोग्य तो रागरहित आत्मा के ज्ञान से आत्मा जाननेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! वीतराग शास्त्र अध्यात्म शास्त्र से भी जानने में नहीं आता।

मुमुक्षु : आपको तो सब जानने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये जानने में आवे इसलिए? जाने तो उसका निमित्त अध्यात्म शास्त्र होता है, ऐसा कहते हैं। उसमें ऐसा है। ऐई! 'परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते' जाने तो उसका निमित्त में परमात्म शास्त्र का अध्यात्म शास्त्र निमित्त है। ऐसा जाना है

परमात्मशास्त्र । तो भी... अन्तर वीतरागविज्ञान के ज्ञान द्वारा जाने नहीं तो उसका कुछ आत्मा को लाभ है नहीं । आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या ? घोड़े पर बैठकर फिर घोड़ा...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा राग विकल्प जो है, उससे भिन्न रागरहित अपना ज्ञान, वीतराग ज्ञान से आत्मा जानने में आता है, ऐसा कहते हैं । करो तर्क । आत्मा वीतरागज्ञान से जानने में आता है ।

मुमुक्षु : वीतराग ज्ञान आत्मा जानता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो वही का वही हुआ ।

मुमुक्षु : निश्चय प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं । जानने में आता है तो शास्त्र जाना तो जानने में नहीं आया, ऐसा कहते हैं । व्यवहार से जानने में आता है कि यह शास्त्र ऐसा कहते हैं । परन्तु वह यथार्थ नहीं । विकल्परहित निर्विकल्प दृष्टि हुई, तो उस दृष्टि द्वारा आत्मा ऐसा है जानने में आता है, बस इतना । है तो आत्मा जानने में आता है । आत्मा जाने न, और क्या जाने ? परन्तु वह दृष्टि में आत्मा जानने में आया । देह, विकल्प दृष्टि में जाना क्या ? आत्मा । बस ।

मुमुक्षु : निर्विकल्प दृष्टि कब हुई ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई कब ? उसके सन्मुख हुआ तब । समझ में आया ? भारी कठिन जगत को, भाई ! है या नहीं परन्तु देखो न ।

निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही... भाई ! बात तो ऐसी है । अपना स्वरूप ही ऐसा है, परन्तु वर्तमान में तो गड़बड़ बहुत हो गयी, इसलिए वास्तविक तत्त्व को समझने में भी गड़बड़ हो गयी । भगवान आत्मा अपनी शुद्ध परिणति वीतरागदशा द्वारा ही आत्मा जानने में आता है । बस एक ही बात । समझ में आया ? वह पहली गाथा

में राग की एकता की बात कही थी। यह राग के अभाव की बात करते हैं। दुर्लभ लगे और महान लगे, परन्तु अशक्य नहीं है। वस्तु तो ऐसी है। बाकी सब बात तो निमित्तमात्र है। आत्मा अन्तर में अनन्त गुण सम्पन्न, अनन्त शान्ति, आनन्द सम्पन्न वस्तु है। वह तो अन्तर में निर्विकल्प दृष्टि करने से ही आत्मा है, ऐसा जानने में आता है। शास्त्रज्ञान से नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले कहा था न, जानने में आवे, परन्तु यह निमित्त से व्यवहार जानने में आवे, ऐसा। परन्तु आत्मा ऐसा है, ऐसा है, ऐसा विकल्प से, शास्त्र से जानने में आया, परन्तु वह कोई वास्तविक जानना नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कि सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ अध्यात्म शास्त्र। उससे वह जानने में आता है कि यह आत्मा ऐसा है, ऐसा भगवान कहते हैं। परन्तु वह जानना भी यथार्थ नहीं। समझ में आया ? वीतराग—रागरहित। अरे ! उसको रागसहित जानना, वह तो कहते हैं, ऐसा अनन्त बार जाना। नौ पूर्व और ग्यारह अंग में उसको ऐसा ख्याल भी आया था। समझ में आया ? भगवान कहते हैं ऐसा ख्याल में भी आया था। परन्तु वह परलक्ष्यी था। यह आत्मा अपने स्वसंवेदन से—ज्ञान से ज्ञान आत्मा में जानने में आता है, ऐसा कभी (निर्णय) किया नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो पाठ कैसा है ? देखो, 'वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन परिच्छिद्यते' है न ? 'निश्चयेन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन परिच्छिद्यते' उसमें 'ज्ञायते' कहा, यहाँ 'परिच्छिद्यते' कहा। टीका में भी... भगवान की वाणी में ऐसा ख्याल आया कि भगवान ऐसा कहते हैं कि आत्मा तेरी शुद्ध चीज़ अनन्त गुण का पिण्ड राग और निमित्त से रहित, ऐसी चीज़ है। ऐसा आत्मा है। ऐसा ख्याल आया, परन्तु वह तो शास्त्र का ज्ञान से विकल्प से ख्याल आया। वह वास्तविक तत्त्व नहीं। समझ में आया ? इसलिए उसमें 'ज्ञायते' कहा, यहाँ 'परिच्छिद्यते' कहा। जाने व्यवहारज्ञान हुआ। समस्त प्रकार से आत्मा शुद्ध जैसा है, ऐसा अन्तर्मुख होकर सम्यग्ज्ञान से, वीतराग स्वसंवेदन से जानने में आता है, वही निश्चय है। ओहोहो ! कहो, भीखाभाई ! इसमें कहाँ चले ऐसा नहीं, भाई ! तब यह व्यवहार शास्त्र भगवान ने कहा, उसको निमित्त का आरोप आता है। भगवान का शास्त्र ही ऐसा कहते हैं। परमेश्वर परमात्मा का शास्त्र ही आत्मा की ऐसी बात (करते हैं)।

ऐसी बात कोई दूसरे शास्त्र में सर्वज्ञ के अतिरिक्त होती नहीं। इतनी बात है। परन्तु वह शास्त्र सन्मुख का लक्ष्य करके आत्मा जानने में आ जाये। आहाहा! समझ में आया? और शास्त्र का ज्ञान हुआ ग्यारह अंग का। वह ग्यारह अंग के ज्ञान से आत्मा जानने में आ जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले सब नहीं आ गया, अभी आयेगा अब। अभी आयेगा अब। यह अभी आयेगा ८३ में। खरो बोल वहाँ आयेगा अभी। जड़ है... जड़ है... जड़ कहेगा। आहाहा! ८३ में। झटकणी कर देते हैं। झटकते हैं, कहते हैं न? वह सूप में होता है या नहीं? झटकते हैं वह छिलके। फोतरा को क्या कहते हैं? छिलका। वह छिलका निकल जाता है और दाना-दाना रह जाता है। उसी प्रकार आत्मा; राग, दया, दान, विकल्प जो है पुण्य वह छिलका है, उससे रहित भगवान आत्मा वेदन में जाना वह रागरहित वीतराग दृष्टि से आता है। दूसरे से आता नहीं। आहाहा!

दूसरी बात, यद्यपि बाह्य सहकारीकारण अनशनादि बारह प्रकार के तप से साधा जाता है,... निमित्त से हों! निमित्त कहते हैं। उसमें 'ज्ञायते' कहा था, यहाँ 'साधा जाता' है। अनशन, ऊनोदरी आदि बाह्य सहकारीकारण अनशनादि बारह प्रकार के तप से... वापस लिया देखो, समझ में आया कुछ? 'यद्यप्यनशनादिद्वादशविधतपश्चरणेन' क्या? अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग सब राग की मन्दता है। यह अन्दर ध्यान करना कि मैं ऐसा हूँ... ऐसा हूँ... वह भी विकल्प है। पहले ध्यान करते-करते। ऐसा भी विकल्प, वह बारह प्रकार का तप राग की मन्दता में गया। अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, (विविक्त शय्यासन) यह बाह्य, फिर प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, सज्जाय, ध्यान और... वह बारह प्रकार के तप भी बाह्य निमित्त है। अन्तर उपादान शुद्ध में वह काम नहीं करता। आहाहा! ध्यान भी लिया उसमें, हों! यह ध्यान करते हैं न कितने? परन्तु यह सब विकल्प है। राग है, उसको निमित्त कहने में आता है। कब? कि आत्मा अन्दर में निश्चय...

देखो, तो भी निश्चयनय से निर्विकल्प वीतरागचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि

है। देखो, रागरहित स्वरूप की स्थिरता अन्तर में होती है, वही सच्चा चारित्र है, वही चारित्र से आत्मा की सिद्धि होती है। बहिरंग तप से सिद्धि होती नहीं। बहुत गूढ़ रखा है बहुत। कहो, बाह्य के देव-गुरु-शास्त्र के विनय, वैयावृत्य आदि सब शुभराग में जाता है। प्रायश्चित्त, विनय बारह प्रकार लिये हैं टीका में। वैयावृत्य, शास्त्र का स्वाध्याय। यह शास्त्र का स्वाध्याय। यह शास्त्र का वाँचन करना, वह सब विकल्प में जाता है शुभराग में। धर्मदर्शना करना। वह भी शुभराग में जाता है। वाँचना-पूछना प्रश्न पूछना वह भी शुभराग में जाता है। वाँचना, पूछना, पर्यटन-बारम्बार उसको शास्त्र घोलना, गोखना। ऐसा कहते हैं न? पर्यटन करना। वाँचना, पूछना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा धर्मकथा। वह स्वाध्याय का भेद है, वह बाह्यतप का भेद है। अन्तर नहीं। आहाहा!

दूसरी बात वह। क्या? कि अनशन आदि बारह प्रकार की तप की व्याख्या वीतराग सर्वज्ञ के शास्त्र में ही निमित्तरूप से है। ऐसी व्याख्या दूसरे अज्ञानी में है नहीं। समझ में आया? अनशन, ऊनोदरी आदि जो बारह प्रकार है, वह जैनदर्शन में निमित्तरूप, व्यवहाररूप ऐसा होता है। ऐसा निमित्त भी अज्ञानी में ऐसा नहीं है। ऐसा निमित्त होने पर भी, देखो, निश्चयनय से... अन्तरदृष्टि से निर्विकल्प वीतरागचारित्र से... स्वरूप में शान्ति में स्थिर होना... स्थिर होना... स्थिर होना... अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना, उसमें चारित्र अर्थात् रमना। है? उससे आत्मा की सिद्धि है। वह चारित्र से मुक्ति है। समझ में आया?

चारित्र अर्थात् चरना, चरना अर्थात् घास वह ढोर चरता है या नहीं? क्या कहते हैं? ढोर कहते हैं न पशु? घास-घास होती है या नहीं? चरते हैं या नहीं? तो कोई चीज़ है, उसको चरते हैं या नहीं? तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञानानन्दस्वरूप दृष्टि में आया है सम्यग्दृष्टि को। उसमें एकाग्र होकर आनन्द का चरना, आनन्द का अनुभव होना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? निश्चय से अर्थात् सत्य से, सत्यवस्तु की दृष्टि से, निर्विकल्प अर्थात् रागरहित वीतरागचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है। उसके अतिरिक्त आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

जिस वीतरागचारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है। देखो, व्याख्या।

आहाहा! समझ में आया? 'निर्विकल्पशुद्धात्माविश्रान्तिलक्षणवीतरागचारित्रसाध्यो' क्या कहते हैं? आत्मा वीतराग आनन्दस्वरूप आत्मा में विश्रान्ति लेना। आहाहा! भगवान... जैसे बर्फ की शिला पड़ी हो ठण्डी बर्फ की। शिला पर सो जाये। ठण्डा... ठण्डा... ठण्डा... उसी प्रकार भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरस का पिण्ड आत्मा है, उसमें विश्राम लेना, ठहरना। आहाहा! मस्तिष्क में—दिमाग में बात बैठे नहीं। क्या है यह? यह तो मिट्टी-धूल है। कर्म मिट्टी-धूल है। अन्दर में विकल्प उठते हैं पुण्य-पाप के, वे तो राग हैं, उससे पूरी चीज़ भिन्न पड़ी है। शरीर प्रमाण से आनन्द का कन्द आत्मा है। अतीन्द्रिय शान्तरस से भरा पिण्ड है आत्मा। यह उसमें दृष्टि पहले करके, पश्चात् उसमें विश्राम लेना। ओहोहो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या विश्राम किसमें? थकान लगती है न? तो सो जाते हैं या नहीं? विश्राम करते हैं न? लो विश्राम करो... विश्राम करो... बहुत थकान लगी है। कोई बेटा मर गया हो, लड़का मर गया हो तो दुःख होता है तो विश्राम करो। भाई सो जाओ। थोड़े समय सो जाओ। बहुत दुःख होता है तो फिर विश्राम करते हैं। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि अज्ञान से बँधा जो कर्म उससे उत्पन्न हुआ विकार। उससे ऐसे निकलकर अपने स्वरूप में स्थिर हो तो तेरा खेद मिट जायेगा। आहाहा! वीतरागमार्ग तो ऐसा कठिन है, भाई! समझ में आया? 'धार तलवार की सोह्यली, दोह्यली चौदमा जिनतणी चरण सेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।' देवलोक के देव न रह सके और अज्ञानी भी उसमें रह सके नहीं। आहाहा!

अकेला भगवान आत्मा निर्विकल्प शान्तरस का दल आत्मा पिण्ड-गाँठड़ी है। आत्मा वीतराग स्वभाव की गाँठड़ी है। यह उसमें विश्राम लेना, उसमें ठहरना। उसका नाम त्रिलोकनाथ परमेश्वर चारित्र कहते हैं। है? वीतरागचारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है। वह उसका लक्षण है। बारह तप और पंच महाव्रत वह तो राग लक्षण है। वह तो शुभराग है। वह कुछ वीतरागचारित्र का लक्षण नहीं। वह तो राग में स्थिर है इतना। गजब बात, भाई! यह मुनि परमात्मा की बात करते हैं। मुनि स्वयं

छठवें-सातवें गुणस्थान में हैं। समझ में आया? अन्तर में सप्तम गुणस्थान में रागरहित होकर स्वरूप में ठहरते हैं शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... वह वीतरागचारित्र विश्राम अन्तर में ठहरना, वह उसका लक्षण है। आहाहा! देखो, अर्थ करते हैं। राग में, विकल्प में ठहरते हैं, वह तो अचारित्र है।

बात यह है कि अपना स्वरूप क्या चीज़ है, उसकी महत्ता उसको आती नहीं। पदार्थ महान भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त जिसकी खान में शान्ति पड़ी है, आनन्द है, ज्ञान है, दर्शन है, प्रभुता अनन्त पड़ी है उसमें। ऐसी प्रथम दृष्टि करके, निर्विकल्प दृष्टि तो पहले की। ग्रन्थीभेद। समझे? रागरहित। पश्चात् उसमें जम जाना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, विश्राम लेना, भगवान आत्मा में विश्राम लेना। लो! शीतला क्या कहा वह तुम्हारे? 'शीतल शिला शशीकान्त की जहाँ इन्द्र विशान्ति लहे।' आता है न अपने यह भगवान के समवसरण में? भगवान जब समवसरण में विराजते हैं न? आज दिन है लो! ठीक, आज छठ है न, आज भक्ति वहाँ होगी। जहाँ समवसरण में भगवान विराजते हैं वहाँ बीच में शशीकान्त की शिला होती है। शशीकान्त चन्द्रमा की शीतल किरण ऐसी ठण्डी... ठण्डी... इन्द्र समवसरण में प्रवेश करते हैं, भगवान के दर्शन करने को अन्दर, तो वहाँ थोड़ा विश्राम लेते हैं। विमान में से उतरे हैं न।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शशीकान्त ऐई! राजमलजी! क्या कहते हैं वह। एयरकंडीशन। वह ठण्डा रखता है वह न? गर्म चीज़ रखे तो ठण्डी हो जाए। वहाँ ऐसा नहीं है। भगवान के निकट तो नीचे बाहर घुसते आठ भूमिका में पहले घुसते एक शशीकान्त शिला है शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... तो भगवान के वन्दन करने को आते हैं स्वर्ग में से देव? तो पहले घुसते हैं न अन्दर? वहाँ बैठते हैं, थोड़ी देर विश्राम लेते हैं। फिर सब इकट्ठे होकर भगवान के पास जाते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ अपने शिला बनायी है नाम वह क्या कहलाये? स्थापनानिक्षेप। यहाँ देखी है या नहीं? समवसरण में श्वेत शिला है। बहुत ठण्डी।

शशीकान्त । उसे उपमा दी, नहीं ? कि मानो चन्द्रमा की किरणों से बनायी हो । शशीकान्त—
ऐसा आती है । भगवान की अन्दर है ठण्डी । वह तो पत्थर की शशीकान्त । वह चैतन्य
की शशीकान्त । आहाहा ! यह आत्मा कौन है ? कैसा है ? समझ में आयी नहीं वह बात ।
जिस आत्मा में एकाग्र होकर विश्राम शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... ठहर जाना,
उसको सर्वज्ञ परमेश्वर चारित्र कहते हैं । वह वीतरागचारित्र से आत्मा को केवलज्ञान
होता है । शुभराग तो निमित्तरूप से कहने में आया । वस्तुरूप... समझ में आया ?

सो वीतरागचारित्र के बिना आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की
सिद्धि नहीं है । यह वीतरागचारित्र के... आगमज्ञान और बाह्यतप से आत्मज्ञान की
सिद्धि नहीं है वीतरागचारित्र के बिना । यह रह गया थोड़ा । वह तो सन्धि कर लेना ।
वीतरागचारित्र के बिना... ऐसा लेना थोड़ा शब्द । समझ में आया ? बाकी है न ?
'पूर्वोक्तलक्षणं परमार्थं मनुते जानाति श्रद्धात्ते सम्यगनुभवतीति ।' लो । यह आत्मज्ञान,
अकेला आगमज्ञान और बाह्य तप । क्रियाकाण्ड, महीने-महीने के अपवास और पंच
महाव्रत का भाव, वह बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं । उसमें आत्मा की सिद्धि
अर्थात् मुक्ति नहीं होती । आत्मा की शान्ति नहीं मिलती ।

जब तक निज शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का आचरण नहीं है,... देखो, जब तक
जहाँ तक निज शुद्धात्मा, अपना शुद्धात्मा । देखो, भगवान का आत्मा भगवान के पास
रहा । जब तक निज शुद्धात्मतत्त्व... समझ में आया ? उसका स्वरूप का आचरण नहीं ।
निज शुद्धात्मतत्त्व अन्तर स्वरूप शुद्ध, उसका अन्तर आचरण नहीं, अनुष्ठान नहीं, अन्तर
स्थिरता नहीं, तब तक कर्मों से नहीं छूट सकता । तब तक उसको निर्जरा होती नहीं ।
कर्म की निर्जरा अन्तर शान्ति में ठहरने से होती है । समझ में आया ? यह निःसन्देह
जानना,... लिखा है ? यह निःसन्देह जानना,... सन्देह नहीं करना, शंका नहीं करना कि
ऐसा होगा या कैसा होगा ? यह निःसन्देह जानना,... देखो, यह टीका । दौलतराम की
टीका है या किसकी है भाई यह ? यह दौलतराम की टीका है, हों ! यह सवेरे वाँचते हैं
अपने ? यह एक ही है न ? या दूसरा । एक और दूसरा कहते हैं । दो प्रकार कहते हैं ।
परन्तु वह दौलतराम की यह टीका । एक पण्डित हो गये हैं दौलतरामजी । सुबह में

चलती है, वह दौलतरामजी की छहढाला। और कोई कहे यह कुछ सही है एक। दौलतराम कोई दो-तीन हुए हैं, हों! दिगम्बर सन्त (पण्डित)। होगा कोई। परन्तु वह पण्डित दौलतरामजी गृहस्थाश्रम में थे। उसमें परमात्मप्रकाश की अन्दर टीका जो मुनियों ने बनाया शास्त्र। उसका हिन्दी बनाया है। पण्डितजी ने हिन्दी बनाया है। भगवान के शास्त्र में जो लिखा था, उसको पण्डित दौलतरामजी है पहले। देखो, पहली टीका में शुरुआत में? शुरुआत में है। 'श्री पण्डित दौलतरामजीकृत भाषा टीका' पहली गाथा में है। 'दौलतरामजीकृत भाषा टीका' ऐसा पहले में है। शुरुआत में पहली गाथा है न? पहली। लिखा है। बराबर है। ठीक। छहढाला में दौलतरामजी है, वही दौलतरामजी यह है। अपने सवेरे में चलती है न छहढाला? वह भी पण्डित दौलतरामजी की बनायी हुई है, यह भी संस्कृत में से हिन्दी दौलतरामजी ने बनाया है। बहुत दौलतरामजी गृहस्थ में पण्डित परन्तु बहुत अच्छा हुआ। पहले के पण्डित तो बहुत अच्छे हुए। दो सौ साल पहले तो दिगम्बर पण्डित भी बहुत अच्छे जानपनेवाले।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : समय तो मिलावे उसको मिले। परप्रवृत्ति में पड़े, उसे न मिले।

यहाँ कहते हैं कि आगम ज्ञानादि से आचरण नहीं है, तब तक कर्मों से नहीं छूट सकता। यह निःसन्देह जानना,... लो बाद में विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ७, शनिवार, दिनांक १२-०२-१९६६

गाथा - ८२ - ८३, प्रवचन - १२६

...है देखो। परमात्मप्रकाश। दूसरा भाग, ८२ गाथा। जब तक निज शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का आचरण नहीं है,... यहाँ आया है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका अन्तर में आनन्द का आचरण, जब तक अनुभव आत्मा का आचरणरूप न हो, तब तक कर्मों से नहीं छूट सकता। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम होता है। शुभभाव होता है, उससे पुण्य बँधता है, अशुभभाव हो तो पाप बँधता है। आत्मा, वह शुभ-अशुभभाव से भिन्न, उसका अन्तर में आचरण अर्थात् अनुष्ठान—उसमें एकाग्रता की लीनता हुए बिना कर्म से छूटता नहीं। बन्धन से छुटकारा आत्मा का अनुभव बिना होता नहीं। समझ में आया? मिथ्यात्व का भी छुटकारा आत्मा के अनुभव बिना होता नहीं। अव्रत और प्रमाद, कषाय का परिणाम भी आत्मा के अन्तर के अनुभव बिना उसका नाश होता नहीं।

यह निःसन्देह जानना,... यह स्वयं अर्थकार ने कहा। निःसन्देह निर्णय करना कि यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, उसका आचरण अन्तर में अनुभव किये बिना कभी बन्धन से छूटने की निर्जरा कभी होती नहीं। समझ में आया? जब तक परमात्मतत्त्व को न जाने,... परमात्मा अर्थात् आत्मा परमस्वरूप तत्त्व है, परम आनन्द, परमज्ञान, परमशान्ति, परम स्वच्छता। वस्तु परमस्वरूप आत्मा है। पुण्य-पाप का भाव है, वह तो अपरम अथवा विकृत है। और क्षयोशपम आदि पर्याय भी अपरमभाव है, वह परमभाव नहीं, परमस्वरूप नहीं।

भगवान् आत्मा जब तक परमतत्त्व अर्थात् अपना शुद्धस्वरूप स्वभाव से अभिन्न एकाकार है। उसको न जाने, अन्तर का आत्मा का ज्ञान न करे, न श्रद्धा करे। यह आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में श्रद्धा जब तक न करे, न अनुभवे,... तीन बोल लिये। न उसमें आनन्द का आचरण करे, तब तक कर्मबन्ध से नहीं छूटता। समझ में आया? इससे यह निश्चय हुआ कि कर्मबन्ध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान ही

है, ... बहुत जगत को आत्मा क्या चीज़ है, उसको पहिचानने में दरकार नहीं। बाहर से प्रवृत्ति करना और उससे कल्याण हो जायेगा। कल्याण का जो धर्म करनेवाला है, वह आत्मा कैसा है, वह जाने बिना धर्म किसमें होता है ?

मुमुक्षु : धर्म तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म करने का अर्थ क्या ? धर्म का अर्थ क्या ? कि निर्मल पर्याय। धर्म का अर्थ ? कि निर्मलदशा। निर्दोषदशा, निर्दोषभाव। तो निर्दोषभाव करनेवाला आत्मा है कैसा ? निर्दोषभाव करना है तो निर्दोषभाव कहाँ से आता है ? सदोषभाव तो है तो उसे निर्दोष करना है। निर्दोषभाव कहो, धर्म कहो, पवित्रता प्रगट करना कहो, तो वह पवित्रता-धर्मरूपी दशा करना है तो वह किसमें से आती है। वह तो आत्मा में पड़ी है आनन्द आदि पवित्रता। तो ऐसा परमतत्त्व अन्तर में उसका ज्ञान, श्रद्धा किये बिना उसमें स्थिरता आती नहीं और उसका अनुष्ठान श्रद्धा-ज्ञान बिना शान्ति और धर्म होता नहीं। बराबर है ? धर्म करना और धर्म करनेवाला कौन है, उसको न जानना। उसमें क्या हरकत है ? चीज़ लेने को जाना और क्या चीज़ है, वह पहिचानने में लाना नहीं। यह शाक। शाक-शाक कहते हैं ? क्या कहते हैं ? शाकभाजी। तो शाकभाजी लेने जाता है पाँच रुपये लेकर। क्या सब्जी लेना है ? कि मेरे को खबर नहीं।

मुमुक्षु : पिताजी को खबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिताजी को खबर है, परन्तु लेने वह आया है न।

मुमुक्षु : कर ही डाला है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कर डाला ? भाई ! सब्जी लाओ। पाँच रुपये की सब्जी। क्या सब्जी ? ऐसा कुछ कहा ? कि नहीं, मुझे खबर नहीं। मेरे पिता ने कहा कि पाँच रुपये की सब्जी लाओ। तो पाँच रुपये लेकर आये, देखो। परन्तु क्या लाओ ? परन्तु क्या दे ? पचास प्रकार की चीज़ है। यह कई चीज़ हैं। ज्येष्ठ महीने का अवसर है। तो तेरे पिता ने आम का अवसर है तो करेला मँगवाया है ? कि क्या मँगवाया है ? कि मुझे खबर नहीं। नेमिदासभाई ! क्या लिया उसने ? क्या चीज़ लेनी वह चीज़ की खबर नहीं तो क्या लेगा ? इसी प्रकार आत्मा धर्म करना है तो धर्म कहाँ से किसमें से निकलता है ? धर्म

कहाँ से आता है ? यह आत्मा है। तो आत्मा की तो खबर नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! आत्मा है, उसमें सब अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि पड़ा है आत्मा में। तो उसमें से लेना है, उसमें से निकालना है। शाकभाजी, शाकभाजी की दुकान में मिलती है या कपड़े की दुकान में मिलती है ?

मुमुक्षु : वहाँ सब वस्तु मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सब वस्तु मिले, वहाँ खबर तो हो कि यह चीज़ लेनी है। समझ में आया ? इसी प्रकार मुझे शान्ति। धर्म अर्थात् शान्ति। धर्म अर्थात् निर्दोषता। निर्दोषता हमें करना है। तो निर्दोषता किस पीढ़ी में से निकलती है। आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। निर्दोष तो आत्मा है। निर्दोष भगवान आत्मा अविकारी स्वभाव का पिण्ड चैतन्य दल है, पिण्ड है पूरा। उसका ज्ञान करे बिना, उसकी श्रद्धा करे बिना, उसमें स्थिरता करना कहाँ से आयेगा ? समझ में आया ? यह तो मूल रकम की बात है। अनन्त काल में उसने मूल रकम की पहिचान की ही नहीं।

कहते हैं कि जब तक परमतत्त्व को न जाने,... भगवान अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य का ज्ञान अन्तर में न करे, न श्रद्धा करे, न अनुभवे, तब तक कर्म से नहीं छूटता। इससे यह निश्चय हुआ है... इससे यह निश्चय हुआ कि कर्मबन्ध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान ही है,... देखो, ये आत्मज्ञान में समा गया। आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्म चारित्र तीनों समा गये। समझ में आया ? और शास्त्र का ज्ञान भी आत्मज्ञान के लिये ही किया जाता है,... यह तो शास्त्र कहते हैं कि यह आत्मा वीतराग शुद्ध है, ऐसा विकल्प से परलक्ष्यी ज्ञान से जानना, वह आत्मा का जानना बताते हैं। समझ में आया ? देखो, शास्त्र का ज्ञान भी आत्मज्ञान के लिये ही किया जाता है,... आत्मा कैसा है और कैसे प्राप्त हो ? वह इसके लिये शास्त्र का ज्ञान करने में आता है।

जैसे दीपक से वस्तु को देखकर... दीपक है न दीपक ? वस्तु को उठा लेते हैं,... दीपक में वस्तु देखे कि यह हीरा है तो उठा लेते हैं। और दीपक को छोड़ देते हैं,... वस्तु उठा लेते हैं, दीपक को छोड़ देते हैं या दीपक साथ में रखते हैं ? उसी तरह शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले... देखो, अध्यात्मशास्त्र उनसे शुद्धात्मतत्त्व को

जानकर... बहुत संक्षिप्त में तत्त्व भर दिया है। समझ में आया ? **शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले...** पश्चात् अध्यात्म शास्त्र लिया है। उससे आत्मा जानने में निमित्त। अध्यात्म शास्त्र ही आत्मा जानने में निमित्त होता है। ऐसा बताया, भाई ! आहाहा ! **‘शुद्धात्मतत्त्व-प्रतिपादकशास्त्रेण’** पाठ है टीका में।

हीरा बताने की दुकान हो तो हीरा बतानेवाला जबेरी होना चाहिए न ? हीरा, कुम्हार हीरा को बता सकता है ? उसी प्रकार आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमेश्वर ने अध्यात्म शास्त्र जो कहा, उससे आत्मा जानने में आता है विकल्प से। विकल्प से जानने में आता है। वस्तु नहीं। शास्त्र ऐसा कहता है कि, भाई ! तेरा आत्मा, वह देह से भिन्न है, कर्म से भिन्न है, पुण्य-पाप का राग उठते हैं, उस विकार से भी भिन्न है। और तेरा आत्मा अनन्तगुण से आत्मा अभिन्न है। विकार से भिन्न है और अनन्त-अनन्त बेहद-अपरिमित अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द से भगवान आत्मा एकमेक अभिन्न तन्मय है। ऐसा अध्यात्म शास्त्र बताते हैं। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि **शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले...** जो अध्यात्म शास्त्र भगवान परमेश्वर ने कहा। समयसार, यह परमात्मप्रकाश। यह सब मुनियों ने, दिगम्बर सन्तों ने, परमेश्वर जो सर्वज्ञ हुए, उन्होंने कहा हुआ शास्त्र उन्होंने बनाया है। अपना घर का नहीं। दिगम्बर कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, यह परमात्मप्रकाश के योगीन्द्रदेव, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आदि जो अध्यात्म शास्त्र सर्वज्ञ परमेश्वर हुआ उससे परम्परा से आया, वह शास्त्र बनाया। उस शास्त्र में क्या बताया ? तेरा आत्मा शुद्ध है, अनन्त आनन्दमय है, ऐसा उपदेश करनेवाले। **अध्यात्मशास्त्र उनसे शुद्धात्मतत्त्व को जानकर...** यह बड़े आत्मा पवित्र जिसमें धर्म पड़ा है। धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव पड़ा है। वस्तु आत्मा, उसमें स्वभाव पड़ा है अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि धर्म। उसका ज्ञान कर तो तेरी पर्याय में धर्म होगा। समझ में आया ?

शुद्धात्मतत्त्व का अनुभव करना चाहिए... लो, देखो ! यह जानकर पश्चात् भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर, श्रद्धा-ज्ञान करके पश्चात् स्वरूप में ठहरना चाहिए, अनुभव करना चाहिए, तो अनुभव से मुक्ति होती है, अनुभव से बन्धन का नाश होता

है। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप; अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' बनारसीदास। समयसार नाटक। उन्होंने बनाया है हिन्दी। कहते हैं कि यह आत्मा वस्तु का पहले बराबर शास्त्र से अथवा धर्मात्मा सन्त से, मुनि से या ज्ञानी से कोई भी धर्मात्मा यथार्थ आत्मा का उपदेश शुद्ध बतावे, उससे पहले आत्मा जान लेना। समझ में आया ?

मुमुक्षु : दोनों आये सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र आये तो दोनों। परन्तु कहेंगे। यह शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। वह विकल्प छोड़कर अनुभव करना। उस समय विकल्प रखकर अनुभव होगा, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : विकल्प छूट ही जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छूट ही जाये यदि छोड़ना चाहे तो।

मुमुक्षु : मिलाये बाद में।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलाना कहाँ था ? मिलाना कहाँ ? वह तो विकल्प से, राग से जानने में आया कि आचार्य, शास्त्रकार, ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि आत्मा तेरी चीज़ में तो परम आनन्द पड़ा है न, भगवन्त ! तेरे में तो अनन्त, बेहद शान्ति पड़ी है न। अन्तर में अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है, अनन्त वीर्य है, अनन्त शान्ति है। ऐसा आत्मा को ज्ञानी द्वारा या शास्त्र द्वारा विकल्प से, मन में राग से पहले क्षयोपशम में ख्याल आया कि ऐसा है। पश्चात् ? अनुभव करना चाहिए, शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। यह शास्त्र ऐसा कहते हैं, वह विकल्प वृत्ति राग है। छोड़ देना चाहिए। छोड़े बिना अनुभव नहीं होगा।

पकवान खाते हैं। पकवान कहते हैं न ? मिष्ठान-मिष्ठान। वह मिष्ठान लेने को जाते हैं तो मिष्ठान का भाव पूछते हैं पहले कि एक सेर का कितना है ? तराजू-तराजू। तराजू कहते हैं न ? वह तराजू में तोल करते हैं कि भाई तराजू बराबर है या नहीं ? धड़ा-धड़ा कहते हैं हमारे। क्या कहते हैं तुम्हारे ? धड़ा कहते हैं ? तुम्हारी भाषा बराबर हिन्दी नहीं आती। वह धड़ा करता है कि बराबर है या नहीं ? फिर भाव पूछते हैं।

पश्चात् तोल सेर-पाँच सेर। बराबर है पाँच सेरी? सरकार से रजिस्टर किया है या नहीं? कि साढ़े चार सेर को पाँच सेर तुम मानते हो? तो पाँच सेरी का निश्चित करे, धड़ा निश्चित करे और भाव निश्चित करे, परन्तु ले लिया, फिर ऐसा भाव है ऐसा पूछते हैं? खाते समय वह भूल गया सब। भाव, कितना सेर का भाव और कितना तराजू का तोल, कितना पाँच सेर? खाने लगता है। ऐसे आत्मचीज़ माल, पकवान है। आहाहा! परमतत्त्व भगवान आत्मा, उसको शास्त्र से, गुरु से, ज्ञान से पहले ज्ञान करना। कितनी कीमत की चीज़ है? प्रमाण से क्या जानने में आता है? नय से क्या जानने में आता है? वास्तविक भाव क्या है? द्रव्य योग्यता क्या है? ऐसा पहले जानने में लेना। पश्चात् अन्दर अनुभव करने में विकल्प छोड़ देना। खाते समय वह रटते नहीं कि पाँच रुपये का सेर... पाँच रुपये का सेर... ऐसा जाँचता है?

मुमुक्षु : स्वाद नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाद न आवे? आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा अमृतरस का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसा पहले शास्त्र से, ज्ञानी से जान लिया। जानकर वह विकल्प छोड़ देना। अन्तर में दृष्टि करके अनुभव करना है।

देखो, शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। है? अन्दर में है देखो, 'प्रदीपस्थानीयः शास्त्रविकल्पस्त्यज्य इति' समझ में आया? शास्त्र तो दीपक के समान हैं, तथा आत्मवस्तु रत्न के समान है। लो! रत्न बताने में दीपक आया। रत्न ले लिया, दीपक छोड़ दिया। उसी प्रकार शास्त्र आदि पहले सुनने में निमित्त है, विकल्प है, राग है। भगवान आत्मा अकेला केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द से परिपूर्ण पड़ा है। ऐसा जाना वह विकल्प है, राग है, पुण्य है, पश्चात् उसे छोड़कर अन्तर दृष्टि करके अनुभव करना, वही निर्जरा का कारण है। वही बन्ध का छेदन करने का उपाय भगवान ने कहा है। कहो, समझ में आता है या नहीं? भारी कठिन परन्तु यह सब करना संसार का। उसमें से निवृत्त होकर वापस अभी आत्मा समझो। और आत्मा समझने के बाद फिर विकल्प छोड़कर अनुभव करना। समय कहाँ परन्तु इसमें समय? टाईम मिलता नहीं हमारे टाईम नहीं मिलता। मरने का टाईम मिलता है। बराबर... यह... फू होकर चला जाये अद्धर से। देखो न, कितने मर गये। कितने लोग! अभी तो कितना होता है, देखो

न, क्या कहलाता है ? अकस्मात् । बलुन और फलाना मर गये १३३, ११७ न ! आहाहा ! देह तो नाशवान् स्थिति तो पूरी हो गयी । समाप्त हो गया । जाओ भटकने को दूसरे भव में । जब तक आत्मज्ञान दर्शन नहीं किया, तब तक उसका बन्धन छूटेगा नहीं और मुक्ति का उपाय उसको हाथ में आयेगा नहीं । अब वह गाथा कही । यह सब गाथायें बहुत ऊँची है, हों !

★ ★ ★

गाथा - ८३

अब, देखो ८३वीं गाथा । लोग कहते हैं कि सम्यग्दर्शन विकल्प से... विकल्प से... विकल्प से... विकल्प अर्थात् विकल्प राग । शुभराग होता है, उसमें धर्म मानना, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं । देखो, आगे जो शास्त्र को पढ़ करके भी विकल्प को नहीं छोड़ता,... विकल्प अर्थात् राग, विकल्प शुभ विकल्प । समझ में आया ? यह शास्त्र पढ़े, लाख शास्त्र पढ़े, परन्तु वह तो पर सन्मुख का विकल्प राग है शास्त्र का पढ़ना । वह विकल्प छोड़कर अन्तर में दृष्टि करके अनुभव न करे तो निश्चय से शुद्धात्मा को नहीं मानता...

मुमुक्षु : इतना नहीं होता ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उघाड़ना नहीं, ऐसा किसने कहा ? खाये बिना हाथ धो डालता है ? खाया नहीं और हाथ धोना । शास्त्र से, सत् समागम से पहले सुनना । पहले समझना कि आत्मा है पहले विचारना, श्रवण करना । समझ में आया ? गणधर भी भगवान् के पास सुनते हैं । तीन लोक के नाथ परमेश्वर उसके साथ गणधर बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं । वह भी सुनते हैं । विकल्प है न । जब तक वीतराग न हो, तब तक सुनने का भाव आता है । तो अज्ञानी को तो पहले सुनना ही चाहिए । बराबर शास्त्र क्या कहते हैं ? आत्मा क्या ? विकार क्या ? दुःख क्या ? सुख क्या ? कैसे आत्मा की प्राप्ति होती है ? सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, उसको तो बराबर स्तवन करके निर्णय करना । समझ में आया ?

परन्तु कहते हैं कि ऐसे विकल्प से, राग से निर्णय किया आत्मा का। परन्तु छोड़कर, शुद्धात्मा को नहीं मानता जो कि शुद्धात्मदेव देहरूपी देवालय में मौजूद है,... देखो, भगवान यह आत्मा शुद्धात्मदेव। यह आत्मा स्वयं शुद्ध भगवान देव है। देहरूपी देवालय। यह देहरूपी देवालय इस मन्दिर में भगवान आत्मा विराजता है। आहाहा! इसे कैसे यह भगवान आत्मा... शुद्धात्मदेव, ऐसा कहते हैं। परमपवित्र भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य सिद्ध समान यह आत्मद्रव्य देह में विराजमान है। देवालय में मौजूद है,... देखो, है या नहीं? उसे न ध्यावता है,... उसकी अन्तर दृष्टि करके ध्यान नहीं करता, वह मूर्ख है,... आचार्य दिगम्बर मुनि है। उसको कुछ मूर्ख दुनिया की पड़ी नहीं है। नागा बादशाह से आघा। सत्य मार्ग ऐसे कहने में आता है। उसको कोई लाज नहीं। भाई! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! तुम शास्त्र पढ़कर भी, आत्मा अन्दर में परम देव देवाधिदेव देवालय में विराजता है। देवालय यह है। निश्चय देवालय तो देहदेवालय है। उसमें शुद्धात्म भगवान अनन्तगुण से विराजमान देखो, उपस्थित है। उसे न ध्यावता है, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं— लो! 'सत्थु पढंतु वि होइ जडु' यहाँ तो भाषा... आहाहा!

२१०) सत्थु पढंतु वि होइ जडु जो ण हणेइ वियप्पु।

देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु ॥ ८३ ॥

यह ८३ गाथा बहुत अच्छी गाथा है। योगीन्द्रदेव, दिगम्बर सन्त मुनि ने जंगल में ताड़पत्र पर यह सब लिखा था। पहले क्या कागज-बागज नहीं था। यह कागज तो बाद में आया न! ताड़पत्र में। ताड़पत्ती है न? ताड़पत्र उसमें।

जो जीव... उसका अर्थ अन्दर शब्दार्थ। जो कोई जीव। 'यः' शब्द है न? 'यः' अर्थात् जो जीव शास्त्र को पढ़ता हुआ भी... नहीं पढ़ता शास्त्र और पढ़ता नहीं, उसकी तो बात क्या करना? संसार की बहियाँ जाँचे, उसके देना-लेना उगाही। उधराणी कहते हैं न भैया? क्या कहते हैं? यह पैसा डाले। उगाही? यहाँ हमारे उधराणी कहते हैं। उगाही कहते हैं न? पैसा देते हैं न तो फिर लेना-देना। ऐसा उसमें ध्यान रखे, उसका सब पढ़ ले। उसमें पाप है।

मुमुक्षु : मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मिलता। यह तो पैसा हो तो भी मिलता नहीं कहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि यह संसार के पढ़ने में बहुत होशियार होता है। वह तो मूढ़ है। उसकी बात यहाँ है ही नहीं। **शास्त्र को पढ़ता हुआ भी...** ऐसा लिया आचार्य ने। निवृत्ति होकर शास्त्र पढ़ते हैं, समय लिया। शास्त्र पढ़ने का समय लिया। समय निकाला। संसार में से शास्त्र... पठित्वा 'पठन्नपि' तब शास्त्र पढ़ने का समय लिया या नहीं? कि दुकान में ही घुस गया। धर्मचन्दजी! डॉक्टर में घुस गया पूरे दिन? आचार्य क्या कहते हैं? देखो, दिगम्बर सन्त है मुनि। भावलिंगी आनन्दकन्द में झूलते हैं। विकल्प आया जरा, शास्त्र बन गया शास्त्र से। हम कर्ता नहीं, हम कर्ता नहीं। हम तो ज्ञाता है। वह कहते हैं वीतरागभाव से। किसी के प्रति द्वेष है नहीं, कोई मित्र-सज्जन है नहीं। ज्ञाता है। वह कहते हैं कि अरे प्रभु! तुम शास्त्र भी पढ़ो। समय लिया पढ़ने का।

पढ़ता हुआ भी विकल्प को नहीं दूर करता,... परन्तु ज्ञान में मैं आत्मा ऐसा हूँ, राग ऐसा है, फैसा है—ऐसा विकल्प अर्थात् राग उठता है, वह राग को नहीं छोड़ता। वह मूर्ख है,... जड़ की व्याख्या की। मूल आचार्य तो 'जड़ो' यह विकल्प है, वह जड़ है, अचेतन है। उसमें चेतनपना नहीं। चैतन्य तो ज्ञानानन्द भगवान आत्मा, उसमें वह विकल्प राग का उठा, वह भी जड़ है। तो कहते हैं कि पढ़कर भी क्या किया? वह छोड़कर आत्मा का अनुभव दृष्टि नहीं करते हैं, शास्त्र पढ़नेवाला भी जड़ है, मूर्ख है। आहाहा! कठिन भाषा! दया है, करुणा से बोलते हैं। करुणा है। मुनियों को जगत से करुणा है। तिरस्कार नहीं करते। करुणा, अरे! आत्माओ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्या अच्छा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या अच्छा? कोई अच्छा नहीं। आत्मा के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं। जहाँ तक आत्मा न समझे, वहाँ तक वह विकल्प आया, वह पुण्यबन्ध हुआ। पश्चात् पलटकर पाप हो जायेगा। क्या है?

मुमुक्षु : कुछ अच्छा....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग हुआ। वह शुभराग हुआ पश्चात् पुण्यबन्ध होता है। पुण्यबन्ध होगा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल आंशिक नहीं। आहाहा! चैतन्यसूर्य भगवान आत्मा सूरज है, वह तो। देहदेवल में देवालय में भगवान चैतन्यबिम्ब आत्मा। जैसे स्फटिक की एक प्रतिमा हो, देखो, जैसे देह ऊपर डाल दे। उसी प्रकार आत्मा चैतन्य स्फटिक की प्रतिमा है। उसमें देह का चमड़ा ऊपर पड़ा है। भिन्न भगवान है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्थापनानिक्षेप है। साक्षात् भगवान क्या है वहाँ? वह तो प्रतिमा है भगवान। वह भक्ति, पूजा से तो शुभभाव होता है, शुभभाव होता है पुण्यभाव। भगवान तो स्थापना है। साक्षात् भगवान तो वहाँ विराजते हैं और साक्षात् भगवान यह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो आत्मा को कहा, देखो। वह तो स्थापना निक्षेप है। साक्षात् भगवान है? साक्षात् भगवान सीमन्धर भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। तुम्हारे पिताजी देखा होगा। सेठ यहाँ नहीं हैं दूर हैं दूर, हों! बहुत दूर। ऐसे ... जिज्ञासा होती है कि भगवान ऐसा कहते हैं। यह ऐसे अर्थात् बहुत दूर। जमीन से ऊपर बहुत दूर हैं ऐसे। महाविदेह है न? महाविदेहक्षेत्र है। यह जो भरतक्षेत्र है न? तो महाविदेहक्षेत्र बहुत दूर है। वहाँ भगवान महाविदेहक्षेत्र है न। उसका दो भाग है, एक पूर्व में, एक पश्चिम में। उसमें एक-एक भाग में १६-१६ भाग है। १६-१६। दो में ३२ विजय है भगवान। तो आठ में एक सीमन्धर भगवान विराजते हैं। ऐसे-ऐसे पाँच महाविदेह हैं। एक महाविदेह यहाँ जम्बूद्वीप में। दूसरा घातकीखण्ड में और दो अर्ध पुष्करद्वीप में है। यह ढाई द्वीप है न? तो पाँच महाविदेह में बीस तीर्थकर विराजते हैं अभी। पाँच महाविदेहक्षेत्र में यह भरत जमीन पर, हों! बहुत दूर। बहुत दूर है। पाँच महाविदेह क्षेत्र में, वर्तमान में बीस तीर्थकर भगवान केवलज्ञानपने, अरिहन्तपने विराजमान हैं।

जैसे महावीर भगवान यहाँ समवसरण में अरिहन्तपद में विराजमान थे, ऐसे बीस विहरमान भगवान वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में, वर्तमान उसे विहरमान कहते हैं न ? बीस विहरमान-विहरमान अर्थात् विचरमान । विचरमान अर्थात् वर्तमान । वर्तमान विराजते हैं । मनुष्यदेह है । अभी मोक्ष जाने की देरी है । अरिहन्त हुए हैं, सिद्ध नहीं । शरीर छूट जायेगा, तब सिद्ध होंगे । समझ में आया ? कुछ खबर नहीं होती । घर की सबकी खबर । घर में कितने गद्दे, कितने गोदड़ा, पैसा कितना पाँच-दस लाख है सबकी खबर । सेठ ! पैसे की खबर है या नहीं ? खबर है मैंने पूछा । खबर है न ! बराबर रखे चाबी हाथ में । ब्याज लेने वहाँ जाये एकदम दे ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक ! यह पैसे की हूँफ के कारण हो ? ऐसा कि आजीविका का साधन है । निश्चिन्तता से बैठे हैं, पत्नी-पति दोनों । ऐई... तीन बँगले हैं दो-दो लाख के बड़े पोरबन्दर । कहते हैं कि भाई ! निवृत्ति लेकर यह शास्त्र श्रवण करना, समझना । कहो, समझ में आया ? परन्तु अन्त में वह विकल्प छोड़कर दृष्टि अन्तर में लगकर अनुभव न करे, तब तक मिथ्यात्व और अव्रत और पाप का अथवा पुण्य का बन्धन छूटा नहीं पड़ेगा । छूटा नहीं पड़ेगा । आहाहा ! गजब बात !

बहुत सरस गाथा है, देखो ! 'सत्थु पढंतु वि होइ जडु' आचार्य महाराज तो सख्त कहते हैं । दिगम्बर मुनि है । आत्मध्यान में मस्त है । आत्मा के आनन्द में मस्त । विकल्प आ गया जरा, शास्त्र बन गया वन में । हम कर्ता-फर्ता नहीं । हम तो आत्मा हैं । आहाहा ! अरे ! शास्त्र को पढ़ता हुआ भी विकल्प को... अर्थात् राग को, पढ़ने के राग को अथवा पर सन्मुख के क्षयोपशम के राग को यह नहीं दूर करता,... और स्वसन्मुख नहीं होता, यह परसन्मुख में विकल्प रखकर स्वसन्मुख नहीं होता तो कहते हैं कि जड़ है । अरर ! इतना जानपना तो भी मूर्ख कहते हैं । ऐई निहालभाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई ! यह सब तो वाँचेंगे, समझे कि ओहोहो ! दिगम्बर मुनियों ने करुणा करके किया है । हमारे ऊपर करुणा की थी । आहाहा ! कहो, पिताजी कहे कि

नहीं पुत्र को ? ... गहल-पागल ! समझते नहीं है । कहते हैं कि नहीं ? तो क्या तिरस्कार करना है ? करुणा है-करुणा है । समझ में आया ? वैसे मुनि की करुणा है । क्या कहते हैं ? अरे ! शास्त्र पढ़कर । दूसरी क्रिया की तो बात क्या ? ऐसा कहना है जरा । क्या कहते हैं थोड़ा ? संसार का पाप परिणाम की तो बात कहाँ और दूसरी जो पूजा, भक्ति आदि के पाप में पड़ा हो अकेला, वह तो शुभभाव है । उसकी तो बात ही क्या ? परन्तु शास्त्र पढ़ने में समय निकाला है । आहाहा ! यह बात कहते हैं जरा ।

जिसको शास्त्र पढ़ने का रस है, समय भी है । समय समझे ? समय निकालते हैं शास्त्र श्रावण, मनन करने का । उसकी बात ली है । अकेला बाहर में पड़ा है राग में, पुण्य में, शास्त्र का ज्ञान भी नहीं । उसकी तो बात ही क्या ? उसको तो आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं तो उसको तो धर्म होता ही नहीं । समझ में आया ? ओहोहो ! कथनपद्धति ! 'सत्थु पढंतु' दूसरा पढ़ा हो बाहर का, पूजा, भक्ति, भक्तामरस्तोत्र या अनेक प्रकार के भाव, वह तो एक शुभराग है । शुभराग है पुण्यबन्ध हो जायेगा । परन्तु उससे आत्मा का कल्याण तो नहीं, परन्तु उसको छोड़कर शास्त्र पढ़ने का समय लिया । ऐसा कहते हैं यहाँ तो । जो शास्त्र पढ़ने का समय लेते नहीं उसकी बात तो हम क्या करे ? आहाहा ! समझ में आया ?

यह कहते हैं कि शरीर में—देह में... 'वसंतमपि' रहते हुए भी निर्मल... 'निर्मलं परमात्मनम्' है ? देह में यह आत्मा की बात करता है यह आत्मा । 'निर्मलं परमात्मनम्' अर्थात् निर्मल परमात्मा । निर्मल भगवान (सम्बन्धी विचारना) वह विकल्प है वह राग है । शास्त्र पढ़ने का विकल्प राग है, सुनने का भाव भी राग पुण्य है । वह राग है, पुण्य है, परन्तु उसको छोड़कर देहदेवालय में परमात्मा अन्तर में विराजमान भगवान है, उसकी दृष्टि करके अनुभव नहीं करता, नहीं श्रद्धान में लाता । तो कहते हैं कि मूर्ख है । आहाहा ! भारी बातें ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प पहले छोटे सम्यग्दर्शन होता है । पहले क्षायिक समकित की कहाँ बात है ? समझ में आया ? ... कहते हैं न । वह क्षायिक समकित

कहते हैं न? यहाँ तो विकल्प छोड़े बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। हीरालालजी! क्या? देखो, कहते हैं कि इतना तो भाई! शुभयोग से क्षायिक समकित होता है। शुभयोग अर्थात् शुभ विकल्प राग। यहाँ तो कहते हैं कि विकल्प छोड़े बिना उपशम सम्यक् भी नहीं होता। है या नहीं भैया! कहाँ है? पाठ देखो। पाठ देखो, भैया! नामा मिलाते हैं या नहीं? संसार में नामा नहीं मिलाते? दिवाली आती है न दिवाली? नामा मिलाते हैं कि लाओ तुम्हारे पास इतना लेना है। देखो यहाँ।

आचार्य महाराज क्या कहते हैं? शास्त्र पढ़ने से भी जिसको जानने की, समझने की दरकार नहीं, उसकी तो बात हम क्या करे? वह तो अभी ज्ञानस्वरूप क्या है, वह समझने का विकल्प भी उसके पास नहीं। उसके पास तो दूसरा विकल्प पड़ा है शुभराग। पुण्यबन्ध हो जायेगा। पुण्य से स्वर्गादि मिले। जन्म-मरण का अन्त नहीं होगा। चार गति में भटकेगा। आहाहा! परन्तु यहाँ तो शास्त्र का पढ़ने का रस है, निवृत्ति लेकर शास्त्र पढ़ते हैं, सुनते हैं, वाँचते हैं, परन्तु उस सन्मुख का अभी राग है शास्त्र पढ़ने का भाव वह। वह राग को छोड़कर स्वभाव का अनुभव दृष्टि न करे, तब तक उसको धर्म नहीं। तब तक उसको मूर्ख कहते हैं, ज्ञानी नहीं। आहाहा! गजब शब्द लिया! समझ में आया?

भावार्थ :- शास्त्र के अभ्यास का तो फल यह है कि रागादि विकल्पों को दूर करना,... लो, ठीक! शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। शास्त्र ऐसा कहते हैं, ज्ञानी ऐसा कहते हैं, केवली ऐसा कहते हैं कि भैया! तुम्हारा आत्मा देहदेवालय में विराजमान है, उसको तुम, हमारे सन्मुख का विकल्प जो है, समझने का, विचारने का विकल्प को छोड़कर, तुम्हारे आत्मा का अनुभव करो। यह हमारा कहना है। शास्त्र पढ़ने का फल वह है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह विकल्प परसन्मुख का विकल्प है एकत्व है, वहाँ तक मिथ्यात्व है। विकल्प में राग की एकता न छोड़े और स्वभाव एकता न करे, तब तक आत्मा का दर्शन है नहीं। सम्यग्दर्शन है ही नहीं।

यहाँ क्या कहते हैं मुनि, देखो न! कि वहाँ तक शास्त्र का अभ्यास का फल क्या? शास्त्र पढ़ने का फल क्या? कि रागादि विकल्पों को दूर करना। अन्दर जो वृत्ति उठते हैं रागभाव, पढ़ने का, पढ़ने का वह छोड़कर। **निज शुद्धात्मा को ध्यावना।** देखो! यह शास्त्र ऐसा कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर भी ऐसा कहते हैं और सन्त, दिगम्बर मुनि भी ऐसा कहते हैं कि ये पढ़कर तुम्हारे आत्मा में अन्दर दृष्टि लगाकर ध्यान करो। यह शास्त्र पढ़ने का फल है। जो ध्यान अन्तर दृष्टि न दिया, तेरा शास्त्र पढ़ना सब निरर्थक व्यर्थ है। आहाहा! भारी कठिन। पाठ में है वह सब देखो! मूल पाठ में लिया है न? **‘शास्त्राभ्यासफलभूतस्य रागादिविकल्परहितस्य निजशुद्धात्मस्वभावस्य प्रतिपक्षभूतं मिथ्यात्तरागादिविकल्पं न हन्ति।’** देखो, मिथ्यात्व आदि आया। यहाँ ऐसा है देखो, मिथ्यात्तरागादि विकल्प, ऐसा लिया है। उस विकल्प की व्याख्या यह की। उस विकल्प को न छोड़े, वह विकल्प की यह व्याख्या की। कोई अस्थिरता का विकल्प ऐसा नहीं। मिथ्यात्व वह विकल्प ही यह है। शास्त्र पढ़ने का विकल्प एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व है। आहाहा!

क्या कहते हैं? अभी तो यहाँ मिथ्यात्व में से समकित लाने की बात कहते हैं। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यसूर्य प्रभु, उसका शास्त्र सन्मुख का विकल्प अर्थात् राग से पढ़ा-पढ़ा। दूसरी बात एक ओर रखो। तथापि वह राग है, तब तक स्वभाव की (और) राग की एकताबुद्धि है। वह मिथ्यात्वभाव है। ओहोहो! समझ में आया? यह क्रिया शुरू करते हैं। यह धर्म की क्रिया। क्यों भैया! यह धर्म की क्रिया करते हैं। आहाहा!

निज शुद्धात्मा को ध्यावना। देखो, अपना—निज पवित्र भगवान उसका अन्दर दृष्टि लगाना, वह सर्व शास्त्र का कहना, भगवान का कहना, मुनियों का वह कहना है। यह जब तक न लगावे, तब तक पर सन्मुख का विकल्प जो राग है, उसमें एकत्वबुद्धि और मिथ्यादृष्टि है। ग्यारह अंग पढ़ डाला, नौ पूर्व पढ़े तो भी राग की एकताबुद्धि उसमें है तो मिथ्यात्वभाव ही है। ओहोहो! समझ में आया? संस्कृत है न भैया! देखो, क्या है? तीसरी लाईन। **‘मिथ्यात्तरागादिविकल्पं न हन्ति’** इसके सामने देखो। **‘निजशुद्धात्म-स्वभावस्य प्रतिपक्षभूतं’** है? भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा पवित्र भगवान आत्मा उससे

प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व-रागादि विकल्प। चैतन्यस्वभाव ज्ञानानन्द प्रभु से विपरीत राग, राग में एकत्वबुद्धि वह मिथ्यात्व, वह भी आत्मस्वभाव से विपरीत। यहाँ तो यह बात पहले से करते हैं। आहाहा! कहो, हीराभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा ठपका है, भाई! माँ-बाप उसको—बच्चे को ठपका देते हैं या नहीं? ठपका क्या कहते हैं? ओलंभा। ओलंभा कहते हैं न? ओलंभा कहते हैं। हमारे ठपको कहते हैं। ऐसे मुनि, सन्त, ज्ञानी कहते हैं कि भैया, प्रभु! तेरा आत्मा तो अन्दर में विराजमान है न, भाई! शुद्ध आनन्दकन्द है न? उसकी पर्याय कहाँ से आयेगी, केवलज्ञान कहाँ से आयेगा? समझ में आया? क्या कहा? देखो। शान्ति, चारित्र की पर्याय भी कहाँ से आयेगी? किसमें पड़ी है? आत्मा द्रव्य में पड़ी है। आत्मा वस्तु है, वस्तु भगवान अखण्डानन्द प्रभु। उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन सब पड़ा है अन्दर में। तो ऐसे आत्मा की जब तक विकल्प तोड़कर दृष्टि न करे, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए इस व्याख्यान को जानकर... देखो, इस व्याख्यान को जानकर, ऐसा कहते हैं। **तीन गुप्ति में अचल हो...** देखो, समझे? मन-वचन-काया से लक्ष्य छोड़ देना। ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ यह (कि) भगवान आत्मा, मन से विकल्प में जो शास्त्र का पढ़ना हुआ, उससे रहित होकर, वह विकल्प से रहित हुआ तो मन से रहित हुआ। मन की गुप्ति हो गयी, वाणी की गुप्ति तो है ही। देह की गुप्ति भी है। तीनों की गुप्ति हो गयी। क्या कहते हैं? जब चैतन्य में मन लगाया। शुद्ध भगवान आत्मा परमपवित्र धाम, ऐसा पहले विकल्प अर्थात् राग से पढ़ लिया था। वह राग छोड़कर, लक्ष्य छोड़कर चैतन्यस्वभाव में दृष्टि लगायी तो मन का विकल्प छूट गया तो मनगुप्ति हो गयी। वाणी तो है ही नहीं। तो वाणीगुप्ति हो गयी। देह की गुप्ति हो गयी। देह का लक्ष्य है नहीं। अन्तर आत्मा में दृष्टि पड़ी है। आहाहा! क्या देखो?

तीन गुप्ति में अचल हो... अर्थात् ऐसी दृष्टि लगाना कि मन-वचन-काया में कुछ शरीर, बरीर ऐसा होता है न? कि इस शरीर में ठीक नहीं पड़ता, ऐसा नहीं ठीक पड़ता

ऐसा लक्ष्य छोड़ दे उस समय। वाणी बोलना छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। अन्तर में वह विकल्प आता है पढ़ने का ऐसा ज्ञान... ऐसा ज्ञान... वह छोड़ दे। तो मन, वाणी, देह तीन से रहित होकर आत्मा की दृष्टि लगाना, यह उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है।

मुमुक्षु : मनगुप्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनगुप्ति क्या ? मन की तो बात की पहले यह। शास्त्र के पढ़ने का मन का विकल्प। वह विकल्प छोड़े, तब मन की गुप्ति हो गयी।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन, परन्तु कठिन का अर्थ क्या ? देह तो यह देह है। मिट्टी है देखो पड़ा है। वाणी यह तो जड़ है। वह तो बन्द होगी अन्तर विचार करके। अब वह विकल्प था अन्दर। तो शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा पवित्र है, शुद्ध है—ऐसे विकल्प उठते हैं राग। वह मन के साथ सम्बन्ध है। उसे छोड़कर अन्दर में एकाग्र हुआ। तीनों गुप्ति हो गयी। आहाहा! भाई! यह तो परमानन्द की मुक्ति की बात है। वह कहीं साधारण नहीं। पाँच, पचास हजार, लाख प्राप्त करने की मेहनत करते हैं। ... न तो मिलते हैं। मर जाये मेहनत करके मजदूरी पूरे दिन। आठ-आठ घण्टे, दस-दस घण्टे दुकान पर बैठकर। हैरान-हैरान। धूल में। वह तो आत्मा...

मुमुक्षु : तकिया ऊपर बैठे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तकिया ऊपर बैठे तो मजदूरी सब करते हैं वहाँ। ...भाई! वे नानाभाई कहते, इनके पिताजी। अठारह घण्टे काम करते वहाँ कहा एक बार। अठारह घण्टे काम करते चौबीस घण्टे में, कहे। फिर यह दो पुष्पा मिले फिर ऐसा कहते। पुष्पा अर्थात् यह पैसा। ऐसा कहते। समझ में आया ? वह तो पुण्य के कारण मिलता है, कुछ परिश्रम से नहीं मिलता। यह आत्मा तो परिश्रम से, पुरुषार्थ से मिलता है। वहाँ कोई कर्म-फर्म से आत्मा धर्म नहीं होता। कर्म के कारण से धर्म की प्राप्ति नहीं। बाहर की प्राप्ति कर्म से होती है। पुण्य हो तो अनुकूल पैसा, लक्ष्मी, निरोगता। पाप हो तो सारोगता निर्धनता इत्यादि। बाहर की चीज़ के साथ सम्बन्ध है। आत्मा के धर्म के लिये कर्म की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। बिल्कुल आवश्यकता नहीं। आहाहा! यहाँ तो मन का

विकल्प छोड़ने के लिये दो गुप्ति तो हो भाई! ऐसा कह दिया। यह तो दिक्कत, वह मन के साथ थी। शास्त्र पढ़ने का विकल्प, वह बात करते हैं। समझ में आया? देह तो देह है। यहाँ पड़ा है। वाणी भी बन्ध है। शास्त्र पढ़ने का विकल्प है, ऐसा आत्मा है... ऐसा आत्मा है... ऐसा आत्मा है... भगवान ने ऐसा कहा, शास्त्र से कहा। मन का विकल्प था, मन के साथ सम्बन्ध। अब वह लक्ष्य छोड़कर यहाँ सम्बन्ध कर दे, तीनों गुप्ति हो गयी, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ सम्यग्दर्शन की बात है। यहाँ तो मन के विकल्प छोड़ने की बात की वहाँ। समझ में आया?

जिसका फल अनन्त ज्ञान, केवलज्ञान और जिसकी सादि-अनन्त मुक्ति, अनन्त आनन्द। बापू! उसका कार्यकारण कितना होना चाहिए? आहाहा! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' ऐसी मोक्षदशा का कारण तो ऐसा है। अन्तर भगवान आत्मा को अन्तर स्पर्शना। वह राग को स्पर्शते हैं पुण्य को-विकल्प को। कहते हैं कि वह तो एकात्मबुद्धि मिथ्यात्व है। समझ में आया? उसको छोड़कर, स्वभाव चैतन्यमूर्ति महान पदार्थ ऐसा अन्तर में माहात्म्य लेकर, विकल्प को छोड़कर वीर्य का उल्लास सम्बन्ध स्वभाव के साथ लगा दे। आहाहा! देखो, यह सम्यग्दर्शन विकल्प तोड़ने से होता है। ऐसी यहाँ से शुरुआत किया ८३ गाथा में। समझ में आया? शास्त्र पढ़ने से व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित चौथे गुणस्थान से यहाँ इनकार किया, भाई! अरे भगवान! अरे! जगत के प्राणी को मुश्किल से अवसर मिला, मनुष्य देह थोड़े काल। कितने काल रहना? फू होकर उड़ जायेगा। यहाँ कितना काल? पाँच-पचास में कितने तो ५०-५०, ६०-६० वर्ष तो देह के चले गये हैं। ५०-६० तो रहना है नहीं। भाई!

मुमुक्षु : कब हो जायेगा ऐसा कुछ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस क्षण में होगा। मेल है? देह यह तो जड़-मिट्टी है। ऊं..हुं...हुं... ऐसे हो गया फू लो चला। हार्टफेल हो गया। क्या हुआ? कौन जाने? भाई साजनरवा बैठा था। साजनरवा अर्थात्? आराम से। आराम से ऐसा कहते हैं। आराम से

बैठे थे। लो! ऐसा कहे। आराम से बैठे थे। कुछ नहीं था। लो यह तुम्हारे नहीं? गुणवन्तभाई! बालुभाई। आराम से स्नान किया, यह किया, यहाँ आने का ... लिया था। समझे? पति-पत्नी दोनों थे। एक लड़की थी, उसकी तो शादी कर दी पचास हजार खर्च करके। बाद में यहाँ आना था। दर्शन करके गये। यहाँ रायपर। रायपर गुजर गये न? स्नान करके इस प्रकार ऐसा... पड़ गया। समाप्त हो गये। लो यहाँ मकान लेकर गये थे। यहाँ आना है। दोनों थे। पाँच-छह लाख रुपये उसके पास थे। समझ में आया? क्या करे रुपया? और क्या करे धूल? वे पाटी बाँधते हैं जरा पाटी समझे न? ... कुछ नहीं। क्यों गुणवन्तभाई! साथ में थे न कोई कौन था? ताराचन्दभाई थे? हाँ। यहाँ तो राजकोट मांगलिक सुनकर गये थे, लो। अब हमारे निवृत्ति लेकर व्यापार-धन्धा छोड़ देना है। अब पैसा-बैसा है, आजीविका है। अब कुछ करना नहीं। चलती दुकान थी, हों! सब बन्द कर दिया। पति-पत्नी दोनों थे, पैसे बहुत थे। देह की स्थिति की खबर है कब छूटेगी?

मुमुक्षु : इतनी खबर हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु खबर हो तो क्या? रोयेगा, पहले से रोयेगा। कि अरेरे! मुझे आयी। अब दो दिन में मेरा मरण है। परन्तु अब करना यह तेरा। ऐई! धर्मचन्दजी! यह डॉक्टर-बॉक्टर क्या हाल रखेगा? डॉक्टर मर जाते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आपघात। वे तो और अच्छे में अच्छा डॉक्टर। परन्तु मूर्ख में क्या मूर्खाई। आहाहा! उलझन होगी कुछ। दूसरा क्या? कुछ व्यवस्थितता नहीं होगी। ऐसे के ऐसे अनादि अज्ञान और अनादि मरण किया है। अनन्त जीवों ने। नयी क्या बात है? एक यह आत्मा अखण्डानन्द प्रभु। उसको रागरहित होकर सम्यग्दर्शन किये बिना उसका परिभ्रमण कभी मिटेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

देखो, अचल हो परमसमाधि में आरूढ़ होके... आत्मा शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आत्मा शान्ति का सागर भगवान, वह परमसमाधि। निजस्वरूप का ध्यान करना। लो, यह समाधि हों! वह बाबा लगावे, वह नहीं। आहाहा! 'समाहिवरमुत्तमं

दिंतु' नहीं आता ? लोगस्स में आता है । 'समाहिवर मुत्त...' परन्तु कौनसी समाधि ? वह बाबा लगावे ऐसे करके, वह नहीं । आत्मा अखण्डानन्द पूर्णानन्द प्रभु में दृष्टि लगाकर एकाग्र होना, वही परमसमाधि है । उसका नाम परमशान्ति है । परमसमाधि में... समझ में आया ? **आरूढ़ होके निजस्वरूप का ध्यान करना** । अपने स्वरूप का विचार ध्यान अन्तर (में) करना । दूसरे का नहीं । भगवान का विचार करना वह भी विकल्प है । अपने स्वरूप का अन्दर ध्यान करना, वही सारे शास्त्र कहने का फल है और उससे आत्मा की मुक्ति और निर्जरा होती है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण ८, रविवार, दिनांक १३-०२-१९६६

गाथा - ८३ - ८४, प्रवचन - १२७

परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर कृत, दूसरे भाग की ८३वीं गाथा है। क्या कहते हैं? कि आत्मा का निजशुद्धात्मा का ध्यान... यह बात यहाँ आयी। शास्त्र पढ़कर भी शास्त्र का सार वह है कि आत्मा अपना शुद्धस्वरूप-सन्मुख दृष्टि करके एकाग्रता होना, वही सर्व शास्त्र का तात्पर्य फल है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा में धर्म रहा है। आत्मा जो शान्ति निर्दोषता अर्थात् पवित्रता करना चाहता है, वह सब पवित्रता आनन्द, शान्ति आदि आत्मा में ही है। आत्मा में शान्ति, आनन्द आदि ध्रुवपने, शुद्धरूप परिपूर्ण पड़ा है। तो शास्त्र... वह वस्तु का स्वभाव जो धर्म, उस सन्मुख झुकने को आचार्य कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी शुद्ध आनन्द, उस ओर की एकाग्रता करके उसकी भावना अर्थात् शुद्धता प्रगट करना, वही वास्तविक, अनन्त काल में नहीं किया हुआ ऐसा धर्म है। इसमें न रह सके तो दान, दया, भक्ति, पूजा ऐसा परिणाम शुभभाव होता है। शुभभाव होता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। आत्मा का वीतरागी परिणाम प्रगट किये बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। जन्म-मरण का चक्र चौरासी के अवतार, चाहे तो स्वर्ग का अवतार हो या चाहे तो मनुष्य का हो, तो उसके पीछे निगोद और पशु का भी अवतार पड़ा ही है। समझ में आया? चौरासी के अवतार के कारण ही मिथ्या भ्रम अज्ञान है। यह अवतार निषेधने अथवा अवतार की उत्पत्ति न करना हो तो आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्दस्वभाव वीतराग मूर्ति आत्मा है, उसकी प्रथम दृष्टि करके उसका अनुभव करना, वही करनेयोग्य हो तो वही कर्तव्य है। समझ में आया?

देखो, यह आया। परमसमाधि में आरूढ़ होके निजस्वरूप का ध्यान करना। बात तो वही है। आहाहा! जो कोई वस्तुस्वभाव है, वह तो अपना अपने में है। कोई बाहर से तो आता नहीं। परन्तु उसको माहात्म्य अपने स्वरूप का न आवे, तब बाहर

फिरते हैं। 'धर्म धर्म सबको कहे धर्म न जाने मर्म।' धर्म तो आत्मा चाहे जो पुण्य परिणाम करे, चाहे तो शास्त्र का पढ़ना करे। हो, पुण्य होता है, राग मन्द से उसमें पुण्य बँधता है। भगवन्त! उसमें जन्म-मरण का अन्त नहीं। जन्म-मरण का अन्त आये बिना उसको कभी कहीं शान्ति के सुख है नहीं। तो कहते हैं कि एकबार प्रभु आत्मा का स्वरूप... यह देह तो भिन्न मिट्टी है, उससे भिन्न है और पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उससे भी चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द वह भिन्न है। उसकी दृष्टि करके ध्यान लगाओ, एकाग्र हो, वही कल्याण करने का उपाय है। आहाहा!

लेकिन जब तक तीन गुप्तियाँ न हों,... जब तक स्वरूप में एकाग्रता न हो, परमसमाधि न आवे, (हो सके), तब तक विषय कषायों के हटाने के लिये... परजीवों को धर्मोपदेश देना,... सेठ! अपने में अशुभभाव उत्पन्न न हो और ऐसा शुभराग है तो उपदेश (आता है कि) कि अरे जीवो! मुझे आत्मस्वभाव शुद्ध रुचा है। तुमको रुचते है? वह कहेंगे। समझ में आया? तो घर में कोई मेहमान आते हैं मेहमान। मेहमान कहते हैं न? तो अपनी प्रिय भोजन जो जो चीज़ है, उसको देते हैं कि हमारा प्रिय दूधपाक है। अपने दूधपाक कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? खीर? खीर परन्तु हमारे दूधपाक कहते हैं। दूधपाक होता है न? ... की चीज़ होती है। हम खाते हैं तो उनको देते हैं। आचार्य महाराज कहते हैं कि अपना स्वरूप शुद्धस्वरूप पुण्य-पाप के रागरहित जिसको रुचि में आ गया है और स्थिर हो सके नहीं, तब उसको विकल्प तो आता है शुभराग। उस बहाने भावना तो यह है कि शुद्धात्म भावना स्मरण 'दृढीकरणार्थ' अर्थ ऐसा है, भाई! आत्मा अन्तर में ऐसी है... ऐसी है... ऐसी चीज़ है, ऐसा उपदेश करना। जिसमें शुद्धात्मा की एकाग्रता का स्मरण हो ऐसा दृढ़ करने को ऐसा उपदेश दूसरे को कहे। समझ में आया? जिसको अनन्त काल में पुण्य-पाप के भाव की मिठास और उसके फल की मिठास लगी है, वह तो जहर है।

मुमुक्षु : करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, बस यह कहते हैं। कहते हैं, भाई! प्रभु! तेरे स्वरूप में तो अमृत पड़ा है न? तो अमृतस्वरूप से विरुद्ध जो भाव उत्पन्न होते हैं, शुभ हो या

अशुभ। भगवान! यह आत्मा की शान्ति से विरुद्ध भाव है न! उसकी रुचि जिसको हट गई और आत्मा की रुचि हुई। वह आत्मा में ठहर न सके तो वह शुद्धात्मा की भावना का स्मरण हो, ऐसी बात करे दुनिया के पास। आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी है। उपदेश में भी ऐसा है, ऐसा कहते हैं। दूसरे को विकल्प आता है, शुभराग होता है उपदेश में। उपदेश में शुभराग होता है। वाणी तो जड़ है। वाणी तो निकलती है, वह जड़ है। उसमें कुछ अपना कर्तव्य है नहीं, वह वाणी परमाणु उठता है। परन्तु अपने स्वरूप में ठहर न सके तो शुभराग से वास्तविक तत्त्व में कैसे एकाग्र हो? ऐसी बात दुनिया को कहे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहा नहीं? वह उपदेश शास्त्र स्वाध्याय हुआ न! वह जाने परन्तु ऐसा आमन्त्रण करे कि भैया! तुम आत्मा है न? तुम्हारे में आनन्द पड़ा है न, भगवन्त! हम भी हमारे आत्मा में आनन्द है। उसकी हमको रुचि है और रुचि है परन्तु हम स्थिर नहीं हो सकते। तो स्थिर न हो सकते हैं जब, तब ऐसा विकल्प आता है, दुनिया को ऐसा कहे भाई! तेरे आत्मा में आनन्द है न, प्रभु! वह पुण्य-पाप का राग है न, भैया! वह तो दुःख है। समझ में आया? उससे हटकर आत्मा में स्थिर कैसे हो? ऐसा उपदेश आता है। उस बहाने अपने को उपदेश देते हैं। आयेगा अभी। आहाहा! समझ में आया?

मुख्यताकर अपने जीव ही को सम्बोधना। है? यह तो अन्दर ठहर नहीं सके तो विकल्प में यही उपदेश निकलता है उसको, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह आत्मा महान आनन्द सागर प्रभु आत्मा है, अतीन्द्रिय स्वरूप। भगवन्त! तुम उसमें रुचि होकर ठहरना चाहते हो तो हम हमारी चीज़-प्रीतिवाली चीज़ आपको आमन्त्रण करते हैं, ऐसा कहते हैं। जिसको जो रुचता है, वह बात दुनिया को कहे। रुचती है भैया! आत्मा वस्तु है न, भाई! विश्राम ठाम, विश्राम लक्षण, आत्मा में विश्राम होना, पुण्य-पाप के राग से हटकर, वह महा विश्राम का धाम तुम्हारा आत्मा है। ऐसा करके अपने आत्मा को सम्बोधते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! आया था न उसमें,

नहीं ? 'शुद्धात्म विश्रान्ति लक्षण वीतरागचारित्र' पहले में आये। भाई ! यह तो वीतराग मार्ग है। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ हुए और वीतराग हुए। तो सर्वज्ञ हुए और वीतराग हुए। वह तो सर्वज्ञ और वीतराग होने की बात करे। सर्वज्ञ परमेश्वर कैसे हुए ? अल्पज्ञ को छोड़कर, राग को छोड़कर सर्वज्ञ को वीतराग हुआ। समझ में आया ?

परमेश्वर तीर्थकर या केवली हो। जो केवलज्ञान पाया, वह तो अपना अल्पज्ञता को छोड़कर सर्वज्ञ हुए स्वभाव के आश्रय और राग विकल्प पुण्यादि को छोड़कर वीतराग हुए। तो सर्वज्ञ वीतराग हुए उसकी दिव्यध्वनि में वही आया। और सन्त, ज्ञानी भी वही बात कहते हैं कि भैया ! भगवान आत्मा तेरा धर्म धरनेवाला तो भगवान आत्मा तेरे पास तू ही है। समझ में आया ? उसमें तेरी रुचि लगती है और रुचि लगे तो रुचि कर और उसमें स्थिर हो। ऐसा अपने में स्थिर न हो सके, तब धर्मी जीव दूसरे को ऐसा उपदेश देकर अपनी शुद्धात्मा की भावना का स्मरण ज्ञान में दृढ़ करने को ऐसा करते हैं। आहाहा ! गजब बात !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहारज्ञान हुआ न ? परसन्मुख लक्ष्य है उतना। वह कहाँ अन्दर एकाग्रता है ? वह विकल्प इतना आया, यह पर को कहते हैं, इतना पर सन्मुख का लक्ष्य है। वह परालम्बी ज्ञान हुआ न इतना ? और उसमें भी वह दृढ़ करते हैं। परलम्बी में दृढ़ वह करते हैं कि आत्मा शुद्ध भगवान में एकाग्र हो, मैं भी एकाग्र होने का अभिलाषी हूँ। मैं एकाग्र न हो सकूँ तो तुमको उपदेश करता हूँ। यह बहाने भी शुद्धात्मा की भावना का ही स्मरण करते हैं। यह तो परमात्मप्रकाश तो ऐसी चीज़ है। तैयार लड्डू बनाकर दिया है। खाओ कहे। समझ में आया ? ऐसा योगीन्द्रदेव ने जंगल में दिगम्बर मुनि वनवास में ताड़पत्र पर लिख दिया। समझो तो समझो। हमारे क्या है ? तुम्हारी समझ से हमको लाभ नहीं और हमें विकल्प आया समझाने में, वह भी हमारी एकाग्रता का कार्य नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा, प्रभु ! तेरे पास सर्व समृद्धि ऋद्धि तेरे पास पड़ी है। ऐसा आत्मा मुझे रुचा है, मेरा प्रेम मेरे आत्मा पर है। मैं आत्मा में वर्तमान में स्थिर हो

सकता नहीं तो विकल्प में पर के सम्बोधन में ऐसा मैं कहता हूँ, भैया! वह शुद्धात्मा है न, वीतराग स्वभावी प्रभु! उसमें तुम दृष्टि लगाओ। वह प्रेम करनेयोग्य चीज़ वही है। ऐसा उपदेश करे। कहो, भीखाभाई! आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग, वह कहीं वीतरागभाव से शुरु होता है या राग से शुरु होता है? आहाहा! दुनिया को राग का प्रेम है, उसको वीतराग मार्ग का प्रेम नहीं लगे। आहाहा! अरर! यह एकदम! कि भाई! अनन्त काल में तूने नहीं किया तो वह नहीं किया है। अपना स्वभाव।

‘श्रुत परिचित अनुभूता सव्वस वि कामभोग बंध कहा।’ भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं समयसार में। भाई! राग करना और राग भोगना, प्रभु! यह बात तो तूने अनन्त बार सुनी है। उसमें क्या नवीन है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्यभाव भी करना और उसका फल भोगना, वह श्रुत परिचित है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं, वह बात तो तूने अनन्त बार सुनी है न, प्रभु! वह अनन्त बार तेरे परिचय में भी आ गयी है और उसका अनुभव भी तुझे, राग का अनुभव भी अनन्त बार आ गया, भाई! आहाहा! परन्तु ‘सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा एतस्स ओलंभो नव एतस्स’ भगवन्त! ये राग से (भिन्न) भगवान् आत्मा, पुण्य के विकल्प से भिन्न ऐसी बात, प्रभु! तूने सुनी नहीं अनन्त काल में। आहाहा! यह बात सुनी नहीं और कान में पड़ी तो उसका अभ्यास किया नहीं। समझ में आया? आत्मा अखण्डानन्द प्रभु उसे राग से भिन्न करने का तूने अभ्यास किया नहीं और अभ्यास करे बिना अनुभव हुआ नहीं। वह बात तुझे रह गयी है। बाकी तो अनन्त बार शुभाशुभभाव किया और शुभाशुभभाव का फल यह संसार। विषतरुफल ऐसा कहते हैं भगवान् तो। यह कर्म का बन्ध का फल जहर के वृक्ष का फल है। विषतरुफल ऐसा पाठ है समयसार में। कर्मबन्धन का फल जहर के वृक्ष का फल है। आहाहा! भाई! परन्तु मिठास लगे न ऐसे। पुण्य के फलरूप से ऐसे दो-पाँच करोड़ की पूँजी, लड़का आज्ञाकारी हो। कह्यागरा क्या कहते हैं? आज्ञा माननेवाला। भाई! तुम्हारी भाषा में अन्तर हो न थोड़ा। हमारे कह्यागरा कहते हैं न? आज्ञा माननेवाला हो, लड़कियाँ भी अच्छी हों, स्त्री भी अच्छी हो। सुखी। भगवान्! यह सुख क्या है इसमें? वह तो राग और दुःख की दशा में अज्ञान से मूढ़पने दुःख को सुख तूने मान लिया है। समझ में आया? ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही है, ऐसा जिसको समझ में आया कि

आत्मा राग से भिन्न है, उसमें स्थिर होना, ध्यान करना, एकाग्र होना, वही चारित्र है। उससे आत्मा की शान्ति मिलती है। वह जबतक स्थिर न हो, उपदेश में ऐसी बात करे। समझ में आया? यह व्यवहार ज्ञान ... हुआ न? व्यवहार पर का अवलम्बन है, इतना व्यवहार ज्ञान है न? निश्चयज्ञान तो स्व में एकाग्रता, वह है। आहाहा! परन्तु व्यवहार ज्ञान में बात वह लाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? खींचकर परन्तु तात्त्विक बात ऊपर वह बात ले। भैया! आत्मा वीतरागबिम्ब है न अन्दर? वीतरागमूर्ति चिदानन्द देहदेवालय में भिन्न है। यह विकार है एक क्षणिक, उससे एकदम निराला प्रभु आत्मा है। उसकी तुम रुचि करो, पुण्य-पाप की रुचि छोड़ो और स्वरूप की रुचि करके स्थिर हो। ऐसी भावना, शुद्ध भावना के स्मरण के लिये ऐसा उपदेश ज्ञानी जगत को करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना ज्ञान, वह शुद्ध की ओर ढलता है, परालम्बी ज्ञान। परसत्तावलम्बी ज्ञान इतना होता है न। राग मन्द हो इतना ज्ञान, इसलिए क्षयोपशम होता है न! स्वज्ञान नहीं। आहाहा! स्वज्ञान तो अन्तर में जितना ज्ञानानन्द में लीन होकर ज्ञान का, आनन्द का वेदन-स्वाद लेना, आनन्द का स्वाद लेना। उसमें ज्ञान की वृद्धि है। आत्मा के ज्ञान की वृद्धि उसमें है। कहो, प्रवीणभाई! समझ में आया? आहाहा! परन्तु गजब बात कहे।

वे दीपचन्दजी हुए हैं न? दीपचन्दजी साधर्मी। यह चिद्विलास, अनुभवप्रकाश के करनेवाले। दिगम्बर गृहस्थ धर्मी, साधर्मी हुए हैं। बहुत अच्छा। दो सौ वर्ष पहले अभी तो। वह चिद्विलास, आत्मावलोकन। आत्मा का अवलोकन बनाया, उसमें ऐसा एक श्लोक रखा है कि मुनि अपना स्वरूप पुण्य-पाप के रागरहित वीतरागस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें ही रमते हैं। परन्तु मुहु मुहु। उपदेश करते हैं मुनि तो वीतराग भाव का ही उपदेश करते हैं। समझ में आया? वह बात यहाँ कहते हैं, लो। समझ में आया? विकल्प में आती है बात तो वीतराग। भाई! आत्मा राग से, विकल्प से भिन्न है, ऐसा अनुभव करो, ऐसी बात वीतरागी सन्तों के मुख में ऐसे निकलती है। समझ में

आया ? है न वह आत्मा का अवलोकन। आत्मावलोकन पुस्तक है। वह दीपचन्दजी कृत। यह अनुभवप्रकाश के करनेवाले। दिगम्बर महान पण्डित गृहस्थ अध्यात्म पुरुष हुए हैं। समझ में आया ?

यहाँ दूसरी पद्धति से बात करते हैं कि जिसको वीतरागभाव अपने रुचा है, अपना स्वरूप में स्थिर होना वही ठीक है। वही बात करे दुनिया के पास। दीपचन्दजी हुए हैं। उन्होंने पुस्तकें बहुत बनायी हैं। समझ में आया ? लो पृष्ठ वही निकला। कौनसा पृष्ठ होगा ? देखो, गुरु अधिकार, वह पृष्ठ ही निकला। पृष्ठ क्या होगा ? यह डोरी दूसरे में है, हों !

वियरायं वियरायं, जियस्य णिय ससरुओ वियरायं।

मुहु मुहु गणदि वियरायं, सो गुरुपयं भासादि सया ॥ २ ॥

यह श्लोक बनाय है। दीपचन्दजी गृहस्थाश्रम में थे, स्त्री-कुटुम्ब था, परन्तु उनकी दृष्टि आत्मा पर थी, वीतराग दृष्टि थी। वह कहते हैं, देखो ! जीव का निजस्वरूप वीतराग है, ऐसा बारम्बार कहता है, वही गुरु पदवी को शोभित होता है। देखो, यह श्लोक है। गुरु अधिकार। है ? शब्द है न ? बड़ा शब्द है। देखने में आता है। परन्तु यह बहियाँ मिलाना चाहिए या नहीं ? क्यों भैया ! बहियाँ देखते हैं या नहीं ? कि भाई ! हमारे बहियों में ऐसा नामा है, हमारे में देखो उसने सवा लाख है। तुम्हारे सवा लाख में पाँच हजार कम है, ऐसा कैसे ? मिलान करो, मिलान करो। क्या कहा देखो, जीव का निजस्वरूप... जो है। 'वियरायं' वीतराग है,... पुण्य-पाप का राग। देह-वाणी तो कहीं रह गयी, यह तो धूल-मिट्टी है; परन्तु आत्मा वह सम्यग्दृष्टि जीव है साधर्मी जीव, हों ! दीपचन्दजी गृहस्थाश्रम में। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी थे। समझ में आया ? तो कहते हैं कि जीव का निजस्वरूप वीतराग है... जिसमें पुण्य-पाप का विकल्प भी स्वरूप में नहीं है। ऐसी दृष्टि करो और उसमें जो मुनि है, वह वीतराग भाव में स्थिर है। वह बारम्बार कहते हैं। 'मुहु मुहु' शब्द पड़ा है न ? 'मुहु मुहु' बारम्बार। वही गुरु पदवी को शोभते हैं। लो ! वीतरागभाव... वीतरागभाव... वीतरागभाव... वह यहाँ कहते हैं, देखो !

उपदेश के बहाने से मुख्यताकर अपने जीव ही को सम्बोधना। समझ में आया ?

कि पर को उपदेश देते अपने को समझावे। वीतरागभाव। बहुत सरस आत्मावलोकन है, हों! समझ में आया? देखो, स्थिरीभूत करके जब किसी को उपदेश भी देते हैं तो अन्य सब छोड़कर जीव के एक निज वीतरागस्वरूप को ही बारम्बार कहते हैं। देखो, उनके अन्य कुछ अभ्यास नहीं है, यही एक अभ्यास है। हिन्दी है, हिन्दी। मुनि को तो एक ही अभ्यास है। पुण्य-पाप का रागरहित वीतरागस्वभाव... वीतरागस्वभाव... वीतरागस्वभाव... आनन्दस्वभाव... शुद्धस्वभाव... निर्विकल्पस्वभाव... उसमें आनन्द में रहना, अतीन्द्रिय आनन्द में रहना, वही स्वभाव। वही बात करते हैं दुनिया को। बड़ी व्याख्या है पूरी, हों!

देखो, स्वयं भी अन्तरंग में स्वयं को वीतरागरूप अभ्यास करते हैं और बाह्य में भी जब बोलते हैं, तब आत्मा का वीतरागस्वरूप है,... वीतरागस्वरूपी बोल बोले हैं। ऐसा वीतराग का उपदेश सुनते ही निकट-भव्य को निःसन्देहरूप से निज वीतरागत्वरूप की सुधि होती है। सुधि होती है। आहाहा! वीतरागपना बताने से, सुननेवाले को वीतराग निजस्वरूप की सुधि होती है। इसमें संशय नहीं है। जिस साधु के वचन में ऐसा वीतराग का ही कथन है, उसे जैन साधु को ही निकटभव्य गुरु कहते हैं,... यह श्लोक बनाया है, उसने आत्मावलोकन उसका नाम है।

मुमुक्षु : न रास आवे तो दूसरे ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! विश्राम तो यह है ऐसा कि एक ही माँडी है। साधर्मी गृहस्थाश्रमी था। उसने श्लोक बनाया। यह अच्छी पुस्तक है। चिद्विलास है, आत्मानुभव है, एक भावदीपिका है। समझ में आया? दूसरा क्या है? अनुभवप्रकाश है। समझ में आया? वह बताया, देखो! ओहोहो! परन्तु वह बताना, वह विकल्प है या नहीं? विकल्प आया है तो वही बताते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! ...भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विश्राम। विकल्प आया, वह विश्राम नहीं। मारे गप्प मारे। ठीक न, हाँ पाड़ देंगे, मानो। विश्राम नहीं, विश्राम तो रागरहित स्थिर होना, वह विश्राम है। समझ में आया? वे नहीं स्थिर हो सकते तो विकल्प तो आता है। तो विषय कषाय

का अशुभभाव से बचने को, अशुभभाव वंचनार्थ — ऐसा कहा न ? अशुभभाव पाप को टालने को ऐसा भाव में भी कथन तो ऐसा आता है। विषयकषाय का पापभाव है, उसको छोड़ने को, उससे बचने को शुभभाव में भी आता है, ऐसी बात। आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? तो कहते हैं कि उपदेश के बहाने से मुख्यताकर अपना जीव ही को सम्बोधना। ओहो ! आत्मा ! तेरे स्वरूप में स्थिरता हो, वही मुक्ति का मार्ग है। अन्तर आत्मदृष्टि हुई, फिर भी जब तक ध्यान नहीं जमे, तब तक विशेष निर्जरा नहीं होगी। ऐसा उपदेश देकर भी अपने को सम्बोधते हैं। आहाहा ! गजब बात रूखी लगे, भाई ! रागरहित की बात और वीतरागवाली रसवाली बात। आहाहा !

वह इस तरह है... है न ? कि पर को उपदेश देते अपने को समझावे। है ? जो मार्ग दूसरों को छुड़ावे, वह आप कैसे करे। आहाहा ! अरे ! दूसरे को कहे, भगवन्त ! आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु है न। उसमें दृष्टि लगावो, मिथ्यात्व छोड़ो, पुण्य-पाप की रुचि, पुण्य-पाप से लाभ है ऐसा, मिथ्यात्व छोड़ो, ऐसा दूसरों को कहे, यह उपदेश दे वह स्वयं क्यों करे, ऐसी बात ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? मार्ग दूसरों को छुड़ावे, वह आप कैसे करे। राग में लाभ नहीं, वह दूसरे को कहे, स्वयं को क्यों माने ऐसे कि राग से लाभ है ? होता है राग, आता है अवश्य शुभभाव, परन्तु उसमें आत्मा का कार्य शुद्धता है, वह कार्य से तो च्युत होता है, तो ऐसी बात दूसरे को कहे तो आप भी राग से लाभ कैसे माने ? आहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई ! इन्द्र ऊपर से सुनने को आते हैं, यह तो कैसी बात होगी ? वार्ता होगी ? तीन ज्ञान के स्वामी। तीन ज्ञान हैं। शकेन्द्र, ईशानेन्द्र। सौधर्म और ईशान देवलोक। सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान, ईशान इन्द्र में २८ लाख विमान, अर्धलोक के स्वामी इन्द्र हैं। शकेन्द्र ईशान। भगवान के पास जाते हैं। अभी महाविदेह में जाते हैं। वहाँ महावीर भगवान थे, उनके पास जाते थे। समझ में आया ? उनकी दो सागर की स्थिति है। उसकी एक जिन्दगी में असंख्य तीर्थकर का जन्मोत्सव करते हैं। असंख्य तीर्थकर का। किसका ? महाविदेह में, हों ! यहाँ कहा है ? यहाँ से तो बहुत दूर है न। करोड़ पूर्व है। तो एक सागरोपम है, ऐसा तो असंख्य करोड़ पूर्व चला जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

तो कहते हैं कि वे भी वहाँ भगवान के पास सुनने को जाते हैं। तीर्थकर का

जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, निर्वाणकल्याणक सब करते हैं। एक भव में असंख्य तीर्थंकर का, हों! महाविदेह में उसके एक भव में असंख्य तीर्थंकर हो जाते हैं। तीर्थंकर का आयुष्य करोड़पूर्व है और इन्द्र का आयुष्य दो सागर है। तो दो सागर में एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम चले जाते हैं और एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष चले जाते हैं। क्या कहना है? कि ऐसा इन्द्र भी भगवान के पास सुनने को जाता है। वह कथा कैसी होगी? समझ में आया?

मुमुक्षु : जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना तो ठीक, वह तो वैभव छोड़कर। यह वैभव हमारे नहीं। यह नहीं... यह नहीं... परन्तु यह कथा कैसी होगी? जाना तो उसकी ठीक, कथा कैसी होगी? बात ऐसी है। चिड़िया लाई चावल का दाना, पुण्य करो और ऐसा करो ऐसी तो साधारण बात करते हैं। तीन ज्ञान का धनी इन्द्र। ऐसा जिसका सुन्दर रूप। हजारों सूर्य के चाँदला करता प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश... समझे? जिसकी बैठक का सिंहासन उसके नीचे... पत्थर हो, अरबों की कीमत उसकी हो। ... आ गया। राग होता है, दुःख है-दुःख है। भगवान के पास सम्यग्ज्ञानी जीव क्षायिक समकित है शकेन्द्र। शकेन्द्र जो है न। क्षायिक समकिती लो। ... क्षायिक समकिती यहाँ से स्वर्ग में जाते हैं देवलोक में। भगवान के पास सुनने को आते हैं। महावीर आदि थे तो उनके पास सुनने जाते थे। ऐसी बात थी। ऐसी साधारण वार्ता नहीं थी। ऐसे अन्दर से कि ओहोहो! तेरा स्वरूप वीतराग परमानन्द की मूर्ति है। उसमें से केवलज्ञान निकाल। निकाल केवलज्ञान। क्षायिक समकित प्रगट कर, केवलज्ञान प्रगट कर, स्वरूप में एकाग्र होकर चारित्र प्रगट कर। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भान दृष्टि में तो है। मुझे तो दूसरी बात करनी है। वह कैसी बात करते हैं, वह कहना है। कहनेवाले कैसी कथा करते होंगे कि इन्द्र को भी विस्मय लगता है। ऐसी बात है। वह तो समकिती है। समझ में आया? दिव्यध्वनि में ऐसा आता है अन्दर से प्रपात। भगवान की वाणी में वीतराग... वीतराग... वीतराग...

भगवान! तेरा स्वरूप मेरे जैसा ही वीतराग है। ऐसी रुचि करो, पुण्य-पाप की रुचि छोड़ दो। पुण्य-पाप के फल में मिटास होती है, (उसे) छोड़ दो। ऐसा भगवान के उपदेश में निकलते हैं। यह वाणी सुनने में असंख्य योजन अथवा दूर से भगवान के पास आते हैं। समझ में आया? यह कथा कैसी है? अलौकिक कथा। अलौकिक कथा।

यहाँ भी कहते हैं योगीन्द्रदेव कि यहाँ तो इससे मुख्य सम्बोधन अपना ही है। वीतरागभाव का सम्बोधन करते हैं। समझ में आया? परजीवों को ऐसा ही उपदेश है, जो यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती,... देखो, उपदेशकर्ता ऐसा कहे कि भगवन्त! पुण्य-परिणाम, पाप परिणाम मुझे अच्छा नहीं लगता। आता है। मुझे अच्छा नहीं लगता। तुझे भी अच्छा नहीं लगना चाहिए। समझ में आया? देखो, मेरे मन में अच्छी नहीं लगती, तो तुमको भी भली नहीं लगती होगी, तुम भी अपने मन में विचार करो। आहाहा! समझ में आया? लो, यह ८३ गाथा हुई। परमात्मप्रकाश ने तो परमात्म-प्रकाश कर दिया। चैतन्यसूर्य भगवान तेरा अनन्त ज्ञान का किरण फैले ऐसी तेरी ताकत है। उसमें तेरी श्रद्धा कर, दृष्टि कर। पुण्य-पाप की विकल्प की दशा में क्या पड़ा है तू? समझ में आया? और उसके फल में क्या पड़ा है, धूल मिले बाहर में, स्वर्ग मिले तो उसमें क्या आया? जिसमें आत्मशान्ति, आत्म स्वतन्त्रता की शान्ति अन्तर में से न मिले, वह क्या चीज़ जगत में है? उसकी कीमत क्या? आहाहा!

आगे ज्ञान के लिये शास्त्र को पढ़ते हुए भी... यह तो शास्त्र के पढ़नेवाले की बात है। दूसरे क्रियाकाण्डी को तो उड़ा दिया। जो कोई बाह्य तप करे व्यवहार से उपवास आदि वह तो शुभराग है। और यह बाह्य क्रियाकाण्ड का दया, दान, पूजा, वह शुभ पुण्य है, वह तो निकाल दिया कि वह तो आत्मा का स्वभाव नहीं। हो, आते हैं, पाप से बचने को आते हैं अवश्य, परन्तु तुम ऐसा मान लो कि उसमें से मेरा जन्म-मरण का अन्त और सम्यग्दर्शन होगा। बिल्कुल नहीं। आहाहा! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' राजमलजी! किसका श्लोक है? श्रीमद् का। खबर है न उसको। वचनामृत, छोटी उम्र में ३३ वर्ष में देह छूट गया। श्रीमद् राजचन्द्र। आत्मभान हुआ था। वह फोटो है न सेठ! वह फोटो है वह। वह श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं। तुम्हारे राजमलजी ने बहुत पढ़ा है ऐसा। तुमको खबर नहीं। वे

लाये हैं न कि माँ-बाप लाओ यहाँ। कि सुनो आप। पुत्र का कर्तव्य है या नहीं? क्यों? लाये थे। सच्ची बात है।

एक धन्यकुमार नहीं है वह? ब्रह्मचारी एक धन्यकुमार है। यह उसके पिता हैं। उसको दस लड़के हैं। दस लड़के अभी हों! अभी जिन्दा है। और गृहस्थ। ... कैसे कहते हैं नहीं? ३०० एकड़ जमीन। ३०० एकड़ जमीन घर की है। ३०० एकड़। बहुत बड़ा लाखोंपति। तो ऐसे दस लड़के। तो नौ का विवाह हो गया है। दसवाँ लड़का यहाँ आता है। वह भी २८ वर्ष की उम्र होगी। उसको तो बालब्रह्मचारी रहने की इच्छा है। तो यहाँ आया, सुना। और सुनकर उसके पिताजी को पत्र लिखा। और पिताजी ने सात प्रतिमा ले लिया था। गृहस्थ व्यक्ति हैं। मन्दिर बनवाया उसने। गृहस्थ व्यक्ति बहुत। वहाँ दक्षिण में। तो यहाँ सुनकर लिखा पत्र। पिताजी! यहाँ तुम आओ। यह क्या बात वीतराग की है, वह सुनो। और वह समझे बिना... बहुत कड़क लिखा था। थोड़ा प्रेम था। वह तो प्रेम था न। पिता का प्रेम था। पिताजी! पिताजी साहेब! आप यहाँ सुनो, आप यहाँ आओ। मार्ग कोई वीतराग का ऐसा है। जो ऐसा नहीं समझेगा, नरक में, चार गति में भटकेगा ऐसा लिखा था। आते है न वह। कैसा? धन्यकुमार। मोतीरामजी का पुत्र। मोतीरामजी यहाँ रहते थे। माँ-बाप दोनों रहते थे। अभी तो वह दक्षिण में गये। चार गति में भटकेंगे। तुम्हारी सात-बात प्रतिमा नहीं काम करेगी। आत्मा क्या है, उसकी दृष्टि किये बिना और सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना ऐसी बात तुम मान लो तो जन्म-मरण का अन्त आयेगा नहीं। ऐसा लिखा। पत्र लिखकर हों, आँख में से.. एकदम रुदन आ गया। पुत्र का पत्र आया न तो रुदन आ गया। एकदम। यहाँ सुनते-सुनते रोते हैं बहुत। आहाहा! आपने जिन्दगी गँवा दी। तुम्हारा वास्तविक वीतरागमार्ग क्या, वह हमें समझ में आया नहीं और ऐसे की ऐसी हमारी जिन्दगी चली गयी। कहो, भीखाभाई! लो। आहाहा!

भाई! वास्तविक तत्त्व की श्रद्धा, ज्ञान हुए बिना जो कुछ करने में आता है, उसमें कोई जन्म-मरण का अन्त नहीं। तो कहते हैं, ज्ञान के लिये शास्त्र को पढ़ें। उसके आप-ज्ञान नहीं जिसके आत्म-ज्ञान नहीं,... परन्तु जिसको भगवान आत्मा यह ज्ञानस्वरूप

का विकल्प राग का कर्ता नहीं, देह का कर्ता नहीं, आत्मज्ञान नहीं, वह मूर्ख है,... उसमें जड़ कहा। वह जड़ के अर्थ में मूर्ख कहा था। समझ में आया कुछ? ८४ है न?

★ ★ ★

गाथा - ८४

२११) बोह-णिमित्तं सत्थु किल लोइ पढिज्जइ इत्थु।
तेण वि बोहु ण जासु वरु सो किं मूढु ण वत्थु ॥ ८४ ॥

आचार्य महाराज परन्तु गजब! दिगम्बर मुनि है न। वह तो वीतरागता की बात करते हैं। सुनो भाई! क्या है? कि मूर्ख है? इस लोक में नियम से... शब्दार्थ है। इस लोक के अन्दर नियम से। ज्ञान के निमित्त... 'बोधनिमित्तेन' है न? ज्ञान पढ़ने के लिये, ज्ञान पढ़ने को शास्त्र पढ़े जाते हैं,... शास्त्र पढ़ते हैं। परन्तु शास्त्र के पढ़ने से भी जिसको उत्तम ज्ञान नहीं हुआ,... वह 'वरः बोधः' नहीं हुआ। वर अर्थात् भगवान् आत्मा का अन्तर ज्ञान न हुआ। तो शास्त्र पढ़ने से क्या हुआ? समझ में आया? यहाँ तो अभी शास्त्र के अभ्यास का ठिकाना नहीं। नीचे लिखेंगे, हों! पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना वापस। ऐसा कहा। यह तो शास्त्र का अभ्यास करना नहीं छोड़ना। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, परसन्मुख की दृष्टि में शास्त्र भी बहुत पढ़ें। परन्तु 'वरः बोधः न' वर भगवान् आत्मा उसका नाम ही सम्यक् प्रधानबोध कहने में आता है। देखो, 'वरः बोधः' कहा न? प्रधान बोध उसको कहते हैं। प्रधान अर्थात् मुख्य ज्ञान उसको कहते हैं। वह तो शास्त्र का ज्ञान विकल्प से है। पढ़ो, पढ़ो, हो। परन्तु उससे रहित 'वरः बोधः'। वर बोध नहीं। शास्त्र का ज्ञान प्रधानबोध नहीं। सम्यग्ज्ञान नहीं, आत्मज्ञान नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

भाषा कैसी ली है, देखो आचार्य महाराज ने! दिगम्बर सन्त जंगल में रहनेवाले महामुनि। 'वरु सो किं मूढु ण वत्थु' जिसे, वरु बोधो तेण न वरु — ऐसा है। जिसे वर ज्ञान नहीं। वर अर्थात् प्रधान आत्मज्ञान नहीं। आत्मा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... चैतन्यमूर्ति ऐसा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित ज्ञान नहीं, ये वरबोध नहीं। यह शास्त्र पढ़ने से क्या

तुझे (लाभ) है ? मूढ़ है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! करुणा है वह तो। द्वेष नहीं है। मुनि हैं, वह तो वीतरागी मुनि है। शास्त्र के पढ़ने से भी जिसको उत्तम ज्ञान नहीं हुआ... उत्तम ज्ञान की व्याख्या वह। भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य उसका ज्ञान। पुण्य-पाप नहीं, देह, वाणी नहीं। अन्तर्मुख होकर आत्मा का ज्ञान, आत्मा का अभेद बोध, आत्मस्वभाव में से निकलता हुआ सम्यग्ज्ञान का कण, स्वाश्रय चैतन्य में से आत्मा का भान, उसका नाम वह भगवान वरबोध कहते हैं। उत्तम ज्ञान उसको कहते हैं। बाकी ग्यारह अंग पढ़े, नौ पूर्व पढ़ डाले, चर्चा, वार्ता, ऐसा-फैसा। उसमें भी फिर अहंकार करे। थोड़ा-बहुत आवे वहाँ कहे हमको आवे और उसे नहीं आता। समझ में आया ? आहाहा!

वह क्या मूर्ख नहीं है ? ऐसा आचार्य कहते हैं। मूर्ख ही है, इसमें सन्देह नहीं। 'तथ्यम्' ऐसा। 'तथ्यम्' मूर्ख नहीं है ? कि सत्य मूर्ख है—सत्य मूर्ख है। आहाहा! बापू! यह आत्मा भले थोड़ा पढ़ता हो। यह कहेंगे अन्दर। शास्त्र का थोड़ा जानपना हो, परन्तु आत्मज्ञान-रागरहित का भान किया, प्रधान बोध हो गया। भले थोड़ा पाँच समिति, तीन गुप्ति का शास्त्रज्ञान थोड़ा हो। समझ में आया ? महान चैतन्यपदार्थ का ज्ञान हुआ, वह प्रधान ज्ञान है। ज्ञान किसको कहना ? आत्मा का अन्तरज्ञान अन्तर्मुख होकर स्वज्ञेय बनाकर स्वज्ञान में अन्तर एकाग्र होना, वही स्वसंवेदन ज्ञान ही उत्तम बोध, उत्तम ज्ञान, प्रधान ज्ञान, अग्रेसर ज्ञान, वही ज्ञान। समझ में आया ?

देखो, इसमें सन्देह नहीं। समझ में आया ? 'तथ्यम्' आहाहा! यहाँ तो अभी शास्त्र में वाद और विवाद। वाद-विवाद। अरे भगवान! यह वाद-विवाद क्या चीज़ है ? तुमने ऐसा लिखा है, तुमने ऐसा लिखा है। भाई! भगवान आत्मा का ज्ञान बिना शास्त्र का ज्ञान का वाद-विवाद झूठा है। समझ में आया ? बनारसीदास कहते हैं समयसार नाटक में। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' समझ में आया ?

मुमुक्षु : अन्धा क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तत्त्व का भान नहीं और अन्धा है, तुम तो मूर्ख हो। ... करके। अभी सत्य क्या है, उसकी तो दृष्टि नहीं, ज्ञान नहीं। समझ में आया ? और भाई ने तो वहाँ तक कहा है नहीं ? आदिपुराण। जिनसेनस्वामी। जिनसेनस्वामी आदिपुराण।

जिसको आत्मा का ज्ञान नहीं, अकेला शास्त्र का ज्ञान पाना बताते हैं कि उसमें यह लिखा है, (वह) अक्षर म्लेच्छ है। कहीं है इसमें। कहाँ है यह कहीं है न? पहले श्लोक में। जीवद्वार में लिखा है। देखो, समयसार नाटक।

जोग धरै रहै जोगसौं भिन्न,
 अनंत गुनातम केवलज्ञानी।
 तासु हृदै-द्रहसौ निकसी,
 सरितासम है श्रुत-सिंधु समानी।
 याते अनंत नयातम लच्छन,
 सत्य स्वरूप सिधंत बखानी।
 बुद्ध लखै न लखै दुरबुद्ध,
 सदा जगमाँहि जगै जिनवानी ॥ ३ ॥

दुर्बुद्ध मिथ्यादृष्टि। कोरे व्याकरण कोष आदि के ज्ञाता... व्याकरण अर्थात् संस्कृत, भाषा। देखो, ऐसे जीवों को आदिपुराण में अक्षर म्लेच्छ कहा है। लो। अक्षर म्लेच्छ। अक्षर की इच्छा तेरे अक्षर भगवान आत्मा। उसका तो ज्ञान नहीं, आत्मभान नहीं, ध्यान नहीं। क्या आत्मा है, उसकी खबर नहीं। श्रद्धा नहीं, ज्ञान नहीं। शास्त्र का अकेला बताया। यह व्याकरण में ऐसा लिखा है और यह कोष में ऐसा लिखा है, यह ऐसा लिखा है। ... लिखा है। समझ में आया? अक्षर म्लेच्छ, हों! स्वामी आदिपुराण जिनसेनस्वामी कहते हैं। आदिपुराण में ऐसा लिखा है। नहीं तो वह तो कथानुयोग शास्त्र है। फिर भी आत्मा का ज्ञान का भान नहीं। अकेला कथाओं, वार्ताओं रखे और उसमें अपनी पण्डिताई बतावे। कहते हैं कि वह अक्षर म्लेच्छ है। आत्मा का भान नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- इस लोक में यद्यपि... देखो, कहते हैं। लोक व्यवहार से नवीन कविता का कर्ता कवि,... है न? कवि हो कवि ऐसा शीघ्रकवि। शीघ्रकवि समझते हैं? ऐसी कुछ बात देखे वहाँ तुरन्त बनावे कथा। प्राचीन काव्यों की टीका के कर्ता को गमक,... पुरानी टीका का अर्थ करे। कर्ता को गमक हों! टीका कर्ता का गमक। जिससे वाद में कोई न जीत सके ऐसा वादित्व, और श्रोताओं के मन को अनुरागी करनेवाला

शास्त्र का वक्ता होनेरूप वाग्मिवत्,... वाग्मिवत्-वचन में चतुर, व्याख्यान में चतुर, भाषा-शास्त्र में चतुर। बराबर समझावे लोगों को। इत्यादि लक्षणोंवाला शास्त्रजनित ज्ञान होता है, तो भी निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनरूप ही ज्ञान की अध्यात्म-शास्त्रों में प्रशंसा की गयी है। उसकी प्रशंसा शास्त्र में की गयी नहीं। समझ में आया? यथार्थ दृष्टि में वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूपी... आहाहा! देखो, वह शास्त्र का ज्ञान, परावलम्बी ज्ञान, उसकी प्रशंसा नहीं की है। रागरहित, अन्तर में राग होने पर भी रागरहित अपना वीतरागी ज्ञान स्वसंवेदनरूप—अपना ज्ञान का वेदन होना, वही ज्ञान की अध्यात्म शास्त्र में प्रशंसा की गयी। समझ में आया? अध्यात्म शास्त्र में उसको अधिक कहा और प्रशंसा कहा। शास्त्रज्ञान की कोई प्रशंसा नहीं, निश्चयनय में हों! व्यवहार में व्यवहार की बात करते हैं।

इसलिए स्वसंवेदन ज्ञान के बिना... अपने ज्ञान का ज्ञान, अन्तर के भान बिना शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख हैं। योगसार में कहते हैं न। योगसार में आता है। शास्त्र पढ़े परन्तु मूर्ख, नहीं आता है वह? शास्त्रपाठी परन्तु मूर्ख है। जो निज तत्त्व अजान। समझ में आया? वह योगसार है न १०८ श्लोक। वह योगीन्द्रदेव का, यह भी योगीन्द्रदेव ने बनाया, वह भी योगीन्द्रदेव ने बनाया। शास्त्रपाठी मूर्ख है, जो निजतत्त्व अजान। वीतरागस्वरूप भगवान् आत्मा अनन्त गुणरूप निर्विकल्प चैतन्य का ज्ञान नहीं तो, कहते हैं वह अजान निजतत्त्व, वह शास्त्र के पढ़नेवाले भी। यह तो कठिन-कड़क भाषा है। कड़क नहीं, करुणावन्त है, हों! करुणा। उसे करुणा अरे! जीव तेरा हित कहाँ रहा? समझ में आया? थोड़ा भी शास्त्र (ज्ञान) हो, परन्तु अपना स्वसंवेदन आत्मज्ञान हो तो मुक्ति होगी, उसका कल्याण होगा। एकाध भव करके मुक्ति होगी। परन्तु यह इतना-इतना शास्त्र पढ़ा तो अनन्त बार पढ़ा। परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान, स्वसंवेदन—स्व अर्थात् आत्मा का वेदनरूपी ज्ञान, उसके बिना यह सब शास्त्र में कोई दूसरे की प्रशंसा नहीं की। ऐसे ज्ञान की प्रशंसा की है। समझ में आया? विशेष कहते हैं अभी। उसके अतिरिक्त थोड़ा ज्ञान हो परन्तु आत्मा का ज्ञान करे तो प्रशंसा। शास्त्र का बहुत ज्ञान करके भी आत्मा का ज्ञान नहीं करे आत्मा का भान, तो वह प्रशंसनीय नहीं। वह बात करेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक १४-०२-१९६६

गाथा - ८४ - ८५, प्रवचन - १२८

परमात्मप्रकाश शास्त्र है। एक योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि आज से नौ सौ वर्ष पहे हुए हैं। उन्होंने अध्यात्म शास्त्र ताड़पत्र पर वन में बनाया जंगल में। जैसा समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दो हजार वर्ष पहले हुए। वह भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य लगभग संवत् ४९ में लगभग यह भरतक्षेत्र में हुए, दिगम्बर मुनि। वह वन्देवास में ध्यान में रहते थे। वन्देवास है पौन्नूरहिल। वहाँ से भगवान के पास गये थे। परमात्मा सीमन्धर प्रभु तीर्थकरदेव वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। बड़ा आयुष्य है करोड़ पूर्व का। तो वे उस समय में भगवान के पास गये, आठ दिन रहे, तब शास्त्र बनाये समयसार आदि। पश्चात् यह योगीन्द्रदेव। ११०० वर्ष पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य के बाद हुए। महादिगम्बर सन्त आत्मज्ञान आनन्द में झूलनेवाले, जंगल में रहनेवाले। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया है। यह उसकी ८४ वीं गाथा चलती है। ८४ कहते हैं? क्या कहते हैं? ८४। थोड़ी-थोड़ी, हिन्दी बहुत नहीं आती न। हमारे भाई को पूछ लेना। तुम्हारे बड़े भैया है न, उसको पूछ लेते हैं।

देखो, क्या कहते हैं? इसलिए स्वसंवेदन ज्ञान के बिना शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख हैं। वहाँ तक आया है। जरा सूक्ष्म बात है। सुनना। यह तो सत्य बात... अनन्त काल में परिभ्रमण करते-करते चौरासी लाख अवतार में प्रत्येक प्राणी ने अनन्त भव प्रत्येक गति का किया। स्वर्ग में भी अनन्त बार गया। अनादि का है न आत्मा? आत्मा कोई नया नहीं है। है, है न है। तो ऐसा अनादिकाल से यह आत्मा क्या चीज़ है, उसके अन्तर के भान बिना, उसने पुण्य-पाप का भाव अनन्त बार किया। समझ में आया भैया? शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किया। उसके फलस्वरूप चार गति में भटकना पड़ा।

तो यहाँ कहते हैं कि शास्त्र पढ़नेवाला भी... शास्त्र पढ़े, और शुभ परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति, तीर्थ यात्रा आदि का शुभभाव भी करे। हो, पाप से बचने को। समझ

में आया ? परन्तु जब तक आत्मा ज्ञानानन्द का वेदन अन्तर दृष्टि न करे, तब तक उसको मुक्ति नहीं होती ।

मुमुक्षु : धर्म तो होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहो या मुक्ति कहो—एक ही बात है । सूक्ष्म बात है, देखो यहाँ ।

इसलिए स्वसंवेदन ज्ञान के बिना... है भैया ! वकीलजी ! है अन्दर देखो । शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख हैं । ऐसा कहते हैं यहाँ तो । शास्त्र पढ़े, परन्तु भगवान यह आत्मा देहदेवल के अन्दर चिदानन्द सच्चिदानन्द मूर्ति है । ‘सिद्ध समान सदा पद मेरो ।’ वह आता है न ? बनारसीदास में आता है । समयसार नाटक । ‘चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो ।’ मेरा स्वरूप शुद्ध आनन्द ज्ञानानन्द है । ऐसा अन्तर में पुण्य-पाप के रागरहित, रुचि छोड़कर, पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़कर । अपना ज्ञानस्वरूप चिदानन्द भगवान जो अनन्त शान्तरस और अनाकुल आनन्द से भरा है । उसका अन्तर वेदन अनुभव ज्ञान बिना उसको धर्म होता नहीं । भैया ! बिल्कुल ठीक है ? लॉजिक से बात चलती है आचार्य की । देखो, है ? स्वसंवेदन ज्ञान । स्वसंवेदन का अर्थ ? कि अपना आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका अन्तर ज्ञान करे बिना ‘मुनि व्रत धार...’ वह आता है न छहढाला में ? ‘मुनि व्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो ।’ आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द सिद्ध परमात्मा । जैसा परमेश्वर तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा देखा है, वह तो पवित्र आनन्दमूर्ति आत्मा देखा है भगवान ने । शरीर, वाणी, मन, यह तो मिट्टी जड़ धूल है और अन्दर में शुभ और अशुभभाव होता है, वह पुण्य-पाप है, वह आस्रव है, वह आस्रव से तो या बन्ध होता है । उससे रहित अपना ज्ञानस्वरूप चिदानन्द की ज्योति । शीतल... शीतल... शीतल... शान्तरस का पिण्ड आत्मा है । उसकी अन्तर्मुख में रागरहित होकर राग की रुचि छोड़कर ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अन्तर्मुख में वेदन जब तक न हो, तब तक उसको वह धर्म होता नहीं । समझ में आया ? आहाहा ! भारी जगत को कठिन पड़े ।

कहते हैं, देखो ! जो कोई परमात्मज्ञान के उत्पन्न करनेवाले (छोटे) थोड़े शास्त्रों

को भी जानकर... देखो, भले थोड़ा शास्त्र जाने, परन्तु जानकर वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान की भावना करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। क्या कहा ? बहुत शास्त्र पढ़ें, जगत को समझाने भी लगे और तर्क-कुतर्क अनेक प्रकार के चलावे। परन्तु यह आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति है, उसका अन्तर में सम्यग्दर्शन से आत्मा का वेदन जब तक न हो, तब तक उसको धर्म अर्थात् शान्ति अथवा कल्याण नहीं होता। समझ में आया ? और थोड़ा शास्त्र पढ़ने से भी। देखो, है ? थोड़े शास्त्रों को भी जानकर वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की भावना करते हैं,... मैं आत्मा आनन्द हूँ। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड हूँ। जैसे कहते हैं न ! पीपर का छोटा दाना होता है न पीपर का ? क्या कहते हैं ? वह लीडीं पीपर। छोटी पीपर। वह छोटी पीपर नहीं होती है ? पीपर। उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है न उसमें ? भरी है या नहीं ? तो घूँटते हैं न। घूँटते हैं न। घूँटते-घूँटते। चौंसठ पहरी चरपराहट प्रगट होती है या नहीं ? वह कहाँ से प्रगट हुई ? पत्थर में से हुई ? वह उसमें है। पत्थर को घूँटने से हो तो कोयला घूँटने से निकलना चाहिए। तो वह पीपर के दाने में अन्तर में चौंसठ पहरी। चौंसठ पहरी समझते हैं ? चौंसठ पहरी नहीं ? क्या कहते हैं ? पहर-पहर। चौंसठ पहर। घूँटते हैं न चौंसठ पहर ? घूँटते-घूँटते चौंसठ पहरी। हमारे काठियावाड़ में तीखाश कहते हैं। तुम्हारी भाषा में चरपराहट कहते हैं। वह चरपराहट प्रगट होती है। होती है कहाँ से ? अन्दर में है। है, तभी प्राप्त होता है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। है तो प्राप्त होती है। न हो तो प्राप्त हो नहीं। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा देहदेवालय में। कल आ गया था। देहदेवालय में विराजमान सच्चिदानन्द आत्मा स्वरूप उसकी शक्ति में अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में पड़ा है। उस अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर रुचि करके सम्यग्ज्ञान में आत्मा का वेदन शान्ति का होना, थोड़ा शास्त्र पढ़े तो भी उससे मुक्ति होती है, दूसरे से मुक्ति होती नहीं। धर्मचन्दजी ! क्या है ? भारी बात, भाई !

देखो, मुक्त हो जाते हैं। ऐसा ही कथन ग्रन्थों में हरएक जगह कहा है,... टीकाकार कहते हैं कि यह बात तो शास्त्रों में—परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के शास्त्र में प्रत्येक जगह कहा है। क्या ? वैराग्य में लगे हुए जो मोहशत्रु को जीतनेवाले हैं, वे थोड़े शास्त्रों को ही पढ़कर सुधर जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं,... क्या कहा ? अरे ! भगवान

आत्मा मैं तो शान्त आनन्दमूर्ति हूँ। ऐसी आठ वर्ष की लड़की हो, थोड़ा शास्त्र पढ़ा हो। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा अतीन्द्रिय शान्त आनन्द की डली है, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। ऐसी अन्तर रुचि करके राग से हटकर, स्वभाव की एकाग्रता का शान्ति का वेदन करे तो वह आठ वर्ष की लड़की को भी धर्म की शुरुआत हो जाती है। समझ में आया? ऐसा आत्मा का ज्ञान बिना लाख शास्त्र पढ़े और अनेक प्रकार की दया, दान, व्रत, भक्ति का पुण्य परिणाम करे तो शुभ बन्ध होगा। भैया! शुभ बन्ध होगा। संवर-निर्जरा नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। बन्ध पड़े। भाई कहते हैं। यह कहेंगे, तीर्थ भ्रमण करने से भी मोक्ष नहीं। बाद की गाथा में कहेंगे। ८५ में। वह भाव होता है। पाप से बचने को शुभभाव, पूजा, भक्ति, यात्रा का भाव होता है, परन्तु उस भाव से आत्मा का धर्म, शान्ति और सम्यग्दर्शन हो जाये, ऐसा कोई मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि मूर्ख है, ऐसा कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : नहीं परम्परा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी परम्परा से होता नहीं। शान्ति से शान्ति मिलती है। निर्विकल्प दृष्टि से निर्विकल्प शान्ति मिलती है। राग के कारण से आत्मा को अरागी सम्यग्दर्शन हो, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं। वैराग्य... वैराग्य... अरे! मैं तो आत्मा शुद्ध आनन्द हूँ। विकल्प पुण्य-पाप का भाव उठते हैं, वह भी मेरे में नहीं। वह तो विकार है। शरीरादि तो जड़, मिट्टी, धूल है। ऐसे वैराग्य कर, पर से हटकर, राग से हटकर। स्वभाव में अन्दर डट जाये, एकाग्र हो तो वैराग्य में लगे हुए जो मोहशत्रु को जीतनेवाले हैं,... राग की एकता को जीतते हैं और स्वभाव में एकता करते हैं, वे थोड़े शास्त्रों को ही पढ़कर सुधर जाते हैं— वह भी थोड़ा शास्त्र पढ़े तो भी उसकी धर्मदृष्टि होती है और आत्मकल्याण हो जाता है। समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव मुनि जंगल में बसनेवाले दिगम्बर न्त थे आत्मध्यानी, ज्ञानी आनन्द में लहर। विकल्प आया जरा, शास्त्र ताड़पत्र में लिख दिया। ताड़पत्र में। हमारा कुछ कर्तव्य नहीं। हम तो आत्मा हैं। यह शास्त्र की क्रिया जड़ की बनी, उसके भी हम कर्ता नहीं। विकल्प जो आया, वह भी राग था, वह भी हमारा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त काल परिभ्रमण करते-करते गये, परन्तु उसमें एक समयमात्र सम्यग्दर्शन प्राप्त किया नहीं। सम्यग्दर्शन बिना जितनी क्रियाकाण्ड करे, शुभभाव हो, पुण्य बँध जाये। पुण्य से उसको स्वर्गादि मिले अथवा पैसेवाले या सेठिया आदि कहते हैं। सेठिया कहते हैं, है नहीं। ऐसा हो जाये। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीतरागता स्वभाव भरा है। ऐसे आत्मा की अन्तर्मुख दृष्टि किये बिना उसको कभी तीन काल—तीन लोक में धर्म और सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! है भाई इसमें है या नहीं? कहाँ से आया है भाई? कहाँ का है? कहाँ का मूल? ठीक। कहो, समझ में आया? यह तो हिन्दी ... चलती थी हों! यह सूरजमलजी आये न, तो हिन्दी चलती है। तो उसमें तुम्हारे हिन्दी... भाई हिन्दी चलते हैं। तुम्हारे पिताजी के कारण हिन्दी बोलते-बोलते... आज हिन्दी बोलना। मैंने कहा हिन्दी ही चलती है। परन्तु भाव तो भैया सूक्ष्म है, प्रभु!

यहाँ तो परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव भगवान् आचार्य थे। पंच परमेष्ठी है न? अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु जो भाव अन्तर में आनन्द का अनुभव हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। सम्यग्दर्शन में तो अतीन्द्रिय आत्मा का स्वाद आता है। समझ में आया? और मुनिपने में तो अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय आनन्द का—उग्र आनन्द का स्वाद आता है, उसको चारित्र और उसको मुनिपना कहते हैं। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात करते हैं कि जहाँ तक आत्मा के स्वरूप का अन्तर बोध चैतन्यशक्ति का पिण्ड, उसका अन्तर अनुभव दृष्टि न करे, तब तक उसको कभी पुण्यबन्ध हो जाये, परन्तु स्वर्ग का, नरक का अभाव होकर धर्म हो और मुक्ति हो, ऐसा कभी होता नहीं।

और वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी... यहाँ वैराग्य क्यों लिया है? कि पुण्य-पाप का भाव है, उसकी रुचि छोड़ना, वही वैराग्य है। समझ में आया? वैराग्य की व्याख्या भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य पुण्य-पाप (अधिकार) में ऐसा करते हैं कि आत्मा जो शुभ-अशुभभाव होता है, वह राग है। वह राग से हटना, उसका नाम वैराग्य है। समझ में आया? भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य मुनि जो भगवान् के पास गये थे। साक्षात्

त्रिलोकनाथ विराजते हैं महाविदेह में। उनके पास आठ दिन रहे थे। पोन्नूरहिल। पोन्नूरहिल देखा है? वह मद्रास से ८० मील है। अब जाना है? ठीक। ८० मील इस ओर है। वन्देवास गाँव है छोटा, वहाँ से पाँच मील पोन्नूरहिल है। हम दो बार वहाँ गये थे। दो वर्ष पहले गये थे, मोटरें थी, तब हजार लोग थे। दिखा? अच्छा यहाँ दिखा, फोटो दिखा। वहाँ पर कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ध्यान में रहते थे। ध्यान में से ऐसा... हुआ अरे प्रभु! यह भरतक्षेत्र में तीर्थकर का हमको विरह है। मुनि थे धर्मात्मा दिगम्बर सन्त आत्मध्यान में मस्त। ऐसा अन्तर में चिन्तवन करते-करते समवसरण का चिन्तवन हो गया अन्दर में। ऐसा विचार आया। ओहो! भरतक्षेत्र में तीन लोक के नाथ परमेश्वर का हमको विरह पड़ा है। हमारा जन्म भरतक्षेत्र में, (होने से) तीर्थकर का हमको योग नहीं। ऐसा कहा। जहाँ वन्दन किया भगवान को, वहाँ से 'धर्मवृद्धि अस्तु' ऐसे भगवान के मुख में से ॐवाणी द्वारा निकल गया वहाँ से। विराजते हैं परमात्मा, हों! अभी विराजते हैं। यहाँ नजर करते हैं या नहीं? वहाँ विराजते हैं बाहर। बहुत हजारों योजन दूर।

ऐसे यहाँ पूर्व का मित्र था उसका यक्ष आदि। यहाँ लेने को आये। वहाँ से गये। आठ दिन। आठ दिन पश्चात् समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार आदि शास्त्र वहाँ बनाये हैं। पोन्नूरहिल में। वहाँ मकान थोड़े एकाध बनाये हैं। थोड़ा छोटा मकान है। वह कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् परम्परा जितने सन्तों की चली दिगम्बर सन्त, ये सब उनका समयसार का सब बीज लेकर बनाया है। तो यह भी उसमें जो समयसार में आया है, वही यहाँ बात करते हैं कि आत्मा अपना निर्विकल्प दृष्टि जब तक न करे, स्वसंवेदन ज्ञान न करे, तब तक मुक्ति नहीं होती।

और वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी... वैराग्य का अर्थ क्या? शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। उसकी तो उपेक्षा ही करना, परन्तु अन्तर में शुभ और अशुभभाव होता है, उसकी भी उपेक्षा कर देना, रुचि छोड़ना, उसका नाम भगवान वैराग्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है न भाई इसमें समयसार में? समयसार है न? पुण्य-पाप के अधिकार में है न? कहाँ से निकाला? लिखा है? ठीक देखो। १५० गाथा है समयसार की।

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो ।

एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥१५०॥

भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं, अरे आत्मा ! परमेश्वर जिन का— वीतराग का उपदेश है कि राग पुण्य-पाप के भाव से 'बंधदि' पुण्य-पाप के भाव से 'बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो' उस शुभ-अशुभभाव से वैराग्य कर। शुभ-अशुभभाव की रुचि छोड़ना 'एसो जिणोवदेसो' ऐसा वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव का उपदेश है, ऐसा मुनि दिगम्बर आचार्य 'कम्मेसु मा रज्ज' ऐसा कहते हैं। अरे ! भगवान् आत्मा ! यह शुभ-अशुभभाव हो, परन्तु उसमें राच नहीं... राच नहीं... भगवान् आत्मा वह शुभ-अशुभभाव से भिन्न है, उसकी रुचि कर। समझ में आया ? आत्मा अन्तर में... जो आगम का वह वचन है कि रागीपने का कोई भी भाव हो, सब बन्ध का कारण है। समझ में आया ?

शुभाशुभ दोनों कर्मों को अविशेषतया बन्ध के कारणरूप सिद्ध करता है और इसलिए दोनों कर्मों का निषेध करता है। भगवान् आचार्य त्रिलोकनाथ परमेश्वर का बहाना (-आधार) लेकर। भगवान् ऐसा कहते हैं न, भाई ! परमेश्वर वीतरागदेव ऐसा कहते हैं कि तेरे आत्मा में। ... समझ में आया ? आहाहा ! जैसी शीतल बर्फ ठण्डी शिला हो, ऐसा आत्मा देह के रजकण से भिन्न और पुण्य-पाप का विकार की विकृतभाव शुभाशुभराग से भिन्न चैतन्य शिला अविकारी चैतन्य शिला पड़ी अन्दर अरूपी। अरूपी का रूप का लक्ष्य करना। रूप अर्थात् स्वरूप। ऐसा भगवान् आत्मा अरूपी स्वरूप है उसका। विकाररहित। उसकी अन्दर पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़ना, उसको यहाँ वैराग्य कहते हैं। वैराग्य की व्याख्या यह है।

मुमुक्षु : अरूप का स्वरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरूप का स्वरूप। अरूप भी स्वरूप है या नहीं ? वस्तु है या नहीं ? पदार्थ है या नहीं ? जैसा जड़, मिट्टी, पदार्थ है, ऐसा अरूपी स्वरूप पदार्थ है। देह में अरूपी महान् पदार्थ भगवान् चिदानन्द चित्स्वरूप परमात्मा अपना स्वरूप ही ऐसा है।

वह कहते हैं कि अरे आत्मा! एक क्षण भी तूने अनन्त काल में शुभ और अशुभभाव का वैराग्य नहीं किया तूने। दूसरा वैराग्य होकर निकल जाये, वह वैराग्य नहीं। समझ में आया? स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दे और वैराग्य। वह वैराग्य की व्याख्या है नहीं भगवान की। भगवान की वैराग्य की व्याख्या वह है कि अपना आत्मा रागरहित स्वरूप भगवान चिदानन्द प्रभु, उसमें जो शुभ-अशुभ राग उठते हैं, उसकी वैराग्य अर्थात् रुचि छोड़ना, रुचि छोड़ना और स्वभाव की रुचि करना, उसका नाम भगवान वैराग्य कहते हैं। भैया! समझ में आया? वैराग्य का अर्थ? वैराग्य का अर्थ रागरहितपना। तो आत्मा में शुभ-अशुभभाव दोनों उत्पन्न हो वह राग है। सूक्ष्म बात है। उसने कभी किया ही नहीं। जन्म-मरण का अन्त लाने की बात उसने सुनी ही नहीं। समझ में आया?

तो ऐसा वैराग्य जिसने अन्तर में किया, वह यहाँ कहते हैं देखो, **वैराग्य के बिना...** वैराग्य की व्याख्या? कि पुण्य-पाप दोनों एकरूप बन्ध का कारण है, ऐसे पर से हटे बिना **सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी मुक्त नहीं होते**। उसको धर्म होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **यह निश्चय जानना...** यह निश्चय जानना। अशुभभाव से पाप बँध जाता है और शुभभाव होता है तो पुण्य बँध जाता है, परन्तु जिसको वैराग्य करना है अथवा चार गति का निवारण करना है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को, भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप की अन्तर रुचि करता है, वह तो अस्ति की रुचि हुई अस्ति की। पुण्य-पाप की रुचि छोड़ना, वह नास्ति हुई। वैराग्य हुआ। पुण्य-पाप के परिणाम से नास्ति किया तो वैराग्य हुआ। स्वरूप पूर्णानन्द की अस्ति हुई। भारी सूक्ष्म बात गजब! समझ में आया?

अखण्ड पूर्ण शुद्ध प्रभु आत्मा है, शक्ति में आनन्द पूर्ण है। ऐसे अन्तर्मुख की पूर्ण अस्ति की प्रतीति करना, वह सत्ता का स्वीकार हुआ, परन्तु उस सत्ता के स्वीकार के साथ पुण्य-पाप का राग है, उससे रुचि छोड़ना, उसका नाम वैराग्य है। समझ में आया? शुभभाव ठीक है और अशुभ अठीक है तो उसको राग से वैराग्य नहीं। समझ में आया भैया? ऐसी बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो दो हजार वर्ष से कहते हैं। योगीन्द्रदेव भी दिगम्बर सन्त हैं। ये जितने सन्त दिगम्बर आदि हुए वह तो एक ही बात

कहते हैं। उनकी कोई दूसरी बात नहीं। अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो कहा, वही बात सन्त कहते हैं।

तो कहते हैं कि वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी... क्या कहते हैं ? कि पुण्य-पाप के विकल्प की रुचि छोड़े बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी... आत्मा की मुक्ति अर्थात् उसको धर्म होता नहीं। यह निश्चय से जानना, परन्तु यह कथन अपेक्षा से है। क्या कहते हैं ? इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना,... और कहते हैं कि लो यह शास्त्र पढ़ने से तो कुछ हुआ नहीं। अर्थात् शास्त्र पढ़ने पर भी अन्तर दृष्टि जो स्वरूप की न करे तो उसको शास्त्र पढ़ने का फल कुछ आया नहीं। इसके कारण शास्त्र पढ़ना छोड़ देना (- ऐसा नहीं)। समझ में आया ? आया न ? इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना... अन्तर अनुभव हो नहीं और शास्त्र पढ़ना छोड़ दे। पाप में चला जाये। समझ में आया ?

और जो विशेष शास्त्र के पाठी हैं, उनको दूषण न देना। ऐसा सुनकर सम्यग्ज्ञानी दृष्टिवन्त कोई शास्त्र को विशेष पढ़ा हो, तो उनको दूषण न देना। जो शास्त्र के अक्षर बता रहा है... समझे ? और आत्मा में चित्त नहीं लगाया... भगवान आनन्दकन्द स्वरूप में दृष्टि नहीं लगायी। इस शास्त्र में यह लिखा है और इस शास्त्र में ऐसा लिखा है ऐसा करते हैं तो वह ऐसे जानना कि जैसे किसी ने कण रहित बहुत भूसे का ढेर कर लिया हो,... ये दाना समझे न ? दाना नहीं। क्या कहते हैं ? छिलका। छिलका इकट्ठा कर लिया। हमारे थोड़ा हिन्दी... छिलका इकट्ठा कर लिया। है ? देखो, आत्मा में चित्त नहीं लगाया... शास्त्र पढ़कर और दया, दान, व्रत आदि का भाव होने पर भी, यदि आत्मा में चित्त नहीं लगाया, वह ऐसे जानना कि जैसे किसी ने कण रहित बहुत भूसे का ढेर कर लिया हो, वह किसी काम का नहीं है। कहो, कितने छिलके में से दाना न निकलेगा। लाख-करोड़ छिलको हो, दाना कितने में से निकलेगा ? छिलके में से दाना नहीं निकलेगा; दाने में से दाना निकलता है। दाना कहते हैं न वह ? क्या कहते हैं ? कण-कण। कण में कण आता है या छिलके में से कण निकलता है ? उसी प्रकार आत्मा में ऊपर शरीर, वाणी तो छिलका है जड़, धूल। परन्तु ऊपर पुण्य-पाप का भाव

है, वह भी छिलका है। वह आत्मा का सत्-चिदानन्द वीतरागस्वरूप वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह अनन्त काल नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु आत्मा का ज्ञान सम्यक् चीज़ अन्तर वेदन सम्यग्दर्शन की प्रगट किये बिना उसके भव का अन्त नहीं आया। जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। भटके चार नरक और स्वर्ग अनन्त बार मिला है। उसमें कुछ नयी चीज़ नहीं। वह कहते हैं।

कि भूखे का ढेर कर लिया हो, वह किसी काम का नहीं है। इत्यादि पीठिकामात्र सुनकर जो विशेष शास्त्रज्ञ हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी,... समझ में आया? और जो बहुश्रुत हैं, उनको भी अल्प शास्त्रज्ञों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। आत्मज्ञानी जीव कोई हो, आत्मा का भानवाला और कोई बहुत शास्त्र के पढ़नेवाला हो तो उसकी निन्दा नहीं करनी कि उसे शास्त्र का ज्ञान नहीं। अरे! शास्त्र ज्ञान आ गया सब। आत्मा का ज्ञान किया, उसने सब शास्त्र का ज्ञान किया। समझ में आया? ऐगं जाणही, सव्वं जाणही। भगवान आत्मा पशुयोनि में भी आत्मज्ञान हो जाता है। पशुयोनि होती है या नहीं? देखो न हाथी नहीं? त्रिलोकमण्डन हाथी की बात नहीं आती? और उसके अतिरिक्त ढाई द्वीप बाहर असंख्य द्वीप समुद्र है। ढाई द्वीप बाहर असंख्य द्वीप समुद्र है। वहाँ भी असंख्य पशु समकिती है। स्वयंभूरमण समुद्र है, स्वयंभूरमण समुद्र है अन्तिम। उसमें असंख्य पशु समकिती है, ज्ञानी-आत्मज्ञानी पशु।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वकीलात क्या करे? वकीलात में है क्या धूल? हमारे रामजीभाई बड़े वकील हैं, सुना है या नहीं? बड़े वकील हैं। २५-३० वर्ष पहले तो २०० रुपये लेते थे, जाये कोई में तब २००। कहा वकीलात का ज्ञान? कुज्ञान है, ऐसा वे कहते हैं वह। यह तो उस समय की बात है। २० वर्ष पहले कोर्ट में जाते थे। बड़े वकील थे यहाँ राजकोट के। ... २०० रुपये लेते थे २०० चार घण्टे, पाँच घण्टे। दो-दो हजार का दनियावाला भोलाभाई था न, उसके सामने रहते थे। २० वर्ष से छोड़ दिया। ... वकील का ज्ञान कैसा? कुज्ञान है। ऐई! समझ में आया भैया? आत्मा के ज्ञान बिना सब कुज्ञान है, ऐसा आचार्य कहते हैं।

यहाँ तो शास्त्र का ज्ञान भी आत्मा का ज्ञान नहीं हो तो कुज्ञान है, ऐसा कहते हैं आचार्य तो। यहाँ तो आगे चलकर कहते हैं। तुम्हारे संसार का डहापण। डहापण समझे? क्या कहते हैं? होशियारी। संसार की होशियारी शून्य है चकरडा। यहाँ तो भगवान परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त वन में नागा बादशाह से आघा। उनको दुनिया की परवाह नहीं। ऐई! आत्मा! तुम शास्त्र भी पढ़ो आदि क्रियाकाण्ड लाख करो, परन्तु आत्मा का ज्ञान किये बिना तेरा धर्म होता है कि जन्म-मरण मिटेगा, ऐसा तीन काल—तीन लोक में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में करते-करते? राग करते-करते वीतरागता होती है? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? लहसुन खाते हैं न? लहसुन कहते हैं न, सेठ क्या कहते हैं? यह ढोकला में खाते। नहीं ढोकला नहीं कहते हैं। हमारे ढोकला कहते हैं। भजिया बजिया लो, भाई! लहसुन होता है न। लहसुन खाया हो और डकार आये कस्तूरी की? परन्तु लहसुन में कस्तूरी की डकार नहीं होती। राग की क्रिया में वीतराग की डकार होती नहीं। समझ में आया? आहाहा! परन्तु क्या करे? उसने कभी दरकार ही नहीं की। अनन्त भव ऐसा गँवा दिया, आँख बन्द करके चले चौरासी के अवतार में।

आचार्य महाराज कहते हैं, हे जीव! राग-द्वेष की उत्पत्ति हो, ऐसा नहीं करना। कहते हैं न? क्योंकि पर के दोष ग्रहण करने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उससे ज्ञान और तप का नाश होता है,... इसलिए कहते हैं कि आत्मा में पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान वेदन करना। वह थोड़ा शास्त्र पढ़े तो भी उसको लाभ है और बहुत शास्त्र पढ़कर भी ऐसा करे तो उसको लाभ है। उसके अतिरिक्त लाभ होता नहीं। समझ में आया? कठिन-कठिन। अब जरा कठिन बात करते हैं थोड़ी। वे तो आचार्य हैं सत्य बात कहने में दुनिया की क्या पड़ी है। दुनिया को प्रसन्न रखना है या आगम को प्रसन्न रखना है? समझ में आया? आगम क्या कहते हैं, उसका रहस्य खोलकर बताना है, तो सज्जन लोगों में समधारण रहे या न रहे, उसके साथ धर्मात्मा

बन्धन में नहीं आता। सत्य बात कहते हैं कि आगम यह कहते हैं। शास्त्रकार भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ सन्त ऐसा कहते हैं। वह कहते हैं, देखो, ८५।

★ ★ ★

गाथा - ८५

वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से रहित जीवों को तीर्थ-भ्रमण करने से भी मोक्ष नहीं है,... यह तो स्वरूप क्या है? वह पुण्यभाव है, शुभभाव है। यह बात है। भैया! आचार्य महाराज ने कहा देखो। देखो, श्लोक ८५ है।

मुमुक्षु : (तीर्थ) भ्रमण तो एक साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन नहीं, वह शुभराग है। साधन-बाधन हो, तब तो अनन्त बार किया फिर भी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। दृष्टि छोड़कर करे तो हुआ। ऐसी बात है। यह जो साधन हो तो वह तो अनन्त बार किया है। तो अनन्त बार में साधन का साध्य क्यों न हुआ? जरा सूक्ष्म बात है। कल कहा था न थोड़ा, नहीं? 'यम नियम संयम आप कियो पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो। वनवास रह्यो, मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो, जब भेद तपे तप क्यों तपे सब उरसे उदासी लही सबपे, सब शास्त्रन के नयधारी हवे मतमंडन खंडन भेद लहे। वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।' वकीलजी! यह तुमने साधन कहा। 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो, अब क्यों न विचारत है मन से कछु और रह्या उन साधन से, बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल है कह बात कहै।' भगवान आत्मा उस विकल्प के साधन से भी पार है। वह तो बात करते हैं। बीच में आता है शुभभाव। आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो तो भाव तो आता है, परन्तु कोई ऐसा मान ले कि करते-करते अन्दर में साध्य हो जायेगा। ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : छोड़ देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि छोड़ना। छोड़े क्या? स्वरूप का शुद्ध उपयोग जब होगा, तब शुभ छूटेगा। परन्तु पहले पुण्य-पाप के भाव की रुचि, कहा न वैराग्य। शुभ-

अशुभभाव हो, उसकी रुचि छोड़कर आनन्दमूर्ति की रुचि करना, उसका नाम धर्म की सम्यग्दर्शन पहली सीढ़ी है। मोक्षमहल की पहली सीढ़ी। वह आता है न छहढाला में आता है। छहढाला में आता है। मोक्षमहल की पहली। आता है न? आया न वह? कितने में आया वह? तीसरी ढाल। आखिर। लो, यह आया देखो। १७ वीं है। 'सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान-चारित्र का मिथ्यापना।' वह छहढाला। 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी या बिन ज्ञान-चारित्रा, सम्यक्ता न लहे सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा। दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहीं होवै।' यह दौलतरामजी, हों! छहढाला में। 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी' सम्यग्दर्शन। पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर, आत्मा की दर्शन रुचि करना, वह 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी या बिन ज्ञान-चारित्रा,' ये सम्यग्दर्शन बिना का ज्ञान और चारित्र 'सम्यक्ता न लहै...' सच्चापना लहे नहीं। बालपना लहे। 'दर्शन धारो भव्य पवित्रा।' बहुत सरस है। गागर में सागर भर दिया है। छहढाला है न? दौलतरामजी। ढाई सौ वर्ष पहले हुए। बहुत गागर में सागर भर दिया। छहढाला में ९३ श्लोक है। अभी चलते हैं। सुबह में यह चलता है। सवेरे में यह चलता है। ...समझ में आया?

क्या कहते हैं देखो ८५। मूल श्लोक।

२१२) तित्थिउँ तित्थु भमंताहँ मूढहँ मोक्खु ण होइ।

णाण-विवज्जिउ जेण जिय मुणिवरु होइ ण सोइ ॥ ८५ ॥

अर्थ उसका है न। शब्दार्थ। तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण करनेवाले... देखो, यह कुदरती गाथा आयी है, हों!

मुमुक्षु : आज ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज ही आया। क्या कुदरत का मिलन! भगवान योगीन्द्र आचार्य। मुनि है, आचार्य है तो भगवान ही है। पंच परमेष्ठी हैं न वे तो। महा सन्त हैं, जगत की परवाह उनको है नहीं। मार्ग है, वह प्रसिद्ध कर देते हैं। तुमको रुचे, न रुचे तुम जानो। हमें क्या है? समझ में आया? वह पद्मनन्दिपंचविंशति है न? आचार्य पद्मनन्दि हुए हैं। पद्मनन्दिपंचविंशति है। एक दिगम्बर मुनि हुए हैं। वह भी ९०० वर्ष

पहले। बड़े वैरागी, ज्ञानी, ध्यानी जंगल में रहनेवाले दिगम्बर पद्मनन्दि मुनि। बाद में उन्होंने एक बार ब्रह्मचर्य का वर्णन किया। ब्रह्मचर्य का वर्णन। आत्मा ब्रह्मानन्द है, उसमें चरना-रमना। अरे! युवाओं के विषय में, भोग में क्या पड़ा? बहुत लिया। बात करते-करते इतना लिया। बाद में आखिर की गाथा में लिया। पद्मनन्दिपंचविंशति में आखिर की गाथा है। अरे युवाओं! हमारी ब्रह्मचर्य की बात तुमको रुचे नहीं, जँचे नहीं। तो हम सन्त हैं, हमको क्षमा करना। हमारे पास दूसरी क्या आशा रखना? समझ में आया? वही बात है यह। एक गाथा है। पद्मनन्दिपंचविंशति बड़ी पुस्तक है न। २५ अधिकार हैं। अन्त में गाथा है उसमें। वहाँ कहते हैं कि हम ब्रह्म अर्थात् आत्मा। आत्मा में आनन्द भगवान है, वह विषय भोग में क्या पड़ा है? उसमें आनन्द नहीं है, दुःख है। दुःख है। शुभभाव भी दुःख है तो अशुभभाव तो दुःख है ही। शुभभाव विकल्प है, राग है, दुःख है। आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त विकल्प उठते हैं राग, वह दुःख है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द से उल्टा जितना विकल्प राग की वासना उत्पन्न होती है, वह सब दुःख है। शुभराग को दुःख कहते हैं, तो अशुभराग भोग की वासना महा दुःख है। समझ में आया?

कहते हैं कि रुचि तो छोड़ दे एकबार। भगवान आत्मा में आनन्द पड़ा है। ऐसी ब्रह्मचर्य की इतनी व्याख्या की। बारह तप। वह अन्तिम आखिर की गाथा है। अरे! जीवो! हमारी ब्रह्मचर्य की बात तुमको न जँचे और तुमको उकताहट लगे, तो हम सन्त हैं, साधु हैं। हमारे पास क्या दूसरी आशा रखेगा? समझ में आया? हमने तो हमें जो रुचि—जँची है, वह बात जगत को आमन्त्रण करते हैं। वह आया था पहले यहाँ। देखो पहले आया था। ८३वीं गाथा में। ८३ में है न? देखो, परजीवों को ऐसा ही उपदेश है, जो यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती, तो तुमको भी भली नहीं लगती होगी, तुम भी अपने मन में विचार करो। ८३ गाथा में आखिर का बोल है। है न? वह तो कल चला गया। हमारे मन में ऐसी जँचती नहीं। शुभ-अशुभराग में सुख हमको जँचते नहीं, तो तुमको नहीं जँचना चाहिए। ऐसा उपदेश देनेवाला कहे। तुम भी भैया! यह छोड़ दो। भगवान आत्मा में आनन्द है न, प्रभु! यह आनन्द की दृष्टि करो। शुभाशुभभाव में भोग में सुख, उसमें सुख है नहीं। ऐसी रुचि छोड़ दे। पर में सुख (मानता) है तो। क्योंकि

ऐसा तुमको जँचा है तो दुनिया तो ऐसी बात करे। कि भाई! हमको ऐसी जँची। तुम श्रद्धा करो ऐसे।

क्या कहते हैं आचार्य? कि पुण्य छुड़ाकर पाप में लेने की बात नहीं करते। शुभभाव है भक्ति का, तीर्थ का, यात्रा का, वह छुड़ाकर पाप कर दे—ऐसी बात नहीं। परन्तु उसमें तुमने धर्म मान रखा हो, वह मान्यता छोड़ दो। समझ में आया? देखो, तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण करनेवाले... है? मूर्खों को मुक्ति नहीं होती,... वह तो आचार्य ने लिया है। ९०० वर्ष पहले लिया है।

मुमुक्षु : मालूम था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... मालूम था?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! तुम्हें शुभभाव है, तीर्थ में भगवान की पूजा, बहुमान, सम्मान (करने का) शुभभाव है। परन्तु तुम ऐसा मान लो कि इस शुभभाव से हमारा सम्यग्दर्शन और आत्मानुभव और धर्म होगा, ऐसा नहीं है, भगवान! समझ में आया?

मुमुक्षु : तब तो सभी को

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो जितना तीर्थ करे, वह सब मोक्ष में जाये। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तीर्थ तीर्थ प्रति... देखो, दो शब्द पड़े हैं! तीर्थ-तीर्थ में है न, मूल पाठ में वह। 'तित्थिँ तित्थु' है न? दो शब्द पड़े हैं? आचार्य को क्या कहना है? कि भैया! परद्रव्य आश्रित जितना भाव है, इतना राग है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, व्यापार, धन्धा सन्मुख का तेरा राग, वह अशुभराग है। और देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा का राग... परद्रव्य है न वह? तो परद्रव्य के आश्रय से भाव है, वह शुभराग है, वह परद्रव्य के आश्रय से स्वभाव की दृष्टि उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। क्या कहते हैं, सुनो!

पराश्रितो बन्ध स्वाश्रितो मुक्ति, पराश्रितो व्यवहार, स्वाश्रितो निश्चय। तो जितना स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा का लक्ष्य करके भाव होता है, वह परद्रव्य से तो यहाँ पाप होता है। और देव-गुरु-शास्त्र भक्ति, पूजा आदि परद्रव्य है। अपना स्वद्रव्य नहीं है

वह। तो उसका बहुमान भक्ति आदि है तो वह पुण्यभाव है। स्वद्रव्य और पुण्य-पाप के विकल्प की रुचि छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय करे तो उसको सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है। आहाहा! न्याय समझ में आता है? वकीलजी! न्याय है यहाँ लॉजिक है। न्याय 'नि' धातु है न वह 'नि'। 'नि' अर्थात् ले जाना, दोरी जाना। जो सत्य है, उस तरफ बात ले जाना, उसका नाम न्याय। आहाहा! वह तुम्हारा न्याय दूसरा है। यह तो भगवान के न्याय की बात है न। तुम्हारा न्याय तो कायदा हो ... पड़े किताब से।

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर उसने जो ज्ञान में तीन काल—तीन लोक देखा। उससे भगवान की वाणी में आया कि भगवान! तुम आत्मा का स्वलक्ष्य, स्वस्वरूप का लक्ष्य—रुचि छोड़कर, बाह्य पदार्थ में तेरी बुद्धि का भ्रमण हो और उससे तेरा भ्रमण मिट जाये, ऐसा होता नहीं। समझ में आया? वस्तु तो अन्दर है पूर्ण आनन्द और उसका लक्ष्य है बाहर। तो बाहर का लक्ष्य अन्दर में आये बिना अन्तर की दृष्टि सम्यक् कहाँ से होती है? समझ में आया? वस्तु जो अनन्त आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है, उसका लक्ष्य यहाँ रहा करे तो शुभ-अशुभभाव है। स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार में अशुभभाव है, देव-गुरु-शास्त्र, भक्ति, पूजा, यात्रा में शुभभाव है। परन्तु दोनों का लक्ष्य—रुचि छोड़कर स्वतत्त्व की रुचि—दृष्टि करे तो उसको सम्यग्दर्शन होता है। वरना कभी तीन काल में सम्यग्दर्शन बाहर से होनेवाला नहीं। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र और व्रत सब मिथ्या है। एक के बिना के शून्य। शून्य कहते हैं न? मींड़ा। क्या कहते हैं भैया? बिन्दी-बिन्दी। लाख शून्य लिखे हों और एक न लिखा हो तो? कीमत कितनी? शून्य। परन्तु (आगे) एक लिखा हो तो कीमत आ गयी। पश्चात् शून्य लिखे तो नौ बढ़ जाये। ऐसे सम्यक् आत्मा का भान करके पश्चात् राग को मन्द करके स्वरूप में रमे तो चारित्र हो जाये। समझ में आया? चारित्र का अर्थ क्या है? चरना, रमना, जमना। आत्मस्वरूप का भान पहले सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् अन्तर में लीन होना आनन्द में। उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। वह चारित्र, सम्यग्दर्शन मुक्ति का कारण है। बाहर के क्रियाकाण्ड, वह मुक्ति का कारण है नहीं। आहाहा! गजब बात! पसीना उतर जाये लोगों को। इतनी मेहनत करने आया। अभी तो थकान लगी हो, गिरनार पर चढ़ा हो

इसलिए। थाक को क्या कहते हैं ? मुश्किल मुश्किल यह दुःखता हो। मुश्किल ऊपर से तीन घण्टे में उतरे।

यहाँ कहते हैं कि भैया! वह शुभभाव है तेरा। भगवान के प्रति बहुमान, वह अशुभराग से बचने को शुभभाव है, परन्तु है राग। पराश्रित भाव में वीतरागता कभी नहीं है, इसलिए आचार्य कहते हैं। तीर्थ भ्रमता भ्रमते मुक्ति नहीं होगी। हे जीव! क्योंकि जो ज्ञानरहित हैं,... देखो, जिसको आत्मा ज्ञानमूर्ति का अन्दर भान नहीं, उसको ऐसा शुभराग का भ्रमण करने से वह मुनिश्वर नहीं है,... सम्यग्दृष्टि तो नहीं है, परन्तु मुनिवर भी हो सकते नहीं। आहाहा! अन्तर आत्मज्ञान बिना, समझ में आया? 'कोटी जन्म तप तपे।' आया न। अपने अधिकार आ गया यह। 'ज्ञान बिन कर्म झरे जे' कोटि भव में जो क्रियाकाण्ड करे, करोड़ों भव में। आत्मज्ञानी सर्व कर्म का नाश कर दे। वस्तु के स्वरूप की अन्तर दृष्टि करके आत्मा का आश्रय किया जिसने, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो मन से हटकर अन्तर ध्यान हुआ, उसमें करोड़ों भव का कर्म बन्ध हो, निर्जर जाते हैं। अज्ञानी करोड़ भव में क्रियाकाण्ड करके अकाम निर्जरा नहीं कर सकते हैं, इतना ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अन्तर्मुहूर्त में आत्मा का अन्तर ज्ञान करके करोड़ों भव का कर्मों का नाश कर देते हैं। वह आत्मज्ञान की महिमा है। समझ में आया?

अन्तिम ग्रैवेयक है न? नौ ग्रैवेयक। वहाँ अनन्त बार गया। स्वर्ग है। कल्पना नहीं, हों! सब लॉजिक से, युक्ति से सिद्ध कर सकते हैं। परन्तु यहाँ तो बात चलती हो वह चले न। स्वर्ग है, नरक है। सब है। है। नहीं है, ऐसा नहीं। नरक है, स्वर्ग है, भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। समझ में आया? सब है। वह न्याय से, युक्ति से, आगम से, अनुभव से बात सिद्ध हो सकती है। यहाँ तो चलती है बात। वह ... स्वर्ग भी है। अनन्त बार स्वर्ग में गया। समझ में आया? अनन्त बार गया है या नहीं? क्यों वकीलजी! आत्मा कब का है? अनादि का। आत्मा है। है, वह कभी उत्पन्न होता है? है, वह कभी उत्पन्न होता है?

मुमुक्षु : अनादि-अनन्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस अनन्त है, समाप्त हो गया। तो अनादि है तो रहा क्या अभी

तक ? है तो रहा क्या ? मुक्ति हो गयी है ? मुक्ति होवे तो चार गति वापस मिले नहीं । जो चना क्या कहते हैं ? भुन गया । चना होता है न चना ? वह भुन गया, वह वापस उगता है ? वापस नहीं उगता है । इसी प्रकार आत्मा की जो मुक्ति हो जाये, पश्चात् जन्म-अवतार नहीं होता है । तो अनादि काल में कभी मुक्ति तो हुई नहीं । जन्म-मरण किया धूल चार गति में । समझ में आया ? वह सब है या नहीं ? प्रत्यक्ष है या नहीं ? अभी एक लड़की आनेवाली है यहाँ । वह पुनर्जन्म की बात नहीं आयी थी ? सुनी है या नहीं ?

मुमुक्षु : बहन की....

पूज्य गुरुदेवश्री : चम्पाबहन की भतीजे की लड़की है । बहन तो है चम्पाबहन उन्हें तो है, परन्तु उसके भतीजे की लड़की है । यह उसके भाई है । लड़की अभी आनेवाली है । पाँच वर्ष की उम्र है । जातिस्मरण हुआ है । यहाँ अभी जूनागढ़ में है । जूनागढ़ है न ? वहाँ लुहार है लुहार । गोकुलदास लुहार । उसकी पुत्री थी लड़की । ढाई वर्ष में गुजर गयी । और यहाँ आयी है । आठ दिन रहेगी । यहाँ महोत्सव है न, महोत्सव में आते हैं । दूज का महोत्सव है न पच्चीस वर्ष का । तो आनेवाली है । पाँच वर्ष की है । सब बात करती है कि मैं गीता थी, यह मेरी माता है, मेरे पिता है । सब जाकर निश्चित किया । हमारे यह पण्डितजी है बड़े । वह बैठे हैं । वह परीक्षा लेते हैं । बहुत कम बोलते हैं । बड़े पण्डित हैं । उनके भाई के बेटे की बेटी है । वह वहाँ ले गये । तो सब पहिचान लिया । जो बात कही वह सब बता दी । यह मेरी माँ—पूर्वभव की मेरी माता, यह मेरे पिता, यह मेरा घर, यहाँ में दर्शन करने को जाती थी । लुहार था । लुहार अर्थात् अन्यमति । मन्दिर । वहाँ सब बता दिया । यहाँ मैं पेड़ा खाती थी । ... सब कहा । वह जयपुर से आये थे । एक जयपुर में बड़ी संस्था है न । पश्चात् अमेरिका की एक संस्था है । पुनर्जन्म की ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह आये थे । यहाँ आये थे । मोटर लेकर आये थे ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आये थे यहाँ । उसको निर्णय करने को । वहाँ तो निश्चित

किया। रेकॉर्डिंग ले गये। भाई का रिकॉर्डिंग ले गये। दो घण्टे रहे थे। लाख ऊपर की बड़ी मोटर थी। बड़े प्रोफेसर थे। ले गया। मेरे पास में अन्दर आया था। ... क्यों आया कहा? हिम्मतलाल कहाँ है? क्या काम कहा? राजुल। कहा राजुल की बात सच्ची है सब। यहाँ का नाम राजुल है। अपने यह जैन में अवतरी। वहाँ गीता नाम था। तो पहले ढाई वर्ष से कहती थी। मैं गीता हूँ। मैं जूनागढ़ से आयी हूँ। मेरे माता है, मेरे पिता है, मेरे ऐसा घर। सब बात सच्ची निकली। भाई गये थे साथ। सब निश्चित करके आये। सब सच्चा है। अब वहाँ से मरकर यहाँ आयी। यहाँ तो जूनागढ़ से वांकानेर लो। परन्तु अब दूसरे क्षेत्र से दूसरे आवे तो किसको कहना वह बात? समझ में भी अभी पुनर्जन्म का ठिकाना नहीं प्रतीत में। क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रसिद्धि हो गये न। समाचारपत्र में आ गया। समाचारपत्र में बहुत आ गया। यहाँ आठ दिन रह गयी। बहुत लोग देखने को आते थे। अभी आनेवाली है दो-चार दिन में। आनेवाली है यह महोत्सव है न। बहुत लोग देखने को।

यहाँ तो दूसरा कहना है कि पुनर्जन्म है या नहीं? तो जैसा भाव किया, वैसा अवतार होता है। आत्मा तो यही है। वह कहती थी। हम गीता हैं। हमारे पण्डितजी ने प्रश्न ऐसा किया था। पण्डितजी हमारे बड़े होशियार है। क्योंकि बाप का काका है न तो पूछा। तुम तेरे पिताजी को पहचान लेगी? हाँ। तेरी माताजी पहचानेगी? हाँ। क्या तेरे घर को पहचान लेगी? हाँ। क्या गीता को पहचानेगी? गीता तो मैं हूँ। समझ में आया? हाँ-हाँ में वह हाँ कह दे। तुम गीता को पहचान लोगी? हमारे पण्डितजी बड़े होशियार हैं। तो ऐसा प्रश्न किया कि तो क्या वहाँ गीता को पहचानेगी? गीता क्या कहते हो? गीता तो मैं हूँ। वहाँ से मैं आयी हूँ। यह खोल दूसरा है, जीव मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा अनादि का जीव है, उसने पुण्य-पाप किया तो चार गति में भटका है। भव मिला, परन्तु पुण्य-पाप से रुचि छोड़कर कभी उन्होंने आत्मज्ञान और आत्मदर्शन किया नहीं। और उसकी श्रद्धा क्या है, उस चीज़ की कीमत भी उसको आयी नहीं। तो उसके बिना, कहते हैं कि तीर्थ-तीर्थ भ्रमे तो भी वह मूर्ख है। आचार्य ने तो ऐसा कहा। आहाहा!

और 'मुनिवरः न भवति' लो ! जबतक आत्मज्ञान और आत्मदर्शन न हो, तब तक चारित्र होता नहीं। मूढ़ पहले कहा और पश्चात् आत्मज्ञान बिना चारित्र नहीं होता। तो आत्मा का भान सम्यक् अनुभव बिना मुनिवर अर्थात् चारित्र कभी होता नहीं और चारित्र बिना कभी मुक्ति होती नहीं। इसलिए पहले सम्यग्दर्शन चारित्र का कारण है, उसको पहले यथार्थ श्रद्धान करके प्रगट करना। वह बात यहाँ बताते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक १५-०२-१९६६

गाथा - ८५ - ८६, प्रवचन - १२९

परमात्मप्रकाश। उसके दूसरे भाग की ८४ गाथा पूरी हुई। ८५ चलती है देखो! देखे, यहाँ क्या कहते हैं आचार्य योगीन्द्रदेव मुनि? धर्मात्मा को महातीर्थ कौन है तीर्थ? कि जिस तीर्थ में स्नान करने से अपवित्रता का नाश हो और पवित्रता की उत्पत्ति हो। वह परमार्थ से तीर्थ कौन है, वह बात चलती है। अकेला बाह्य तीर्थ भ्रमते हैं तो शुभभाव होता है। आता है न, मूल में आ गया न? 'तित्थिँ तित्थु भमंताहँ' तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण करनेवाले... 'मूढहँ मोक्षु ण होइ' यह तो आया तो सुनने को मिले। कल वह यात्रावाले आये थे तीर्थवाले। जयपुर से बहुत लोग आये थे। यह तो गाथा तुम्हारे लिये नहीं आयी। वह तो बराबर आयी हमारे में। वह व्यवहारतीर्थ आयेगा। शुभभाव, जब शुद्धस्वरूप आत्मा की दृष्टि करके स्थिर न रह सके तो ऐसा शुभभाव आता है यात्रा का आदि अशुभ से बचने को, परन्तु वह कोई बन्ध का निराकरण करे। वह तीर्थ बन्ध का नाश करे, यह नहीं है उसमें। समझ में आया? पुण्यबन्ध हो जाये। परन्तु साथ में मिथ्यादृष्टिपना रहे कि उससे मेरा कल्याण होगा, तो वह तो पापानुबन्धी ऐसा कोई पुण्य बँध जाये। आचार्य कहते हैं कि भैया! अपना आत्मा तीर्थ के भान बिना बाह्यतीर्थ का अकेली भ्रमणा, भ्रमना, भ्रमना वह भ्रमणा है। और उसमें मूढ़ मोक्ष मानते हैं। स्पष्ट शब्द लिखा है। यह तो दिगम्बर आचार्य मुनि हैं। दुनिया से कोई लेना नहीं है। चन्दा-बन्दा करवाना नहीं है कि उसको ठीक हो तो ठीक पड़ेगा। समझ में आया?

देखो, तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण करनेवाले मूर्खों को मुक्ति नहीं होती। हे जीव! क्योंकि जो ज्ञानरहित हैं,... जिसको आत्मा अन्तर ज्ञानानन्द... चिदानन्दस्वरूप की अन्दर में दृष्टि और अनुभव नहीं है। समझ में आया? वह जीव वह मुनिश्वर नहीं हैं,... वह धर्मी ही नहीं। उसको मुनिपना कहते नहीं, उसको चारित्र भी कहते नहीं। जो समस्त विकल्पजालों से रहित होके अपने स्वरूप में रमें, वे ही मोक्ष पाते हैं। देखो! जो

निषेध किया, उसमें से अस्ति निकाला। जो आत्मा... बात तो ऐसी है, भगवान आत्मा उस चीज़ की कोई कीमत नहीं लोगों को। शरीर, वाणी और क्रिया जड़ की और बहुत तो अन्दर में शुभभाव हो, भैया! उसकी कीमत। जो आत्मस्वभाव से विरुद्ध भाव है। पापभाव हो या पुण्य हो। दोनों भाव... आत्म शुद्ध आनन्दस्वभाव चिदानन्द मूर्ति आत्मा है। अपना निज शुद्धस्वभाव से दोनों भाव विरुद्ध हैं। तो आत्मज्ञान बिना, आत्मदृष्टि अनुभव बिना अकेला तीर्थ-तीर्थ भ्रमे तो योगीन्द्रदेव कहते हैं कि मूढ़ है। समझ में आया? तब परमार्थ तीर्थ क्या है कि जिसमें से एकाग्र होकर आत्मा की शान्ति मिले और अशान्ति का नाश हो। वह तीर्थ क्या है? वह कहते हैं, देखो!

भावार्थ :- निर्दोष परमात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ वीतराग परम आनन्दरूप निर्मल जल... अब तीर्थ की उपमा देते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा की बात करते हैं। परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा जैसा, आत्मा वैसा, कहेगा, भाई। ऐसा ही है परन्तु बराबर अर्थ नहीं। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा है, ऐसा ही अपना आत्मा है, उसमें अन्तर में एकाकार होना, वही महा तीर्थ धर्मात्मा को अन्तर में तीर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहते हैं, कोई स्वरूप में स्थिर न रह सके और तीर्थ की वन्दना आदि का शुभभाव है, वह भी निषेध कर दे कि वह होता ही नहीं है। वह भी नहीं है। और कोई ऐसा मान ले कि उस भाव से हमारा धर्म और मुक्ति होगी, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो धर्म कैसा है? तीर्थकर कैसा है? भाई! यहाँ तो तीर्थकर जैसा आत्मा.. मुझे तो यह कहना है जरा। केवली जैसा नहीं। यहाँ तो तीर्थकर जैसा यह आत्मा मैं ही ऐसा हूँ। अन्तर में एकाकार होते हैं, उसको महातीर्थ तो अपना आत्मा है ऐसा कहते हैं। आचार्य की ध्वनि तीर्थकर के आत्मा के साथ अपने आत्मा को लगा दिया है। समझ में आया?

कैसा है तो तीर्थकर परमात्मा? कि निर्दोष परमात्मा की भावना से... अब वह शब्द पड़ा है देखो, कहते हैं कि परमात्मा केवली को अनन्त आनन्द का प्रवाह जल प्रवाह झरता है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर को अनन्त आनन्दरूप जल का प्रवाह झरता है। वह कहाँ से झरता है? झरता कहते हैं न झरता? निकलता है। पाठ में निर्झर है। झरता है। जैसे निर्झर में पानी हो न झरता है। वैसे भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय

आनन्द और शान्तरस का पर्वत है आत्मा पवित्र। उसमें... कैसा है ? निर्दोष। पहला शब्द पड़ा है। **निर्दोष...** यह शरीर, वाणी, मन जड़, कर्म जड़। पुण्य-पाप का भाव, वह विकारी आस्रव। उससे रहित निर्दोष परमात्मा वह वस्तु ली। आत्मा। निर्दोष परमात्मा। दोषरहित, पुण्य-पाप का रागरहित। पूर्णानन्द प्रभु आत्मा, उसकी भावना। भावना अर्थात् उसमें एकाग्र होकर सर्वज्ञ क्यों हुआ और सर्वज्ञ को अतीन्द्रिय आनन्द का जल का पूर-प्रवाह क्यों बहता है ? ऐसा कहते हैं कि अन्दर में चैतन्य में महा आनन्द जल भरा है। उसमें एकाग्र होकर। भावना अर्थात् एकाग्रता। जमुभाई ! आहाहा !

निर्दोष अपना निज परमात्मा, उसकी भावना, अन्तर स्वरूप की शुद्धता की एकाग्रता, अन्तर एकाग्रता। पुण्य-पाप का विकल्प आश्रय छोड़कर अपना निज चिद्पिण्ड, ज्ञानपिण्ड अनाकुल आनन्द का महान पर्वत ऐसा अपना आत्मा। उस पर्वत में भावना— एकाग्र हुआ अन्दर। उससे उत्पन्न हुआ। क्या उत्पन्न हुआ ? **वीतराग परम आनन्दरूप निर्मल जल...**

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। क्या कहा देखो न ! आहाहा ! बड़ा पर्वत हो तो पानी निकलता है न। झरना चला आता है पानी। गुड़ का गुड़ का वह बड़ा रवा होता है न, रवा। रवा क्या कहते हैं रवा ? भेला। वह कोल्हापुर का होता है कोल्हापुर का। बहुत ऊँचा। आधा... आधा नम्बर का गुड़ हम वहाँ गये थे न कोल्हापुर। तो एक आधा नम्बर का गुड़। आधा नम्बर का। बहुत सफेद ऊँचा। परन्तु एक व्यक्ति ने अधमण दिया था। थोड़ा-थोड़ा लो। फिर मोटर में रखा तो मोटर में चूहा खा गये। मोटर में चूहा आ गये तो मोटर में से निकले नहीं। वह फतेहपुर में निकाला।

मुमुक्षु : चूहे के भाग्य का हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सबका हो। यहाँ तो कहते हैं कि कोल्हापुर का एक आधा नम्बर का गुड़ होता है, ऐसा रवा हो ! बहुत सफेद। तो उसका चीरा। चाकू द्वारा, तो उसमें से क्या निकलता है ? गुड़ निकले। क्या उसमें जहर है ? पानी है उसमें ? इस प्रकार यह आत्मा केवलज्ञान का कोल्हापुर का आनन्द भरा रवा है। आहाहा ! लोगों ने

यह आत्मा क्या वह बैठता नहीं। समझे ? वह कोल्हापुर केवलज्ञान का पिण्ड अकेला और अतीन्द्रिय आनन्द का अन्तर पूर-पूर रस पड़ा है। देखो, यह पाठ है, हों ! अभी अर्थ बराबर नहीं किया पाठ का ऐसा। पाठ में तो ऐसा है कि आत्मा का परम आनन्दरूपी जो रवा पड़ा है पूर्णानन्द, उसमें एकाग्र होकर वीतराग परमानन्द, रागरूपी भाव से रहित अन्तर की एकाग्रता से परम आनन्द सुन्दर आनन्द, आनन्द अतीन्द्रिय का प्रवाह कैसा है ? ऐसा निर्मल जल। **अतीन्द्रिय आनन्दरूप निर्मल जल...** उसका पूर, उसका प्रवाह, उसका झरना। ऐसा शब्द है टीका में। समझ में आया ?

सर्वज्ञ परमात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द क्यों हुआ है ? कैसे हुआ ? यह बताया है और क्या किस कारण से हुआ है, वह कारण भी बताया। ऐसा यह आत्मा है ऐसा बताते हैं यहाँ तो। परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ। अपना आत्मा पूर्णानन्द जो निर्दोष परमात्मस्वरूप अपना उसमें एकाग्र होकर; पुण्य-पाप के भाव में एकाग्र हो तो वह तो बन्ध होता है। स्वभाव शुद्ध पिण्ड, चैतन्य पिण्ड उसमें एकाग्र होकर निर्मल आनन्दरूपी निर्मल नीर, निर्मल नीर। अतीन्द्रिय आनन्दरूपी निर्मल नीर, उसका पूर। आनन्द जल का पूर, उसका प्रवाह। आचार्य ने कितना लिखा है ! उसका निर्झर। झरना उसमें निकलता है, कहते हैं।

आत्मा भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन से लेकर वीतरागपना बहुत जब अन्तर एकाग्रता हुई तो अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का जलरूपी-नीररूपी प्रवाह का पूर चला अन्दर में। यह पर्याय में। समझ में आया ? यह उसमें स्नान करना ऐसा आत्मा है, यहाँ बताते हैं। जैसा तीर्थकर भगवान का आत्मा है, वैसा यह आत्मा है। पूर्णानन्द निर्दोष परमात्मा में एकाग्र होकर रागरहित परमानन्द का प्रवाह का झरना जो होता है, उसमें आत्मार्थी स्नान करते हैं, मुनिजन उसमें परिणति करते हैं, उसको तीर्थ कहने में आता है। ऐसा कहते हैं। गजब उपमा।

मुमुक्षु : परन्तु सुन्दर आनन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुन्दर आनन्द ऐसा। तुम्हारा यह जहर जैसा आनन्द नहीं, ऐसा कहते हैं। यह संसार का सुख कहते हैं न ! संसार का सुख यह पाँच-पच्चीस लाख की

पूँजी और धूल और स्त्री-पुत्र लड्डू-बड्डू खाना। राग आता है न? वह सुन्दर आनन्द नहीं, वह तो कड़वा आनन्द है, वह तो दुःख है।

मुमुक्षु : कड़वा और आनन्द कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कड़वा आनन्द, वह झूठा आनन्द। समझ में आया? यह सच्चा आनन्द। सुन्दर रुपवाला अर्थात् यथार्थ।

अन्तर भगवान् आत्मा अकेला आनन्द का रवा है, वह तो। उसको आत्मा क्या है, उसकी कीमत ही नहीं आती। जगत की कीमत आती है सबकी। बहुत तो अन्दर से पुण्य और पाप के परिणाम होते हैं न। आहाहा! वह शुभभाव किया तो ओहोहो! बहुत किया लो। यहाँ तो योगीन्द्रदेव कहते हैं कि भगवान्! तेरा आत्मा अन्तर में निर्दोष प्रभु है। उसमें एकाग्रता होकर परमात्मा को परम आनन्दरूपी नीर का पूर बहता है। एक यह बात। जल कहा।

दूसरी बात उसके धारण करनेवाले... ऐसा आनन्द अतीन्द्रिय झरना झरते हैं उसको धारण करनेवाला। कौन? तीर्थकरदेव का आत्मा। ऐसा ही यहाँ लगायेंगे। वैसा यह आत्मा है, ऐसा लगायेंगे। और एक बोल वह हुआ। ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चन्दनादि वृक्षों के वनों से शोभित... पश्चात् जल का भरा है आनन्द का, परन्तु साथ में वृक्ष। वृक्ष होता है न? बड़ा तीर्थ हो, कुण्ड हो बड़ा। तो कैसा? ज्ञान-दर्शनादि गुण। आत्मा में आनन्दरूपी जल का प्रवाह बहता है आत्मस्वभाव में एकाग्र होकर भगवान् को जो पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ उसमें ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चन्दनादि वृक्षों के... कहो, समझ में आया? यह आनन्द का पूर बहता है पर्याय में। अन्तर में एकाग्र होकर जो प्रवाह हुआ, उसमें ज्ञान, दर्शन, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व, स्वच्छता, कर्ता-कर्म आदि अनन्तगुणरूपी चन्दन के वृक्ष राजित अर्थात् वह तीर्थ शोभित है। अकेला ... हो तो वृक्ष न हो तो यह बराबर शोभित नहीं है, ऐसा कहते हैं या नहीं? चारों ओर चन्दन के वृक्ष हों। लो, यह भी आत्मा में पूर्ण निर्दोष भगवान् आत्मा उसके अन्तर एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का जल का प्रवाह झरा, उसके साथ ज्ञान, दर्शन, आनन्द शान्ति चारित्र इत्यादि स्वच्छता, प्रभुता ऐसा ज्ञान-दर्शनादि

समूह, ऐसा चन्दनादि वृक्ष। देखो, एक तो आनन्द का झरना पर्याय में आया, उसमें साथ में चन्दन आदि वृक्ष पड़ा है। ऐसा आत्मा में आनन्द का प्रवाह बहा, उसमें ज्ञान-दर्शन-शान्ति आदि चन्दन वृक्ष का समूह साथ में है। उससे वह आनन्द जलरूपी तीर्थ शोभित है। गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया? समझायें छे कांई अर्थात्? समझ में आता है? आहाहा!

चन्दनादि वृक्षों के... भगवान आत्मा में अनन्त गुण जो पड़ा है न। उसमें एकाग्र होकर जो वीतराग आनन्द जलप्रवाह बहा, उसके साथ ज्ञान, दर्शन, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनेक शक्तियों की व्यक्तता प्रगट हुई, उससे यह चन्दन आदि वृक्ष से शोभायमान अपना निर्मल आनन्द जलरूपी तीर्थ ऐसे वृक्ष से शोभित है। राजमलजी! उपमा ऐसी कभी सुनी नहीं होगी। यह बाग बनाते तो बनावे न भाई बीच में मकान, चारों ओर फूलझाड़। धूलझाड़ बनाते हैं न सब? बगीचा। समझ में आया? लाख-लाख, दो लाख, पाँच लाख का बड़ा मकान बनाते हैं न? देखो न। कैसे मकान थे? हम गये थे जयपुर? तो सुन्दरलाल ठोळिया नहीं? उसका बड़ा बगीचा था। हम गये थे। रात्रि को वहाँ जाते थे। गाँव में तो रुकते नहीं। एकान्त में रहते थे। रात्रि को वहाँ जाते। बड़ा-बड़ा सा ऐसा क्या कहते हैं? बाग। उसमें... लोगों को धूल की... यह अन्तर की शोभा।

भगवान आत्मा परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसकी एकाग्र होकर जो आनन्द प्रवाह बहा, उसके साथ ज्ञान-दर्शन आदि शान्ति आदि का चन्दन की शोभावाले वृक्ष से वह तीर्थ आनन्दरूपी तीर्थ शोभित है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाग-बगीचा है। उस बगीचा की क्या बात है। धूल में बाग-बगीचा में बैठा हो, कुर्सी में बैठा हो तो ऐसे फू हो जाये। मर जाये अब वहाँ कहाँ बाग बगीचा? यहाँ तो जीवित रहे, ऐसी बात है। कुर्सी डालकर चारों ओर रखे न ऐसे। अब अकेली कुर्सी नहीं, वह डाले न तुम्हारे क्या कहलाये नेतरना?

मुमुक्षु : सोफा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोफा। यह नामबाम आता नहीं। नेतर का ऐसा बैठे तो ऐसे

परन्तु पड़े नहीं, ऐसे भी पड़े नहीं ऐसे। नेतर का होता है न नेतर की कुर्सी? क्या कहते हैं उसको? बस ऐसे बैठे। ऐसे भी हिले नहीं, ऐसे भी हिले नहीं, नीचे ऐसा चौड़ा हो। ओहोहो! क्या हुआ? कुछ असुख है। वहाँ देखने आवे वहाँ समाप्त हो गया। धूल में भी बाग सुखरूप है नहीं। समझ में आया? बाग में भी मर गये कितने ऐसे। रात्रि को खा-पीकर बैठे हवा लेने को। श्रीखण्ड पूरी खाकर, श्रीखण्ड और पतरवेलिया। पतरवेलिया कहते हैं? तुम्हारे क्या कहते हैं? वह अरबी के पत्ते होते हैं न, अरबी, अरबी का पत्ता होता है, उसका भजिया बनाते हैं। पत्ता होता है न लम्बा उसके टुकड़े बनाकर वह चने का आटा होता है न, चोपड़कर वाटा बनावे। वह श्रीखण्ड और ... खाकर बैठा हो। फू हो जाये। धूल में भी नहीं अब, यह तो जड़-मिट्टी है।

भगवान आत्मा यह आत्मा का बाग का वर्णन करते हैं। ओहो! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। यहाँ आनन्द से बात ली है। दुःख नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चन्दनादि वृक्षों के... यह उपमा चन्दन आदि। वह ज्ञान-दर्शन को चन्दन आदि की उपमा है। ऐसे वन से आत्मा शोभता है अन्दर। तथा देवेन्द्र... आहाहा! इन्द्र। भगवान के समवसरण में तो इन्द्र आदि हैं या नहीं? देवेन्द्र। अर्धलोक के स्वामी सुनने को आते हैं। चक्रवर्ती... छह खण्ड के धनी। छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्री लेकर ऐसे भगवान के वन्दन करने को आते हैं। गणधरादि... गणधर चार ज्ञान के धनी। आदि भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के... यह तीर्थयात्री वह है। देखो! वह तीर्थयात्री वह तीर्थ करने को निकला है। आत्मा का परमानन्दरूपी झरना जहाँ अन्दर में एकाग्र होकर झरे। वहाँ चन्दन वृक्ष आदि की शोभा ज्ञान-दर्शन की है। उसमें गणधर, देवेन्द्र और चक्रवर्ती तीर्थयात्री आया भगवान के पास। यहाँ सर्वज्ञ की उपमा दी है न। वह तीर्थ हैं। तिरने का उपाय शोधकर तिरते हैं तो भगवान के पास आये हैं।

गणधरादि भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के... यह उन्हें तीर्थ की यात्रा करनेवाला कहते हैं। वे सर्वज्ञ परमात्मा के अतीन्द्रिय आनन्द और चन्दनवृक्ष ज्ञान-दर्शनादि है, उसके पास आते हैं, उनको यहाँ तीर्थयात्री कहने में आता है। यहाँ पर्वत के पास जाये उसको व्यवहार तीर्थयात्री कहते हैं। समझ में आया? ऐसा तीर्थ-यात्रियों के कानों को

सुखकारी ऐसी दिव्यध्वनि से शोभायमान... भगवान की दिव्यध्वनि निकलती है आनन्द अमृत बताने को। 'वचनामृत वीतराग के...' जैसा अमृत आनन्द का अनुभव करते हैं भगवान अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव में एकाग्र होकर, ऐसी वाणी निकलती है। यात्री को बताया अरे, आत्माओं! तुम आनन्दमय हो। आहाहा! अरे! तीर्थयात्रियों! तुम तीर्थ करने को आये हो। तुम्हारा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण भरा है। उसमें तुम दृष्टि और स्थिरता लगाओ। यह तो ... समकिती तो है। समझ में आया? उसमें स्नान करो, हम स्नान करके पवित्र होकर केवलज्ञान पाया, तुम भी ऐसे आत्मा के चैतन्य सरोवर में एकाकार होकर स्नान करो। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहो, समझ में आया? आशीर्वाद की क्या बात है? यहाँ तो कहते हैं, शोभायमान, वह वस्तु आत्मा है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा आत्मा है, ऐसा कहेंगे।

देवेन्द्र चक्रवर्ती गणधरादि भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के कानों को सुखकारी... क्यों सुखकारी कहा? कि जिसको अतीन्द्रिय आनन्द प्रिय है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में नहीं लिया, भाई? पहली गाथा में नहीं? 'जग मधुर विशुद्ध...' ऐसे सब उपमा ली है। पहली गाथा में। इन्द्रिय तद् वंदणियाणं। भगवान त्रिलोकनाथ कैसा है? सौ इन्द्रों से वन्दनीक और तीन जगत को हित करनेवाले और स्पष्ट और मधुर जिसका वाक्य है। मीठा मनोहर। किसको? यह जिसको आत्मा की अन्तर चैतन्य की दृष्टि और अनुभव करने का भाव है, ऐसे परम मनोहर जीव को उनकी वाणी मनोहर लगती है। आहाहा! यह पहली गाथा में बहुत रखा है। मधुर ... मीठा वाक्य। मीठा वाक्य। ले वाक्य मीठा होगा! वाक्य में ऐसा कर्णप्रिय आता है न? आहाहा! भाई! प्रभु! तेरा आत्मा तो अन्दर आनन्दरस से भरा है न, प्रभु! यह वाक्य भी ऐसा आता है। तेरा आत्मा पूर्ण छलाछल आनन्द से भरा है। एक आनन्द की कमी नहीं। पोणी सोह आना नहीं। ऐसा आत्मा में सोलह आना आनन्द पड़ा है भगवान! ऐसी भगवान की वाणी आती है। आहाहा!

गणधर सुनने को आवे, इन्द्र सुनने को आवे वह बात ... समझता है। ऐसी बात

अन्दर में आती है। ओहोहो! भगवान! तेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरा है। ऐसी वाणी कानों को सुख कर देती है, ऐसे यह तीर्थ शोभायमान है। ऐसी दिव्यध्वनि से शोभायमान... है। और अनेक मुनिजनरूपी राजहंसों को... सरोवर में वह राजहंस होता है न राजहंस? समझ में आया? राजहंस अर्थात्? वह पानी और दूध को भिन्न कर देता है। ऐसी उसकी शक्ति होती है हंसों में। पानी अधमण हो। आधा। आधा नहीं कहते? आधा पानी और आधा दूध। चोंच खट्टी हो तो ऐसे डालकर भिन्न कर दे। ऐसे मुनिजनरूपी राजहंस जिसको पुण्य-पाप का विकल्प वह जल है, आत्मा आनन्द, वह दूध है। उन दोनों को भिन्न करते हैं। उन दोनों को भिन्न करते हैं, उसको राजहंस कहने में आता है। आहाहा! कहो, प्राणभाई! ऐसा तीर्थ भी सुना नहीं हो कभी। नहीं?

मुमुक्षु : यह माहात्म्य बताया स्वयं का।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह माहात्म्य बताते हैं। तेरा आत्मा ऐसा है, परन्तु तुझे खबर नहीं। जहाँ-तहाँ भटके। कहाँ से पवित्र होता है? कहाँ से पवित्र होता है? पवित्र तो तू ही अन्दर में पड़ा है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि मुनिजनरूपी राजहंसों को आदि लेकर नाना तरह के पक्षियों के शब्दों से... देखो! महामुनि होते हैं न? ओहो! भगवान की वाणी! ऐसा बोले न शब्द! वाह प्रभु! प्रमाण ... सत्य है। ऐसा कोलाहल होता है न? ऐसे अनेक प्रकार के मुनिजन आदि राजहंस, उनकी आवाज निकलती है। वाह प्रभु! वाह वाणी! वाह! ऐसे यह तीर्थ शोभाता है, ऐसा आचार्य कहते हैं। छह खण्ड में चक्रवर्ती बैठे हो न? चक्रवर्ती बैठे हों। भगवान परमात्मा आपकी वाणी यथार्थ है। ...ऐसे कोलाहल होता है। ऐसी वाणी का कोलाहल होता है। समझ में आया? महाविदेहक्षेत्र में देखो तो अभी भी ऐसा होता है। सीमन्धर भगवान विराजते हैं न अभी? तीर्थकरपने विराजते हैं केवली, ऐसा होता वहाँ अभी ऐसा होता है। आहाहा! परन्तु व्यक्ति को कुछ विचार नहीं कि क्या क्षेत्र है, क्या परमात्मा है, क्या चीज़ आत्मा है। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा ही यह आत्मा है, ऐसा कहेगा। आहाहा!

अरिहंत (वीतराग) सर्वज्ञ वे ही निश्चय से महातीर्थ हैं,... लो, समझ में आया?

‘यदर्हद्वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं तदेव निश्चयेन गङ्गादितीर्थं’ ‘परमनिश्चयेन तु जिनेश्वर-परमतीर्थसदृशं’ ऐसा कहे। देखो, बाद में अन्तिम लिया, परन्तु उसके साथ लिया। ऐसा परमात्मा जैसा तुम्हारा आत्मा है, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया? ‘जिनेश्वरपरम-तीर्थसदृशं’ देखो, है? देखो, निश्चय से महातीर्थ तो भगवान परमात्मा है। उनके समान अन्य तीर्थ नहीं है। गंगा-फंगा का स्नान तो वह पाप है। परन्तु यहाँ तो भगवान का तीर्थ है गिरनार, सम्मेदशिखर आदि, वह भी शुभभाव पुण्यबन्ध का निमित्त है। पुण्यभाव का निमित्त है; पवित्रता का निमित्त है नहीं। आहाहा! समझ में आया? पवित्रता का कारण तो तेरा परमात्मा है। अन्दर विराजमान हम जैसा परमात्मा है, ऐसे ही तुम हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वे ही संसार के तरने के कारण परमतीर्थ हैं। भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप परमतीर्थ उसमें एकाग्र होकर स्नान करनेवाला सम्यग्दृष्टि आदि मुनि, वह परम तीर्थ हैं। उनके समान अन्य तीर्थ नहीं हैं। वे ही संसार के तरने के कारण परमतीर्थ हैं। जो परम समाधि में लीन महामुनि हैं, उनके वे ही तीर्थ हैं,... वह धर्मी को तो वही तीर्थ है, दूसरा तीर्थ परमार्थ से है नहीं। आहाहा! भारी बात, भाई! शत्रुंजय में कहा जाता है। वह शत्रुंजय है न शत्रुंजय? शत्रुंजय में नहीं नहाया, उसका अवतार व्यर्थ गया। अरे! शत्रुंजय नदी यह है। भाई! नाम क्या? तुम्हारा नाम क्या? माणेकचन्दजी। पानाचन्दभाई का भाई। समझ में आया? ओहो! शत्रुंजय। यह पुण्य-पाप आदि विकार भ्रमणा, वह शत्रु है। उसका आत्मा का स्वभाव में एकाग्र होकर जय करना, वह शत्रुंजय आत्मा है। वह व्यवहार है, पुण्यबन्ध का कारण है। गिरनार, शत्रुंजय आगे आयेगा। सम्मेदशिखर आदि तीर्थ में शुभभाव जब आता है, तब वन्दन का भाव होता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। आत्मदृष्टि अनुभव के बिना ऐसा अकेले शुभभाव से तेरे तरल उपाय हो जाये। ऐसा कभी बनता नहीं। लाखोंपति, करोड़ोंपति, दो-पाँच खर्च कर ले और मुक्ति हो जाये। चलो भाई तीर्थ निकाला पाँच लाख खर्च करके। ऐई! प्राणभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : साफ हो गया लो। धूल में साफ हुआ? पाँच लाख निकालो अपने तीर्थ। एक संघ निकालो। दस लाख खर्चा तो ओहोहो! क्या हुआ? दस लाख में

राग मन्द किया हो तो पुण्य शुभभाव है। शुभभाव है। शुभभाव है। परन्तु ऐसा मान लो कि ऐसे शुभभाव से हमारा जन्म-मरण का अन्त आयेगा या सम्यग्दर्शन होगा, उस बात में माल नहीं कुछ। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गये थे। सब गये थे न? अभी नहीं गये थे? गत वर्ष नहीं गये थे?

मुमुक्षु : शत्रुंजय अपने गये थे न, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रुंजय गये थे। दो बार गये थे। ९५ में और ९वें वर्ष। शत्रुंजय दो बार तीर्थ गये थे। गिरनार तीन बार। पहले ९६, दूसरी १७ तीसरी बार यह अभी। दस-दस। पहले ९६, १० और १७ तीन बार तो वहाँ गये, दो बार यहाँ गये। सम्मेदशिखर एक बार गये, बाहुबली दो बार गये। साथ में बहुत लोग थे। परन्तु वह शुभभाव है। माणेकचन्दजी! साथ में तो दो वर्ष पहले गये, नहीं? बाहुबलीजी गये, वहाँ भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य रहते थे, वह पोन्नूरहिल। वहाँ से भगवान् के पास गये थे। वहाँ ७० मोटर साथ में थी। हजार व्यक्ति थे। ७० मोटर के साथ पाँच-पाँच हजार लोग दर्शन में। मद्रास से ८० मील इस ओर वन्देवास है। छोटा गाँव। वहाँ से पाँच मील पोन्नूरहिल है। वहाँ हम दो बार गये। वहाँ अपनी ओर से एक छोटा मकान बनवाया है। मात्र पगला (चरण) है भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य के चरण हैं। यहाँ की ओर से २५-३० हजार संस्था को दिया था। वहाँ एक बनाया है याददाश्त के लिये। यहाँ दो बार सोनगढ़ का संघ आया था। समझ में आया? अभी किसी का विचार है, ऐसा सुना है। वहाँ बनाने का किसी को भाव है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज वहाँ ध्यान में रहते थे और वहाँ से भगवान् के पास गये थे। सदेह हों, इस देह से। ऐसा कि कोई और आहारकशरीर था। ऐसा कुछ नहीं था। आहारकशरीर नहीं था इस ओर। भगवान् के समय में चौदह पूर्वधारी को आहारकशरीर होता है। यह तो लब्धि थी और उनका मित्र देव था।

भगवान् के पास सदेह गये थे और आठ दिन वहाँ रहे थे। और आसपास में अभी दिखाया सबको बताया था। लाखों ताड़ी हैं आसपास लाखों ताड़ी। तो उस

ताड़पत्र लेकर उन्होंने बनाया समयसार, प्रवचनसार, नियमसार। और एक धवलगिरि है। साथ में धवलगिरि है। वहाँ षट्खण्डागम की टीका रचना हुई। साथ में धवलगिरि है। परन्तु वहाँ तो शिवमन्दिर हो गया है अकेला। जैन का कोई नहीं रहा। परन्तु बताया था कि यहाँ धवल लिखा है। जो कुन्दकुन्दाचार्य पहले महाऋषि धरसेनाचार्य जो गिरनार में दिगम्बर मुनि महासमर्थ मुनि जिनके कण्ठ में करुणानुयोग की मिठास। उन्होंने दो मुनि को बताया गिरनार में। उसके बाद वहाँ टीका बनायी है। वह पौन्नूरहिल के पास बड़ी एक है। ऊँची टेकरी है। उस टेकरी में अभी तो शिवमन्दिर है। जैन नहीं। वहाँ धवल लिखा है। धवल वहाँ लिखा, समयसार वहाँ लिखा है। वह पौन्नूरहिल के पास है। वहाँ हम सब गये थे। हमने दो बार सबको बताया था। समझ में आया? परन्तु भाव तो होता है या नहीं? भक्तिभाव होता है, परन्तु उसकी मर्यादा कितनी है? माणिक्यचन्दजी! शुभभाव है। बस इतनी। पाप से बचने को, अशुभभाव से छूटने को भाव होता है, परन्तु इतने में कल्याण मान ले, जन्म-मरण का अन्त हो जाये, वह बात नहीं। वह बताते हैं। समझ में आया? कहो, प्राणभाई! तुम आये थे या नहीं एक बार वहाँ? दोनों नहीं आये एक बार।

निश्चय से... देखो! निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है,... है? पाठ में तो ऐसा लिखा है। इसमें तो इतना ही लिखा है। पाठ में तो ऐसा है। 'जिनेश्वरपरमतीर्थसदृशं' समझे? 'निर्विकल्पपरमसमाधिरतानां निजशुद्धात्मतत्त्व-स्मरणमेव तीर्थ', पाठ तो ऐसा है टीका में। परन्तु बराबर अर्थ नहीं लिखा। शब्दार्थ, बराबर पाठ में हो ऐसा शब्दार्थ होना चाहिए। भगवान परमेश्वर परम एकाग्र अन्तर स्वरूप में होकर परम आनन्द के झरने का पूर बहता था और ज्ञान-दर्शन आदि, चन्दन आदि वृक्ष से शोभित थे और मुनिवरों और राजहंस से वहाँ शब्द होते थे और देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि कानों को सुखकर और मीठा ऐसी दिव्यध्वनि होती थी। ऐसा जो निजतीर्थ सर्वज्ञ का ऐसा निजतीर्थ यह आत्मा का। कहो, समझ में आया? आहाहा!

निश्चय से निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान के समान दूसरा कोई तीर्थ (निश्चय से) नहीं है, और... अब आया। व्यवहारनय से... शुद्धस्वरूप की दृष्टि होने पर भी उसमें

स्थिर न हो सके तो ऐसा व्यवहारनय से तीर्थ का भाव ज्ञानियों को भी आता है। समझ में आया? वह व्यवहारनय से तीर्थकर परमदेवाधिदेव के गुणस्मरण के कारण... सर्वज्ञ ऐसे थे, गिरनार में भगवान विराजते थे, वासुदेव, बलदेव जिनको वन्दन करते थे। भाई थे न उनके? नेमिनाथ भगवान के वासुदेव, कृष्ण, बलदेव भाई थे। अर्ध वासुदेव तो उसको भगवान ने... लिया। बलदेव वासुदेव तीन खण्ड के स्वामी। भगवान ने दीक्षा ली। उनके भाई थे। ऐसा स्मरण करने को गिरनार पर्वत भी व्यवहार तीर्थ कहने में आता है। पाण्डव यहाँ शत्रुंजय। पाँच पाण्डव यहाँ आये थे। मास-मास खमण के उपवास करते थे। वहाँ ध्यान में गये। वहाँ दुर्योधन का भानेज था। ध्यान में मुनि थे। धर्मराज, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल। ध्यान में नग्नमुनि। उसके भांजे ने लोहे के (आभूषण) बनाये। दागीना। दागीना क्या कहते हैं? आभूषण बनाये। आनन्द में रहते थे। तीन तो केवलज्ञान पाकर अन्तर आनन्द में उतरकर मोक्ष गये। सहदेव, नकुल को जरा विकल्प आ गया। अरे! बड़े भाई को क्या हुआ? इतना साधर्मी के साथ... सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। मोक्ष अटक गया। स्वर्ग में गये, बाद में मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। यह पाँच पाण्डवों में से तीन मोक्ष गये और दो को... ऐसा स्मरण करने को वह तीर्थ है। स्मरण करने को है न, देखो!

गुणस्मरण के कारण मुख्यता से शुभ बन्ध के कारण... है। समझ में आया? अन्तर उस समय एकाग्रता अन्दर में हो तो शुद्धता बढ़ती है और बाहर लक्ष्य में जितना परिणाम रहा, वह पुण्य है। समझ में आया? बन्ध के कारण ऐसे जो कैलाश, सम्मेदशिखर... देखो, सम्मेदशिखर। वह भी स्मरण के निमित्त। क्या? कि सम्मेदशिखर में तीर्थकर मोक्ष पधारे हैं। तो जहाँ-जहाँ मोक्ष पधारे हैं, उसका गुणस्मरण का वह निमित्त है। क्यों? कि जहाँ से मोक्ष पधारे हैं, वही ऊपर विराजते हैं। क्या कहा? पाण्डव वहाँ से मोक्ष पधारे तो वहीं विराजते हैं ऊपर सिद्ध में। सिद्ध है न ऊपर? सीधा आत्मा मोक्ष जाता है देह छूटकर। वहाँ विराजते हैं। सादि-अनन्त वहाँ रहेंगे। पार्श्वनाथ भगवान वहाँ विराजते हैं। सम्मेदशिखर मोक्ष पधारे। आदि बीस तीर्थकर। तो जिस स्थान से देह छूटा, उस स्थान में ऊपर है। ज्ञानचन्दजी! समझ में आया? वह सबको

कहा था तेरह के वर्ष में। जो भगवान यहाँ मोक्ष पधारे तो यहाँ विराजते हैं ऊपर। सिद्ध का स्थान है ऊपर। यहाँ विराजते हैं।

एक तो स्थानकवासी को कहा था कि भाई! यात्रा का यह हेतु है। तब वह कहे ओहोहो! यह तो हमने नहीं सुना था। समझे? बरवालावाला था न एक। आग्रही था फिर तो ... यह गुणस्मरण में शुभभाव है, उसका एक निमित्त है। यहाँ से मोक्ष पधारते हैं, वहाँ पर विचार करने का स्मरण में निमित्त है कि ओहो! यहाँ से भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और देह छोड़कर यहाँ ऊपर ही हमारे मस्तक पर वहाँ स्थान में विराजते हैं। जहाँ से मोक्ष पधारे, वहाँ ऊपर विराजते हैं, समश्रेणी में। समश्रेणी से जाते हैं या नहीं? मोक्ष जाते हैं तो आगे-पीछे श्रेणी नहीं होती। ऐसे आत्मा निकले तो यहाँ जाये, ऐसा नहीं। जहाँ से आत्मा... ऐसा... समझ में आया? ऐसा स्थान में उसका गुणस्मरण में निमित्त है तो उस कारण से ज्ञानियों को भी व्यवहार तीर्थ में शुभभाव ऐसा होता है, परन्तु वह शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

ऐसे जो कैलाश, सम्मेदशिखर आदि निर्वाणस्थान हैं,... कैलाश तो अभी नहीं है। ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे हैं न। वह कैलाशपर्वत है। अभी तो दिखता नहीं। बहुत दूर। वहाँ ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे। वहाँ कैलाश है आगे ... वहाँ भगवान वहाँ ऊपर विराजते हैं। यहाँ सम्मेदशिखर वहाँ विराजते हैं, यह गिरनार यहाँ वह विराजते हैं। गिरनार में नेमिनाथ भगवान वहाँ ऊपर ही विराजते हैं सब। सादि-अनन्त काल वहाँ रहेंगे। ऐसे स्मरण के लिये धर्मात्मा को पुण्यबन्ध का कारण शुभभाव में वह निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? वे भी व्यवहारमात्र तीर्थ कहे हैं। अर्थकार जरा... यह व्यवहारमात्र तीर्थ है। परमार्थ तीर्थ तो यह भगवान आत्मा अन्तर शुद्ध से भरा है, उसमें एकाग्र होना, वही महातीर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

जो तीर्थ-तीर्थ प्रति भ्रमण करे, और निज तीर्थ का जिसके श्रद्धान-परिज्ञान-आचरण नहीं हो,... स्पष्टीकरण करते हैं। अपना स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द निराकुल आनन्द की तो अनुभव दृष्टि, श्रद्धा, ज्ञान नहीं और अकेला तीर्थ-तीर्थ प्रति परिभ्रमण करे और जिसके (अपना) श्रद्धान-परिज्ञान-आचरण नहीं हो,... तीनों लिया। अपना

भगवान आत्मा उसको अनुभव करके प्रतीति करना और स्वरूप में लीनता, आचरण यह नहीं। वह अज्ञानी है। देखो, समझ में आया? वह अज्ञानी है। आहाहा! उसके तीर्थ भ्रमने से मोक्ष नहीं हो सकता। उसके अर्थात् ऐसे अज्ञानी को अपने स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान, शान्ति है नहीं। अपने स्वभाव का तो आश्रय लिया नहीं। और अकेले पर के आश्रय से हमारी मुक्ति हो जायेगी, ऐसा माननेवाला अज्ञानी, उसके तीर्थ भ्रमने से मोक्ष नहीं हो सकता। समझ में आया? धर्मचन्दजी! बहुत सरस।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव का बाजार यहाँ मन्द है, कहे। दूसरे सब बहुत तेजी में है। शुभभाव की तो कीमत जितनी है, उतनी है। शुभभाव की तो कीमत जितनी है, उतनी है। अशुभ पाप है, शुभ पुण्य है, शुद्धस्वभाव है, वह धर्म है। सात तत्त्व है या नहीं? सात तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। तो आस्रव है, वह शुभ-अशुभभाव दोनों आस्रव है। परन्तु उसमें पापभाव, वह तीव्र आस्रव है; पुण्यभाव, वह मन्द आस्रव, परन्तु है तो आस्रव। समझ में आया? ऐसी दृष्टि जिसको अन्तर में नहीं और अकेला तीर्थ-तीर्थ प्रति भ्रमण करता है और हमारा कल्याण हो जायेगा, जन्म-मरण का अन्त होगा। तो आचार्य कहते हैं कि अज्ञानी है। समझ में आया? आहाहा!

उस गाथा में नहीं कहा, भाई? नहीं वह ४४-४५। ४५ गाथा में नहीं? 'अटुविहं पि य कम्मं' आठों ही कर्म को भगवान ने तो दुःख ही कहा है। ४५ गाथा है। समयसार पहले में भगवान आचार्य... समझ में आया? ४५ है देखो।

अटुविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेति ।

जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥ ४५ ॥

आहाहा! आचार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। हे भगवान! सुन तो सही प्रभु! तुझे आठ कर्म का जो बन्ध पड़ता है शुभ हो या अशुभ, परन्तु उसके फल में तो दुःख है। आहाहा! बाद में स्पष्टीकरण क्या किया है? कि अनाकुलता जो सुख नाम का आत्मस्वभाव उससे विलक्षण होने से... वह दुःख है। उस दुःख में ही आकुलतालक्षण

अध्यवसान आदि भाव समाविष्ट होते हैं। क्या कहते हैं? सुन तो सही भगवान! वह शुभ-अशुभभाव, भगवान कहते हैं कि दुःख में ही समावेश होता है। दोनों दुःख है। होता है, अशुभ से बचने को, शुद्ध में स्थिर न हो तब, दृष्टि अपना स्वभाव-सन्मुख होने पर भी वह शुभभाव होता है। परन्तु वह शुभभाव अशुभ दुःख में समाविष्ट होते हैं। आहाहा! इतना तो स्पष्टीकरण किया है। भाई! वह आनन्द भगवान का है, उसमें वह समाविष्ट नहीं होते। कहो, समझ में आया? यहाँ तो आठों कर्म में डाला। तीर्थंकर प्रकृति वह समझने जैसा है। कहो, समझ में आया कुछ? उसको तो तीर्थंकर प्रकृति बाद में फलती है न। परन्तु यहाँ तो 'अद्विहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा वेत्ति।' त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की दिव्यध्वनि में आठ कर्म दुःखमय कहने में आया है। आहाहा! शुभबन्ध हो या अशुभबन्ध हो। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, बन्धन में आ जाता है, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात।

इसलिए यद्यपि वे चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं,... ऐसा कहते हैं। वह शुभ-अशुभभाव। समझ में आया? है ही नहीं ऐसा है, ऐसा कहते हैं। भ्रम उपजाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझे? ४५ है न? तथापि वे आत्मस्वभाव नहीं हैं... शुभ-अशुभभाव, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। किन्तु पुद्गलस्वभाव हैं। आहाहा! लोगों को उनकी मिठास है न, बाहर की मिठास। आत्मा आनन्दस्वरूप की मिठास की रुचि बिना वह पुण्य-पाप के भाव की मिठास अन्दर से हटती नहीं। ऐसा मीठा... मीठा... मीठा... लगता है जैसे। ओहोहो! समझ में आया? शुभबन्ध की बात आये तो वह प्रसन्न हो जाता है। यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : बँधने की बात आवे वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बँधने की... परन्तु भाई! वह तो अशुभ से बचने को आता है, परन्तु वह कोई आदरणीय नहीं है। आदरणीय तो भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप उसका आदर है, तब उसके भाव को पुण्यबन्ध कहने में आता है। आहाहा! गजब बात! देखो न अकेला कठिन है। सत्य की प्रतीति उसे अपना निजस्वभाव का माहात्म्य ही आता नहीं। मैं इतना? मैं बाहर निकलूँ तब कोई भाव होता है तो उसकी कीमत है? समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कितनी मिठास डाली, देखो न। इतना तो ले लिया कि तीर्थकर ऐसा है, ऐसा तेरा आत्मा ऐसा ही है। अन्तर कुछ नहीं। वस्तु तो ऐसी है। और ऐसी चीज़ में तेरी एकाग्रता हो, वह तेरा तीर्थ है। आहाहा! यह तरण उपाय है, तरण उपाय है। तरने का उपाय तो यह है। देखो, तरण उपाय कहकर फिर बन्ध कहा है। समझ में आया? निश्चय में बीच में व्यवहार आता है अवश्य। समझ में आया? पूर्ण वीतराग न हो, तब निश्चय दृष्टि, ज्ञान होने पर भी निश्चय में व्यवहार बीच में आता है। पहले व्यवहार नहीं। समझ में आया? तो यह बात समझ में आती नहीं और लोग वहाँ पकड़ लेते हैं। देखो, उसमें है न? उसमें भी है या नहीं? बन्ध अधिकार में है न? बन्ध-बन्ध। मोक्ष। मोक्ष अधिकार है न। देखो! पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। पण्डित जयचन्द्रजी हुए हैं जयपुर में। बड़े (विद्वान्)। उन्होंने अर्थ सब लिखा है।

कारण कि निश्चयनय की अपेक्षासहित ही व्यवहारनय मोक्षमार्ग में है। आत्मा की अन्तर की निश्चय दृष्टि-ज्ञान हुआ तो बीच में व्यवहार रागमन्दता का बीच में व्यवहार आता है। केवल व्यवहार का पक्ष मोक्षमार्ग में नहीं। इतना तो स्पष्टीकरण वह मोक्षमार्ग के अधिकार में करते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। जयपुर में हुए हैं। निश्चय की अपेक्षासहित ही व्यवहारनय मोक्षमार्ग में है। आता है सही, परन्तु वह निश्चयस्वरूप की शुद्ध दृष्टि-ज्ञान हुआ तो बीच में व्यवहार है, परन्तु निश्चय के भान बिना अकेला व्यवहार अकेला बन्ध का ही कारण है। उसमें मोक्षमार्ग तो जरा भी है नहीं। समझ में आया? यह ८५ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ८६

८६। अब क्या कहते हैं ? ज्ञानी और अज्ञानी यतियों में बहुत बड़ा भेद दिखलाते हैं—अज्ञानी यति साधु नाम धराकर पर में भटकते हैं। पुण्य-पाप की क्रिया में हमारा कल्याण वह मानते हैं अज्ञानी। ज्ञानी अपने स्वरूप की श्रद्धा, आनन्द में धर्म मानते हैं। दोनों में बहुत अन्तर है, कहते हैं। अन्तर दृष्टि में दोनों में बहुत पूर्व-पश्चिम... उगमणा-आथमणा कहते हैं न ? क्या कहा ? पूर्व-पश्चिम। देखो ! यह तीर्थ की ऐसी व्याख्या करते... योगीन्द्रदेव मुनि थे, हों ! आचार्य थे। दिगम्बर मुनि थे जंगल में रहनेवाले। ९०० वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य तो दो हजार वर्ष पहले हुए। यह ९०० वर्ष पहले हुए। जंगल में रहनेवाले। महा आत्मध्यान मस्त आनन्द में।

तो वह कहते हैं, भैया ! ज्ञानी और अज्ञानी यतियों में बहुत बड़ा भेद दिखलाते हैं—साधु तो होता है, कहते हैं। अन्तर अनुभव की दृष्टि बिना अज्ञानी यति होता है और एक आत्मा का भानसहित यति मुनि होता है। दो में बहुत पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

२१३) णाणिहिं मूढहं मुणिवरुहं अंतरु होइ महंतु।

देहु वि मिल्लइ णाणियउ जीवइं भिण्णु मुणंतु ॥ ८६ ॥

ज्ञानी अर्थात् सम्यग्दृष्टि भावलिंगी... है उसमें अर्थ ? देखो, जिसको एक राग की-शुभभाव की भी कर्ताबुद्धि नहीं। देह के रजकण की क्रिया चलती है, उस क्रिया का कर्ता ज्ञानी नहीं। उसका नाम ज्ञानी सम्यग्दृष्टि, भावलिंगी कहने में आता है। है उसमें ? लिखा है देखो भावलिंगी। आत्मा भावलिंग अर्थात् आत्मा पुण्य-पाप का कर्ता नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं। अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप की परिणति का कर्ता है और ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा जिसको ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द हुआ, उसको भावलिंग (अर्थात्) आत्मा में निर्मल चिह्न आनन्द का प्रगट हुआ, उसको भावलिंगी मुनि कहने में आता है। समझ में आया ?

और 'मूढानां' मूढ़ की व्याख्या की मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी... है ? मिथ्यात्व का अर्थ करेंगे। मिथ्यादृष्टि अर्थात् बहिर्बुद्धि जिसकी है। शरीर, वाणी, मन की दशा में

करता हूँ और उससे मुझे लाभ होगा और शुभ-अशुभभाव विकार है, उससे मुझे लाभ होगा। ऐसा बहिर् आत्मा चैतन्यस्वरूप शुद्ध से बहिरबुद्धि जिसकी है, उससे लाभ माननेवाला है, यह मिथ्यादृष्टि अर्थात् झूठी दृष्टि है, वह द्रव्यलिंगी है। द्रव्यलिंग है साधुपना, परन्तु यथार्थ साधु नहीं। समझ में आया? मुनि अपनी बात करते हैं, देखो! मुनि तो उसको कहते हैं कि अपने सम्यग्दर्शनपूर्वक अन्तर पुण्य-पाप के रागरहित स्वभाव की दृष्टि करके स्वभाव में शुद्धता अन्दर प्रगट हुई, पवित्रता प्रगट हुई। उसको पुण्य-पाप का भाव आता है। कर्ता नहीं, लाभ मानते नहीं। देह की क्रिया होती है, वह जड़ से होती है, वह मैं नहीं। ऐसा जिसको अन्तर में भावलिंग अर्थात् अनुभव दृष्टि का चिह्न प्रगट हुआ, उसको स्वरूप की रमणतावाले को सत् साधु कहते हैं। अज्ञानी को द्रव्यलिंगी कहते हैं। जो राग की क्रिया में धर्म मानते हैं, शुभभाव में धर्म मानते हैं, देह की क्रिया हम करते हैं, शरीर की क्रिया हमने की, नग्नपना हमने लिया। वह तो जड़ की क्रिया है शरीरपना। अन्दर शुभभाव है, वह पुण्य है।

मुमुक्षु : निमित्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या निमित्त होता है? शुद्ध प्रगट करे तो निमित्त कहने में आता है। माल बिना बारदान किसका? कोथला-कोथला क्या कहते हैं? बारदान। माल बिना बारदान किसका? वह मुनि अर्थात् बड़ा भारी भेद है। क्योंकि ज्ञानी मुनि तो शरीर को भी जीव से जुदा जानकर छोड़ देते हैं,... देह की क्रिया मेरी नहीं, राग का भाव मेरा नहीं। ऐसा अन्तर में अनुभव करते हैं, उसका नाम ज्ञानी महामुनि धर्मात्मा कहने में आता है। यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक १६-०२-१९६६

गाथा - ८६ - ८७, प्रवचन - १३०

परमात्माप्रकाश। दूसरा भाग। इसकी ८६ वीं गाथा है। क्या कहते हैं? ज्ञानी और अज्ञानी यतियों में बहुत बड़ा भेद दिखलाते हैं—जैसे गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में बहुत भेद है। सम्यग्दृष्टि अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और उसमें आचरण स्थिरता को मोक्ष का मार्ग समझते हैं। मिथ्यादृष्टि गृहस्थाश्रम में होने पर भी। वह ऊपर यह गया न तीर्थ आदि बातें। तीर्थ में भ्रमण करते हैं अकेली यात्रा। आत्मा का दर्शन-ज्ञान का भान नहीं। तो अकेला तीर्थ में, पूजा, भक्ति में मोक्षमार्ग मानते हैं, वह गृहस्थाश्रम में मूढ़ है। ऐसा ऊपर कह गये हैं। समझ में आया?

अब मुनि में भी ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में अपने शुद्धस्वरूप के भान बिना, दृष्टि-ज्ञान किये बिना अकेली शुभभाव की क्रिया को ही मुक्ति का मार्ग मानकर चार गति में भटकते हैं अनादि से। उसको आत्मा का भान नहीं। ऐसे मुनियों में भी सम्यग्दृष्टि भावलिंगी... देखो, पहला शब्द पड़ा है। यहाँ मूल तो भेदज्ञान की बात करनी है। सम्यग्दृष्टि भावलिंगी... जरा व्याख्या सूक्ष्म बात है। आत्मा पुण्य-पाप का राग से भिन्न अपना भान जिसने किया हो, उसका नाम सम्यग्दृष्टि और स्वरूप में स्थिरता विशेष जम गयी हो, अरागी-वीतरागी पर्याय, उसको मुनि कहते हैं, उसको भावलिंगी कहते हैं। और मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी-जिसने द्रव्यलिंग धारण किया नग्नपना, पंच महाव्रतादि भाव, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प राग, वह है, परन्तु अन्दर में उससे भिन्न अपना भान नहीं। समझ में आया? यह राग का भी कर्ता नहीं, देह की क्रिया भी मेरी नहीं। मेरा स्वरूप तो शुद्ध आनन्द राग से और देह से भिन्न है—ऐसा जिसको अन्तर भान नहीं, उसको मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी कहते हैं। समझ में आया? ऐसा मुनियों में बड़ा भारी भेद है। एक आत्मा के स्वभाव-सन्मुख का अनुभव करते हैं और द्रव्यलिंग बाहर है। बाहर में मुनिपने का नग्न वेश, अट्ठाईस मूलगुण भी है, परन्तु अन्तर से उसका

आत्मबोध आनन्द चारित्र अन्तर की रमणता का भान है। तो उसको भावलिंगी कहने में आता है। और अन्तर में राग की क्रिया से भिन्न चैतन्य की क्रिया की खबर नहीं, राग की क्रिया ही मेरा कर्तव्य है, देह का आचरण ही मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी गिनने में आता है। ओहोहो!

क्योंकि ज्ञानी मुनि तो शरीर को भी जीव से जुदा जानकर... देह का परमाणु यह तो मिट्टी है। उसकी पर्याय उत्पाद होता है क्षण-क्षण में शरीर में। परमाणु में यह देह की अवस्था होती है, वह जड़ की है, आत्मा की नहीं। धर्मी मुनि अथवा धर्मी सम्यग्दृष्टि देह की क्रिया को अपना मानते नहीं। समझ में आया? ओहोहो! पूजा-भक्ति में ऐसा आता है न? शरीर चेष्टा होती है। स्वाहा भक्ति। तो वह तो देह की क्रिया जड़ की है। ज्ञानी, देह की क्रिया अपने से होती है—ऐसा नहीं मानते। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि मुनि देह की क्रिया हलन-चलन की होती है, यह अपनी है, ऐसा नहीं मानते। मिथ्यादृष्टि मानते हैं कि अपना आत्मा वह देह का आचरण, आत्मा है तो देह चलता है, आत्मा है तो देह बोलने में आता है, ऐसा अज्ञानी मानते हैं।

तो ज्ञानी मुनि तो शरीर को भी जीव से जुदा मानकर छोड़ देते हैं,... छोड़ देते हैं का अर्थ क्या? वह विवाद उसमें है। छोड़ देते हैं का अर्थ? उसकी एकत्वबुद्धि करते नहीं। छोड़े क्या? शरीर तो रहता है। परन्तु शरीर का आचरण हलन-चलन है, वह मेरा नहीं। ऐसा दृष्टि में विपरीत भाव हो, वह छोड़ देते हैं कि मैं करता हूँ, मैं हिलता हूँ, मैं चलता हूँ, मैं परजीव की दया पालता हूँ—ऐसी शरीर की क्रिया को श्रद्धा में से सम्यग्दृष्टि जीव छोड़ देते हैं। समझ में आया? अर्थात् शरीर का भी ममत्व छोड़ देते हैं, तो फिर पुत्र, स्त्री आदि का क्या कहना है? तो उसको पुत्र, स्त्री आदि की ममता अन्तर में होती नहीं। ये तो प्रत्यक्ष से जुदे हैं, और द्रव्यलिंगी मुनि लिंग (भेष) में आत्म-बुद्धि को रखता है। देखो, यह भाषा! साधु हुआ, नग्नलिंग धारण किया। अन्तर में पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का राग भी आया शुभराग। वह द्रव्यलिंग है। उसमें आत्मबुद्धि को करता है, यह हमारा कर्तव्य है, यह हमारा आचरण है और वही मैं हूँ। समझ में आया? गजब बात, भाई!

द्रव्यलिंगी मुनि आत्मज्ञान के बिना शरीर और राग से भिन्न अपना अनुभव

सम्यग्दर्शन के बिना, जैसे अज्ञानी संसार में तीर्थ भ्रमण करते-करते हमारा मोक्ष हो जायेगा, ऐसा उसको देह से और राग से भिन्न अपना बोध है नहीं। ऐसा मुनि होकर भी ऐसा माने कि देह की क्रिया मेरे से है और वेश जो पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह पुण्य है। उसमें आत्मबुद्धि करता है। सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? पंच महाव्रत का भाव और अट्ठाईस मूलगुण का भाव, वह शुभराग है, शुभराग है; वह आत्मा नहीं। उसकी ममता सम्यग्दृष्टि छोड़ देते हैं। मिथ्यादृष्टि उसमें अपनी बुद्धि रखते हैं। तो उसको खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि को मुनिपना कैसे होता है, ऐसा भान कराते हैं। सात तत्त्व की श्रद्धा में संवर-निर्जरा की श्रद्धा कैसी होती है, उसका भान कराते हैं। मुनि होते हैं तो अन्दर में चारित्र आनन्द में लीन होते हैं। जिसको राग का, पंच महाव्रत का विकल्प आया तो भी उसका स्वामी होता नहीं। और राग का स्वामी हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश में अन्तर हो अन्दर में। समझ में आया? गहरे-गहरे अन्तर हो, वास्तविक तत्त्व न हो, गहरे-गहरे अन्तर हो। साधारण रीति से ऐसा उपदेश आये साधारण रीति से, हों! यथार्थ तत्त्व की उसको... गहरे-गहरे उसमें शरीरादि की क्रिया से धर्म है और पुण्य के परिणाम से धर्म है, ऐसा अभिप्राय अन्तर में पड़ा है। समझ में आया? शरीरादि हिलना-चलना वह जड़ की क्रिया में कुछ-कुछ हमारा कर्तव्य है। शरीर निवर्ताया न बाहर से? तो हमें कुछ निवृत्ति तो मिली न? ऐसा जड़ की क्रिया का स्वामी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अन्दर में होते हैं, वह बाहर के लक्षण में भी दिखने में आता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

भावार्थ :- वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी... देखो, पहले सम्यग्दृष्टि की बात कही, अब मुनि की बात करते हैं। वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी... भगवान् आत्मा वीतराग स्वसंवेदन आत्मा का प्रत्यक्ष आनन्द का प्रगट वेदन होता है उसको। आनन्द का वेदन, आत्मा आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द है, यह अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद आता है। सम्यग्दृष्टि को अल्प आनन्द आता है। मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द का बहुत आनन्द आता है। उसका नाम मुनिपना है।

मुमुक्षु : यह तो

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कुन्दकुन्दाचार्य ने। वह सारा शब्द शास्त्र में पड़े हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा (समयसार) पंचम गाथा में कि हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया। समझ में आया? अब उग्र का अर्थ हमारे पाठ निकालकर बताना पड़ेगा वापस। 'प्रचुर स्वसंवेदन' लिया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने। पाँचवीं गाथा। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमको अरिहन्त भगवान से लेकर परमगुरु। अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा से लेकर वह परमगुरु। कैसे थे वह परमगुरु? **निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न थे,**... कौन? सर्वज्ञ परमात्मा। सुनो न्याय। वह तो महा टीका है, अद्भुत टीका है। कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य टीका सूत्र बनाते हैं कि हमारा परमगुरु सर्वज्ञदेव परमेश्वर कैसे थे? **निर्मल विज्ञानघन भगवान आत्मा में अन्तर्निमग्न थे।** वह परमगुरु। बाद में? और अपरगुरु—**गणधरादिक से...** बाद में मुनि, उनका शिष्य, उनका शिष्य लेकर हमारे गुरुपर्यन्त,... वह हमारे गुरु भी ऐसे थे कि **निर्मल विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न थे।** वह हमको विश्वास है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो, पंचम गाथा है।

अपरगुरु—गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त,... विज्ञानघन, आत्मा चिद्धन में लीन था। उसका नाम सर्वज्ञ और उसका मुनि और उसका नाम आचार्य। इतनी बात। उनके प्रसादरूप से दिया गया जो... ऐसा हमारा गुरुपर्यन्त और सर्वज्ञ ने हमारे ऊपर कृपा की। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **प्रसादरूप से दिया गया जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** अरे भाई! तेरा आत्मा पुण्य-पाप के राग से, मैल से भिन्न है, शुद्धात्मा है, परमात्मा है—ऐसी हमारे ऊपर कृपा करके हमारे गुरु ने हमें उपदेश दिया? किसका दिया? शुद्धात्मतत्त्व का। समझ में आया? दूसरी बात नहीं। हमारे गुरु ने यह दिया हमको। आहाहा! अरे आत्मा! तेरी परमानन्द चीज़ तो शुद्ध चिदानन्द घन है न। ये पुण्य-पाप का शुभ-अशुभराग है, वह तुम नहीं, तेरी चीज़ नहीं। शरीर-बरीर तेरा नहीं। हमारे गुरु ने हमको बोध दिया, उससे जिसका (निजवैभव) का जन्म हुआ है। हमारे आनन्द की उत्पत्ति (हुई), वह उपदेश दिया और हमारे आत्मा में हम परिणम गये अन्दर में। कैसा है देखो, निरन्तर झरता हुआ... देखो, हमारे आत्मा में वह आनन्द

निरन्तर झरता है। वह आया था न कल ? कल वह तीर्थ में नहीं ? निर्झर। परमात्मप्रकाश में आया था न ? देखो, यह टीका। यह शास्त्र अभी का नहीं। यह तो दो हजार वर्ष पहले का है। समझ में आया ?

क्या कहते हैं ? हमारे गुरु ने हमें शुद्धात्मा का उपदेश दिया, वह तो निमित्त कहा। अब हम हमारे आत्मा में, शुद्ध चिदानन्द मूर्ति विज्ञानघन है, ऐसा हम अन्तर्मुख होकर अपना अतीन्द्रिय आनन्द का हमारा स्वाद आया। देखो, **निरन्तर झरता हुआ— स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनन्द है,...** हमारे अनुभव की मोहर क्या है ? वह मोहर लगाते हैं न यह ? ट्रेडमार्क नहीं करते हैं ? यह मोहर लगाते हैं। तो कहते हैं हमारे अनुभव की मोहर क्या है ? कि सुन्दर जो आनन्द। यह सुन्दर शब्द आया। यह दुनिया सुख-दुःख की कल्पना तो दुःख है। हमें सुन्दर आनन्द हमारे आत्मा में से प्रगट हुआ। कैसा ? सुन्दर आनन्द की छाप, मोहरछाप है उसमें। पुण्य-पाप के विकल्प की हमारे मुनिपने में छाप नहीं, वह हमारी मोहर ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

अब आया तुम्हारा उग्र शब्द में। **उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन से...** प्रचुर। सम्यग्दृष्टि को धर्मात्मा गृहस्थाश्रम में हो तो उसको आनन्द का वेदन अल्प है। परन्तु मुनि ऐसा कहते हैं। हम आचार्य मुनि हैं तो हमारे प्रचुर संवेदनस्वरूप... समझ में आया ? प्रचुर अर्थात् उग्र, उग्र अर्थात् बहुत, बहुत वेदन हमें आनन्द का आया है। उफान आया है। उभरा कहते ? क्या समझे ? उफान आता है न ? दूध में उफान आता है। ऐसे कहते हैं, यह छद्मस्थ मुनि उसको मुनिपना कहते हैं। आहाहा! प्रचुरसंवेदन, स्वरूपस्वसंवेदन उससे हमारे अनुभव का जन्म है। आहाहा! समझ में आया ? छद्मस्थ मुनि हैं। दो हजार वर्ष पहले कहा है कि मुनिपना ऐसा है। उसको मुनिपना तीर्थकरदेव ने स्वीकार किया है। हमारे गुरु और तीर्थकर ने ऐसा कहा था, ऐसा हमारे वेदन में आ गया। आहाहा! समझ में आया ? तो गुरु ने और सर्वज्ञ ने उपदेश में भी यह कहा, ऐसा। पूर्ण चौदह पूर्व कहा था न। बारह अंग सब कहा था, परन्तु उसमें शुद्धात्मतत्त्व का ही उसमें सार आया था। प्राणभाई! आहाहा! पूरे उपदेश का सार सर्वज्ञ परमेश्वर का और हमारे गुरुपर्यन्त सर्व गणधरों का। आहाहा! हमको उपदेश दिया, हमारे ऊपर कृपा की।

हम पात्र थे ऐसा न लिया। परन्तु हमारे ऊपर कृपा करके हमारे गुरु ने हमको कहा। शिष्य! आत्मा शुद्धात्मा है न, भगवान! वह पुण्य-पाप का आस्रव विकल्प है, उससे भिन्न तेरी चीज़ है। उसका अनुभव कर तो तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होगा। और प्रचुर अनुभव का वेदन, उग्र आनन्द का वेदन, उसका नाम चारित्र और मुनिपना है। आहाहा! पढ़ी है या नहीं यह पाँचवीं गाथा?

मुमुक्षु : इस रीति से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस रीति से नहीं।

यहाँ तो यहाँ से देखो, यह तो तुम वह उग्र शब्द। प्रचुरसंवेदनरूप स्वसंवेदन से... स्वसंवेदन तो है। सम्यग्दृष्टि को भी चौथे गुणस्थान में होता है, आठ वर्ष की लड़की हो और सम्यग्दृष्टि हो धर्मी, तो उसको भी आत्मा का स्वसंवेदन-आत्मा ज्ञान है, आनन्द है, उसका वेदन तो उसको भी है तो यहाँ तो कहते हैं कि हमारे तो 'प्रचुर-संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन।' ऐसा विशेषण लिया। समझ में आया? हम पंच महाव्रत पालते हैं और अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं, यह मुनिपना, ऐसा नहीं कहते, भाई! आहाहा! अरे भैया! वह तो दोष है। पंच महाव्रत का विकल्प उठते हैं, वह तो पुण्य है। यह मुनिपना नहीं। वह धर्म नहीं, वह चारित्र नहीं, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। मोक्ष का मार्ग भगवान ने हमको कहा था। देखो, दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उससे पहले छह सौ वर्ष पहले भगवान महावीर हुए। और वहाँ से भगवान के पास सीधे गये थे आठ दिन। यहाँ तो परम्परा की बात ली।

हमारा परमात्मा त्रिलोकनाथ महावीर प्रभु, गणधर और हमारा गुरु, उन्होंने हमको आत्मा का उपदेश दिया, भाई! तुम शुद्धात्मा हो। तेरी भूमिका आत्मा पवित्र है, तेरी भूमि में जो विकल्प दिखते हैं, राग, वह तेरी चीज़ नहीं। ऐसा हमको बोध लगा और हम अन्तर में उतर गये, ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ तो ऐसा न कहकर ऐसा कहा कि यह उपदेश मैं दूँगा, कहूँगा वह हमारा वैभव प्रचुर स्वसंवेदन से उत्पन्न हुआ है। यह हमारा वैभव है। दुनिया कहती है न हमारा पैसा, मकान, स्त्री, वह हमारा वैभव है। वह धूल का वैभव, वह वैभव नहीं।

मुमुक्षु : सवेरे आपने कहा ... अच्छा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। है ही नहीं। धूल वैभव है तो कहते हैं। समयसार सवेरे में आया था। कुछ काम का है नहीं धूल में पैसा-बैसा उसका। समयसार नाटक में तो बहुत कड़क लिया है। बहुत कड़क लिया है। समझ में आया? वह बनारसीदास ने। सारा ... हमें पुण्य से मिला है। क्या मिला है तुझे धूल मिली है? तेरा आत्मा है, उसकी तुझे खबर नहीं और यह पैसा हमारा है, उसे काम आयेगा। मूढ़ है? सम्यग्दृष्टि को ऐसा अन्दर में नहीं है। एक रजकण मेरा नहीं। मैं क्या उसको प्रयोग करूँ? किसकी क्रिया करूँ? मेरे में राग आता है, वह भी मेरी चीज़ नहीं। मैं तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ। यहाँ तो आचार्य कहते हैं, हमारा वैभव प्रचुरस्वसंवेदनरूप संवेदन से उत्पन्न हुआ। समझ में आया? शास्त्र में तो भाई यहाँ तो बहुत भर दिया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़। ओहोहो! भगवान की वाणी जो आयी, उसका सारा रहस्य शास्त्र में भर दिया है। समझ में आया? जंगल में रहते हैं वनवास में रहते थे, ताड़पत्र के ऊपर (शास्त्र रचे)। इतना एक-एक अक्षर की अमूल्य चीज़ है। समझ में आया?

कहते हैं, अज्ञानी द्रव्यलिङ्गी साधु या मिथ्यादृष्टि अज्ञानी संसारी वह लिंग में आत्मबुद्धि रखता है। अपना अतीन्द्रिय शुद्ध आनन्दस्वरूप में आत्मबुद्धि न करके वह पुण्य का विकल्प राग और देह की क्रिया में आत्मबुद्धि यही हमारा कर्तव्य है, यही हमारा कर्तव्य है। समझ में आया? **वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी महामुनि...** देखो, **मन-वचन-काय इन तीनों से अपने को भिन्न जानता है,**... मन, वचन और काया तीनों से अपना आत्मा भिन्न मानते हैं, अनुभव करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मन से भी भिन्न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मान से, वाणी और देह। मन का संग भी मुझे नहीं। अन्दर मन है न मन यहाँ छाती में। सूक्ष्म मन है यहाँ। यह वाणी, यह जड़। उससे मेरी चीज़ ही भिन्न है। ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु का अनुभव सम्यग्दृष्टि मुनि को उग्र होता है। उसको पर में, राग में, देह में आत्मबुद्धि होती नहीं। कहो, समझ में आया?

तीनों से अपने को भिन्न जानता है, द्रव्यकर्म,... देखो, द्रव्य अर्थात् आठ कर्म। मेरे आठ कर्म हैं ? या नहीं। आठ कर्म मेरे हैं ही नहीं। देखो, है न ? द्रव्यकर्म अर्थात् आठ कर्म। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय। सम्यग्दृष्टि जीव और मुनि सच्चे हैं वे। आठ कर्म को अपना मानते नहीं। ऐसा कहते हैं। क्योंकि जड़ है वह तो। अजीवतत्त्व है। तो अजीव मेरा नहीं। मेरे में है, वह पर में नहीं और पर में है, वह मेरा नहीं। **भावकर्म**,... देखो, भावकर्म आया। भावकर्म क्या ? यह दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम जो उत्पन्न होता है, वह शुभ, वह भावकर्म है, विकारभाव है। वह सम्यग्दृष्टि और मुनि दोनों भावकर्म को अपना मानते नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

नोकर्मादि से... नोकर्म अर्थात् यह शरीर। ये शरीर, वाणी उसको नोकर्म कहने में आता है। द्रव्यकर्म... सत्य बात समझ में आये नहीं और धर्म करना... धर्म करना... कहाँ से धर्म होगा ? ओहोहो ! समझ में आया ? कठिन तो लगे भाई ! दुनिया को अनन्त काल का अभ्यास दूसरा है और बात सुनने में दूसरी आवे। सत्य बात तो ऐसी है, भगवान ! तेरा आत्मा है अन्दर। यह जड़ शरीर, यह वाणी, यह भाव यहाँ मन में राग उत्पन्न होता है, वह भावकर्म और जड़कर्म आठ उससे भिन्न है। देखो, **जिसको ममता नहीं है**,... क्या कहते हैं ? सम्यग्दृष्टि को अथवा मुनि को 'शरीर मेरा है' ऐसी ममता नहीं। यह पुण्य परिणाम विकार है, उसमें ममता नहीं कि पुण्य परिणाम मैंने किया, यह मेरा है, ऐसी ममता नहीं। आहाहा ! कहो, वकील ! समझ में आता है ? बहुत सरस लो ! नहीं तो वकील का पत्र आज आया है वकील का। वह जूनागढ़ से। एक वकील। जामनगर से। वहाँ गये थे। पहले दिन सुनने आया। दो वकील थे बड़े। एक वह जोशीभाई नहीं जोशी ? पहले दिन सुनने आया। अभी गये थे न सवा महीने पहले। यह क्या ? आत्मा है क्या ? आत्मा है, वह में बैठता नहीं। अच्छा। देखो ! सुनो तो सही। व्याख्यान सुनने को आया। कवर यहाँ नहीं। वहाँ रखा है कवर। कवर आया है। कि ओहो ! यह व्याख्यान सुनकर तो हमारे अनन्त-अनन्त उपकार हो गया है। वकील लिखते हैं वकील, हों ! जयसुखलाल वकील है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। आज कवर आया है कवर। वहाँ पड़ा है। कवर में लिखा है। ओहोहो! वीरजीभाई के लिये तुम आये। वीरजीभाई है न वह? ९५ वर्ष की उम्र है। उसके लिये गये थे न चार दिन? परन्तु हमारे पर बहुत उपकार हो गया। अनन्त-अनन्त उपकार लिखते हैं। हम तो कुछ मानते थे, हम तो कुछ मानते थे। और रामजीभाई की साक्षी में हमारे ज्ञान को कुज्ञान ठहराया, अच्छी बात है। वहाँ रामजीभाई आगे साथ में। पौष कृष्ण में गये थे न। तुम्हारे ... थी। चार दिन वहाँ गये थे। वीरजीभाई की ९५ वर्ष की उम्र है न। खाट में पड़े हैं। तो कहा, यह वकालत का ज्ञान कैसा है? कुज्ञान है। लिखा है उसमें। पत्र में लिखा है। सच्ची बात है। कुज्ञान और कुटिलता। मैंने तो कुटिलता कही। ऐसा लिखते हैं।

मुमुक्षु : कुज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुज्ञान अर्थात् उल्टा ज्ञान, ऐसा। ऐसा बेचारे ने लिखा है। कुज्ञान और कुटिल। मैंने कुटिल से काम किया है अभी तक तो। एक भी मेरी बात सच्ची नहीं। ऐसा बेचारे का कवर आया है। और यह सुने तो... और ऐसा नहीं समझना कि इस गाँव में तुमको समझनेवाले नहीं होंगे। आपको समझनेवाले हैं इस गाँव में। ऐसा बेचारे ने लिखा है, हों! ऐसा करके फिर से आने का कहा। लोग विचार करे या नहीं? क्या है? ऐसा चले अन्धे अन्ध? आत्मा अन्दर है, विकार है, शरीर है, हो। समझ में आया? परन्तु उसे अपना मानकर रहना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। चैतन्य में विकारी ममता करे कि मेरा परिणाम पुण्य, मेरा है। वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा!

तो बाद में कहते हैं कि द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मादि से जिसको ममता नहीं है, पिता, माता, पुत्र, कलत्रादि की तो बात अलग रहे... वह तो दूर ही चीज़ रह गयी। पिता, माता, पुत्र, वह तो कहीं रह गये। उसके साथ है नहीं। यह तो उसके साथ में है। शरीर, कर्म और विकार। जो अपने आत्म-स्वभाव से निज देह को... अपने आत्मस्वभाव का भान करके आत्म-स्वभाव से निज देह को जुदा जानता है। देखो, भाषा। ऐसे जुदा-जुदा कहते हैं, ऐसे जुदा नहीं। अपना स्वरूप ज्ञान चैतन्य ज्योति, चैतन्यस्वरूप उसका

भान करके आत्मस्वभाव शुद्ध से यह देह भिन्न है। वह भिन्न का आचरण मेरा नहीं। ऐसे अन्तर में जो भिन्न जानते हैं, उसको सम्यग्दृष्टि, भावलिंगी मुनि कहने में आता है। समझ में आया ?

जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है। परवस्तु समझे ? शरीर, पुण्य-पाप का भाव, उसमें आत्मभाव नहीं। मेरा वह नहीं, मैं नहीं वहाँ। मेरे में वह विकार नहीं और विकार में मैं नहीं। भावकर्म अट्ठाईस मूलगुण है, वह विकल्प है, वह भावकर्म है। आहाहा ! छह आवश्यक, पंच महाव्रत का परिणाम, वह भावकर्म है, शुभराग है। वह भी मुनि अपने आनन्द के स्वभाव की दृष्टि से उसको भिन्न जानते हैं। मेरा नहीं। मैं उसका पालन करनेवाला नहीं। आहाहा ! गृहस्थाश्रम में भी सम्यग्दृष्टि राग को भिन्न जानते हैं। यह तो मुनि है तो बहुत स्थिरता हो गई, ऐसा कहते हैं। इतनी स्थिरता शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... मुनि तो जंगल में बसते हैं। वनवास। अतीन्द्रिय आत्मध्यान में मग्न है। तो कहते हैं कि जिसको परवस्तु में आत्मभाव नहीं है और मूढ़ात्मा परभावों को अपने जानता है। लो। मूढ़। वह कहना है। अज्ञानी आत्मा चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव को छोड़कर वह राग पुण्य का परिणाम दया, दान और शरीर की क्रिया को अपना मानता है। यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है। अन्तर यह है। दूसरा कोई बाहर में अन्तर नहीं। अन्तर के भाव में श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति में भेद है। अज्ञानी पुण्य-पाप, शरीर को मेरा मानता है। ज्ञानी पुण्य-पाप, द्रव्यकर्म से भिन्न अपना आत्मा आनन्दस्वरूप से स्वभाव के भान से पर को भिन्न जानते हैं। समझ में आया ? यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है। लो।

पर को अपना मानें वह बँधता है,... संक्षिप्त भाषा। पर को अपना माने, वह अज्ञान से बँधता है। शुभ-अशुभ भाव और देहादि क्रिया, वाणी आदि मेरी ऐसे अन्तर (में) माननेवाला। क्योंकि जीव ने अजीव को अपना माना और जीव ने पुण्य परिणाम आस्रव उसको अपना माना। तो उनको अपना माने, वह बँधता है। नया मिथ्यादर्शन से बँधता है और न मानें वह मुक्त होता है। बस शब्द संक्षिप्त में है, देखो। समझ में आया ? भगवान आत्मा पुण्य-पाप के शुभराग से और देह से भिन्न अपने स्वरूप को जानता है, पर में अपनापन मानता नहीं। अपनापन मानते नहीं, वे मुक्त होते हैं। वह बन्धन से छूट

जाता है। उनको बन्धन कभी होता नहीं। यह निश्चय से जानना। ऐसा निश्चय से जानना। बराबर निर्णय करना। ऐसे डाँवाडोल नहीं रखना। ऐसा कहते हैं। लथड़-पथड़ क्या कहते हैं? ध्वजा जैसे पवन आवे न पवन? जैसे पवन उस तरफ ध्वजा लहराये ऐसी। ऐसा नहीं करना। यथार्थ निर्णय करना कि आत्मा ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु, उसको रागादि की ममता जो करे, मेरा राग है और मेरी जड़ की क्रिया है, मूढ़ात्मा बँधता ही है। और रागादि, शरीरादि मेरा नहीं। मेरा तो ज्ञानानन्दस्वभाव शुद्ध आनन्द है। ऐसा अनुभव करता है, वह नहीं बँधता है। नये कर्म से बँधता नहीं। कहो, समझ में आया? बस, वह पूरा हुआ। अब इस प्रकार इकतालीस दोहों के महास्थल के मध्य में पन्द्रह दोहो में वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता से दूसरा अन्तरस्थल समाप्त हुआ।

★ ★ ★

गाथा - ८७

अब परिग्रहत्याग के व्याख्यान को आठ दोहों में कहते हैं— आचार्य भिन्न-भिन्न बात करके अनेक प्रकार की वीतराग परमात्मप्रकाश का वर्णन करते हैं। मूल तो परमात्मप्रकाश है न? ८७।

२१४) लेणहँ इच्छइ मूढु पर भुवणु वि एहु असेसु।

बहु विह-धम्म-मिसेण जिय दोहिँ वि एहु विसेसु ॥ ८७ ॥

क्या कहते हैं? ज्ञानी और अज्ञानी इन दोनों में इतना ही भेद है,... धर्मी आत्मा का ज्ञान करनेवाला और अज्ञानी रागादि में त्याग मानता है कि अज्ञानीजन अनेक तरह के धर्म के बहाने से... देखो, धर्म के बहाने। क्या? इस समस्त जगत को ही नियम से लेने की इच्छा करता है,... धर्म के बहाने पुण्यभाव को अपना मानकर। समझ में आया? दुनिया से इज्जत लेना, दुनिया से कीर्ति लेना, दुनिया बड़ा माने। ऐसा अज्ञानी धर्म के बहाने से सारा जगत की अभिलाषा अभिप्राय में करता है। समझ में आया? आहाहा! धर्मी को कुछ नहीं चाहिए। अपना आत्मा श्रद्धा-ज्ञान से परिपूर्ण है, उसकी तृप्ति में पर की इच्छा धर्मी को होती नहीं। ऐसा कहते हैं।

अज्ञानीजन अनेक तरह के धर्म के... 'बहुविधधर्ममिषेण' 'मिषेण' है न? वह धर्म के बहाने। बहाने चलते हैं न भैया, तुम्हारे? धर्म के बहाने 'धर्ममिषेण' धर्म के बहाने का अर्थ क्या? कि वेश पहने नग्नदिगम्बर आदि और हम समकिती है, हम ब्रह्मचारी है ऐसा मानकर दुनिया के पास लेने की भावना करते हैं। समझ में आया? इज्जत लेने की, बड़ा होने की, शास्त्र पढ़कर भी दुनिया से कुछ लाभ लेना।

मुमुक्षु : हाथ पकड़ ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ पकड़ लिया? देखो, यह शब्द पहले आया था अपने, कहीं आया था।

अज्ञानीजन अनेक तरह के धर्म के बहाने से... हम ब्रह्मचर्य पालते हैं, हम दया पालते हैं, हमें ऐसे-ऐसे साधन दो, हमारी भक्ति करना, समझे? यह तुम्हारा काम है। ऐसा अज्ञानी धर्म के बहान से जगत की अभिलाषा करते हैं। ज्ञानी को अभिलाषा कुछ है नहीं। ज्ञानी को अपना आत्मा श्रद्धा-ज्ञान में जो पड़ा है, उसकी एकाग्रता करते हैं। समझ में आया? इस समस्त जगत को ही नियम से लेने की इच्छा करता है,... देखो, क्या कहते हैं थोड़ा जरा भाषा में। कि जिसको परमानन्द मूर्ति ऐसा आत्मा अन्तर में अनुभव में, सम्यग्दर्शन में आया नहीं और उसको रागादि का, देहादि की जिसको अन्तर में एकत्वबुद्धि, मिथ्यात्व है, वह सम्पूर्ण जगत की अभिलाषा ही करते हैं। सम्पूर्ण जगत को जाननेवाला, देखनेवाले की भावना हुई नहीं। समझ में आया? सम्पूर्ण जगत को देखनेवाला आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, आनन्दमय है। इसकी तो श्रद्धा, ज्ञान है नहीं, भावना है नहीं। और धर्म के बहाने दुनिया हमको बड़ा कहे, दुनिया पूजे, दुनिया हमको माने, ऐसा धर्म के बहाने अज्ञानी मूढ़ अनेक अभिलाषा करके सम्पूर्ण जगत को लेने की इच्छा करते हैं।

मुमुक्षु : त्यागी हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी अर्थात् कहा न, अन्दर दृष्टि में अन्तर है पूरा। चैतन्य भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव की दृष्टि में आया नहीं। तो भावना ऐसी अन्दर में गहरे बाहर के क्रियाकाण्ड करके दया, दान, व्रत आदि भक्ति का परिणाम हो, उसके बहाने दुनिया

में दिखाओ। दुनिया हमको माने, दुनिया में हमारी प्रसिद्धि हो, दुनिया में हमारा दूसरे को अधिकपना दिखाओ। ऐसा दिखाव क्रिया में अभिलाषा सम्पूर्ण जगत की करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वे भी त्याग का ही करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में त्याग करे। अन्दर की दृष्टि में अन्तर है। अन्तर दृष्टि अभिप्राय में अन्तर है। यदि अभिप्राय में अन्तर न हो तो ज्ञानानन्द की उसकी भावना होनी चाहिए। दुनिया के पास लेने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। दुनिया के पास से क्या लेना है ? तेरी चीज़ दुनिया के पास है ? समझ में आया ? अपना आनन्द का भान हुआ तो दुनिया प्रसिद्धि करे तो क्या आनन्द में वृद्धि होती है ? और दुनिया न जाने तो क्या आनन्द घट जाता है ? क्या लेना है अज्ञानी को ? दुनिया के पास से क्या लेना है ?

मुमुक्षु : है ही क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कहाँ अपनापन वहाँ ? अपना अपने में है। ज्ञानानन्द से परिपूर्ण परमात्मा अपना स्वरूप दृष्टि में आया, कुछ इच्छा ही नहीं लेने की। समझ में आया ? और अज्ञानी तो सम्पूर्ण भुवन। भुवन अर्थात् जगत। देखो। स्वर्ग की इच्छा, भोग की इच्छा, इज्जत की इच्छा, पुण्य की इच्छा। जिसको अन्तर में आत्मा की भावना श्रद्धा, भान नहीं, वह पुण्य की इच्छा में सम्पूर्ण जगत इच्छता है, ऐसा कहते हैं। यह पुण्य की इच्छा, उसकी जड़ की इच्छा और जड़ की इच्छा, वह सम्पूर्ण जगत की इच्छा। गजब !

नियम से... बाद में, हों ! परम, ऐसा। क्यों ? अन्तर में अपना ज्ञानानन्द सन्तोष तो आया नहीं। अपने में शान्ति है। भगवान आत्मा राग से, पर से भिन्न, ऐसी अन्तर दृष्टि में शान्ति, सम्यग्दृष्टि तो हुआ ही नहीं। समझ में आया ? तो शान्ति अपने में से निकलती है, ऐसा भान नहीं। तो फिर पर में आशा रखकर अपना जीवन गुजारना। ऐसा ठीक है। सेठिया प्रसन्न हो जाये, सेठिया प्रसन्न हो जाये, हम उसको प्रसन्न कर दे, उससे वह प्रसन्न हो। सब अज्ञानी की भ्रमणा है। समझ में आया ? क्या तुझे पर में से लेना है ? प्रसन्न हो, न प्रसन्न हो, उससे तेरे क्या काम है ? समझ में आया ? कड़क भाषा ली है।

या ज्ञाता-दृष्टा की भावना करते हैं समकिति और या अज्ञानी सम्पूर्ण जगत को इच्छते हैं। दो बात ली है। राम और गाँव। समझ में आया ?

मुमुक्षु : रखता हो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भले रखता हो। अन्दर में गहरे में राग की जिसको पुण्य की इच्छा है, शुभभाव की अभिलाषा है, तो सम्पूर्ण जगत की अभिलाषा अन्तर में पड़ी है। ऐसा आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव सन्त दिगम्बर मुनि जंगल में बसते, यह बात जगत को प्रसिद्ध करते हैं। जिसके अन्दर में आत्मशान्ति सहजानन्द प्रभु की दृष्टि नहीं हुई, उसको राग का अभिलाष है; राग का अभिलाष है तो सम्पूर्ण जगत का अभिलाषा है, ऐसा कहते हैं लो। राग से बन्ध हो और बन्ध से फल मिले, यह सम्पूर्ण जगत की इच्छा है। धर्मचन्दजी ! क्या ? ओहोहो ! समझ में आया ?

अर्थात् सब संसार के भोगों की इच्छा करता है,... आत्मा के आनन्द की तो दृष्टि हुई नहीं। भगवान ! यह दूसरे प्रकार की बात करते हैं, हों ! बन्ध अधिकार में लिया है न, भाई ! अभूतार्थ धर्म को साधते हैं। यह बात यहाँ ली। ऐसी शैली से बात करते हैं। अभूतार्थ। शुभभाव को साधते हैं। अभूतार्थ धर्म है यह। शुभभाव है न ? दया, दान, व्रत वह अभूतार्थ, सच्चा धर्म नहीं। उसको सम्पूर्ण जगत के भोग की इच्छा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भोगों की इच्छा करता है, तपश्चरणादि कायक्लेश से स्वर्गादिक सुखों को चाहता है,... देखो, वह मुनिपना पालकर, व्रतादि धारकर कायक्लेश से। वह कायक्लेश है। आत्मा आनन्द तो है नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है नहीं। तो उससे स्वर्गादि के सुखों को चाहता है,... अन्दर बहुत खेद हो, परीषह हो, तो उससे तो थोड़ी सुविधा हो तो ठीक, सुविधा हो तो ठीक। बस सुविधा हो तो ठीक। ऐसी भावना, वह स्वर्गादि के सुखों की भावना है उसको। समझ में आया ? सुविधा बाहर में है या अन्दर में है ?

ज्ञानीजन कर्मों के क्षय के लिये... देखो, धर्मी सम्यग्दृष्टि आत्मा की शान्ति का वेदन करनेवाला तपश्चरणादि करता है,... मुनिपना होता है उसको। पंच महाव्रत होता है, महीने-महीने का किसी समय उपवास भी करते हैं। परन्तु भोगों का अभिलाषी

नहीं है। राग की अभिलाष नहीं; आत्मा का आनन्द की अभिलाष अन्दर में है। समझ में आया ? भोगों का अभिलाषी नहीं है।

भावार्थ :- वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा, वही आराधने योग्य है,... देखो, यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या। यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन कैसा होता है ? श्रावक हुए पहले। तो कहते हैं कि वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा... भगवान आत्मा अकेला आनन्द का ढेला, आनन्द का पिण्ड पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द हों, अतीन्द्रिय आनन्द। जैसा सिद्ध में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा ही आनन्द मेरे आत्मा में है। ऐसा रागरहित सहज आनन्द, स्वाभाविक-अकृत्रिम, अनन्त, अखण्ड सुख आत्मा में एकरूप सुख आनन्द। ऐसा आस्वाद, उसका आस्वाद, आनन्द का आस्वाद-आनन्द का चखना। अपना आनन्द का चखना। चखना क्या कहते हैं ? शाकभाजी चखते हैं न। शाकभाजी... चाखते हैं या आत्मा चाखते हैं ? वकीलजी ! यहाँ तो कहे, आत्मा का चखना। आहाहा ! आस्वाद है न आस्वाद ? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, पुण्य-पाप के विकल्प की रुचि छोड़कर आत्मा की दृष्टि हुई तो अतीन्द्रिय अखण्ड सुख का आस्वाद। शुद्धात्मा, वही आराधने योग्य है,... वही आत्मा मेरे सेवन करनेयोग्य है। ऐसी जो रुचि, वह सम्यग्दर्शन,... समझ में आया ?

आराधनेयोग्य तो मेरा सहजानन्द भगवान वीतराग सहज आनन्द अकृत्रिम अखण्ड एकरूप सुख, एकरूप सुख का... जैसे मीठा है न। मीठा क्या कहते हैं ? लवण। नमक की डली में अकेला क्षार भरा है, ऐसे आत्मा में अकेले अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। डली दिखती है, इसमें डली दिखती है। यह डली तो इससे बड़ा है। यह तो असंख्य प्रदेशी है। ठीक ! ऐई ! ललचावे नहीं, यह वस्तु की ऐसी स्थिति है। भगवान आत्मा वस्तुरूप से उसमें बसता हुआ, रहा हुआ—अभेदरूप से रहा आत्मा में अतीन्द्रिय अनाकुल शान्त, सिद्ध में जो अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण होता है, सिद्ध में जो अतीन्द्रिय आनन्द पूरा होता है, ऐसा-ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय का पुंज आनन्द गुण है। आहाहा ! समझ में आया ?

अभ्रक नहीं होता अभ्रक ? तुम्हारे था न वहाँ। ... क्या कहे ? गिरडिह। उसके पास हम गये थे। थोड़े समय गये थे। अभ्रक पतला दिखे। पट के पट खिले अन्दर में से। इतना पट। समझ में आया ? और कपड़ा होता है पतला नहीं ? अभी ऐसा भाई ऐई ! वहाँ कपड़ा होता है न। यूरोपियन में भाई ! जंगल जाये न, ऐसा कपड़ा रखे बहुत। बहुत पतला बहुत। कागज जैसा बहुत पतला। वह हमारे लाये हैं भाई। बहुत पतला। हो ऐसा एक ही होगा। निकले चार-पाँच पतला। बहुत पतला-बहुत पतला। हमारे लाये थे भाई। वे धर्मचन्दभाई आये थे न। ... सळेखम होता है न बहुत। कि महाराज ऐसा लूँछकर डाल देना ठीक पड़े। पतला भाई बहुत पतला। इतने २०० में तो इतने। पट के पट ऐसे लिये हो तो ऐसा लगे एक होगा। वहाँ निकले दो-तीन। ऐसा आत्मा... वह पेटी आती है कपड़े की। बहुत पतला। ऐसे आत्मा सिद्ध भगवान परमात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द का एक पट निकला अन्दर में से। अतीन्द्रिय आनन्द का एक समय का पट निकला। दूसरे समय दूसरा पट। पहले समय आनन्द था, वह व्यय हो गया। दूसरे समय नया अतीन्द्रिय आनन्द का पट निकला। तीसरे समय तीसरा। ऐसे सादि-अनन्त जितना समय है। भूतकाल से अनन्त गुना जो भविष्य का समय है, इतना अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का पट का पट जिसमें भरा है, ऐसा आनन्द गुण आत्मा में पड़ा है। आहाहा ! समझ में आया ? कभी खबर नहीं आत्मा कैसे है। आहाहा !

सिद्ध को अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है तो अनन्त चतुष्टय में है या नहीं ? भैया ! अनन्त चतुष्टय में है या नहीं सिद्ध को ? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय है न ? तो वह अनन्त चतुष्टय है, वह तो कार्यरूप प्रगट। तो वह आया कहाँ से ? ऐसा-ऐसा अनन्त चतुष्ट प्रगट होते हैं सादि-अनन्त काल। कहाँ से आता है ? भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का पट इतना पड़ा है। अतीन्द्रिय अनन्त पूर्ण आनन्द चला ही जाये, बहा ही जाये, बहा जाये। ऐसे वीतरागी आनन्दस्वाद वही आत्मा को सेवन करनेयोग्य है। ऐसी जिसको रुचि हुई, वह सम्यग्दृष्टि है। उसको विकल्प की रुचि नहीं। ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को हों, पहले गृहस्थाश्रम में हो, कि अरे नरक में नारकी हो या पशु में ढोररूप से हो। पशु। सम्यग्दर्शन उसको कहते हैं कि भगवान आत्मा... वह तो एक गुण की बात कही

अतीन्द्रिय आनन्द का। ऐसा-ऐसा अनन्त आनन्द, ऐसा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य का पट का पट पड़ा है अन्दर में। प्रवाह चला ही जाता है, देखो। समझ में आया ? शक्ति। वह शक्ति का समूह इतना है अन्दर में। निकलता ही रहे... निकलता ही रहे... अनन्त-अनन्त। ऐसा एक ज्ञान, ऐसा एक आनन्द, ऐसा एक दर्शन, ऐसा एक वीर्य, ऐसी स्वच्छता, ऐसी स्वसंवेदन प्रकाशता। समझ में आया ? ऐसा आत्मा में परम आनन्द जो पड़ा है वर्तमान में। वर्तमान में गुणरूप की बात यहाँ कहते हैं, देखो न ?

वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख का... अखण्ड अर्थात् एकरूप। आहाहा! ऐसा आस्वादरूप जो शुद्धात्मा... उसका आनन्दरूप शुद्धात्मा, उसको शुद्धात्मा कहते हैं। ख्याल में आया कि यह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद का वेदन है, वही आत्मा। आहाहा! समझ में आया ? शुभाशुभराग नहीं, देह, वाणी, मन तो कहाँ रह गया। ऐसा आत्मा, वही आराधने योग्य है... यही सेवन करनेयोग्य है, वही आत्मा का अनुभव करके दिव्य भगवान आत्मा का आराधन करनेयोग्य है। **ऐसी जो रुचि, वह सम्यग्दर्शन...** उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! अकेले देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो सम्यग्दर्शन—ऐसा नहीं। वह तो राग है। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो व्यवहार, वह राग है। वह नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो वापस यह लिया न समझ में आया ? **‘वीतरागसहजानन्दैकसुखास्वादरूपः स्वशुद्धात्मैव उपादेय’** ऐसा साथ में आस्वाद लेकर यह आत्मा। ऐसा कहे न, यह मेरा पुत्र, यह मेरा पुत्र। बहुत वर्ष। उसके लक्षण देखे न लक्षण ? यह इसका चिह्न देखो। वह सिंह और सिंहण, नहीं ? सुकुमाल मुनि नहीं ? वह खाती थी न उसकी माँ। (मुनि तो) आनन्द में थे। खाते-खाते अन्तिम अंग आ गयी अन्तिम उंगली में चिह्न देखा। अरे ! यह तो मेरा पुत्र। वह है न मुनि नहीं ? सुकौशल। सुकौशल न ? वह यहाँ है ? कहाँ ? अन्दर। आहाहा! समझ में आया ? यह सामने ? समझ में आया ? वह सुकौशल मुनि अतीन्द्रिय आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। समझ में आया ? तो उसकी माँ बहुत तीखी हो गयी। क्रोध हो गया। दीक्षा लेकर साधु हो गया न वह ? मरकर सिंहण हुई सिंहण। खाते... खाते... खाते... आखिर की अँगुली आयी। अरे ! यह

तो मेरा पुत्र। ऐसा जातिस्मरण हो गया। वह खाना छोड़ दिया। आहाहा! देखो माँस खाती थी। परिणाम बदल गये सारे। देखो, यह सिंह नहीं? यह भगवान रहे, देखो। देखो, महावीर भगवान है। सिंह दसवाँ भव। दसवाँ भव। सिंह है न देखो। देखो यह सामने। आँख में से आँसू निकलते हैं। ऊपर से मुनि आये। देखो, यह बात करते हैं। अरे! सिंह! क्या है? दसवें भव में तो तुम तीर्थंकर होनेवाले हों! महावीर भगवान त्रिलोकनाथ जगतगुरु तुम हो। हमने सर्वज्ञ के पास सुना है। मुनि कहते हैं देखो। देखो, मुनि के पास। घड़ी के ऊपर। घड़ी के ऊपर है न इस ओर? मुनि ऐसे हाथ करते हैं। आँख में से आँसू। जातिस्मरण हुआ। आहाहा! ...मुनि कहते हैं, ओहो! हमारे पास तो नीचे मनुष्य निकट आ सके नहीं। यह मुनि ऊपर चलते थे, वह नीचे उतर गये। यह कौन है? समझ में आया? अन्तर में जातिस्मरण हो गया। आँख में से आँसू। बस, समाधिमरण। वहीं आत्मा का दर्शन करके समाधिमरण। तिर्यचभव में। वह सिंहणी को भी समाधिमरण। सिंहणी वह। आत्मा है या नहीं? ऐसा माँस खाती थी न, उसमें जातिस्मरण, देखो तो सही!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम गुलॉट खा गया। गुलॉट खा गयी। गुलॉट समझे? पलटा हो गया। आहाहा! आत्मा में क्या किया?

कहते हैं, तिर्यच को भी ऐसा सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सिंह आया न? वह ऐसी सिंहणी। लो। कितना दिखाते हैं, देखो। आँसू गिरते हैं आँख में से। अभी अपने भाई ने डाला था बहुत सरस डाला था हरिभाई ने। आत्मधर्म में आया था। ऐसे ऊँचा। इसमें जरा नीचे है। वह भी आत्मा है या नहीं? चमड़ी पर है। राग भी पर है। आहाहा! यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द उसका आस्वाद करके यही आत्मा सेवन करनेयोग्य है। जिसमें आनन्द पड़ा, उसकी सेवा करना या पुण्य-पाप में, राग में दुःख है, उसकी सेवा करना? समझ में आया? पुण्य-पाप का भाव उत्पन्न होता है, दुःख है, वह तो राग है। विकार है, शुभभाव भी दुःख है। सम्यग्दृष्टि को सेवन और आदरणीय में भगवान अतीन्द्रिय आत्मा, वही आराधने योग्य, वही सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उसका

नाम सम्यग्दर्शन। यही सम्यग्दर्शन हुए बिना सम्यग्ज्ञान होता नहीं। सम्यग्ज्ञान बिना कभी सच्चा चारित्र्य व्रत, तप कभी सच्चा होता नहीं। झूठा अंगीकार करे, उसमें कोई आत्मा का लाभ नहीं। समझ में आया ?

समस्त मिथ्यात्व रागादि आस्रव से भिन्नरूप उसी परमात्मा का जो ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान... देखो, यह सम्यग्ज्ञान। छहढाला में भी यह आता है। समस्त मिथ्या भ्रान्ति को छोड़कर। पुण्य में धर्म है या नहीं ? पाप में मजा है या नहीं ? संयोग में ठीक है या नहीं ? सब भ्रमणा छोड़कर रागादि आस्रव पुण्य-पाप के भाव से भिन्नरूप उसी परमात्मा का। जो आस्वाद में आया था, वही परमात्मा का जो ज्ञान, ऐसा आत्मा का ज्ञान, उसका नाम सम्यग्ज्ञान। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! ओहो ! यह आत्मा शान्त अनाकुल आनन्द उसका ज्ञान, उसका नाम भगवान सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया ?

उसी में निश्चल चित्त की वृत्ति वह सम्यक्चारित्र... लो। ऐसा भगवान आत्मा में स्थिरता, निश्चल स्थिर... स्थिर... स्थिर... निश्चल चित्त ज्ञान की वृत्ति परिणति, यह सम्यक्चारित्र, लो। यह तीन मोक्ष का मार्ग है। उससे मोक्ष होता है, दूसरी कोई चीज़ से मोक्ष होता नहीं। विशेष कहेंगे, लो....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक १७-०२-१९६६

गाथा - ८७ - ८८, प्रवचन - १३१

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग (अधिकार) है। ८७वीं गाथा। देखो, क्या कहते हैं ? भावार्थ फिर से। परिग्रह के त्याग की। परिग्रह के त्याग की यह बात है। गुजराती लेते हैं नहीं आये तो। यह परिग्रह के त्याग की बात है। परिग्रह किसे कहना ? कि आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप के अतिरिक्त पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे, यह भी परिग्रह है, वह मिथ्यात्व का परिग्रह है। समझ में आया ? मिथ्यात्व परिग्रह। इसलिए यहाँ कहते हैं, देखो, जिसे सम्यग्दर्शन हो, उस सम्यग्दर्शन में आत्मा को कैसा माने ? कि **वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा वही आराधनेयोग्य है,...** देखो, यह सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप, शरीरादि की क्रिया, वह मेरी है—ऐसी परिग्रहबुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि छूट गयी है। समझ में आया ?

वीतराग सहजानन्द... आत्मा रागरहित स्वाभाविक आनन्दस्वरूप अखण्ड सुख। एक सुख है न अर्थ में ? एक सुख अर्थात् अखण्ड सुखरूप आत्मा का जो आस्वाद। उसका जो आस्वाद अर्थात् आनन्द का अनुभव। ऐसा जो शुद्धात्मा, वही मुझे आराधनेयोग्य है, वह मुझे सेवनयोग्य है। ऐसी जो रुचि, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया ? उसे पुण्य-पाप और पुण्य-पाप का बन्धन और बन्धन का फल तीनों की सम्यग्दृष्टि को रुचि छूट गयी होती है। आहाहा ! समझ में आया ? उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। देखो, यह शुरुआत की बात है पहली, हों ! जिसकी पकड़ है, उसमें शुद्ध आनन्द और ज्ञान भरा है। ऐसा आत्मा उसकी पकड़ सम्यग्दृष्टि को होती है। परिग्रह है, उसे परिग्रह। समझ में आया ? परिग्रह अर्थात् समस्त प्रकार से ग्रहण करना, पकड़ना। आत्मा वीतराग शुद्ध चिदानन्दस्वरूप अखण्ड एक स्वाभाविक, उसकी अन्तर में पकड़ अर्थात् रुचि-दृष्टि है, उसे स्वचैतन्य का परिग्रह है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व को परिग्रह कहा जाता है। निर्जरा अधिकार में नहीं आया ? (समयसार) निर्जरा अधिकार में आया है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को आत्मा का परिग्रह है। प्राणभाई !

मुमुक्षु : यह और नये प्रकार का परिग्रह।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पकड़ अनादि से पर में पकड़ थी। पुण्य और पाप के भाव शुभ-अशुभभाव, उनका बन्धन और उनका फल—उसमें जो अनादि की पकड़ थी, वह पकड़ छूट गयी और आत्मा वीतराग सहजानन्द शुद्धस्वरूप एक स्वभावी आत्मा की पकड़ अर्थात् अन्तर रुचि का परिणमन हुआ। उसे—सम्यग्दृष्टि को आत्मा का परिग्रह है।

मुमुक्षु : परिग्रह का....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा किसने कहा ? परिग्रह का शब्दार्थ कुछ आता है तुमको ? 'परि' यह उपसर्ग है। समस्त प्रकार से पकड़ना—ग्रहण करना। लो ! यह आत्मा का परिग्रह है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पकड़ आया। एक पकड़ छोड़कर दूसरी पकड़ की, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? धर्मी जीव को पहले क्षण में आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द एक स्वरूप आनन्द, उसकी अन्तर में पकड़ होना, रुचि होना, वही आदरणीय कहा न ? वह आराधनेयोग्य है। वह आराधनेयोग्य है, वह आत्मा शुद्धात्मा ही सेवनयोग्य है, यह पकड़ हुई। इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

अब ज्ञान, समस्त मिथ्यात्व रागादि आस्रव से भिन्नरूप... भ्रमणा। पुण्य-पाप का ज्ञान, शरीर का ज्ञान, लौकिक ज्ञान, उस ओर का ज्ञान छोड़कर उसी परमात्मा का जो ज्ञान,... वह परमात्मा अपना ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्द चैतन्यमूर्ति का ज्ञान। यहाँ आस्रव और बन्ध और अजीव का वह ज्ञान यहाँ कुछ कहा नहीं। उसका ज्ञान। समझ में आया ? अपना आत्मा, मिथ्यात्व के परिग्रह से, राग से रहित, ऐसा शुद्ध चैतन्य परमात्मा, ऐसा

अपना आत्मा। उसका अन्तर में स्वसन्मुख का ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। वह मुक्ति का मार्ग है। ओहोहो!

और उसी में... 'एक' शब्द पड़ा रहा है। 'रागादिपरिहाररूपेण' यह शब्द पड़ा रहा है थोड़ा। है न भाई अन्दर? अब चारित्र। चारित्र किसे कहना? सम्यग्दर्शन किसे कहना, यह कहा, सम्यग्ज्ञान किसे कहना कहा, सम्यक्चारित्र। कि जिसमें शुभ और अशुभराग, व्रत और अव्रत के विकल्प का राग, उसका परिहार—उसका अभाव। 'रागादिपरिहाररूपेण' भगवान आत्मा में शुभ और अशुभराग के त्यागरूप आत्मा की निश्चल चित्तवृत्ति, वह ज्ञान की स्थिरता, रमणता अन्दर में होना, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। समझ में आया? पटेल! कहो, यह देह की क्रिया, वह चारित्र नहीं, अन्दर व्रत के भाव, पंच महाव्रत के भाव आवे, वह विकल्प चारित्र नहीं। 'रागादिपरिहाररूपेण' ऐसा शब्द है न? आहाहा! भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में रुचि, ज्ञान करके उस स्वरूप में राग के परिहार—राग के त्यागरूप—राग के अभावस्वभावरूप अपने में—ज्ञान में स्थिरता की रमणता की लीनता, उसे भगवान सच्चा चारित्र कहते हैं। आहाहा! भारी झगड़ा इसका झगड़ा।

मुमुक्षु : किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को। उसे त्याग कराओ, राग की मन्दता कराओ, सदाचरण कराओ। यह कराओ। परन्तु क्या? वह तो करता है अनादि से। सुन न अब!

मुमुक्षु : सुनने आवे तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं सुनता, उसका शुभभाव नहीं? और यह बात तो उपदेश तो सब बहुत करते हैं। अब एक दुकान तो ऐसी रहने दे। ऐई! निहालभाई! यह सब कहते हैं कि यह करो... यह करो... है, वह होता है। वह कुछ वस्तु नहीं। अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्यदेह प्राप्त हुई, अब उसे कहाँ तक उसे यह राग करो, यह सदाचरण करो, राग छोड़ो, यह करो, व्रत लो, अपवास करो। कब तक? यह तो कितने वर्ष हुए तो भी अभी इसे कुछ सत्य का आश्रय लेना, उसे अवसर योग्यता रही ही नहीं?

मुमुक्षु : सूझ नहीं आयी ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सूझ तो अनादि से आयी है, उसमें कहाँ नया था ? सूझना क्या था ?

एक चैतन्य ज्ञायकमूर्ति राग से रहित भगवान आत्मा की ओर तो इसने अनन्त काल में लक्ष्य किया ही नहीं । समझ में आया ? क्षण में चला जाये । देह क्षण में संसार समाप्त होकर जाये परभव में । कब करेगा अब ? समझ में आया ? यह दूसरे उपदेश तो बहुत करते हैं । भाई ! यह माँस नहीं खाना, मदिरा नहीं पीओ, फलाना नहीं करना, ढींकणा नहीं करना । वह तो है । वह कहाँ नया उपदेश है ? वह तो श्रुत परिचित अनादि की बात है, ऐसा कहते हैं । यह आत्मा अपना स्वभाव का आश्रय इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी कभी लेने की आवश्यकता है, ऐसा इसने निर्णय भी किया नहीं । समझ में आया ? इसलिए यहाँ आचार्य योगीन्द्रदेव परिग्रह त्याग की व्याख्या में शुभ पुण्य के परिणाम भी छोड़नेयोग्य है, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं । समझ में आया ?

और पवित्र ऐसा भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दस्वरूप आत्मा । सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव ने जो सिद्धपद जैसा निर्मल देखा, उनका आत्मा पूर्ण केवलज्ञान पाकर निर्मल देखा, जाना और अनुभव किया, ऐसा ही भगवान ने दूसरे के आत्मा को राग और विकल्परहित शुद्ध आत्मा ही भगवान ने देखा है । राग के परिहाररूप आत्मा देखा है । भगवान ने आत्मा को ऐसा देखा है या रागवाला देखा है ? राग तो आस्रव है । शरीर तो जड़ है । जड़वाला आत्मा, रागवाला आत्मा, ऐसा भगवान ने देखा है कभी ? समझ में आया ?

परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में आत्मा जैसा देखा, वैसा आया । भगवान परमेश्वर ने ऐसा देखा कि भाई ! तेरा आत्मा यह देह, वाणी, मन यह तो हड्डियाँ । हड्डियों का खोखा यदि नजर करो तो ऐसा दिखाई दे खोखा जैसा । उसमें लिखा नहीं ? फोटो खींचा नहीं ? उसमें खींचा है न । क्या कहलाता है वह ? छहढाला । हड्डियों का बड़ा खोखा । उसमें चर्बी और तीसरा भगवान आत्मा । समझ में आया ? है या नहीं उसमें, कहाँ है ? चित्र है न ? हाँ, चित्र-चित्र है । कहाँ उस शरीर की बात नहीं की

कहीं ? कितना ? शरीर । ऐसा कि भावना । भावना की उसमें होगा न ? अशुचिभावना । देखो, यह एक हड्डियाँ । अकेले हड्डियों का मावा दिखाया है । है न ? दिखता है या नहीं इतना छोटा ? हड्डियों का मावा एक यह । उसके साथ एक चर्बीवाला दूसरा साथ में दिखाया । दूसरी चर्बी यह इकट्ठी है । समझ में आया ? तीसरा अन्दर आत्मा भिन्न अरूपी है । देखो, घोंसला, हड्डियाँ, माँस का । अकेला पिंजर दिखाया है हड्डियों का । उसमें दूसरा चर्बीवाला मनुष्य अन्दर यह सब चर्बी भरी है । अब उसमें भगवान अरूपी चैतन्यमूर्ति विराजता है । वह चर्बी और हड्डियों से अत्यन्त भिन्न है । आहाहा !

मुमुक्षु : इन्द्रियों से नहीं दिखाई देता ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियों से क्या दिखाई दे ? जाननेवाला तो इन्द्रिय द्वारा पर को स्वयं (जानता) है । जो पर को जानता है, वह अपने को जानता नहीं ? जाननेवाला इन्द्रिय से जाननेवाला भी कौन है ? इन्द्रिय जानती है ? जाननेवाला तो आत्मा है । ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति । हड्डियों से पार, चर्बी से पार । यहाँ तो कहते हैं कि उस पुण्य-पाप के राग से किस प्रकार दिखलाना इसमें ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा शरीरप्रमाण रूपरहित स्वरूपी वस्तु । रूपरहित अरूप-स्वरूप वस्तु । अरूप-स्वरूप वस्तु । यह हड्डियाँ, यह मावा ऐसा खोखा देखे तो खबर पड़े इसे अन्दर कि यह जरा माँस । ऊपर माँस का लोचा चिपटा है । और उसमें आत्मा ऊपर जरा पुण्य-पाप का राग जरा हुआ है । वह विकार । इन तीन से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा । समझ में आया ? वह आत्मा....

मुमुक्षु : चश्मा के नम्बर क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नम्बर है अन्दर । ऐसा कि कौन सा नम्बर होगा ? यह किस नम्बर से दिखाई दे ? ऐसा पूछे । आहाहा ! यह अखण्ड ज्ञान के नम्बर से दिखाई दे, ऐसा है यह । आहाहा ! कहते हैं, प्रभु ! एक बार विचार तो कर । यह अनन्त काल में चौरासी के अवतार में गोते खाये, कहीं तेरा अन्त आया नहीं । पाप भी अनन्त बार किये और पुण्य भी अनन्त बार किये, नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया । कितने क्रियाकाण्ड ? आगे आयेगा अभी कि जिनदीक्षा, वह पुण्य का कारण है, भाई ! इसमें । इसमें आयेगा । ८८

में। ८८ में आयेगा। है न अन्दर ? पढ़ा है या नहीं तुमने थोड़ा भी ? हाँ करो ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : आपसे तो हाँ ही करनी पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह 'पुण्यबन्धकारणमपि जिनदीक्षादानादिशुभानुष्ठानं' है टीका में ? देखो, ८८ में। ८८ की टीका में है। आयेगा तब।

मुमुक्षु : जिनदीक्षा ऐसी शुभ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह सब पुण्यबन्ध का कारण है। वह अज्ञानी मुक्ति का कारण मानता है, ज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया ?

इस देह में एक तो हड्डियाँ, एक वस्तु; दूसरी चर्बी, दो वस्तु; तीसरे कर्म जड़, तीसरी वस्तु; चौथा एक तैजसशरीर है, वह भी उसके साथ गिन लेना अलग। और यह पुण्य और पाप के विकारीभाव। उन सबसे भिन्न भगवान चिदानन्दस्वरूप है। उसे भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा कहा और देखा है। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञानी, धर्मी को। धर्मी को आत्मा ऐसा भासित होता है श्रद्धा-ज्ञान में कि शरीरवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, चर्बीवाला नहीं, हड्डियोंवाला नहीं। और पुण्य तथा पाप के विकल्पभाव विकार हो, उस वाला नहीं। यहाँ परिग्रहरहित बतलाना है न, इसलिए यह जरा आता है। वह सब खोटी पकड़ है। अज्ञानी, यह शरीर वह मैं, कर्म वह मैं, हड्डियाँ वह मैं, चर्बी वह मैं। चर्बी व्यवस्थित है न सब ठीक से ऐसी। चर्बी निकाल डालो तो अकेली हड्डियाँ ऐसे मावा दिखाई दे। उसमें चर्बी की व्यवस्थित गाँठ ऊपर है यह। लीपण-लीपण व्यवस्थित दिखाई दे। उसके कारण से व्यवस्थित दिखाई दे। यह लीपण निकाल डालो तो हड्डियाँ... दिखाई दिया ? देखो !

मुमुक्षु : डॉक्टर के यहाँ जाकर चित्र निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, डॉक्टर के यहाँ बहुत चित्र होते हैं। बहुत देखे वहाँ। प्राणभाई को वहाँ हमारे जामनगर में बहुत है। बड़ा है न वह प्राण डॉक्टर, नहीं ? बड़े-बड़े चित्र। बड़ा सोलेरियम देखा है न छह लाख का तब का। बहुत चित्र और बहुत वह देखी यह... नहीं होती ? पथरी। इतनी-इतनी पथरी, उसने बताया था कि ऐसे-ऐसे पत्थर पकते हैं। ऊँचे उत्तम पुरुष के मस्तिष्क में मोती पके, पापी के पेट में यह पके। इसी

प्रकार धर्मात्मा के ज्ञान में आनन्द पके और पापी मिथ्यादृष्टि के पाक में दुःख पके। समझ में आया ?

भगवान आत्मा जिसे आत्मा कहते हैं अन्दर, वह आत्मा ज्ञाननन्द, सच्चिदानन्द, ज्ञानघन, आनन्दकन्द आत्मा है। वह यह देह नहीं, ऊपर मिट्टी है यह सब, वह नहीं, अन्दर हड्डियाँ नहीं, कर्म अन्दर है वह नहीं। पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव वे पुण्य हैं। वह आत्मा नहीं। वे तो विकार हैं। समझ में आया ? यहाँ परिग्रह के त्याग की व्याख्या है। वह सब परपरिग्रह है। उसे ज्ञानी अपना मानते नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी की दृष्टि में आत्मा राग, पुण्यरहित चिदानन्दस्वरूप है। उसकी दृष्टि में पकड़ में पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, हड्डियाँ, चमड़ी, ये मेरे हैं—ऐसा ज्ञानी मानता नहीं। तो फिर यह स्त्री, पुत्र और बँगले, वे तो कहीं बाहर रह गये। यह हजीरा अर्थात् मकान—बँगला लाख-दो लाख का बड़ा बनाया। धूल में भी नहीं। वह तो सब धूल है। वह कब आत्मा था ? आत्मा में कहाँ घुस गये हैं वे ?

यहाँ कहते हैं आचार्य महाराज कि अज्ञानी को परिग्रह आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान छोड़कर पुण्य और पाप तथा शरीर, वाणी की क्रिया और दूसरे वे मेरे हैं, ऐसा अज्ञानी का परिग्रह है। वह मिथ्यात्वभाव है और वह उसे दुःख है। बराबर होगा ? प्राणभाई ! यह पैसे मेरे, उसमें दुःख होगा ?

मुमुक्षु : भूल कहलाये। दुःख नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भूल अर्थात् दुःख। समझ में आया ? यह चैतन्य प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, वह मेरा स्वरूप —ऐसा ज्ञानी अपने आत्मा को ऐसा विश्वास... विश्वास... दृष्टि, रुचि में ऐसा आत्मा लेगा। उसे दूसरा परिग्रह श्रद्धा में कभी किंचित् विकल्प भी मेरा है, ऐसा परिग्रह श्रद्धा में होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहेंगे न, अज्ञानी को ऐसा भान नहीं, धर्म के बहाने पूरे जगत की इच्छा अज्ञानी करे, यह सिद्ध करना है न यहाँ, भाई ! ... यह बात सिद्ध करनी है। अपना निज परिग्रह ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य की उसे प्रतीति नहीं, उसका इसे विश्वास नहीं, उसका इसे शरण नहीं, उसका इसे आश्रय नहीं। इसलिए अज्ञानी राग की क्रिया के पुण्यादि में

अपने को मानता हुआ पूरे जगत की अभिलाषा सेवन करता है वह। धर्म के बहाने पूरे जगत का लाभ लेना अज्ञानी चाहता है। समझ में आया ?

यहाँ तो उस दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वह करनी है न ? परिग्रह का जरा स्पष्टीकरण किया। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! भाई ! तेरा अन्तर का मार्ग अलग, बापू ! पर को मानने के मार्ग कोई अलग हैं। आहाहा ! भगवान आत्मा उस राग के भावरहित, तब वीतरागभावसहित। और दुःख के भावरहित तो आनन्दभावसहित। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा अन्तर में रुचि करके सेवनयोग्य है। पुण्यभाव, पापभाव, शरीरभाव, स्त्रीभाव, परिवार आदि सेवनयोग्य है, ऐसा धर्मी सम्यग्दृष्टि श्रद्धा में मानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह लड्डू और दाल, भात और सब्जी, मकान, वस्त्र और गहने सेवनयोग्य है, यह तो बात कहीं आगे रह गयी। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो तीन बोल लिये। धर्मी को पर के परिग्रहरहित चीज़ शुद्ध आनन्दस्वरूप वीतराग आत्मा अपना उसकी रुचि में वह पकड़ है। पुण्य-पाप के विकल्प की पकड़ समकित्ती को होती नहीं। समझ में आया ? धर्मी जीव को रागरहित भगवान आत्मा का ज्ञान है। उसकी उसे ज्ञान की अधिकता का बहुमान है। दूसरा लौकिक ज्ञान और लोकोत्तर के अतिरिक्त के जगत के ज्ञान, उसके ज्ञान की उन्हें पकड़ होती नहीं, पकड़ होती नहीं अर्थात् उसका बहुमान उन्हें होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

और ज्ञानी के चारित्र में... चारित्र उसे कहना कि चरना। समझ में आया ? जैसे पशु हरा चारा चरते हुए मानो हरा-हरा चूरमा खाता हो। सूखा घास खावे वह तो बेचारे पूरा करे कि पेट भरे। परन्तु एकदम हरा जैसे ऐसे भरा हो और उसमें गन्ने की वाढ़ हो। कच्चा गन्ना और उसमें उसका वह ऊपर क्या कहलाता है ? गन्ने का शीर्ष। उसमें मीठे, उसे ढोर चबाता हो। उसे जो मिठास लगे। समझ में आया ? उसे चरता है वह। चरते... चरते... उसी प्रकार ज्ञानी आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में उसकी एकाग्रता होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अंकुर फूटे, उसे चरता और वेदता है, ऐसा कहते हैं। उसका नाम चारित्र कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! चारित्र किसे कहना ? यह लोग बाहर से एँरे-गैरे निकले और यह हुए, दीक्षा ली और व्रत के कुछ परिणाम।

व्रत अर्थात् अज्ञानी के माने हुए। वह तो सब अव्रत है और मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, रागादि परिहार होकर अन्दर स्वरूप के आनन्द का चरना, वेदना, अनुभव करना, भोगना। अतीन्द्रिय आनन्द के रस के अंकुर फूटकर उन्हें वेदना। जैसे एकदम हरा जैसा घास खाये न। यह रजका-रजका होता है न। सूक्ष्म जीवांत बहुत होती है रजका में। रजका कहते हैं ? गदर्भ-गदर्भ। बहुत जीवांत होती है। ऐसे लाल काटनेवाले को ऐसे खून-खून हो जाये। कीड़े बहुत होते हैं, परन्तु पशु के खाने में मजा बहुत पड़े उसमें। हरा-हरा खा-खाकर ऐसे। गदर्भ खायी है। दो महीने मीठा खाये तो ऐसे हो जाये ढोर सुस्तथा-सुस्तथा इसी प्रकार ज्ञानी आत्मा कहते हैं कि ओहो ! भगवान आत्मा जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का पाक है, ऐसी श्रद्धा और ज्ञान हुए हैं। उसमें स्थिर होते-होते चरते हैं। स्वरूप के आनन्द को चरना स्थिरता से, उसे भगवान आत्मा का मोक्ष के मार्गरूप से चारित्र कहा जाता है। आहाहा !

यह निश्चयरत्नत्रयरूप जो शुद्धात्मा की रुचि... देखो, ऐसा भगवान आत्मा, उसके निश्चयरत्नत्रयी। रतन-रतन, यह तीन रत्न। भगवान शुद्ध परमात्मास्वरूप, उसकी रुचि, उसका ज्ञान, उसमें रमणता। वे रत्न। उन्हें रत्न कहा। यह निश्चयरत्नत्रयरूप जो शुद्धात्मा की रुचि जिसके नहीं,... जिसे वह रुचि अन्तर में नहीं, जिसे ऐसा आत्मा अन्तर में पोसाता नहीं। यह काठियावाड़ी शुद्ध भाषा आती है। समझ में आया ? भगवान आत्मा राग और विकल्प के पुण्य-पाप के भावरहित प्रभु, जिसे अन्तर में पोसाता नहीं, सुहाता नहीं, रुचता नहीं, उसका जिसे अन्तर में ज्ञान नहीं और उसमें जिसका स्थिर होना नहीं। ऐसी रुचि जिसके नहीं, ऐसा मूढ़जन आत्मा को नहीं जानता हुआ,... समझ में आया ? वह आत्मा क्या चीज़ है ? उसकी रुचि नहीं, इसलिए उसे वह जानता नहीं। और नहीं अनुभवता हुआ... इसलिए वह अनुभव नहीं करता। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सहजानन्दस्वरूप आत्मा की जिसे रुचि, दृष्टि, विश्वास नहीं, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसका जिसे आस्वादरूप चारित्र नहीं। वह मूढ़जन जगत के समस्त भोगों को... देखो, उसकी अभिलाषा में गहरे-गहरे सब धर्म के बहाने धर्म के बहाने से

लेना चाहता है,... देखो, आहाहा! आचार्य क्या कहते हैं, देखो न! समझ में आया? क्या कहते हैं?

जगत के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से लेना चाहता है,... मैं कुछ धर्म करता हूँ, कुछ दया पालता हूँ, मैं कुछ व्रतधारी हूँ, मैं त्यागी हूँ, तपस्वी हूँ, ब्रह्मचारी हूँ। ऐसा अन्दर में माना है, अभिमान, वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। ऐसे अभिमान से वह धर्म के बहाने जगत के भोगों को लेना चाहता है। मिठास सब जगत की चीज़ की ही अज्ञानी को पड़ी है। कहो, चन्दुभाई! आहाहा! समझ में आया इसमें? लो! समझे न भीखाभाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक म्यान में दो तलवार नहीं होती। इसी प्रकार भगवान् आत्मा की जहाँ रुचि और दृष्टि नहीं, वहाँ पर के भोग की इच्छा पूरी अन्दर पड़ी है। ऐसा कहते हैं। बात तो यह कहनी है। उसे अन्दर से यह मिले... यह मिले... गहरे-गहरे मिठास ही सब वह है। समझ में आया? वह अज्ञानी आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वभाव का जिसे शरण मिला नहीं, उसका जिसने आधार अन्दर में लिया नहीं, मिला नहीं। ऐसे मूढ़ जीव को एक आत्मा के अतिरिक्त पुण्य को भोगना, पाप को भोगना, स्त्री को भोगना, स्वर्ग के सुख को भोगना, प्राप्त लक्ष्मी को भोगना, देहादि अनुकूल हों, उन्हें भोगना, अच्छे मकान मिलें, उन्हें भोगना, हाथी-घोड़ा बैठने के स्थान बराबर हों, उन्हें भोगना—ऐसी ही मिठास में वह पड़ा है अन्दर। ओहोहो! समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है। जगत को अन्तर में से पर से भिन्न करने की क्रिया, वह अलौकिक है और उस क्रिया बिना, कहते हैं कि बाहर की अकेले क्रियाकाण्ड का करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। उसके अन्दर में शुभभाव हो तो भी उसे पकड़ है। पकड़ है अर्थात् उस बहाने पूरे जगत को भोगना, धर्म के बहाने पूरे जगत को लेना-पकड़ना चाहता है, भगवान् आत्मा को छोड़कर।

मुमुक्षु : फल मिले वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका फल मिले धूल? क्या मिलेगा? मिठास उसे वही पड़ी है। कोई प्रशंसा करे, कोई अच्छा कहे, कुछ बाहर में प्रसिद्धि आवे, मेरी कुछ

गिनती बाहर में गिनी जाये। समझ में आया? अपने आत्मा की गिनती नहीं अन्दर। समझ में आया? इसलिए यहाँ आचार्य जरा कड़क भाषा से कहते हैं कि उसे गहरे सब जगत को—सारे जगत को भोगने की ही प्रीति पड़ी है। आहाहा! पूरा जगत डाला है न सामने ‘भुवणु भुवणु’—भुवन। भगवान को भाये बिना पूरे भुवन की भावना उसे वर्तती है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान नहीं होते, इसलिए पूरे जगत की ही इच्छा उसे वर्तती है। धर्म के बहाने कैसे कहूँ? कि कोई दया, दान के परिणाम शुभ हों, दीक्षित हुआ हो तो नग्न आदि हो, शुभभाव हो। समझ में आया? ऐसे व्यवहार पुण्य के अर्थात् कि व्यवहार धर्म के बहाने निश्चय के भान बिना उस बहाने जगत की अनुकूलता ही लेना चाहता है। समझ में आया इसमें?

शब्द तो यही पड़ा है कि ‘समस्तं जगद्धर्मव्याजेन ग्रहीतुमिच्छति’ ऐसा है टीका में। ‘समस्तं जगद्धर्मव्याजेन’ ‘धर्मव्याजेन’ अर्थात् वह पुण्य के धर्म की क्रिया कुछ करता है न, उसके बहाने कुछ हम ठीक हैं, बड़े हैं, अच्छे हैं, ऐसा कहो तुम। महिमा करो। हम कुछ तुम्हारे से बड़े हैं, अच्छे हैं। हमको मान दो। गहरे-गहरे सब आहार-पानी की सुविधा से हमको पोषण करो। ऐई! निहालभाई! गजब! आहाहा! समझ में आया? प्राणभाई! यह तो नग्न दिगम्बर मुनि थे। नागा बादशाह से आघा। जगत के समक्ष सत्य था, वह रखा है, उसके पास। समझ में आया?

वह जगत के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से... धर्म का बहाना अर्थात्? नग्न वेश हो, बारह व्रत के वेश हों, श्रावक को लंगोटी हो क्षुल्लकपने की। तो ऐसे बाहर के वेश और अन्दर का वेश कुछ राग की मन्दता की क्रिया शुभादि हो, ऐसे धर्म के बहाने (सारे जगत को) लेना चाहता है,... लेना चाहता है, वह छोड़ना चाहता नहीं। समझ में आया? अभिग्रह धारण किया हो, कुछ ऐसे धारण किये हो तो कहे, आहाहा! वाह रे वाह! अब अभिग्रह धारण किया, इतनी तुम परीक्षा तो करो कितनी कड़क हमारी क्रिया है। समझ में आया? ऐसे बहाने भी जगत से अनुकूलता लेना चाहे, वह पूरे जगत के भोग को लेना चाहता है। ऐसा कहते हैं।

तथा ज्ञानीजन समस्त भोगों से उदास है,... शब्द में तो इतना पड़ा। ‘पूर्वोक्तज्ञानी

तु त्यक्तुमिच्छतीति' बस इतना। वह 'ग्रहीतुमिच्छति' यह 'त्यक्तुमिच्छतीति'। धर्मी तो रागादि विकल्प आया, उसके फलरूप से भी छोड़ना ही चाहता है। राग है, उसे छोड़ना चाहता है तो राग का बन्धन और उसके फल दुनिया की अनुकूलता मानादि सब छोड़ना चाहता है। वह मुझमें है नहीं, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानीजन समस्त भोगों से उदास है, जो विद्यमान भोग थे, वे सब छोड़ दिये... वह तो एक समझने की बात की है। डाली तो इतनी बात है कि सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि जीव राग से लेकर सर्व चीज को हेयरूप से स्वीकार करता है, अर्थात् छोड़नेरूप से स्वीकार करता है और अज्ञानी राग से लेकर सर्व चीज को ही ग्रहण करना चाहता है। बस, यह दो बातें हैं। वह छोड़ना चाहता है, यह ग्रहण करना चाहता है। वह हेय मानता है, यह उपादेय मानता है। ऐसा कहना है मूल तो। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि आत्मा के ज्ञान और आनन्द के समक्ष राग से लेकर सब चीजों को हेयरूप से स्वीकार करता है। ऊपर ऐसा कहा था न, आत्मा ऐसा आराधने-सेवनयोग्य है। अज्ञानी आत्मा के ज्ञान-आनन्द का भान नहीं, इसलिए प्रत्येक विकल्प उठे पुण्य का या बाहर के फल का बन्ध का, सबको वह छोड़ना नहीं चाहता। उसे लेना अर्थात् आराधना चाहता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? कहो, इसमें तो दो और दो = चार जैसी बात है। आगामी वांछा नहीं है, ऐसा जानना। लो! यह ८७ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ८८

८८। आगे शिष्यों का करना, पुस्तकादि का संग्रह करना,... देखो अब। उन्हें माननेवाले शिष्य हों, उनके नाम की पुस्तक की अलमारियाँ आदि भरी हुई हों तो ऐसे प्रसन्न हो। हाँ! पुस्तक-बुस्तक रखी हो और बैठा हो साथ में तो उसे ऐसा हो जाये कि यह मेरी पुस्तकें हैं, ऐसा देखते हैं न लोग? हाँ! यह परिग्रह की व्याख्या है न यहाँ? आहाहा! समझ में आया? पुस्तक-बुस्तक लिखते हों, लो न द्रव्यलिंगी साधु कोई। वे लिखते हों तो दूसरे को ऐसा हो कि यह तो आहाहा! पुस्तक लिखता हूँ, हों! ऐसा करके

भी वह पर से मान लेना ही चाहता है। आहाहा! भारी चित्रामण किया है इसमें!

शिष्यों का करना, पुस्तकादि का संग्रह करना, इन बातों से अज्ञानी प्रसन्न होता है,... प्रसन्न-प्रसन्न होता है। समझ में आया? लाखों पुस्तकें, देखो हमारी लाईब्रेरी में लाखों पुस्तकें हैं। यह हमारी बनायी हुई है अथवा मैंने संग्रह की है। बनायी हुई नहीं तो कहीं से लाकर संग्रह की है। प्रसन्न हो। संग्रहस्थान, संग्रहालय। संग्रह-आलय अर्थात् संग्रह करने का स्थान। अज्ञानी ऐसे संग्रहालय को देखकर, दुनिया को बताकर आनन्द-प्रसन्न होता है। ज्ञानी लज्जित होता है कि अरर! यह परचीज़ मेरी! यह क्या कहते हैं? समझ में आया? जो मेरी नहीं, उसे यह कहते हैं तुम्हारी? यह तुम्हारी पुस्तकें न? यह तुम्हारे शिष्य?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई धूल में भी शिष्य नहीं। आत्मा को शिष्य कैसा? गुरु कैसा? और आत्मा को परवस्तु का परिग्रह कैसा? ऐसा यहाँ तो बतलाना है न। समझ में आया? यहाँ तो कहे, यह पुत्र तुम्हारा? यह मन में तो गहरे मिठास हो, परन्तु ईश्वर का है। आपका है। यह पुत्र तुम्हारा है? कहे, हाँ। भगवान की माया है। और अन्दर में तो मिठास है। भगवान की माया कुछ नहीं। अच्छा पुत्र हो तो कहे हाश! लोग अच्छी नजरों से देखते हैं मेरे पुत्र को। तो उसमें मेरी प्रशंसा है। स्त्री—उसकी बहू पुत्र की (बहू) निकली हो, पुत्र की बहू। पाँच हजार की साड़ी बनायी हो और पहनकर निकली हो। दूसरे भले दूसरी नजरों से देखें। परन्तु यह ऐसा देखता है कि मेरी साड़ी तो बाहर प्रसिद्ध होती है, हों! मेरी बहू ने पहनी है, साड़ी मैंने ले दी है, परन्तु सब ... लोग हजारों लोग इकट्ठे हुए हैं। इस बहाने भी दूसरों को पहनायी हुई साड़ी उसकी ममता से भी प्रसन्नता मानता है। आहाहा! उसे प्रसन्नता आती है अन्दर कि आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसिद्ध हो। पाँच-पाँच हजार, दस हजार लोग इकट्ठे हुए हों और वह पाँच हजार की साड़ी लाया हो और पहनकर निकले रुमझुम-रुमझुम करती। तो ऐसे नजर करे। भले दूसरी दृष्टि हो उनकी। यह कहे मेरी साड़ी बाहर प्रसिद्ध होती

है। तेरी दृष्टि उल्टी है, सुन न! मर गया ममता में। अब किसी का पहनकर जड़ की साड़ी कहीं पहनी हो किसी ने, वह देखे दूसरी दृष्टि से और तू प्रसन्न होता है। अज्ञानी के परिग्रह का पार नहीं होता, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा! क्या कहीं नजर फिरती है। शास्त्र में नजर हो, यह तुम्हारा लिखा हुआ है? हाँ, मैंने लिखा है। यह तुम्हारा लिखा हुआ है? यह गायन तुम्हारा बनाया हुआ है न? अभी तो कितने ही किसी का बनाया हुआ किसी के नाम से लिखे तो मेरा लिखा हुआ है।

मुमुक्षु : कड़ी बदल डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़ी आदि बदल डाले। एकाध कड़ी बदल डाले, थोड़े शब्द बदल डाले।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे शब्दों की क्रिया हुई। 'पुस्तकादि' लिखा है न? पुस्तक आदि लेखन सब, बोलने की भाषा सब, यह संग्रह करना, इन बातों से अज्ञानी प्रसन्न होता है, और ज्ञानीजन इनको बन्ध का कारण जानता हुआ इनसे रागभाव नहीं करता,... लज्जा पाता है। इनके संग्रह में लज्जावान होता है—देखो, आहाहा! अरे! मैं अकेला चैतन्य, उसे मेरा यह क्या? समझ में आया? मेरे ज्ञानस्वरूप चिदानन्द में तो राग भी नहीं, वहाँ यह परिग्रह मेरा मानता है तो लज्जा है। आहाहा! बहुत लड़के अच्छे हों तो प्रसन्न हो न बाप? यहाँ कहते हैं कि लज्जा होती है उसे—ज्ञानी को। अरे! हमारे भी परवस्तु कहाँ से आयी? यह शिष्य कहाँ से आये? पुस्तकें कहाँ से आयी? वे तो परपदार्थ हैं। परपदार्थ की अवस्था की क्रियायें वहाँ हो, उसमें हम कहाँ आये? उसमें हमको वहाँ कहाँ डाला अन्दर? लज्जा। आहाहा! समझ में आया? कहाँ-कहाँ अज्ञानी को अहंभाव परिग्रह का खड़ा होता है? और ज्ञानी कहाँ से पर से अहंभाव से छूटकर स्वभाव में स्थिर होता है, इसकी बात है। परिग्रह त्याग की बात है न इसमें? कहो, समझ में आया?

२१५) चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिं तूसइ मूढु णिभंतु।

एयहिं लज्जइ णाणियउ बंधहं हेउ मुणंतु ॥८८॥

मूढ अर्थात् अज्ञानीजन चेला-चेली, पुस्तकादिक से हर्षित होता है,... सन्तोष

पाता है। बहुत शिष्य। सौ-सौ शिष्यों को मुंडा है। बहुत बड़े आचार्य, भाई! कहो, समझ में आया? ...! लज्जा नहीं आती तुझे परद्रव्य की पर्याय में? और कदाचित् वह स्वयं दीक्षा उसने ली हो तो वह उसका शुभभाव है, उसका और तू उसे ठीक कहे तो वह भी शुभभाव है। उस शुभभाव से तुझे प्रसन्नता आती है, वह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों के कथन सर्वज्ञ के कहे हुए। सूक्ष्मता के परिग्रह की बुद्धि अज्ञानी को कहाँ रहती है? और ज्ञानी को सूक्ष्म परिग्रह भी अन्तर दृष्टि से छूट गया है, ऐसी बात करते हैं। आहाहा!

शिष्य आर्जिका चेला-चेली पुस्तकादिक से... देखो, पुस्तक हो, उसके अच्छे कपड़े पुस्तक को भी वापस लपेटा हो न। यह मखमल और क्या कहलाता है? जरी। वह सूरत की जरी भरते हैं या नहीं? पुस्तकें हैं अपने यहाँ बहुत अधिक अलमारियों में। यह चाँदी का समयसार। लो, चाँदी की पुस्तक क्या कहलाये? प्रवचनसार। वह तो परवस्तु है न, प्रभु! वह परवस्तु मेरी और मैंने बनायी, वह तो लज्जा है, कहते हैं। आहाहा! ऐई! समझ में आया? वह परपदार्थ है, उस परपदार्थ की अवस्था तो परपदार्थ से हुई है। वह कहीं तुझसे हुई नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सबका कलेजा देखकर निकले हैं न वे। समझ में आया?

कहते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है,... वह तो प्रसन्नता को ही वेदता है बस, ओहो! वाह! वाह! कितनों ने हमारे पास दीक्षा ली। समझ में आया न? कितनी हमारे पास चेलियाँ हुई! कितनों ने हमारे पास व्रत धारण किये, कितने ही तपस्या, अठुम और महीने-महीने के अपवास किये। यह हम थे तो सब हुए वहाँ। आहाहा! परद्रव्य की पर्याय को अपनी स्वीकार करके हर्ष मानना, वह मूढ़ का लक्षण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो गृहस्थाश्रम में हो, करोड़ों, अरबों पैसे हों, बड़े मकान, स्त्री, पुत्र, तो भी उसमें से आंशिक हर्ष नहीं पाता। अरे! परन्तु परवस्तु में मुझे सन्तोष किसका? मेरी चीज़ ही अन्तर पर से निराली, उसकी श्रद्धा के सन्तोष में परवस्तु से प्रसन्नता ज्ञानी को आती नहीं। समझ में आया? आहाहा!

और ज्ञानीजन इन बाह्य पदार्थों से शरमाता है,... शरमाता है। वह कहे, हाँ, यह तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे चेले होशियार हैं, हों! पण्डित बहुत व्याकरण, संस्कृत बहुत आती है। दो-दो घण्टे भाषण यदि व्याकरण, संस्कृत का देना हो, हमने सबको पढ़ाया है, पढ़ाया है। निहालभाई! यह सब पेट खोले हैं आचार्यों ने। आहाहा! अरे भगवान! प्रभु! तू तो ज्ञानानन्द अन्तर में कमायेली चीज है। यह बाहर में कहाँ आया तू? समझ में आया? बाहर के परिग्रह की चंचलता और समागम से तुझे प्रसन्नता वर्तती है, मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया?

क्योंकि इन सबों को बन्ध का कारण जानता है। आहाहा! देखो, शिष्य होना, उसमें शुभविकल्प है कि यह शिष्य हुआ। वह विकल्प है, वह भी बन्ध का कारण है। वे सब बन्ध के निमित्त हैं, ऐसा कहते हैं। गजब! समझ में आया? यह जिनदीक्षा, यह व्रतादि के परिणाम, वे तो बाह्य पुण्यबन्ध का कारण है। उस पुण्यबन्धरहित भगवान् आत्मा अनाकुल आनन्द और शान्ति के प्रेम के रस के समक्ष तुझे यह क्या हुआ? लज्जा, ज्ञानी को लज्जा आती है कि यह नहीं। आहाहा! इतने शिष्य हमारे पढ़े हुए, पण्डित होशियार, व्याख्याता। व्याख्याता—वक्ता। आहाहा! कहते हैं कि अज्ञानी सन्तोष को पाता है, प्रसन्नता को वेदता है। चैतन्य के आनन्द को भूलकर अपने आत्मा के आनन्द के विश्वास को, ज्ञान को छोड़कर, उसके विश्वास में उसे प्रसन्नता वर्तती है। उसे पर का अनन्त परिग्रह पड़ा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! तू तो ज्ञाता-दृष्टा है। इन ज्ञेयों को मेरा मानना, यह ज्ञेय का ज्ञान भी परालम्बी है। उसके बदले ये ज्ञेय, आहाहा! ये हमारे हैं... हमारे हैं... हमारे हैं... ऐसा हर्ष वेदन करना, कहते हैं कि मूढ़ के लक्षण हैं ये। आहाहा! समझ में आया?

इन सबों को बन्ध का कारण जानता है। लो! वे चिल्लाहट मचाते हैं, अरे! जिनदीक्षा, वह बन्ध का कारण होगी? परन्तु जिनदीक्षा में व्रत लेना, वह व्रत स्वयं ही बन्ध का कारण है, सुन न! वे चिल्लाहट मचाते हैं ... । यह व्रत के विकल्प बिना का आत्मा अन्दर अखण्डानन्द, चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान हुआ हो और शरण अन्दर ले स्थिरता, उसका नाम सच्ची जैनदीक्षा है। समझ में आया? अकेले व्रत के परिणाम हों और दूसरे को व्रत के परिणाम दे, उसका विकल्प हो, उसमें से प्रसन्नता प्राप्त करे उसे

तो, कहते हैं कि विकल्प का परिग्रह है और उन शिष्यों का भी परिग्रह—पकड़ है, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो दीक्षा ली वह पानी में गयी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दीक्षा कहाँ, किसे कहना दीक्षा ? दीक्षा किसे कहना ? दख्खा है सब। आत्मा एक विकल्प पुण्य-पाप की वृत्तिरहित भगवान आत्मा, ऐसी आराधना योग्य सेवा की दृष्टि दैवी... दैवीदृष्टि देव... दृष्टिदेव। परमात्मा की अपनी हुई नहीं। इसके अतिरिक्त दूसरे सब त्यागादि सब पुण्यबन्ध के कारण हों, वह तो भटकने के कारण हैं। आहाहा! प्राणभाई! उसमें घर में दीक्षा दी हो तो उसका वापस मलावा हो। मेरे घर में दीक्षा ली। शोभायात्रा पहले मेरे घर से घूमी है। फिर हो भले डपोल निकला।

मुमुक्षु : भाग गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग गया और अठारह हजार रुपये खर्च किये थे उसकी दीक्षा में। बड़ी दीक्षा की थी। उसमें भले वह तो चला जाये, परन्तु अपने को तो लाभ हो। भाई! अपने तो दीक्षा का... कहीं भान नहीं होता। ... मुँडनेवाले और मुँडानेवाले दोनों बिना भान के और मानते हैं कि हमारे दीक्षा है और यह साधुपना है। कहते हैं कि ऐसे बाह्य व्रत के धारक और बाह्य व्रत से प्रसन्न होनेवाले, वे सब प्रसन्न होनेवाले बारह व्रत से मूढ़ जीव हैं। उन्हें आत्मा के रागरहित चिदानन्दस्वभाव की प्रसन्नता अन्तर में नहीं। समझ में आया ? इसका भावार्थ लिया जायेगा.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक १८-०२-१९६६

गाथा - ८८ - ८९, प्रवचन - १३२

यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ शास्त्र है। ८८ गाथा। देखो, क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात तो यह है। अनन्त काल से उसने... अपने आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त-अनन्त शक्ति-गुण भरा है। अपनी सम्पदा अपने स्वरूप में है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप... परमात्मप्रकाश है न! सत् अर्थात् शाश्वत् रहनेवाला अपना ज्ञान और आनन्द आदि जो अन्तर स्वभाव है, उसका नाम आत्मा कहते हैं और उसका नाम ही परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे आत्मा की जिसको श्रद्धा होती है। वह कहते हैं, देखो!

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो निज शुद्धात्मा... है पहले भावार्थ? ८८ गाथा में पहला भावार्थ। भगवान् आत्मा सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की मेरी चीज स्वरूप है, ऐसा जो अन्तर में प्रतीत करना उसका नाम सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म कहने में आता है। समझ में आया? उसका नाम प्रथम धर्म। ओहो! अपना आत्मा ही अनन्त गुण और आनन्द का धाम है। जो प्राप्ति शान्ति की, मोक्ष की प्राप्त करना चाहते हैं, वह सब गुण और निर्दोषता अपने आत्मा में ही पड़ी है। समझ में आया? वह निर्दोषता अथवा पवित्रता कोई बाहर से आती नहीं। समझ में आया?

क्या कहते हैं? यह मनुष्य देह मिला अनन्त काल में। दुर्लभ, अनन्त काल में दूसरे अवतार से करता मनुष्यदेह महादुर्लभ है। उसमें भी दुर्लभ जो अपना आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्द की अन्तर दृष्टि होना, विश्वास आना कि जितना शान्ति आदि गुण मैं चाहता हूँ, वह सब शान्ति और आनन्द मुझमें हैं। समझ में आया? मेरे में पूर्णानन्द अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, शान्ति मेरे पास है। मेरे से दूर एक समयमात्र या एक प्रदेशमात्र दूर मेरी शान्ति, मेरा आनन्द, मेरा धर्म, मेरा कल्याण, मेरे आत्मा से एक समय भेद-फेर और एक प्रदेश से भिन्न है ही नहीं। समझ में आया? मैं आत्मा, देखो, परमात्मा कहते हैं न यहाँ? निज शुद्धात्मा। मैं निज शुद्धस्वरूप अखण्डानन्द कन्द

उसकी अन्तर प्रतीति-श्रद्धा होती है, उसको दूसरी चीज़ अपना मानना, वह मानते नहीं। और दूसरी चीज़ से कोई उसका बड़प्पन करते हैं, अधिक कहते हैं तो ज्ञानी लज्जा करते हैं। पोपटभाई! लज्जा करते हैं कि अरे! हमारी चीज़ नहीं, हमको ऐसा क्यों कहते हैं कि तुम पुत्रवाला हो, तुम स्त्रीवाला हो, तुम लक्ष्मीवाला हो, तुम शरीरवाला हो। भगवान! यह चीज़ तो हमारी नहीं। समझ में आया? हमारी चीज़ तो आनन्दकन्द सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा ही है। अपने आत्मा का जिसको अन्तर विश्वास, दृष्टि, आश्रय, शान्ति अन्दर मिली। ऐसा सम्यग्दृष्टि को अथवा त्यागी, मुनि को ऐसा सम्यग्दर्शनपूर्वक जिसने अपने आत्मा का ज्ञान किया है कि मैं ही सर्वस्व चैतन्य केवलज्ञान का पिण्ड हूँ। ऐसा जिसने अपना ज्ञान किया है। और इसका अपने स्वरूप में लीनता, स्थिरता, चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द की उर्मी अन्दर में जगी है बहुत। उसका नाम चारित्र कहते हैं। आहाहा! बात ही दूसरी है।

क्या कहा देखो, निज शुद्धात्मा... उसको सम्यग्दर्शन मानना उसको न श्रद्धान करता,... ऐसे श्रद्धान नहीं करते हैं कि ना, ना, यह नहीं। मैं तो शरीर हूँ, शरीर की क्रिया मेरी है। दया, दान, व्रतादि का काम, क्रोध का भाव होता है विकार, वह मेरा है। ऐसी स्वरूप की श्रद्धा नहीं करता है और विकार जो परवस्तु है, उसको अपना मानता है। तो वह चीज़ से वह शरमाता नहीं। ज्ञानचन्दजी! जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा! समझ में आया? वह श्रद्धान करता नहीं कि मैं तो ज्ञानस्वरूप, आनन्द शान्त हूँ। देह तो मिट्टी का पिण्ड है। देह देवालय में विराजमान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। जैसा परमात्मा को निर्मलानन्द की प्राप्ति हुई, जैसा परमात्मा को पूर्ण केवलज्ञान आदि की प्राप्ति हुई, वही परमात्मा जैसा ही मेरा आत्मा है। इसकी जिसको श्रद्धा नहीं और वह आत्मा परमानन्दस्वरूप से है, उसका जिसको ज्ञान नहीं।

और न अनुभव करता... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति उसमें अनुभव नहीं करता, जो मूढ़ात्मा... उसको मूढ़ात्मा कहते हैं। आत्मा तो कहते हैं, परन्तु मूढ़ात्मा। आहाहा! समझ में आया? वह पुण्यबन्ध के कारण जिनदीक्षा, दानादि शुभ आचरण... उसमें मुक्ति का कारण अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? अपना शुद्ध

ज्ञानानन्दस्वभाव निर्मलानन्द सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा कहा, ऐसा समझ में नहीं आता। डॉक्टर है ? डॉक्टर का दूसरा... वह देखने को आये है लड़की को। दोपहर को दस बजे आया था। वह डॉक्टर है न बड़ा ? उसका ससुर है। आओ नजदीक आओ। वह लड़की को देखने को आये हैं। बड़ा हॉस्पिटल है न ? बड़ा हॉस्पिटल है, उसका जो डॉक्टर है, उसका ससुर है। वह दस बजे आये थे। हम आहार करते थे पूछने आये थे। वह हिन्दी में है। भाषा हिन्दी समझेगा थोड़ा-थोड़ा।

ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा ही शिवस्वरूप है। यह भगवान आत्मा अन्तर विराजमान है, वही शिवस्वरूप है।

मुमुक्षु : महाशिवरात्रि

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शिवरात्रि नहीं, यह शिवरात्रि है। समझ में आया ? शिव अर्थात् निरुपद्रव कल्याण की मूर्ति उसको शिव कहते हैं। तो यह देह में विराजमान भगवान आत्मा... यह देह का रजकण तो मिट्टी, धूल है। वाणी उठती है, वह तो जड़ है। समझ में आया ? वह आत्मा नहीं। अन्दर में कर्म जिसको कहते हैं, वह कर्म भी प्रारब्ध एक अजीवतत्त्व धूल है। यह जिससे पुण्य-पाप, पैसा मिले या न मिले, निर्धन सधन जिसका कारण ऐसा प्रारब्ध है न ? वह प्रारब्ध भी जड़ है। यह उसमें पुण्य और पाप का शुभ-अशुभभाव का भाव होता है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, वह पापभाव है। और दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प जो उठते हैं, वह पुण्यभाव है। दोनों भाव से भिन्न भगवान आत्मा है अन्दर। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कन्द-कुण्ड है। शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का कुण्ड है। भगवान जाने क्या होगा ? समझ में आया ? ऐसा जिसको विश्वास है, वह आत्मा के अतिरिक्त पुण्य-पाप का भाव, शरीरादि की क्रिया, अरे ! दीक्षा जैन दीक्षा, पंच महाव्रत का पालन आदि शुभभाव, वह हमारा नहीं। समझ में आया ? वह हमारा नहीं। देखो, दीक्षा, जिन दीक्षा शुभभाव। है ? पुण्यबन्ध के कारण वह पंच महाव्रतादि भाव है और दानादि... दान देने का भाव है, वह भी शुभभाव है। आहाहा ! दया, दान, वाँचन करना, लेना, सुनना ऐसा जो राग उत्पन्न होता है। अभयदान

देना, किसी को उपदेश देना, वह भी अन्दर में शुभ विकल्प अर्थात् शुभराग है। वह दानादि शुभ आचरण उसको अज्ञानी मुक्ति का कारण मानता है। समझ में आया ? पोपटभाई !

अपना स्वरूप अन्दर ज्ञान-ज्ञान कन्द जिसके अन्तर में शान्ति... शान्ति... शान्ति... भरी है। ऐसा शान्तसागर, शान्तस्वरूप प्रभु। निर्विकारी अकषायस्वभाव आत्मा की जिसको श्रद्धा नहीं, उसका जिसको विश्वास नहीं, उसका जिसको आश्रय अन्तर (में) नहीं, वही बाह्य पंच महाव्रत का परिणाम, दानादि शुभ और शिष्यों से मुझे लाभ होगा, वह पुण्यबन्ध के कारण में मोक्ष का कारण अज्ञानी इस तरह मानता है। समझ में आया ? गजब बात ! देखो !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : घर की क्रिया कौनसी ? घर की कौनसी क्रिया थी ? घर की क्रिया तो ज्ञानानन्द भगवान आत्मा उसकी अन्तर दृष्टि करके अनुभव करना, वह अन्तर आत्मा की क्रिया है। वह क्रिया बिना जितना शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप का भाव, देह, वाणी, कर्म और शिष्य। यहाँ तो शिष्य आदि लिया है। मुनि को लिया है न ? शिष्य है। तुम्हारे स्त्री, पुत्र, परिवार है। समझ में आया ? उससे जो शरमाता नहीं, लज्जा होती नहीं कि यह तुम्हारे राजा की कन्या। ओहोहो ! तुम तो राजा की कन्या के पति। धर्मी अपना चिदानन्दस्वभाव की श्रद्धा रखते हैं, उसमें वह परद्रव्य से, परद्रव्य मेरा है, ऐसा मानते नहीं और कोई कहे कि तुम्हारा है। शरम है-शरम है, लज्जा है। आहाहा ! निहालभाई ! आहाहा ! समझ में आया ? अज्ञानी लज्जा नहीं करते। यहाँ ऐसा कहते हैं। प्रसन्न होते हैं। आहाहा ! हमारी पत्नी, हमारा मकाना, हमारा गाँव, हमारा हाथी, हमारा पुत्र ऐसा पढ़ा-लिखा, हमारी कन्या। समझे ? ओहो ! पढ़ा-लिखा एल.एल.बी., बी.ए. हो गये। क्या है परन्तु तुझे ?

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य प्रभु ऐसी अपनी श्रद्धा का जिसको भान नहीं वही परचीज को अपना मानते हैं और दूसरा परचीज को उसकी कहता है तो प्रसन्न होता है। कहो, समझ में आया ? ... देखो, योगीन्द्रदेव आचार्य ९०० वर्ष पहले दिगम्बर

सन्त जंगल में रहनेवाले। मोरपिच्छी और कमण्डल के अतिरिक्त कुछ उनके पास नहीं था। नग्न दिगम्बर, आत्मध्यान में मस्त, अखण्डानन्द परमात्मा अपने स्वरूप में आनन्द में मस्त। उनको एक विकल्प आया शुभराग तो यह शास्त्र बन गया। तो कहते हैं कि अरे! धर्मी जीव! तुझे आत्मा शुद्ध आनन्द भगवान की श्रद्धा नहीं तो दूसरी चीज़ से तुम तुम्हारे आत्मा को अधिक मानते हो। समझ में आया? लक्ष्मी से अपने को अधिक मानना, कुटुम्ब से अधिक मानना, परिवार से अधिक मानना, इज्जत से अधिक मानना। धर्म जिसको होता है... उसकी जगह तुम अधिक मानते हो तो तुझे आत्मा की श्रद्धा नहीं। समझ में आया?

आता है या नहीं, उसमें क्या? श्रीमद् में नहीं आता वह? 'बहु पुण्य केरा।' 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये? परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धिनय पर तोलिये।' १६ वर्ष की उम्र में। श्रीमद् राजचन्द्र। सेठ! वह एक श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं। सुना है नाम? तुम्हारे पिताजी को कभी वह... अपने वहाँ फोटो है स्वाध्याय मन्दिर में।... फावाभाई! ऐसा फोटो है वहाँ। श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं काठियावाड़ में। गृहस्थाश्रम में थे। स्त्री-कुटुम्ब था। बहुत आत्मज्ञान। लाखों का व्यापार करते थे। यह नहीं हमारा आत्मा... उन्होंने १६ वर्ष में। १६ समझे? १० और ६। १६ वर्ष की उम्र में... पूर्वजन्म का संस्कार था। सात साल की उम्र में जातिस्मरण था। समझ में आया? ... वह लड़की देखने को आये है। लड़की अभी आयेगी।

श्रीमद् को सात वर्ष की छोटी उम्र में जातिस्मरण (हुआ) था। पश्चात् १६ वर्ष में १०८ पाठ। माणेकचन्दजी! १०८ पाठ बनाये। १६ वर्ष में। और १०८ पाठ बनाकर उसका नाम... अभी आयी नहीं। ऊँचा-नीचा न होना। वह आयेगी। नये व्यक्ति है न। उसको जातिस्मरण हुआ है। यहाँ तो बात में वह जातिस्मरण याद आ गया। समझ में आया? क्या कहते हैं। सात वर्ष में जातिस्मरण। सोलहवें वर्ष में १०८ पाठ बनाये। जैसे माला के १०८ मनका (दाने) होते हैं न? माला-माला कहते हैं न? क्या? माला। १०८ मनका। तो १०८ पाठ बनाकर उसका नाम मोक्षमाला रखा। उसमें एक ऐसा पाठ बनाया कि 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला। तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' यह गुजराती है। १६ वर्ष में कहते हैं कि अरे आत्मा! सोलह वर्ष

कितना ? १ और ६। बालक। परन्तु पूर्वजन्म का संस्कार था। अभी गुजर गये। ५७ के वर्ष में यहाँ मोरबी के पास ववाणिया है। वहाँ उनका देह छूट गया। छूट गया तो राजकोट में—वहाँ जन्म था वहाँ स्थानक बनाया।

वह कहते हैं कि पुण्य के कारण तुझे मनुष्य देह मिला, उसमें जो आत्मा का ज्ञान तूने न किया, जन्म-मरण रहित करने का आत्मा का भाव न किया तो तूने क्या किया ? समझ में आया ? आखिर में तो यह कहा 'लक्ष्मी और अधिकार बढ़ा।' तेरी लक्ष्मी बढ़ी, अधिकार बढ़ा। पाँच-दस हजार, पचचीस हजार का वेतन मासिक हुआ। 'लक्ष्मी अने अधिकार वधता शुं वध्युं ?' शुं अर्थात् क्या ? क्या बढ़ा तुझे ? कि 'कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं अे नय ग्रहो।' कुटुम्ब हमारे बहुत हुआ, परिवार हमारे बहुत हुआ। क्या हुआ ? 'वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो, अेनो विचार नहीं अहो अेक पळ तमने हवो।' 'अेनो विचार नहीं अहो अेक पळ तमने हवो।' १६ वर्ष में कहते हैं। अरे जीव ! तुझे एक पल भी विचार नहीं आया कि इस लक्ष्मी से मैं अधिक ? कुटुम्ब से अधिक ? परिवार से अधिक ? यह परचीज से तुम अधिक ? जमुभाई ! जो परचीज है, वह हमारी नहीं, उससे तुम अधिक मानते हो। हम बड़े हुए हैं। परिवार में बड़ा है, लक्ष्मी में बड़ा है, सेठाई में बड़ा है, कुटुम्ब में बड़ा है, इज्जत में बड़ा है। किसमें बड़ा है ? धूल का बड़ा ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? १६ वर्ष में कहते हैं कि क्या एक पल भी तुझे विचार नहीं आया ?

यहाँ आचार्य कहते हैं कि तेरी चीज तो शुद्ध आनन्दकन्द परमात्मास्वरूप है। उसकी श्रद्धा तुझे नहीं है तो अपनी चीज के अतिरिक्त दूसरी चीज से मैं बड़ा हूँ, ऐसा मानता है, लज्जा नहीं आती तेरे ? आहाहा ! वकील ! देखो, लज्जा कहते हैं न ? 'लज्जइ णाणियउ' ज्ञानी लज्जा पाते हैं। अरे ! हमारी चीज नहीं, वह हमारी कहते हैं ! समझ में आया ? शरीर कर्म पुण्य-पाप का भाव, हों ! यहाँ तो वहाँ तक लिया है। जिनदीक्षा, कोई शिष्य हुए, व्रतधारी शिष्य। आपने बहुत शिष्य बनाये हों ! बहुत व्रतधारी बनाये हैं ! अरे भगवान ! वह तो हमारा शुभराग था, वह हमारा बना, तुम क्या कहते हो ? शुभभाव से भी लज्जा आती है। आहाहा ! समझ में आया ? वह शुभभाव से अज्ञानी मुक्ति मानते हैं।

हमारा शुभभाव है, व्रत का शुभभाव है, हम बहुत को शुभभाव देते हैं, व्रत बहुत बनाया, व्रतधारी बनाया। अरे भगवान! व्रत आदि तो शुभ परिणाम है, पुण्य है। उससे भिन्न आत्मा का ज्ञानानन्द सम्पदा की जिसको श्रद्धा-ज्ञान नहीं, वह बाह्य की चीज़ से अपनी बड़ाई मानते हैं। उससे लज्जा पाते नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो न, श्लोक भी कैसा आ गया है! आहाहा!

हमारा शरीर अच्छा, हमारी इज्जत अच्छी। भगवान! वह तो परवस्तु है न, प्रभु! वह तेरी चीज़ में है ही नहीं न। तेरी चीज़ में नहीं है, उससे तुझे शर्म आनी चाहिए, उससे तुम अधिक मानते हो? मिथ्यादृष्टि, अपना निज शुद्ध परमात्मस्वभाव उसकी उसको श्रद्धा है नहीं। जमुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : चाबुक पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाबुक पड़े ऐसा है, हों! आहाहा! कोड़ा पड़ते हैं, कहते हैं। कोरड़ा समझते हो? मारते हैं न। अरे भगवान! तू कौन है? प्रभु! यह तो रजकण, धूल है। मिट्टी का पिण्ड आया है धूल का। बाहर में जो दाल-भात-रोटी जो बर्तन में था वह यहाँ (पेट में) रखा है। यह क्या आत्मा है? और ऐसा पुत्र, पुत्री, लक्ष्मी आदि वह तो परवस्तु है। कहाँ से आयी और कहाँ चली जायेगी? यहाँ तो साधु को कहते हैं। आहाहा! ऐई! हिम्मतभाई! वह कहे न, संसार में चतुर है। बराबर चलते हैं और जगत की व्यवस्था करते हैं। कहते हैं मूढ़ है? ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! ऐई! छगनभाई! यह सब कार्य... क्या कहलाता है? कार्यकर। कार्यकर्ता। गाँव में प्रत्येक कार्य कर दे दूसरे का। लज्जा नहीं आती तुझे? तू आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप क्या परपदार्थ की व्यवस्था कर सकता है? समझ में आया? क्या परपदार्थ तेरी चीज़ है? परपदार्थ स्वतन्त्र चीज़ है। वह अपने से चीज़ टिकती है और अपने कारण से उसकी अवस्था की व्यवस्था होती है। आहाहा! कठिन बात। यह दिगम्बर मुनि है न। उसको कुछ लेना तो है नहीं। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! तुझे जिसे परमात्मा की श्रद्धा नहीं, अपना निजानन्द भगवान अपना स्वरूप है, उसका जिसको विश्वास नहीं, उसका जिसको बोध नहीं और उसका जिसको अन्तर में अनुभव नहीं, वही आत्मा परचीज़ जिनदीक्षा से (धर्म)

मान लिया है, यहाँ तो। ओहोहो! समझ में आया? जिनदीक्षा अर्थात् वीतरागमार्ग का व्यवहारचारित्र। व्यवहार क्रिया पुण्य की। दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, ऐसा बनाया और दिया वह तो तेरा शुभभाव था। शुभभाव से तेरी मुक्ति है? और दूसरा कोई लाभ अनेक प्रकार की दीक्षा ले लिया तो उससे तेरी मुक्ति होगी? समझ में आया? दूसरे बहुत लोग समझे हैं। समझ जाये तो उसकी पर्याय से समझते हैं। तुझे तो शुभराग था। तो वह शुभराग से तेरी मुक्ति है? और दूसरा समझा, उससे तेरी मुक्ति है? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा निज प्रभु आनन्दस्वरूप में अनाकुल शान्तरस, उसकी शान्ति का, आनन्द की जिसको रुचि नहीं। प्रतीति नहीं। उसका ज्ञान में यह ज्ञेय भासन हुआ नहीं, तो उस ओर का जिसको रटन अर्थात् लीनता नहीं। वह पुण्यबन्ध के कारण... वह मूढ़ात्मा जिनदीक्षा... गजब बात की। दीक्षा किसे कहना? वास्तविक दीक्षा तो आत्मा के आनन्दस्वरूप में रमे, वह दीक्षा है। आहाहा! समझ में आया? कहा न पहले। न अनुभव करता है। भगवान आत्मा अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि करके, ज्ञान करके, अन्तर में अनुभव में, आनन्द में-आनन्द में लीन होना, उसका नाम चारित्र है, उसका नाम सच्ची दीक्षा है, उसका नाम सच्चा साधुपने का धर्म है। समझ में आया? यह खबर नहीं। मूढ़ बाहर से जिनदीक्षा। पाठ में है देखो! 'पुण्यबन्धकारणमपि जिनदीक्षादानादिशुभानुष्ठानं' संस्कृत टीका में है न भैया! संस्कृत आती है या नहीं थोड़ी? थोड़ी तो आती है न? थोड़ी कहा, मैंने कहाँ विशेष कहा? ८८ में है देखो, अन्दर में।

जिनदीक्षा अर्थात् यह व्रत लेना, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, महाव्रत आदि पंच महाव्रत का भाव ग्रहण करना, वह तो शुभराग है। मूल चीज तो राग से रहित आत्मा का आनन्द की श्रद्धा, रमणता वह चारित्र है। उसको खबर नहीं तो इतना व्रत लिया वहाँ खुश हो गया। समझ में आया? भाई! ऐसा कहते हैं। व्रत लिया, शुभ परिणाम महाव्रत के लिये, परन्तु अपने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं। मुक्ति का कारण मानते हैं। वह व्रत का परिणाम दया, दान, भक्ति, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, अपरिग्रह वह शुभराग विकल्प है। विकल्प यह कहते हैं देखो, पुण्यबन्ध का कारण है।

यह जिनदीक्षा शुभभाव, व्रत का भाव, उसको अज्ञानी मुक्ति का कारण मानते हैं। आहाहा! पीछे कितना कहना उसको?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : घरबार किसको कहना? अन्दर में विकार की रुचि छोड़कर ज्ञानानन्द की रुचि करना, विकार को छोड़कर स्वरूप में रमना, वह परघर छोड़कर स्वघर में आया। समझ में आया? बाह्यघर कौन छोड़े? वह सब छोड़े। मर जाते हैं तो सब छोड़कर चले जाते हैं। कोई साथ में ले जाता है?

मुमुक्षु : लेकर क्या आया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में ले जाता है कोई? कोई साथ में लेकर आया है? जाओ श्मशान में शरीर। शरीर श्मशान में। आत्मा तो गया कहाँ। कहाँ निकल गया अवतार। कहाँ खो गया वह। यहाँ तो अभी डॉक्टर इकट्ठे होकर खोज करे। है या नहीं श्वास? मरकर कहीं चला गया हो। चला गया कहीं अवतार में। समझ में आया?

आचार्य महाराज कहते हैं अरे भगवान! तेरा निर्विकल्प वीतरागी आनन्द परमात्मा ऐसा शुद्ध पड़ा है। उन लोगों में ऐसा कहते हैं। वैष्णव में ऐसा कहने में आता है। वह नहीं नरसिंह मेहता हुआ है न वहाँ जूनागढ़ में। 'जहाँ तक आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं वहाँ तक साधना सर्व झूठी।' सुना है या नहीं कभी? ऐई! संघराज का सुना दुकान का धन्धा पूरे दिन परन्तु। जूनागढ़ में हुए न वह नरसिंह मेहता। 'जहाँ तक आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं वहाँ तक साधना सर्व झूठी।' क्या किया तप और तीर्थ करने से, क्या किया जप और भक्ति करने से। सब शुभभाव है। आत्मा का कल्याण आत्मज्ञान बिना होता नहीं। सुनने में कठिन लगता है। कैसा कहा देखो न। आचार्य तो तलवार निकालकर बात करते हैं।

अरे भगवान! तेरी चीज़ तो जिनदीक्षा का पंच महाव्रत का परिणाम... जिनदीक्षा ली है, हों! अन्य की तो बात ही कहाँ? समझ में आया? भगवान ने कहा व्यवहार व्रत। वह दूसरी तरह भाई भाषा ली है। वह बन्ध अधिकार में है न। भाई! अभव्य भी पंच महाव्रत पालते हैं, पंच समिति पालते हैं, गुप्ति व्यवहार पालते हैं। ग्यारह (अंग)-शास्त्र

का अध्ययन है, परन्तु वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। पुण्य से रहित पवित्रता भगवान् आत्मा की जिसको श्रद्धा-ज्ञान नहीं, उसको पुण्यबन्ध का कारण, मुक्ति का कारण कभी होता नहीं। समझ में आया ? पुण्यबन्ध के कारण जिनदीक्षा, दान, उपदेश देना, दान में पैसा में राग मन्द करना, अभयदान का भाव करना, दूसरे जीव को नहीं मारने का भाव होना—वह सब शुभ आचरण है। शुभ आचरण है। पुण्यबन्ध का कारण है, मुक्ति का कारण है नहीं। ऐसे अज्ञानी उसको मुक्ति का कारण मानते हैं, ऐसा कहते हैं, देखो !

पुस्तकादि उपकरण... पुस्तक बनायी। लाख, दो लाख पुस्तक, शास्त्र बनाये, अर्थ किया, टीका बनायी। हमने बनाया है। भगवान् ! वह तो जड़ की, पर की पर्याय है न ! तूने कहाँ से बनाया है ? और तेरा भाव था कदाचित् शुभ, तो शुभ तो पुण्यबन्ध का कारण था। पुस्तक बनने में भाव था कदाचित् शुभ, तो वह तो विकल्प था। वह कोई संवर-निर्जरा का कारण है नहीं। जमुभाई ! आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम ही है नहीं आत्मा में, क्या लिखावे ? क्या नाम है आत्मा में ? नाम है आत्मा में ? आत्मा तो ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति सूर्य है। अखण्डानन्द अनादि-अनन्त परमात्म चिदानन्दस्वरूप है। उसमें नाम है ? अन्दर लिखा है कि यह फलाना नाम है, जमुभाई नाम है उसमें ? आहाहा !

मुमुक्षु : नाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का नामरहित आत्मा है। लोग ऐसा कहते हैं। परन्तु लोगों के नाम क्या हैं ? क्या नाम है बताओ। किसका नाम कहना, कहो ? किसका नाम कहना ? कहो, इसको अँगुली को ? किसको नाम कहना ?

मुमुक्षु : सब संज्ञा आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो वह संज्ञा दे, दूसरे से भिन्न बताने को संज्ञा दी है। नाम-ठाम क्या है अन्दर में ? ऐसे आत्मा में कोई नाम-ठाम है नहीं। वह तो ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द सूर्य है। ऐसा भगवान् आत्मा जिसको श्रद्धा, ज्ञान में आया नहीं, उसका जिसको विश्वास नहीं, वह बाह्य क्रियाकाण्ड, व्रत, नियम, दान, शुभ आचरण और

पुस्तक आदि। शिष्य आदि आचरण समझे ? बहुत को मैंने समझाया, बहुत को ऐसा किया, हमने बहुत मन्दिर बनवाये। समझ में आया ? मन्दिर बनवाये और जहाँ-तहाँ ध्वज किये। उसमें क्या हुआ ? वह तो जड़ की पर्याय हुई। तेरा भाव हो तो वह शुभ था। माणेकचन्दजी ! माणेक महँगा है बहुत यह। आहाहा ! महँगा क्या कहते हैं ? दुर्लभ। महँगा कहते हैं न ?

पुस्तकादि उपकरण... महँगा। महँगा तुम्हारे कहते हैं। हमारे मोँधा कहते हैं। तुम्हारे हिन्दी में महँगा कहते हैं। **पुस्तकादि उपकरण...** लो ! **उनको मुक्ति के कारण मानता है,**... वह मूढ़ात्मा है। पहले कहा है। वह मूढ़ आत्मा है, अज्ञानी है, उसको आत्मा का बोध है नहीं। **और ज्ञानीजन...** देखो, धर्मी आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। ओहो ! मेरी चीज़ में तो विकार भी नहीं। पुण्य-पाप का विकल्प उठते हैं, वह मेरी चीज़ में नहीं। ऐसा धर्मी अपने आत्मा को माननेवाला **इनको साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण जानता है,**... शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! **साक्षात् पुण्यबन्ध के...** देखो, खुद ही लेंगे, हों ! परम्परा मुक्ति का कारण मानते हैं, वह तो उन्होंने लिया है। शब्द पड़ा नहीं इसलिए। 'तथापि' शब्द पड़ा है देखो, 'निश्चयेन मुक्तिकारणं न मन्यते' है टीका में है न। बहुत स्पष्टीकरण कर दिया है।

व्यवहारनयकर बाह्य सामग्री को धर्म का साधन जानत है,... व्यवहार से शुभभाव आदि निमित्त है। निमित्त है। अपना शुद्धस्वरूप उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में वह विकल्प जो शुभभाव है, वह बाह्य निमित्त कहने में आता है। वह बाह्य निमित्त है, पुण्यबन्ध का कारण है। तो भी ऐसा मानता है... सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव। **निश्चयनय से मुक्ति के कारण नहीं हैं।** समझ में आया ? निश्चय अर्थात् यथार्थ दृष्टि से आत्मा पवित्र स्वभाव है, उसकी पवित्रता की एकाग्रता, वही मुक्ति का कारण है। बीच में जो यह शुभभाव आया, वह निश्चय से मुक्ति का कारण धर्मी, ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि बाह्य क्रियाकाण्ड शुभभाव आदि, दीक्षा का व्रतादि, दानादि का भाव, पुस्तकादि क्रिया का भाव, उसको मुक्ति का कारण ज्ञानी मानते नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ... आत्मा अन्दर है या नहीं बड़ा ? धूल में करना बाहर में ? सुमनभाई ! फुरसत कहाँ है कमाना पूरे दिन ऐसी मजदूरी । मजदूरी है न, ऐई ! ऐई ! जयचन्दभाई ! मजदूरी कर करके ... थक गये अब । मर गये । पाप कर करके जिन्दगी गुजरी । अभिमान करके बाद में, हों ! हमने किया था... हमने किया था... हमने दुकान की सप्हाल की थी । धूल में भी की नहीं है । तुम कौन हो ? करनेवाला पर की अवस्था । जड़ की अवस्था जड़ से होती है । तुम करनेवाले हो उसके ? अभिमान किया और ... हाय ! हाय ! अरे ! कुछ नहीं होता । परन्तु तब हुआ था तुझसे ? पहले से कभी नहीं होता था पर को तेरे । मोहनभाई !

मुमुक्षु : किसी समय हुआ और किसी समय नहीं हुआ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी होता ही नहीं । किसी समय क्या ? ऐसा कि किसी बार होता है । जो इच्छा अनुकूल हो तो होता है और न हो तो नहीं होता । ऐसा है ही नहीं । किसी समय भी अपनी इच्छा से परद्रव्य का काम कभी तीन काल में होता नहीं । समझ में आया ? क्यों मणिभाई ! अभी तक तो किया या नहीं सब ? नहीं किया ? आहाहा !

यहाँ तो आचार्य ऐसा कहते हैं कि धर्मी जो आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव ज्ञान की मूर्ति प्रभु चैतन्यसूर्य, जिसमें से केवलज्ञान ही निकलता है । त्रिकाल ज्ञान निकले, ऐसा भगवान आत्मा का जिसको विश्वास, धर्मी—जिसको धर्म की दृष्टि हुई ऐसा शुभभाव, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यात्रा वह सब भाव को पुण्यबन्ध का कारण धर्मी मानते हैं । समझ में आया ? मोक्ष का कारण सम्यग्दृष्टि मानते नहीं । अज्ञानी मोक्ष का कारण मानते हैं । उसको यहाँ मूढ़ात्मा कहा है । कहो, बराबर है ? आहाहा ! निश्चय से मुक्ति के कारण नहीं हैं । लो । यह ८८ गाथा हुई ।

★ ★ ★

गाथा - ८९

अब थोड़ी साधु की बात करते हैं। आगे कमण्डलु, पिच्छी, पुस्तकादि उपकरण और शिष्यादि का संघ ये मुनियों को मोह उत्पन्न कराके खोटे मार्ग में पटक देते हैं—
८९ (गाथा) ।

२१६) चट्टहिं पट्टहिं कुंडियहिं चेल्ला-चेल्लियएहिं ।

मोहु जणेविणु मुणिवरहं उप्पहि पाडिय तेहिं ॥ ८९ ॥

जगत में अज्ञानी प्राणी को कुटुम्ब-कबीला मेरा-मेरा करके वह जगत के प्राणी को नरक में ले जाते हैं उसको। ऐसी निमित्त से बात है, हों! ऐसे साधु होकर मेरा संग है, मेरा शिष्य है, मेरा चेला है। समझ में आया? मेरी पिच्छी है। साधु की बात है न। पिच्छी होती है न मोरपिच्छी। कमण्डलु, ... मुनि को तो दूसरा होता ही नहीं। त्यागी वह तो दिगम्बर है बाहर में। अन्तर में भान नहीं। बाहर में पिच्छी, कमण्डलु, पुस्तक... अच्छी-अच्छी पुस्तक रखे और मुनि श्रावकरूप चेला, आर्यिका, श्राविका इत्यादि चेली—यह हमारे साधु, यह हमारी आर्यिका, यह हमारे शिष्य श्रावक। समझ में आया? ऐसी मान्यता करके ये संघ मुनिवरों को मोह उत्पन्न करके... वह मोह पर उत्पन्न नहीं कराते। यहाँ तो बात कहते हैं कि जिसको अपना शुद्धस्वरूप की श्रद्धा का विश्वास ज्ञान का नहीं उसको परपदार्थ में ऐसा मोह उत्पन्न हुए बिना (रहता नहीं)। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा हमारा शिष्य। करोड़ोंपति शिष्य, अरबोंपति शिष्य। परन्तु तुझे क्या है धूल में? समझ में आया? हमारा चेला इतना हुआ। बहुत बोध देते हैं दुनिया में और प्रभावना धर्म की करते हैं। ऐसा अभिमान अज्ञानी को साधु होकर भी अपने स्वभाव का भान नहीं, अपनी शुद्धि चिदानन्द की अपनी अन्तर में से प्रगट होती है, ऐसा भान जिसको नहीं, वह बाह्य चीज़ को अपना मानकर मोह उत्पन्न कराके... भ्रमणा उत्पन्न होती है उसको, यह मेरा है... मेरा है... मेरा है... क्या तेरा है? तेरा है, वह तेरे से भिन्न होता नहीं। भिन्न हो, वह तेरा होता नहीं। तेरा तेरे से भिन्न नहीं, भिन्न हो वह तेरे स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो उत्कृष्ट बात मुनि की करते हैं।

यह तो आत्मा का जिसको अन्तर, अहो! मेरी शान्ति और मेरा आनन्द धर्मस्वभाव

से भरा मेरा आत्मा है। मेरे आत्मा में बड़ी कीमती चीज़ मैं हूँ। कोई दूसरी कीमती चीज़, मेरे आगे दूसरी कीमती चीज़ है ही नहीं। ऐसा जिसको अपना निजस्वरूप की सम्यग्दर्शन रत्न से कीमत की नहीं। ऐसा अज्ञानी को **संघ मुनिवरों को मोह उत्पन्न कराके वे उन्मार्ग में डाल देते हैं**। लो, डाल देते हैं। पोपटभाई! तुम्हारे पुत्र-पुत्री कहे, आहा! बापू! बहुत किया तुमने, हों! ठीक पैसा कमाकर हमारे लिए रखा। तुमको पाप लगे, मरकर जाओ तुम नरक में। हमें क्या है? पिताजी ने हमारे लिये बहुत किया। मोह उपजाकर मारे, जाओ नीचे जीव नरक में। समझ में आया? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आचार्य तो सन्त की बात कहे। साधु होकर भी आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द इसकी निधान की तुझे दृष्टि नहीं। और यह बाह्य चीज़ मेरा-मेरा मानकर मोह उत्पन्न करके डाल देगा नीचे। नर्क में जायेगा, निगोद में जायेगा। कोई शरण है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि होकर पुस्तक, कमण्डल रखे मोह होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! पिच्छी क्या, किसी भी छोटी चीज़ के ऊपर अन्दर हो कि यह मेरी। पुत्र, पुत्री किसी को न हो और एक ही छोटी पुत्री हो, फिर सब राग उसके ऊपर ढोले। यह तो एक दृष्टान्त देता हूँ। जिसके आठ-दस पुत्र हों, अधिक हों तो उसका राग सब बँट जाता है थोड़ा-थोड़ा। एक ही लड़का हो और एक ही लड़की हो तो सब राग उसके ऊपर हो। सब मेरा-मेरा। अपने स्वरूप का भान नहीं, सब राग उसके ऊपर डाल देते हैं। उसी प्रकार अज्ञानी आत्मा (को) चिदानन्दस्वरूप का बोध नहीं तो जो छोटी भी चीज़ हो, मेरी है। हमको देनेवाले बड़े-बड़े सेठिया है। तो हमारी चीज़ कितनी सुन्दर है, देखो! पिच्छी, कमण्डल। कमण्डल को भी श्रृंगार किया हो। डोरी भी अच्छी, पुस्तक भी अच्छा। पुस्तक का उसको क्या कहते हैं? बन्धन। बन्धन भी अच्छा। मोह की चीज़ छोटी-बड़ी की क्या बात है? अपने स्वरूप की खबर नहीं, वह थोड़ी कोई भी चीज़ में मोह उत्पन्न करते हैं। करते हैं तो कराते हैं, ऐसा कहने में आता है। दूसरा कौन कराते हैं धूल? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अपने स्वभाव का कारण नहीं बना न। शुद्ध ज्ञायकमूर्ति मैं आनन्द हूँ—ऐसा विश्वास अन्तर नहीं उसको दूसरी चीज़ मोह में निमित्त होती है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें कहाँ पेट भरता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पेट भरता है, मान आता है न। पेट भरता है। बड़ापन आता है उसमें अधिकपने। देखो हमारा। यह तो इतनी चीज़ है। मुनिपना दूसरा होता ही नहीं। सच्चा मुनि जो व्यवहार दिगम्बर है, वह भी अत्यन्त दिगम्बर नग्न होता है। उसके पास कोई दूसरी चीज़ होती ही नहीं। एक कमण्डल, मोरपिच्छी, पुस्तक, बस। परन्तु कहते हैं कि आत्मा का भान नहीं। मैं अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध चिदानन्द हूँ। समझ में आया ? तो गृहस्थ गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में होता है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा न भाई ! गृहस्थो मोक्षमार्गो। गृहस्थाश्रम में भी अपना आत्मा शरीर, वाणी से भिन्न, पुण्य-पाप से भिन्न ऐसा प्रतीति—अनुभव करते हैं तो गृहस्थाश्रम में रहा आत्मा भी मोक्षमार्ग में है। और मूढ़ जो अनगार बाह्य की चीज़ में मोह करते हैं और अपने स्वरूप का श्रद्धा, ज्ञान का भान नहीं, वह संसारमार्ग है। ऐसा लिखा है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। ... ठीक ! भूल गये ? यह शब्द है। यह थोड़ा-थोड़ा कहाँ यह सब जन्मे दिगम्बर में, परन्तु कुछ खबर ही नहीं होती। समझ में आया ? वह रत्नकरण्ड श्रावकाचार है न समन्तभद्राचार्य ने बनाया है। कि भाई ! जो आत्मा का भान करके सम्यग्दर्शन अनुभव किया तो गृहस्थाश्रम में भी वह धर्मी है, मोक्षमार्गी है। भले ही स्त्री-कुटुम्ब में पड़ा है परन्तु उसको लेप नहीं। श्रीफल जैसा है, नारियल। नारियल होता है या नहीं ? तो नारियल में ऊपर की छाल भिन्न है, काचली होती है न काचली ? कठोर। काचली कहते हैं न ? ऊपर काचली। वह भिन्न है। ऊपर की छाल भिन्न है, काचली भिन्न है। और मीठा सफेद गोला जो काचली की ओर की जो लालिमा हो न। लाल। वह टोपरा कर देते हैं न। छाल-छाल छिलका सूक्ष्म होता है न लाल... लाल... लाल... तो वह भी मीठे गोले से भिन्न है। लालिमा नहीं होती है ? काचली होती न। काचली की ओर की लालिमा। तो खोपरापाक करते हैं तो खमणी में वह लाल निकाल देते हैं न ? तब श्वेत-सफेद होता है या नहीं ? उसी प्रकार भगवान् आत्मा यह छिलके समान शरीर है। ऊपर छिलका होता है न वह ? यह आठ कर्म अन्दर काचली है, जड़कर्म आठ कर्म वह काचली समान है। कठोर काचली होती है

या नहीं? और काचली की ओर का पुण्य और पाप का विकल्प वह छिलका सब अन्दर सूक्ष्म मैल समान है। उससे भिन्न भगवान ज्ञानानन्द गोला मीठा आनन्दकन्द है। आहाहा! इसका जिसको भान है, वह गृहस्थाश्रम में भी मोक्षमार्गी है। और इसका जिसको भान नहीं और वह काचली को अपना माने, छिलके को अपना माने, वह पुण्यभाव है न, पुण्य-पाप का विकल्प उठते हैं, उसको अपना माने। तो कहते हैं कि कोई भी बाह्य चीज़ में अपना मानकर मिथ्याभाव उत्पन्न करके अनन्त बार नरक-निगोद में चले गये। समझ में आया?

भावार्थ :- जैसे कोई अजीर्ण के भय से... दृष्टान्त दिया। दृष्टान्त देते हैं थोड़ा। अजीर्ण। अजीर्ण होता है या नहीं? पेट में अजीर्ण होता है न? वह तो डॉक्टर को बहुत खबर होती है। अपच। लड्डू-बड्डू खाये तीन-चार तो अजीर्ण हो गया। कहे, मुझे अजीर्ण है। अजीर्ण भय से मनोज्ञ आहार को छोड़कर... फिर मनोज्ञ आहार नहीं करना। डॉक्टर इनकार करे कि लड्डू नहीं खाना अभी। ऐसी पूरणपोली नहीं खाना। घी बहुत हो, वह नहीं खाना। लंघन करता है, पीछे अजीर्ण को दूर करनेवाली कोई मीठी औषधि को लेकर जिह्वा का... तेरे खोपरा का, खोपरा है मीठा, वह थोड़ा-थोड़ा खाना। ... हमेशा। थोड़ा लेना।

वह मीठी औषधि को लेकर जिह्वा का लम्पटी होके मात्रा से अधिक लेके औषधि का ही अजीर्ण करता है,... औषधि का अजीर्ण। बड़ा अच्छा लगे तो अधसेर, पौनसेर खा जाये। अजीर्ण को मिटा देने को, अजीर्ण को मिटाने को कहा कि भाई! थोड़ा-थोड़ा खोपरा लेना तेरे। ऐसा-ऐसा। अजीर्ण का तो दृष्टान्त दिया है। ऐसी चीज़ लेना। सालमपाक थोड़ा चार रुपये भार लेना, दो रुपयेभार लेना। तो मीठा लगे तो ले जाओ सेर, अधसेर। आधा सेर। तो उल्टा हो जाये अजीर्ण। औषधि का अजीर्ण। अरे! दवा में भस्म डालकर खाये और। दवा थोड़ी कहते हैं न, तो उसमें लोहा की भस्म आती है न? ... क्या कहलायें वे? बसन्तमालती। बसन्ततिलका नहीं। बसन्ततिलका तो देशी है। बसन्तमालती थोड़ी-थोड़ी डाले। अधिक फिर शक्कर और गुड़ और घी वगारे डाले उसमें। औषधि का ही अजीर्ण हो गया। समझ में आया? पश्चात् अजीर्ण दूर हो जाये।

लम्पटी होके मात्रा से अधिक लेके औषधि का ही अजीर्ण करता है, उसी तरह अज्ञानी कोई द्रव्यलिंगी यति... आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अखण्ड आनन्दकन्द का भान नहीं तो बाहर यति विनयवान पतिव्रता स्त्री आदि को मोह के डर से... पतिव्रता स्त्री छोड़ दी। जिनदीक्षा लेके... जिनदीक्षा धारण की, देखो। अजीर्ण समान मोह के दूर करने के लिये वैराग्य धारण करके औषधि समान जो उपकरणादि उनको ही ग्रहण करके... वह उपकरण निमित्त था। यह उपकरण अधिक रखकर अजीर्ण हो गया। समझ में आया? आहाहा! देखो, इसलिए लिया है। समझे? उन्हीं का अनुरागी (प्रेमी) होता है, उनकी बुद्धि से सुख मानता है,... हमें तो बहुत उपकरण अच्छा चाहिए। ऐसा कमण्डल, ऐसी पिच्छी, ऐसी पुस्तक। पुस्तक का ढंग। जहाँ बैठ वहाँ पुस्तक का ढग इतना पड़ा है। बनाते हैं। पुस्तक बनाते हैं फिर पकड़े सेठ को। लो भाई हमने बनाया है लो। क्या है तुझे काम परन्तु? समझ में आया? ऐसे मोहजाल में फँस जाते हैं। अपने आनन्द की प्रतीति का भान तो हुआ नहीं। समझ में आया? तो वह पुस्तक आदि में अजीर्ण हो गया। पुस्तक बनायी। पकड़े। लो एक सेट हमारा लो। हमारी ओर से २० पुस्तक बनायी है। एक सेट तुम्हें लेना पड़ेगा। ५१ रुपये बैठेगा। बनता है, अभी बहुत बनता है।

यह आचार्य वह कहते हैं ९०० वर्ष पहले कि जिसको आत्मा आनन्दस्वरूप का भरोसा अन्तर आया नहीं। आत्मज्ञान अन्दर हुआ नहीं और बाहर में वेश ले लिया। समझ में आया? तो वेश के बहाने वह जिनदीक्षा के उपकरण आदि उनको ग्रहण करके अनुरागी होता है। वृद्धि से सुख मानता है कि आहा! हमारे पुस्तक बहुत हैं, देखो। एक-एक पुस्तक हमारी बनायी, उसकी १०-१० की कीमत है। बहुत अच्छा। बाईडिंग अच्छी है, पन्ना अच्छा है। परन्तु क्या हुआ? वह तो पर है तेरी चीज़ से। कितनी अच्छी महिमा करना है। समझ में आया? देखो, अभी तो मुनि को ऐसा कहते हैं, गृहस्थी परचीज़ को अपना मानता है, वह तो मूढ़ता है। आहाहा!

वह औषधि का ही अजीर्ण करता है। मात्राप्रमाण औषधि लेवे, तो वह रोग को हर सके। यदि औषधि का ही अजीर्ण करे—मात्रा से अधिक लेवे, तो रोग नहीं जाता, उल्टी रोग की वृद्धि ही होती है। यह निःसन्देह जानना। ऐसा निःसन्देह मानना।

इससे निश्चय हुआ जो परमोपेक्षासंयम अर्थात् निर्विकल्प परमसमाधिरूप तीन गुप्तिमयी परम शुद्धोपयोगरूप संयम के धारक हैं,... आत्मा के आनन्द में शुद्ध चिदानन्द श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करते हैं, उनके शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत सब ही परिग्रह त्यागने योग्य है। उन्हें तो विकल्प उठते हैं वह छोड़नेयोग्य है। शुद्धोपयोगी मुनियों के कुछ भी परिग्रह नहीं है, और जिनके परमोपेक्षा संयम नहीं लेकिन व्यवहार संयम है,... शब्द नहीं पड़ा है अन्दर में। भाई! व्यवहार संयम नहीं पड़ा। मात्र इतना कहा है। संयमरक्षणार्थ—‘वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थ’ इतना पड़ा है। बस, इतना है।

क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है। आत्मा अपनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, अनुभव करते हैं मुनि तो उसको तो शुभभाव राग भी होता नहीं। तो शुभ विकल्प भी उसको तो है नहीं, परन्तु जब स्वरूप की दृष्टि है, स्वरूप का ज्ञान है, स्वरूप की स्थिरता कुछ है, परन्तु ध्यान में लीन नहीं हो सके, तब उसको शुभ परिणाम आदि का निमित्तपना है, शुभराग है—शुभ परिणाम निमित्त है। समझ में आया? तो उनके भावसंयम की रक्षा के निमित्त हीन संहनन के होने पर उत्कृष्ट शक्ति के अभाव से यद्यपि तप का साधन शरीर की रक्षा के निमित्त अन्न-जल का ग्रहण होता है,... देखो, अन्न-जल लेना आदि विकल्प है। आहाहा! स्वरूप में स्थिर हो जाये आनन्द में, वही मुक्ति का मार्ग है। परन्तु कहते हैं कि भान है, परन्तु स्थिर नहीं हो सकते तो शुभ विकल्प आता है शरीर के निर्वाह के लिये।

उस अन्न-जल के लेने से मल-मूत्रादि की बाधा भी होती है, इसलिए शौच का उपकरण कमण्डलु और संयमोपकरण पिच्छी, और ज्ञानोपकरण पुस्तक... तीनों लिये। इनको ग्रहण करते हैं, तो भी इनमें ममता नहीं है,... छोड़ देते हैं। मेरी चीज़... काम छोड़ दिया। मेरी चीज़ तो स्वरूप शुद्ध है, उसमें मेरे रहना, अन्तर में आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में रहना वही मुनि का मुख्य प्रथम कर्तव्य है। समझ में आया? उसमें रह न सके तो अन्न-जल आदि का विकल्प आता है। उपदेश दूसरे को कहे तो विकल्प आता है। वह विकल्प को शुभ निमित्तरूप से जानते हैं, उसको बन्ध का कारण जानते हैं, उसको मुक्ति का कारण मुनि जानते नहीं। आहाहा!

प्रयोजनमात्र प्रथम अवस्था में धारते हैं। ऐसा दूसरी जगह रम्येषु इत्यादि कहा है, कि मनोज्ञ स्त्री आदिक वस्तुओं में जिसने मोह तोड़ दिया है, ऐसा महामुनि संयम के साधन पुस्तक, पिच्छी, कमण्डलु आदि उपकरणों में वृथा मोह कैसे कर सकता है ? समझ में आया ? कभी नहीं कर सकता। जैसे कोई बुद्धिमान पुरुष रोग के भय से अजीर्ण को दूर करना चाहे और अजीर्ण के दूर करने के लिये औषधि का सेवन करे, तो क्या मात्रा से अधिक ले सकता है ? मर्यादा से अधिक ले ? औषधि की जितनी मर्यादा है उतनी लेना, एक रतिभार लेना। भस्म नहीं कहते ? एक रतिभार लेना चाहिए। विशेष नहीं लेना। फूट निकलेगी। उसी प्रकार धर्मात्मा अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप उसकी श्रद्धा, ज्ञान है और उसमें लीनता है परन्तु स्वरूप के ध्यान में लीन न हो सके, तब ऐसा उपकरण का शुभ विकल्प आता है। आहार का, विकल्प का, लेने का। परन्तु उसमें ममता करते नहीं। 'घोर परीषह या उपसर्ग भये करी' आता है ? 'घोर परीषह या उपसर्ग भये करी' कुछ घोर उपसर्ग हो या परीषह हो डिगने का नहीं। शान्त... शान्त... शान्त... आनन्द में मग्न है। समझ में आया ? 'रजकण के रिद्धि वैमानिक देव की, सर्व मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो, घोर परीषह या उपसर्ग में भये करी।' फिर क्या बोल ? 'आवी शके नहि उस स्थिरतानो अंत जो।' आहाहा !

धर्मात्मा अपना आनन्द की प्रतीति हुई है, ऐसी दृष्टि से अन्तर में स्थिर होते हैं तो इतनी भावना धर्मात्मा भाते हैं कि हमारे सरस आहार हो, या नीरस हो, उसमें हमें समता ही है। विषमभाव है नहीं। घोर परीषह और उपसर्ग पड़े बाहर से, फिर भी उसमें विषमता नहीं। ऐसी आत्मा की दृष्टि लगी है तो आत्मा में समता में जम जाते हैं। उसको मुक्ति होती है, परन्तु बाहर में शुभभाव में भी मान ले, बाह्य की क्रिया में जो मान ले, मूढ़ात्मा, बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि हो जाता है। इसलिए धर्मात्मा को अपने स्वरूप की दृष्टि करके उसमें दृष्टि की शुद्धि की वृद्धि करना, बाहर की ममता करना नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण १४, शनिवार, दिनांक १९-०२-१९६६

गाथा - ९०, प्रवचन - १३३

गाथा - ९०

योगीन्द्रदेव ९०० वर्ष पहले एक दिगम्बर मुनि जंगलवासी, वनवासी हुए। उन्होंने सर्वज्ञ भगवान परमात्मा से चला आया मार्ग अपने में अनुभव करके और अन्तर में भावलिंग दशा-साधुपद को प्राप्त करके, यह उपकार (करके) ऐसा एक परमात्मप्रकाश नाम का शास्त्र बनाया। समझ में आया? बहुत ऊँची चीज़ है। मूल चीज़ है। परन्तु फिर ऊँची करते और कोई नीची दूसरी होगी (ऐसा नहीं)।

यहाँ ८९ गाथा चल गयी है कल। आज ९० गाथा है। क्या कहते हैं, देखो! आगे ऐसा कहते हैं, जिसने जिनदीक्षा धरके... साधु का वेश नग्न धर लिया। और केशों का लोंच किया और सकल परिग्रह का त्याग नहीं किया,... अन्तर में से मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि का त्याग न किया, उसने अपनी आत्मा ही को वंचित (ठग) किया— विशेष कहेंगे। यहाँ तो शब्दार्थ है न अभी तो। समझ में आया? पाठ में पीछे अर्थ आयेगा कि बाह्य से नग्नपना लिया और पंच महाव्रत का कदाचित् विकल्प भी पाले, केश का लोच भी किया, वह मुनिपना नहीं है। मुनिपना तो अन्तर में... वह लेंगे पहले। शब्दार्थ सुन लो। मूल श्लोक।

२१७) केण वि अप्पउ वंचियउ सिरु लुंचिवि छारेण।

सयल वि संग ण परिहरिय जिणवर-लिंगधारेण ॥ ९० ॥

है? जिस किसी ने मनुष्यपना पाकर जिनवर का वेश धारण करके... नग्नपना धारण किया, केश लोंच किया। भस्म से सिर के केश लोंच किये,... उखाड़ लिया। लेकिन सब परिग्रह नहीं छोड़े, उसने अपनी आत्मा को ही ठग लिया। अब वह परिग्रह की व्याख्या करते हैं जरा। यह परिग्रह के त्याग की गाथा है। अन्त में ९०, ९१, ९२ तीन

गाथा बाकी है। बाकी सारा परमात्मप्रकाश का ... किया है। अब रिकॉर्डिंग में उतर गया है। यह सब उतर गया है। एक तीन गाथा बाकी हैं। ९०, ९१, ९२। ९३ से तो पहले चली थी। वह इन्दौरवाले आये थे न बंशीधरजी। पण्डितजी। इन्दौरवाले पण्डितजी यहाँ तीन माह रहे थे। बड़े पण्डित हैं न? बंशीधरजी। वह तीन माह रहे थे तो ९३ की गाथा से। भैया! तुम थे या नहीं? तो उस समय ९३ गाथा से चला था। यह तीन गाथा बाकी रही। और सारा परमात्मप्रकाश। तो सुनो। क्या कहते हैं देखो, पहले तो जिसको सम्यग्दर्शन न हुआ हो। समझ में आया? सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं कि

भावार्थ :- वीतराग निर्विकल्पनिजानन्द अखण्डरूप सुखरस का जो आस्वाद... सुनो। सूक्ष्म बात है। कहते हैं कि साधुपना ले लिया, श्रावकपना नाम दिया अनन्त बार। वह सवेरे कहा था नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आत्म ज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान का अर्थ क्या? कि आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। उसका वीतराग... वह पुण्य विकल्प उठते हैं शुभराग या अशुभराग—दोनों विकार हैं। जयचन्दभाई! बहुत सूक्ष्म बात है जरा, हों! यह अधिक लोगों में गाथा आयी है तो जरा सुनना पड़ेगा या नहीं?

सम्यग्दर्शन तो पहले इसको कहते हैं कि जिसको आत्मा में शरीर, वाणी, मन की, जड़ की क्रिया जो होती है, वह जड़ से है, मेरी नहीं। समझ में आया? वाणी बोली जाती है, शरीर चलता है, वह सब क्रिया जड़ की, अजीव की, धूल की, पुद्गल की अवस्था है। मूलचन्दजी!

मुमुक्षु : तो गाऊँ या न गाऊँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन गा सकता है? वह तो कहते हैं, भाषा जड़ की पर्याय है। वह बताते हैं पहले। गाना, बजाना, कण्ठ होना, वह तो जड़ की दशा है। वह अपनी है ही नहीं। अपने से होती नहीं। आहाहा! रतनलालजी! यह रतन की बात चलती है, सम्यग्दर्शन रत्न। तीन रत्न है या नहीं? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रत्न। तीन रत्न से मुक्ति का मिलना होता है। तीन रत्न बिना मुक्ति मिलती नहीं। तो यहाँ आचार्य तो मुनिपने की व्याख्या करते हैं। चारित्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र

रत्न। परन्तु उसके पहले सम्यग्दर्शन रत्न पाये बिना बाह्य से वेश ले लिये, तो भी उसको आत्मा का कल्याण कभी होता नहीं। तो सम्यग्दर्शन की व्याख्या क्या? सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं?

कि वीतराग भगवान आत्मा **वीतराग निर्विकल्प निजानन्द...** ओहोहो! निर्विकल्प अखण्ड आनन्दकन्द आत्मा है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त-अनन्त आनन्द ठसाठस भरा है। समझ में आया? जैसे लवण की डली में सम्पूर्ण क्षार भरा है। और सफेद खड़ी की गांगडी में, गांगडी कहते हैं क्या कहते हैं? खड़ी का ढेला। उसमें अकेली सफेदाई भरी है। अफीम में मात्र कड़वाहट भरी है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द पूरा भरा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय बल, अतीन्द्रिय दर्शन, अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता, ऐसा-ऐसा आत्मा में अनन्त-अनन्त बेहद गुण शुद्धस्वरूप से अनन्त गुण पड़े हैं आत्मा में। समझ में आया? कितने अनन्त गुण है? वह बात कही थी। तुम नहीं थे।

यहाँ अभी तक जो सिद्ध हुए हैं सिद्ध। सिद्ध है या नहीं? छह माह और आठ समय में ६०८ मुक्ति को पाते हैं सिद्ध। तो अभी तक जो सिद्ध की संख्या हुई, उससे एक निगोद का शरीर लो, निगोद। निगोद समझते हैं न भैया? लीलफुग—काई-काई नहीं समझते? यह पानी में होती है। काई होती है, आलू होता है, प्याज होता है, लहसुन उसकी एक टुकड़ी इतनी लो राई जितनी तो उसमें असंख्य औदारिकशरीर है और उसमें एक शरीर में जितना अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुने जीव हैं। समझ में आया? और जीव से परमाणु की संख्या अनन्तगुणी हैं। समझ में आता है या नहीं? मूलचन्दजी! परन्तु इतना आत्मा कैसा है, उसकी खबर बिना सम्यग्दर्शन कहाँ से आयेगा उसको? भजन-बजन लटका दिया, ऐसा कर दिया। वह शुभभाव है। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन बिना जन्म-मरण का नाश कभी होता नहीं। तो उसका सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? कैसे आत्मा को प्रतीति में लेना? कि यह आत्मा एक निगोद के एक शरीर में जो अनन्त जीव है, ऐसा-ऐसा तो पूरे लोकप्रमाण असंख्य शरीर पड़े हैं (और) अनन्त-अनन्त जीव। वह जीव की संख्या से अधिक, यह परमाणु पुद्गल है

न मिट्टी ? उसकी—परमाणु पुद्गल की संख्या अनन्तगुनी है और उससे अनन्तगुना आकाश का प्रदेश है। आकाश समझते हैं या नहीं, डॉक्टरजी ? यह आकाश है न लोक-अलोक। लोक आकाश है, अलोक है न खाली ? मूलचन्दजी ! अलोक है या नहीं कहीं ? कहाँ है ? भगवान जाने क्या है ? आहाहा ! यह लोक है असंख्य प्रदेश में। आकाश अरूपी है यहाँ। अरूपी भगवान ने देखा है असंख्य प्रदेश। असंख्य प्रदेश लोक में इतना है कि असंख्य चौबीसी का समय जितना असंख्य आकाश के प्रदेश हैं। इससे अनन्तगुना आकाश प्रदेश अलोक में है। चले जाते हैं न ? चला जाता है न आकाश ? कहीं अन्त है ? अलोक में कहीं अन्त है आकाश का ? समझ में आया ?

इतना-इतना अमाप-अमाप आकाश का प्रदेश अनन्त जो परमाणु की संख्या से अनन्तगुना प्रदेश है, उससे अनन्तगुने एक आत्मा में गुण हैं। किसकी बात चलती है यह ? अन्दर आत्मा है, उसकी बात चलती है। खबर न मिले आत्मा क्या, प्रतीति न मिले, ओणखाण न मिले और धर्म होगा। समझ में आया ? एक आत्मा अपना, उसमें कितने गुण की संख्या है ? कि सिद्ध की संख्या से निगोद जीव अनन्त, उससे अनन्तगुने परमाणु, उससे अनन्तगुने आकाश के प्रदेश, कहाँ आकाश (नहीं) ? उसका माप नहीं। उससे अनन्तगुने आत्मा में गुण हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ऐसा अनन्त-अनन्त, एक नहीं परन्तु अनन्त। ऐसा अनन्तगुण भगवान आत्मा वह वीतरागस्वभाव से आत्मा है। पुण्य-पाप की क्रिया का राग, उसकी रुचि छोड़कर। जड़ परमाणु की पर्याय अनन्त चलती है शरीरादि में, उसकी पर्याय की रुचि छोड़कर वह मेरे से नहीं। और अनन्त दूसरे आत्मा है, उसका कोई भला-बुरा मेरे से होता नहीं। उससे दृष्टि हटाकर अपना अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा में अनुभव करके विकल्परहित, रागरहित शुद्धस्वभाव की अन्तर एकाग्रता करना और आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आना उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। मूलचन्दजी ! भगवान जाने क्या सम्यग्दर्शन है ? सम्यग्दर्शन ले लो, मुनिपना ले लो त्याग। क्या है ? एक बिना के शून्य हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ।

योगीन्द्रदेव आचार्य कहते हैं, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर दृष्टि, अनुभव नहीं हुआ। समझ में आया ? तब तक तो सम्यग्दर्शन नहीं। मुनिपना तो कहाँ से

हो ? सच्चा श्रावकपना तो कहाँ से हो ? समझ में आया ? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में इतना अनन्त गुणस्वरूप एकस्वरूप। उसकी वीतराग—रागरहित, निर्विकल्प—भेदरहित, अखण्ड अभेदस्वरूप निजानन्द—आत्मा का निज का आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, अखण्ड। अकेला 'अखण्ड' अर्थ किया है, भाई! मात्र अखण्ड किया है। सब जगह, बहुत जगह एकरूप अखण्ड ऐसा करते हैं। भगवान आत्मा... बहुत सूक्ष्म बात। अनन्त काल में उसने सम्यग्दर्शन क्या है, वह समझा नहीं। प्रगट तो किया नहीं। समझ में आया ? और सम्यग्दर्शन बिना मान लिया। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो नवतत्त्व की श्रद्धा, यह हमारे समकित। है ही नहीं समकित। ...भाई! देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, उसकी खबर नहीं। उसको और नौ तत्त्व की श्रद्धा की खबर नहीं कि नौ तत्त्व किसको कहते हैं ?

यहाँ तो कहते हैं कि नौ तत्त्व की कदाचित् यथार्थ श्रद्धा लावे तो भी वह शुभराग है, सम्यग्दर्शन नहीं। गजब सूक्ष्म बात! भगवान आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य निर्विकल्प आनन्दकन्द उसका अखण्ड सुखरस का जो आस्वाद। देखो, वह आनन्द का आस्वाद। आहाहा! आस्वाद क्या ? तुम्हारी हिन्दी भाषा है। हिन्दी है। हिन्दी भाषा है उसमें। माणेकचन्दजी ! है पुस्तक-बुस्तक है ? नहीं तो यहाँ सुनना। वह बात है। उसमें समझ में आये ऐसा नहीं। भाषा से नहीं समझे। ऊपर से भाव को समझना। आहाहा!

कहते हैं भगवान ! ओहो ! योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि सन्त ९०० वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर तो दो हजार वर्ष पहले हुए। भावलिंगी सन्त मुनि यह कहते हैं ऐसी चीज़ अन्तर भान में थी। समझ में आया ? तो कहते हैं योगीन्द्रदेव जगत के निकट। अरे जीव ! तूने आत्मदर्शन बिना, अनुभव बिना, अनन्त बार ऐसा मुनिपना लिया, जिनवरलिंग धारण किया। देखो, आया न ? 'जिनवरलिंगणधरेण' 'जिनवरलिंग' समझ में आया ? अन्यमति का वेश तो नहीं; वस्त्र-पात्र रखे, उसको साधुपद है नहीं। जिनवरलिंग धारण किया। नग्न हुआ, अट्टाईस मूलगुण भी पाले बराबर अच्छे, हों ! अट्टाईस मूलगुण कैसा ? कि उसके लिये चौका करके (बनाया) आहार, प्राण जाये तो भी न ले। ऐसा जिनवरलिंग धारण किया। वह जिनवर द्रव्यलिंग है वह भी। आहाहा ! सुजानमलजी !

भगवान आत्मा... पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभाशुभभाव है। महाव्रत का भाव शुभ है, अव्रत का अशुभ है। देह की क्रिया जड़ की है। उससे हटकर अजीव की रुचि छोड़कर, विकार की रुचि छोड़कर निर्विकारी भगवान शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का अनुभव करके आनन्द का आना, अतीन्द्रिय आनन्द में आना। **उसरूप परिणामी जो परमात्मा की भावना...** देखो, समझ में आया? अब वह आनन्द आया, वह तो अनुभव सम्यग्दर्शन में है। इतनी तो बात, भाई! यह तो परिणामी वापस परमात्मा की विशेष भावना। मुनिपने की बात करते हैं न? समझ में आया?

प्रथम सम्यग्दर्शन में भी चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि। उसमें ही अपना निजानन्द भगवान आत्मा निर्विकल्प—राग बिना शुद्ध चिदानन्द निर्विकल्प शुद्ध की दृष्टि करके अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना और वही यह आत्मा है, ऐसी अनुभव में प्रतीति लाना, उसका नाम तो सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? और वह आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा मैं ही हूँ। राग नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो उठता है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहाररत्नत्रय वह शुभराग है, वह मैं आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा रागरहित निश्चयस्वरूप का अन्तर ज्ञान, उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। उससे विशेष आस्वादरूप परिणामी परमात्मा की भावना। बाद में अब चारित्र लेते हैं।

शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा उसकी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में भावना—एकाग्रता तो थी, अब विशेष एकाग्रता चारित्र द्वारा। चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमना। आहाहा! **परमात्मा की भावना...** देखो, **उसरूप परिणामी...** ऐई! इसमें भावना का अर्थ परिणामी हो गया, कहा। भाई! इसे भावना का अर्थ कहते हैं न एक कल्पना-कल्पना। अरे वह नहीं, भाई! आहाहा! शुद्ध भगवान अनन्त गुण का विराजमान प्रभु अपना स्वरूप अन्तर परमात्मा अपना उसमें एकाग्रता कैसी? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी, वीतरागरूपी एकाग्रता। समझ में आया?

भावना वही हुआ, तीक्ष्ण शस्त्र... देखो, ऐसा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता, उसको आचार्य

महाराज कहते हैं तीक्ष्ण शस्त्र। आहाहा! समझ में आया? उससे बाहर के और अन्तर के परिग्रहों की वांछा आदि ले... ऐसे तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा जिसमें बाह्य परिग्रह का निमित्त भी न रहा। अभ्यन्तर में शुभराग का विकल्प मेरा है, ऐसी बुद्धि रही नहीं। ऐसा तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा अभ्यन्तर का राग-द्वेष का, मिथ्यात्व का छेद किया, बाह्य में संयोग में निमित्त का अभाव हुआ। गजब बात! समझ में आया या नहीं? है या नहीं उसमें? देखो। उसमें है, वह बात है। 'वांचे नहि पण करे विचार, वांचे नहि पण करे विचार' वह तो अच्छा, परन्तु 'वांचे पण नहिं करे विचार।' वह नहीं। वह आता था पहले हमारे। दौलतरामजी का आता है न? दलपतराम-दलपतराम। वांचे पण विचार करे नहीं 'अरे समझे नहि सघळो सार।' ऐसा पहले दलपतराम में। दलपतराम-दलपतराम। दौलतराम तो अपने पण्डित। दलपतराम कवि थे न। वह हमारे पढ़ने के समय दलपतराम थे। पीछे हमारे समय नहीं होते वे। दलपतराम डाह्याभाई। 'वांचे पण करे नहिं विचार।' पढ़े परन्तु नहीं करे विचार? पढ़े तथापि विचार करे नहीं। 'ते समझे नहीं सघळो सार।' भगवान को, शास्त्र को-देव-गुरु को क्या तत्त्व कहना है? वाँचन कर ले। स्वाध्याय है न प्रतिदिन श्रावक का। वह आता है न। देव-गुरु-शास्त्र भक्ति स्वाध्याय। दो पृष्ठ पढ़ ले। क्या है? वह खबर नहीं भगवान जाने। यहाँ बहुत आते हैं कितने ही। पुस्तक पढ़ो। दो पृष्ठ ले ले। ताराचन्द! 'वांचे पण नहीं करे विचार, ते समझे नहिं सघळो सार।' क्या सम्यग्दर्शन, क्या सम्यग्ज्ञान, क्या सम्यक्चारित्र? भान नहीं, मान ले, जाओ हमको सम्यक्चारित्र है। हमारी क्रिया यह चारित्र सम्यक् है। हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं। अब मूढ़ ऐसे तो अनन्त बार मान्या है, सुन न। यह तो राग है, विकल्प है। वह विकल्प-राग से भिन्न होकर अपना शुद्धात्मा निर्विकल्प आनन्दरूपी तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा जिसने अभ्यन्तर के राग-द्वेष को छेद कर दिया है। और निमित्त बाह्य में कुछ रहा नहीं। ऐसा शस्त्र से बाहर के और अन्तर के परिग्रहों की... यहाँ परिग्रह के त्याग की व्याख्या है। समझ में आया?

ऐसी वांछा फिर। परद्रव्यों की वांछा। बाह्य परिग्रह और अभ्यन्तर राग, शुभराग अन्दर में। बाह्य परिग्रह कमण्डलु, शरीरादि। वांछा आदि ले समस्त मनोरथ... जिसको आत्म अनुभव दृष्टि नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तो हुआ नहीं।

समझ में आया ? उसको बाहर की वांछा है सब । शुभराग आया, वह मेरा कर्तव्य है । समझ में आया ? दया, दान, व्रत का भाव आया, वह मेरा कर्तव्य है । ऐसी मिथ्यादृष्टि की वांछा । समझ में आया ? **आदि ले समस्त मनोरथ...** मनोरथ सब हों ! आत्मा का रथ नहीं, मनोरथ । पुण्य और पाप का, संकल्प, विकल्प का मनोरथ चलाया । शुभ और अशुभराग, देह की क्रिया वह हमारी है, ऐसा मनोरथ चलाया ।

यह **उनकी कल्लोल मालाओं का...** उसका संकल्प-विकल्प की धारा बहे, वह कल्लोल । पानी में कल्लोल उठते हैं, ऐसी **कल्लोल मालाओं का त्यागरूप...** ऐसा संकल्प-विकल्प का अनुभव दृष्टि करके, सम्यक् आनन्द का अनुभव करके ऐसा बाह्य का और अभ्यन्तर का राग का त्यागरूप **मन का मुण्डन वह तो नहीं किया...** इसमें है देखो, **मन का मुण्डन वह तो नहीं किया...** और बाह्य में सिर मुण्डन कर दिया । समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भैया ! अनन्त बार ऐसा किया परन्तु उसकी दृष्टि की खबर नहीं । सम्यग्दर्शन क्या, सम्यग्ज्ञान क्या । शास्त्र पठन-बठन, वह भी सम्यग्ज्ञान नहीं । समझ में आया ? शास्त्र-देव-गुरु की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं । आहाहा ! ...सवेरे गायन बनाया था न । राजा और फाजा और सब मेलवाले करते थे । ... कहते थे या नहीं ? आहाहा !

कहते हैं, भगवान ! आत्मा निर्विकल्प आनन्द की अनुभवदृष्टि से जिसने बाह्य परिग्रह और अभ्यन्तर रागादि, बाह्य में वस्त्र आदि उसका अभ्यन्तर परिग्रह और बाह्य की वांछा का मनोरथ, विकल्प की ज्वाला उसका छेद न किया, उसका अभ्यन्तर में मन का मुण्डन तो नहीं किया, **और जिनदीक्षारूप शिरोमुंडन कर वेश रखा...** समझ में आया ?

मुमुक्षु : आधा काम निपटा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी निपटा नहीं एक भी । एक आधा काम निपटा न ? कल एक बताया था । भेड़ के भी छह महीने में बाल काटते हैं । भेड़ होती है या नहीं ? ... उसमें क्या आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मदर्शन बिना तेरी मास-मासखमण की अपवास की क्रिया और अट्टाईस मूलगुण की क्रिया शुभराग की । वह सम्यग्दर्शन बिना तेरी व्यर्थ

सब किया है। तेरे जन्म-मरण का कभी नाश होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह तो अनन्त बार किया। शास्त्र में भी आता है अनन्त बार मेरु जितना ढेर किया। और पिच्छी, कमण्डल। इतनी बार पिच्छी, कमण्डल ले लिया त्याग में कि असंख्य मेरु जितना ढेर हो जाये। असंख्य मेरु। क्या है उसमें? आत्मा अखण्डानन्द राग पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक् अनुभव दृष्टि की नहीं, उसने अन्दर का मन मुण्डन किया नहीं। मन मुण्डन के बिना बाह्य का त्याग और राग का घटना, वह सब त्याग यथार्थ है नहीं। ओहोहो! समझ में आया? देखो, पाठ में है वह सब।

मुमुक्षु : बाह्य-अभ्यन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाह्य-अभ्यन्तर अन्दर में है, देखो। ‘बाह्याभ्यन्तरपरिग्रह-कांक्षारूपप्रभृतिसमस्तमनोरथकल्लोलमालात्यागरूपं मनोमुण्डनं पूर्वमकृत्वा’ ‘पूर्वमकृत्वा’ उसमें शब्द पड़ा है हो, भाई! पहले यह किया नहीं और दीक्षा ले ली, व्रत धारण किया, आत्मा को ठग लिया। देखो, पाठ है उसमें। देखो संस्कृत। संस्कृत आती है या नहीं किसी को? मूलचन्दजी! उसमें संस्कृत में है अन्दर। ‘मनोमुण्डनं पूर्वमकृत्वा’ हमारे राजमलजी को बहुत आता है बताओ। समझ में आया? है न? ‘पूर्वम’ भाई है न? ‘पूर्वमकृत्वा’ पहले आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मरमणता की नहीं। ‘पूर्वमकृत्वा’ पहले नहीं किया। ले लिया वेश, व्रत और ऐसा त्याग। ठग लिया आत्मा को, कहते हैं। आहाहा! अपना स्वरूप...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहा। आपने सुना नहीं। वह तुम्हारे मित्र कहा। कि आठ आना का तो काम हुआ या नहीं? मिथ्यात्व का काम हुआ। साधुपद सम्यग्दर्शन है नहीं, सम्यग्ज्ञान है नहीं। अन्तर आनन्द आना चाहिए अतीन्द्रिय आनन्द। वह है नहीं। और मान लिया है कि हम समकिती हैं, हम ज्ञानी हैं, हम चारित्रवन्त हैं। मिथ्यात्व है। समझ में आया? मिथ्यात्व, वह बड़ा संसार है। समकित, वह बड़ा मुक्ति का मार्ग और मुक्ति है। पहले तो वह समयसार में आता है। नाटक समयसार में कहा है न? समझ में आया? आता है कहीं, हों! किसमें होगा आस्रव में? बन्ध? आस्रव में। वह आस्रव है

न। आस्रव में आयेगा, हों! मोक्ष अधिकार में है। देखो, नौवे अधिकार का सार। प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव-बन्ध है। मिथ्यात्व का अभाव समकित, संवर-निर्जरा और मोक्ष है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कहाँ से प्रकाशित है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहाँ से प्रकाशित, किसको खबर है ? बुद्धिलाल श्रावक है। इसलिए कहीं सोनगढ़ से प्रकाशित नहीं, ऐसा। समयसार नाटक है। बहुत वर्ष पहले छपा है। समझे ? बुद्धिलाल। छगनलाल ...वाल है न। बहुत वर्ष पहले की बात है। वह समयसार नाटक। प्रगट हो, मिथ्यात्व ही आस्रव और बन्ध है। समझ में आया ? ... कहीं है। सब तो कहीं आवे अपने। समझ में आया ?

क्या कहते हैं ? यह शुभ-अशुभभाव जो दया, दान, व्रत के भाव, वह मेरा है और मुझे लाभकर्ता है। वही महामिथ्यात्व है। आहाहा ! यह मिथ्यात्व ही आस्रव और बन्ध है। नये आवरण का कारण, वही आस्रव और वही भावबन्ध, और उससे नया द्रव्यबन्ध दर्शनमोह का पड़ता है। समझ में आया ? पीछे ? देखो, सम्यक्त्व। सम्यक्त्व (ही) संवर, निर्जरा और मोक्ष है। आत्मा शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द का अनुभव, शुभ-अशुभराग और देह की क्रियामात्र पर की है, मैं कर्ता नहीं हूँ। मैं पर का अजीव का जीव की पर्याय किसी की मैं पर की दया पालनेवाला या पर की हिंसा करनेवाला मैं नहीं। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। समझ में आया ? वह भी व्यवहार से पर का जाननेवाला।

और मेरा स्वभाव शुद्ध चैतन्य ज्ञान की मूर्ति है। मैं तो ज्ञाता—तीन काल-तीन लोक की चीज़ को जानने-देखनेवाला हूँ। मैं एक राग का कण महाव्रत का उठता है, वह भी मेरा कर्तव्य नहीं। समझ में आया ? ऐसी अनुभव की दृष्टि होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन संवर, निर्जरा और मोक्ष तीनों हैं। वह सम्यग्दर्शन हुआ, संवर, निर्जरा सब हो गयी। और सम्यग्दर्शन की उग्रता की स्थिरता हुई तो मोक्ष हो गया। मूलचन्दभाई !

मुमुक्षु : व्यवहाररत्नत्रय के अभाव में निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव में निश्चय होता है। उससे होता नहीं। यह कहते हैं।

ठीक कहा, लो। व्यवहार राग बीच में है, परन्तु व्यवहार बन्ध का कारण है। यह ठीक भाई ने कहा। समझ में आया? देखो, यहाँ आचार्य महाराज फरमाते हैं। अभी गुरु क्या कहते हैं? शास्त्र क्या कहते हैं? तीर्थंकर क्या कहते हैं? उसकी खबर नहीं और हम धर्मी हैं और धर्म हो गया। मूलचन्दजी!

बहुत वर्ष से तुम तो भजन करते हो। ये भक्ति भजन है। यह भजनवाला आया है, हों! वह वापस कोई ऐसा न समझे कि वह कोई ऐसा है। वह तो चाँदी का व्यापारी है। वह घूँघरू बाँधकर नाचेगा अभी भगवान के पास। वह तो भक्ति का भाव है। वह चाँदी का व्यापारी है, हों! हार पहनकर आये हैं न! उसके घर का है, किसी का नहीं। और कोई ऐसा माने कि यह भिखारी है, किसी से लिया है पैसा देकर। समझ में आया? वह भक्ति होती है यात्रा, भक्ति, परन्तु उसकी मर्यादा शुभभाव जितनी है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, अब खुला कर डाला वापस। नवनीतभाई! मूलचन्दभाई तो खुला कर डालते हैं। वह धर्म नहीं। आहाहा! वह संवर, निर्जरा नहीं, सम्यक् नहीं। आहाहा! गजब कठिन जगत को। अभी श्रद्धा बैठनी कठिन पड़े। समकित तो बाद में। आहाहा!

कहते हैं, सम्यक् आत्मा का दर्शन, अनुभव। आठ वर्ष की लड़की होती है, उसको भान होता है, सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा नहीं कि किसी बड़े को होता है और देव को ही होता है। नारकी में होता है। नारकी है सातवीं नरक। सवेरे कहा था न। रवरव नरक है सातवें अपयठाणा। वहाँ भी आत्मा का ज्ञान ऐसा होता है। वह हमने पूर्व में सुना था ज्ञानी के पास। परन्तु हमने सावधानी से आत्मा का भान नहीं किया। हमारी जिन्दगी व्यर्थ गयी। तो नरक में पड़ा कोई राजा-महाराजा। नरक में गये। अन्दर विचार। बहुत दुःख... बहुत दुःख... अन्दर विचार में उतर गये। सातवें नरक में। अनन्त काल में कभी सम्यग्दर्शन पाया नहीं, वह सातवें नरक में पाते हैं। ऐसा सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन का अर्थ यह है। अन्तर में इतने दुःख के संयोग में। कितना दुःख। सातवीं नरक का दुःख। भाई! मूलचन्दभाई! सातवें नरक

अर्थात् ? और उसमें पाँच अन्तिम के। अपयथा नरक, रवरव नरक। महा पीड़ा, अनन्त पीड़ा। परन्तु उसमें याद आ गया। आहाहा! अरे! हम मनुष्य थे। हमको ज्ञानियों ने कहा था कि तुम्हारा आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध है, अरे! हमने हमारी सावधानी से हमारा अनुभव नहीं किया। ऐसा अन्दर विचार करते हैं इतने दुःख में। जयचन्दभाई! तुम्हारे क्या दुःख है इतना? धूल में भी दुःख नहीं है। लड्डू खाये, शरीर रूपवान ऐसा, ऐसे बैठे और ऐसे दुःखी हैं, कहे। समझ में आता है या नहीं? ऐसे दुःख में नरक में, सातवें नरक में। अनन्त काल से नहीं पाया। आहाहा! यह वेदन! यह वेदन! यह क्या है? हजारों बिच्छु डंक मारे। बिच्छु... बिच्छु कठोर। यह क्या है? ऐसा स्मरण आया। जातिस्मरण हो जाता है। समझ में आया? किसको? जातिस्मरण किसको कहते हैं? पूर्वभव का स्मरण। समझ में आया? यह लड़की बैठी है न तुम्हारे पीछे। ... देखा नहीं न। लड़की बैठी है। जातिस्मरण हुआ है। समझ में आया? जातिस्मरण का अर्थ पूर्वभव का भान। पूर्व भव में, मैं कहाँ था? कहाँ से आया? उसको खबर है। उसको खबर है। समझ में आया? ऐसा नरक में जातिस्मरण होता है। सौभाग्यमलभाई! आहाहा! उसमें ख्याल आता है। मुझे ज्ञानी ने कहा था, हों! कि तुम्हारी चीज़ भिन्न है, राग से भिन्न है, देह से भिन्न। न माना... न माना... न माना... और मेरा काल व्यर्थ गया। ऐसे अन्तर में दृष्टि करके, सम्यग्दर्शन अनुभव आनन्द का स्वाद ले लेते हैं। समझ में आया? वह आता है या नहीं? भजन में आता है तुमने नहीं सुना? 'बाहर नारक कृत दुःख भोगत, अन्तर सुख की गटागटी।' आता है? वह भजन में आता है। 'चिन्मूरत दृग धारी की मोही रीति लगत है अटापटी।' सेठ पहले आये थे न वह बोले थे। वह सेठ आये थे न पहले यहाँ? हुकमीचन्द। हुकमचन्द यहाँ तीन बार आ गये हैं। तो पहले बोले थे। 'चिन्मूरत दृगधारी की मोहे, रीति लगत है अटापटी।' सम्यग्दर्शन चिन्मूर्ति आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप। वह विकल्प पुण्य-पाप, दया, दान, वह मैं नहीं। शरीर मैं नहीं—ऐसा भान। 'चिन्मूरत दृगधारी की मोहे रीति लगत है अटापटी। नारकी बाह्यकृत भोगत।' नारकी का जीव बाह्य तरफ के दुःख में दिखे। 'अंतर सुख की गटागटी।' ताराचन्दजी! किसको? नारकी को।

श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष स्थिति

में है। श्रेणिक राजा हुए न? पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। पश्चात् सम्यग्दर्शन पाया। पहले तो नरक का आयुष्य बँध गया। वह नरक का आयुष्य बँध गया, वह छूटे नहीं। पश्चात् आत्मा का भान हुआ। ओहो! मैं आनन्दकन्द शुद्ध चिदानन्द। रागादि, दया, दान, व्रत का परिणाम। भक्ति आदिक सब बन्ध का कारण है। मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ में तो पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द पड़ा है। ऐसा भान हुआ। परन्तु पूर्व का नरक का आयुष्य बड़ा बाँधा था। सातवें नरक का। सुना है न? सम्यग्दर्शन पाया तो सब आयुष्य तोड़ दिया। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति रह गयी। किसका प्रताप? सम्यग्दर्शन। चौरासी हजार वर्ष। पहले नरक में है। ढाई हजार वर्ष गये। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी रहे। वहाँ से निकलकर... समझ में आया? लाओ।

देखो, यहाँ है। 'चिन्मूरत दृगधारी की मोहे रीति लगत है अटापटी' दौलतराम कृत है। यह दौलतरामजी हम सुबह में पढ़ते हैं। वही होंगे। यही दौलतराम कृत है हिन्दी। समझ में आया? वह दौलतराम कृत दूसरा सुबह में छहढाला चलती है न। वह दौलतराम का भजन है। पहले के पण्डित के भेजन भी ऐसे थे अध्यात्म। अब थोड़ा-थोड़ा डॉक्टर भी बनाते हैं। 'चिन्मूरत...' चिन्मूरत। सम्यग्दृष्टि को चिन्मूर्ति कहा है। ज्ञानमूर्ति। चिन् अर्थात् ज्ञान। मैं तो चैतन्यसूर्य हूँ, ऐसी अन्तरदृष्टि हुई है तो 'चिन्मूरत दृगधारी'। समकित धारी। है कहीं बाहर में? लिखा है बाहर में कहीं? 'रीति लगती है अटापटी।' देखो, बाहर से। 'बाहिर नारकी कृत दुःख भोगे अंतर सुख रस गटागटी।' आहाहा! सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, लोगों ने सुना नहीं, सुना नहीं। और सम्यग्दर्शन बिना हो गया चारित्र और व्रत। 'रमत अनेक सुरनी...' देखो, 'रमत अनेक सुरनी संगपै, परिणति ते नित हटाहटी', आत्मदृष्टि का भान होकर स्वर्ग में गये हैं। 'रमत अनेक सुरनी संग।' देवांगना के साथ या देव के साथ सम्यग्दृष्टि वहाँ विषय में रमते हैं। परन्तु 'परिणति ते नित हटाहटी।' परन्तु राग की अस्थिरता से पीछे हटते हैं स्वरूप में रमण करने को। समझ में आया? 'ज्ञान विराग शक्ति ते विधि फल भोगत' अपना स्वरूप शुद्ध ज्ञानानन्द और राग से रहित वैराग्य ऐसी शक्ति से विधि फल। कर्म का फल भोगत। 'भोगत पै विधि घटापटी' परन्तु उनका कर्म सम्यग्दृष्टि को घटाघटी। घटते ही जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

‘सदन निवासी तदपि उदासी।’ गृहस्थाश्रम में हो, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो, छियानवें-छियानवें हजार स्त्री हो। सम्यग्दृष्टि को आनन्द का भान हुआ अनुभव में। ‘सदन निवासी...’ सदन अर्थात् मकान, मन्दिर। ‘तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी’ यह पुण्य-पाप का भाव तो घटता ही जाता है। आत्मा की दृष्टि का सम्यक् भान है न, इस कारण से। ‘जो भव हेतु अबुधके ते तस’ अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पुण्य-पाप से धर्म माननेवाला; व्रतादि क्रिया से अपना कर्तव्य धर्म माननेवाला—ऐसा मिथ्यादृष्टि जो बुध अज्ञानी को जो भवहेतु है ‘वह करत बंधकी जटाजटी’ वह (ज्ञानी) बन्ध की जटाजटी-बन्ध को छेद डालते हैं कहे। समझ में आया? यह दौलतरामजी कृत है। पहले का भजन है। रतनलालजी!

‘नारक पशु तिय षट् विकलत्रय, प्रकृतिन की है कटाकटी’ नारकी में उत्पन्न होता नहीं, विकलत्रय में उत्पन्न होता नहीं। ‘संयम धर न शकै पै संयम...’ ‘संयम धर न शके पै संयम धारनकी उर चटाचटी।’ स्वरूप में कब स्थिर होऊँ? स्वरूप में कब स्थिर होऊँ? वीतरागस्वरूप आनन्द में कब आ जाऊँ? ‘संयम धर न शकै पै संयम धरण की उर चटाचटी, तासु सुयश गुणकी दौलत के, लगी रहै नित रटारटी।’ तासु सुयश। उसके सम्यग्दृष्टि के गुण के सुयश क्या कहूँ, कहते हैं। उसके सम्यग्दर्शन, चौथे गुणस्थान की बात है अभी, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : नारकी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : नारकी में कहाँ पाँचवें-छठे गुणस्थान था? देव की बात की, नारकी की, पश्चात् की मनुष्य की। आहाहा! समझ में आया?

‘तासु सुयश गुण की...’ यह सम्यग्दृष्टि के सुयश की क्या कहना? ये अपने आ गया है भाई छहढाला नहीं? लेश न संयम। आता है न? ‘पै सुरनाथ जजे है।’ यह आ गया है अपने छहढाला में। ‘लेश न संयम।’ अभी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, परन्तु विशेष स्थिरता नहीं हुई है। समझ में आया? ‘लेश न संयम पै सुरनाथ जजे है।’ सुरनाथ-देव के इन्द्र। है न उसमें है। किसमें आयी यह कड़ी? भैया! वह ढाल कौनसी? ढाल का पद कुछ याद रहता है? तीसरे की पन्द्रहवीं। हाँ यह आया। देखो,

‘अव्रती सम्यग्दृष्टि की देवों द्वारा पूजा और गृहस्थपने में अप्रीति ‘दोषरहित गुणसहित सुधी ते, सम्यग्दर्शन सजै हैं।’ यह दौलतरामजी कहते हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान पुण्य-पाप के विकार से त्रिकाल निराला मैं हूँ। देह की क्रिया तो मैं कभी तीन काल में करता ही नहीं। पर का आहार त्याग-ग्रहण मेरे स्वरूप में है ही नहीं। ऐसी सम्यग्दृष्टि हुई तो कहते हैं कि ‘चरितमोहवश लेश न संजम,’ ‘चरितमोहवश’ हों! चारित्रमोह के कारण से नहीं, परन्तु चारित्रमोह के उदय में अपने पर्याय में वश हो जाता है। ‘पै सुरनाथ जजै हैं ॥’ समझें ? इसमें है या नहीं ? इसका फोटो हो या नहीं ? चित्र है, देखो। दो चित्र हैं। यह संयम को इन्द्र आकर चरण लगते हैं। है न इन्द्र ? देखो है या नहीं ?

‘गेही पै गृह में न रचैं’, गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु आत्मदृष्टि का अनुभव सम्यक् हुआ है। ‘ज्यों जलतैं भिन्न कमल है।’ जल से जैसे कमल भिन्न है, समझ में आया ? ‘नगरनारिकौ प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥’ कीचड़ में सोना निर्लेप रहता है, इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि अन्तर में राग की एकता कभी करते नहीं। समझ में आया ? आहाहा! संयम सम्यक् किसको कहना लोग समझें नहीं, (प्रगटता तो) कहाँ से आये ? निहालभाई! आहाहा! ‘नगरनारिकौ प्यार’ वैश्या का प्यार। कोई भी बच्चा आवे, कोई भी भंगी आदि हो। पैसा दे उतना प्यार। दूसरा कुछ उसके पास प्यार नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मदर्शन दृष्टि की हुई, वह संसार में राजपाट में रहे, तथापि वैश्या के प्यार जैसी उसकी प्रवृत्ति दिखती है। अन्तर में प्यार है नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन बिना... यहाँ आचार्य कहते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपना... ऐसे आनन्दस्वरूप की अनुभव दृष्टि और स्वरूप में विशेष रमणतारूपी चारित्र। ऐसी तीक्ष्ण धारा से जिसने मन को मुण्डन किया नहीं और जिनदीक्षारूप शिरोमुंडन कर भेष रखा,... तो अन्तर में राग की एकताबुद्धि और पर का निमित्त भी उसको छूटा नहीं। उसने अपनी आत्मा ठगी। अपनी आत्मा ठगी। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा कथन समझकर निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न, वीतराग परम, आनन्दस्वरूप को अंगीकार (परिग्रह) करके... भाई ! ‘परिग्रह

करके' ऐसा है। देखो, धर्मात्मा का परिग्रह क्या है ? है न मूल में पाठ है। मूल में पाठ है। 'वीतरागपरमानन्दपरिग्रहं कृत्वा' संस्कृत में है। आहाहा! कहते हैं, अरे भगवान! तेरा परिग्रह तो वीतराग परमानन्दस्वरूप, वह तेरा परिग्रह है। पुण्य-पाप का भाव, वह भी तेरा परिग्रह नहीं। और वह आयेगा बाद में ९१वीं गाथा में बहुत विस्तार आयेगा। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि का परिग्रह पुण्य-पापभाव नहीं। शरीर, क्रिया, वाणी की क्रिया उसका परिग्रह नहीं और बाह्य की लक्ष्मी, कुटुम्ब कबीला, वह सम्यग्दृष्टि का परिग्रह नहीं। माणेकचन्दजी! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ९१ वीं व्याख्या।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो बहुत सरस व्याख्या आती है। उसकी है न ५३ पृष्ठ पर अपने है २०-२१-२२। उससे भी इसमें बहुत समझने जैसा है। कल आयेगा। उसकी अपेक्षा दूसरी बात है। समझ में आया ? वह कल आयेगा। रविवार है न कल ? लोग भी कल आनेवाले हैं राजकोट से। आयेंगे। कहो, समझ में आया ? आहाहा! नवनीतभाई! यह तो आपको मुखाग्र है छहढाला। बारम्बार कहते हैं, इसलिए वाँचन किया। थोड़े दो दिन आ गये थे व्याख्यान में। कहो, समझ में आया ?

कहते हैं। आहाहा! मुनि का परिग्रह और सम्यग्दृष्टि का परिग्रह क्या ? परि-ग्रह समझते हैं ? परि—समस्त प्रकार से पकड़। समस्त प्रकार से पकड़, ग्रहना, लेना। क्या ? वीतराग परमानन्द। अपना अन्तर वीतराग निर्दोष परम आनन्द अतीन्द्रिय है। उसकी सम्यग्दृष्टि ने, मुनि ने अन्दर पकड़ कर ली है। वह परिग्रह। वह परिग्रह है। परिग्रह—'परि' उपसर्ग है। समस्त प्रकार से ग्रहना, पकड़ना। वीतराग परम आनन्द पकड़ लिया है। आत्मा का परिग्रह पकड़ लिया है। पुण्य-पाप, दया-दान, देह की क्रिया का परिग्रह छोड़ दिया है। आहाहा! वह परिग्रह का अर्थ यहाँ ममता नहीं लेना। यहाँ तो परि-ग्रह शब्द है, पाठ में है, देखो, 'वीतरागपरमानन्दपरिग्रहं कृत्वा' आहाहा! एक ओर परिग्रह अन्तर में वीतराग परमानन्द की पकड़ न हो, तब तक, बाहर के परिग्रह की ममता उसको कभी छूटती ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! भारी बात, भाई! वह वीतराग कहते हैं न वीतराग ? एक व्यक्ति फिर मशकरी करता था भाई! जैसे

यह परिग्रह हुआ न। वीतराग है, भाई! तुम सब वीतराग। मश्करी की। वीतरागस्वरूप तुम सब हो। वह कहे, ओहो! महाराज! परन्तु हम वीतराग कहाँ से? तुम वीतराग नहीं? तुम वित्त अर्थात् पैसे का राग नहीं तुमको? ऐसी मश्करी न हो। कि तुम सब वीतराग हो भाई! तो वे बेचारे उलझ गये सुननेवाले, हों! कि हमको वीतराग किस प्रकार कहते हैं यह? परन्तु वित्त अर्थात् पैसा। वित्त पैसे को कहते हैं न। यह वित्तराग—पैसे का राग। तुमको पैसे का राग है या नहीं? वह वीतराग तुम हो। वह अज्ञान का वीतराग है। समझ में आया? पैसे का राग है। अज्ञानी को पुण्य-पाप का भाव का राग है, शरीर, वाणी, मन की एकत्वबुद्धि की बात यहाँ हो। एकत्वबुद्धि। पुण्य-पाप की एकत्वबुद्धि की पकड़ है, वह भी एक वीतराग अर्थात् वीत अर्थात् ममता की पकड़ करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि वीतराग परम आनन्द परिग्रह। आहाहा! कितनी भाषा टीका में ली है आचार्य भगवान ने। सम्यग्दृष्टि का और मुनि का तो परिग्रह वह है। विकल्प दया, दान, व्रतादि शरीरादि का परिग्रह बिल्कुल उसमें नहीं। पकड़ भी नहीं न। आया छूट जाता है। देह की क्रिया हुई, वह तो ज्ञाता में चली जाती है। समझ में आया? पुस्तक-बुस्तक रखी है? वहाँ से लाये हैं? ठीक। वीतराग परम आनन्द अपना अतीन्द्रिय आनन्द। यह पूरा अतीन्द्रिय आनन्द का ढेला भगवान है, उसकी सम्यग्दृष्टि ने पकड़ कर ली है। जैसे मकोड़ा पकड़ करते हैं न यहाँ? वह छूटते नहीं। फिर छूटते नहीं न? उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ने अपने वीतराग परमानन्द की पकड़ कर ली है। सब रागादि विकल्प का परिग्रह पकड़ छोड़ दिया अन्तर में होता है। मुनि को तो राग की अस्थिरता भी नहीं होती, वह कहते हैं। समझ में आया?

तो कहते हैं, मुनि अपने स्वरूप में ऐसा वीतराग अकेला अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दगुण के पिण्ड की पकड़ कर ली है। उस कारण अपनी शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दस्वरूप, वही उसका परिग्रह है। **अंगीकार करके...** पश्चात् इसका अर्थ किया अंगीकार। **तीनों काल, तीनों लोक में...** ऐसा लेते हैं, भाई! गत काल में जो राग था, वह ठीक था, ऐसा भी नहीं। हमने पूर्व में राग किया तो पुण्य बँधा तो

मनुष्य देह मिला। परिग्रही है। मिथ्यादृष्टि परिग्रही है। समझ में आया ? कि पूर्व में हमने पुण्य किया तो मनुष्य देह मिला न ? इतना तो लाभ हुआ या नहीं ? मूढ़ है। पूर्व के राग का फल शरीर मिला, वह मुझे ठीक है तो पूर्व के राग को ठीक कहा, वह मिथ्यात्व का परिग्रह है।

तीनों काल लिखा है देखो, **तीनों काल...** और भविष्य में मेरे शरीरादि मिले, अनुकूल मिले पुण्य के कारण से, तो मुझे ठीक होगा। वह भविष्य का परिग्रह है। सब छोड़कर मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनाकर देखे, सुने, अनुभवे जो परिग्रह उनकी वांछा सर्वथा त्यागनी चाहिए। ये परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से (वैरी) विपरीत है। भगवान् आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभूति से पुण्य-पाप आदि परिग्रह तो वेरी-विरोधी है। सम्यग्दृष्टि को उसकी ममता टूटकर अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में एकाग्रता करना, वही उसका परिग्रह और धर्म होता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ कृष्ण १५, रविवार, दिनांक २०-०२-१९६६

गाथा - ९०-९१, प्रवचन - १३४

.... आये थे न कहाँ गये ? नहीं आये ? कहाँ ? ठीक । कभी आये इसलिए आज जरा ख्याल रहे न । यह परमात्मप्रकाश चलता है । परमात्मप्रकाश दूसरा भाग । ९० गाथा । आखिर की थोड़ी बात बाकी है । थोड़ी ले लें, फिर ९१ लेंगे ।

कहते हैं कि जिसे अपने आत्मा का हित करना हो और हित करे बिना अकेला मुनिपना, सिरमुण्डन हो या श्रावकपना बाहर के क्रियाकाण्ड में हो, परन्तु जिसका अन्तर मनमुण्डल हुआ नहीं, अन्तर का परिग्रह का नाश हुआ नहीं तो उसका सिरमुण्डन और बारह व्रत का विकल्प धारण, वह सब निरर्थक है । समझ में आया ? परिग्रह त्याग की व्याख्या है । अन्त में क्या है देखो । **ऐसा कथन समझकर निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न, वीतराग परम आनन्दस्वरूप को...** क्या कहते हैं ? परिग्रह की व्याख्या ९१ में विशेष करेंगे । शरीर, वाणी, कर्म, वह सब परिग्रह है । पुण्य और पाप का भाव, वह भी परिग्रह है । उसकी रुचि, दृष्टि छोड़कर अपना शुद्धात्मा निर्मलानन्द भगवान की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतराग परम आनन्दस्वरूप अपना परिग्रह । वह अपना परिग्रह । समझ में आया ?

वीतराग (अर्थात्) राग, विकल्प, पुण्य-पाप का भाव, शरीर, कर्म से अपना आत्मा भिन्न करके अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द जो है, उसकी अन्तर दृष्टि-सम्यग्दर्शन से एकाग्र भावना उत्पन्न होकर जो आत्मा का आनन्द आया, उस आनन्द से यह सारा आत्मा आनन्दमय है, ऐसा अन्तर में अपने आत्मा को पकड़कर । बहुत सूक्ष्म । परिग्रह का अर्थ पकड़ । मूल परिग्रह शब्द पाठ में है । **‘वीतरागपरमानन्दपरिग्रहं कृत्वा’** सब परिग्रह की दृष्टि छोड़कर । दृष्टि छोड़कर । भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा अपना-निज, उस निज आत्मा की अन्तर एकाग्रता द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि एकाग्रता द्वारा जो अन्तर में

शान्ति और आनन्द जो सत्वरूप से पड़ा है, उसको प्रगटरूप, आनन्द और शान्ति के स्वसंवेदन द्वारा वेदन करके 'यह आत्मा ही मैं हूँ'—ऐसा पकड़ लिया उसका आत्मा का परिग्रह, समकित्ती को परिग्रह में अपना आत्मा है। समझ में आया ? मूलचन्दभाई ! गजब बात, भाई !

सम्यग्दृष्टि को, धर्मी जीव को अपना परिग्रह... परिग्रह समझते हैं ? परि उपसर्ग है, समस्त प्रकार से पकड़ना। भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति शुद्ध चैतन्यस्वरूप वीतरागस्वभावी आत्मा की अन्तर्मुख सम्यग्दृष्टि करके अन्तर का स्वभाव का आनन्द का व्यक्तपना अंश से करके जो वीतरागी आनन्द की दशा प्रगट हुई, उससे पकड़ हुआ कि यही सम्पूर्ण आत्मा मैं हूँ। आहाहा ! मूलचन्दजी ! समझ में आया ? भारी कठिन, भाई ! समझ में आया ? वजुभाई ! यह धूल के परिग्रह सम्यग्दृष्टि के होते नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी आगे तो विशेष बात करेंगे ९१ में। सम्यग्दृष्टि, सत्यदृष्टि, प्रशंसनीय दृष्टि, सच्ची दृष्टि उसको कहते हैं कि जिसकी दृष्टि में अपना आत्मा पुण्य-पाप का राग, शरीर, वाणी, कर्म उसका परिग्रह नहीं, उसकी ज्ञानी को पकड़ नहीं। नवनीतभाई ! आहाहा ! माणेकचन्दजी ! समझ में आया ? संसार में रहना और क्या कहते हैं यह ?

कहते हैं, परमात्मप्रकाशक योगीन्द्रदेव आचार्य दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में—वन में बसनेवाले थे, उन्होंने कहा कि मुनि को अथवा सम्यग्दृष्टि को परिग्रह अथवा पकड़ किस चीज़ में है ? कि सम्यग्दृष्टि और मुनि धर्मात्मा इसको कहते हैं कि जिसकी पकड़ में, पुण्य शुभराग आता है, उसकी भी पकड़ जिसको नहीं। आहाहा ! रतनलालजी ! कहाँ गया वह डॉक्टर ? यहाँ आओ, वहाँ क्यों बैठे ? नजदीक आना चाहिए दस मिनट पहले। देर से आना और पीछे बैठना। पहले आना चाहिए। नहीं ? फूलचन्दजी ! मुश्किल से तुम्हारे तो सुनने को मिले। तुम्हारे पत्र में ऐसा आया था डॉक्टर का कि दूसरे को छोड़कर हम विशेष सुनने को आते हैं। ऐई ! डॉक्टरजी ! तुम्हारे पत्र में ऐसा आया था। लिखा था ? हमारे तो अमृत सुनने को हम तो आते हैं। यह तो बात ठीक है। यह सौभागभाई लिखा था पत्र में, हों ! कि हम तो सुनने को आते हैं मुख्य तो।

क्या कहते हैं, भगवान ? योगीन्द्रदेव सन्त मुनि हैं। तो मुनि कहो या सम्यग्दृष्टि

कहो। मुनि को अस्थिरता में शुभाशुभभाव होता नहीं। सम्यग्दृष्टि को अस्थिरता में शुभाशुभ होता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि को और मुनि को दो में अन्तर कितना है? कि सम्यग्दृष्टि को शुभाशुभभाव होने पर भी उसकी पकड़ नहीं। पकड़ सम्यग्दृष्टि की ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति की अन्दर प्रतीति और पकड़ है। समझ में आया? मुनि को शुभाशुभभाव बहुत घट गया, अल्प शुभराग रह गया पंच महाव्रतादि। परन्तु उसकी भी मुनि को पकड़ नहीं। यह मेरा कर्तव्य है या यह परिणाम महाव्रत यह हमारा काम है, ऐसी मुनि को पकड़ नहीं। जो पकड़ है तो दृष्टि मिथ्यात्व हो जाती है। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं, भगवान् योगीन्द्रदेव आचार्य मुनि सन्त थे। ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर उन्होंने कहा मार्ग, वही बात कहते हैं। भगवन्त! यहाँ परमात्मा की बात है न? परमात्मप्रकाश है न शास्त्र का नाम। समयसार कहो या परमात्मप्रकाश दोनों एक ही बात है। यह समझे नहीं तो समझा क्या? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अथवा सम्यग्दृष्टि पानेवाले को पहले यह पढ़ना, ऐसा समयसार में लिखा है। अनादि अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जिसको अनादि से सम्यग्दर्शन हुआ नहीं अर्थात् शुभ-अशुभराग से अपने पृथक् स्वभाव का बोध हुआ नहीं और विकार पुण्य-पाप, यह क्रिया मेरी है ऐसा मिथ्यादृष्टि को कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम समयसार सुनाते हैं। समझ में आया? श्रुत परिचित अनुभूता, ऐसा तो कहा। तूने सुना नहीं, उसको हम सुनाते हैं। अनन्त काल में सुना नहीं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गये, दिगम्बर जैन साधु होकर। शुक्ललेश्या। ऐसा भाव तो अभी होता नहीं। शुभभाव ऐसा नहीं होता। जैसे नौवें ग्रैवेयक गये अनन्त बार मिथ्यादृष्टि दिगम्बर जैन साधु। ऐसा शुभभाव तो अभी किसी को होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। समझ में आया? तो ऐसी अनन्त बार में भी... अन्तर में चिदानन्द भगवान् ज्ञाता-दृष्टा है। एक राग का उत्थान होता है पंच महाव्रत का, वह भी विकल्प है; मेरी चीज़ नहीं। उससे पृथक् मेरी चीज़ है, ऐसा ज्ञानानन्दस्वभाव, वह उसका अपना स्वभाव है, उसका परिग्रह। परि-समस्त प्रकार से, ग्रह अर्थात् पकड़ना, उसका नाम सम्यग्दृष्टि का वीतरागस्वभावी भगवान् वह परिग्रह उसका है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि का परिग्रह शरीर, मेरी क्रिया मैं करता हूँ शरीर

से, पर की दया मैं पाल सकता हूँ, पर की हिंसा कर सकता हूँ—ऐसा शरीर उसका परिग्रह है। और दया, दान का परिणाम उत्पन्न हुआ वह शुभराग, वह मुझे हितकर है, ऐसा अज्ञानी का विकार परिणाम, उसका मिथ्यात्वसहित का परिग्रह है। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : होशियार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार परन्तु क्या करे? सेठाई करनी और सबको समान रखना बाद में, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? संघ के सब लोगों को समान रखना और पश्चात् सब क्या करना उसमें? नहीं, इनकार करता हूँ। कर सकता नहीं। आहाहा!

आचार्य भगवान 'स्वशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्दपरिग्रहं कृत्वा' यह एक शब्द महासिद्धान्त। यह परिग्रह की व्याख्या बहुत गाथा में। ९२ गाथा में पूरा हो गया अपने तो। क्योंकि वहाँ तक व्याख्यान हो गया सब। ९१-९२ दो ही गाथा बाकी है। पूरे परमात्मप्रकाश में। पूरा उतर गया है सब रिकॉर्डिंग में। समझ में आया? एक सिद्धान्त भी यथार्थ समझ ले। 'एगं जाणहि सब्बं जाणहि', तो सर्व शास्त्र का रस उसके ख्याल में आ जाये। कहते हैं, ओहो! भगवान आत्मा मिथ्यादृष्टिपने अनादिकाल में शुभ-अशुभ राग अपना माना, उससे अपना हित माना और शरीरादि क्रिया होती है, जड़ से तो वह मेरे से, मैं अन्दर में उपस्थित अस्ति हूँ, मैं जीवन-जीवन जीवता अन्तर जीव है तो जड़ की क्रिया होती है। जीवरहित शरीर की क्रिया जड़ में कैसे होवे? ऐसा मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि अनादि से ऐसा मान रखता है कि उसका शरीर ही उसका परिग्रह है। नवनीतभाई! आहाहा! और उसका मिथ्यात्व परिग्रह बाद में कहेंगे।

मुमुक्षु : भाव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में। वह बाह्य में शरीर परिग्रह है और अन्तर में शरीर की क्रिया मैं जीव हूँ, अन्तर चैतन्य हूँ तो शरीर चलता है। दीवार क्यों चलती नहीं? जीवता शरीर। जीवता शरीर हो, जीव अन्दर में मौजूद है तो शरीर की ऐसी हलन-चलन क्रिया होती है, ऐसा माननेवाले को भगवान आचार्य कहते हैं कि उसको मिथ्यात्व के परिग्रह ने पकड़ लिया है। आहाहा! मिथ्यात्व परिग्रह उसके पास है। जो अनन्त संसार में

रुचनेवाला मिथ्यात्वभाव, वही उसका परिग्रह है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को यह परिग्रह नहीं। राग आता है, देह की क्रिया होती है। तो कहते हैं, **निज शुद्धात्मा की भावना से...** आहाहा! मैं निज परमात्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। उसकी भावना से उत्पन्न। अरे! इतना सत्य मार्ग! इतना समझ में आता है कि जिसके अन्तर में आनन्द आता है। वह आनन्द द्वारा यह आत्मा मैं हूँ। चन्दुभाई! आहाहा! उसका अंकुर प्रगट होकर सम्यग्दर्शन में प्रथम... प्रथम... प्रथम... चौथे गुणस्थान में अभी तो। अभी तो सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। बाहर में बढ़ गया साधु, श्रावक और व्रतधारी। स्वरूपचन्दजी!

कहते हैं कि वीतराग भगवान... अपना स्वरूप वीतराग हों, (वे) वीतराग परमात्मा उनके पास रहे। वह वीतराग भगवान की भक्ति का भाव वह भी शुभभाव है। शुभभाव में मुझे हित होगा उसको मिथ्यात्व परिग्रह कहते हैं। समझ में आया ? वह नीचे लेंगे। ९१ में लेंगे, देखा। सचित परिग्रह मिथ्यात्व-रागादि। तीसरी लाइन है नीचे यहाँ। सचित परिग्रह मिथ्यात्वरागादि। वह सचित परिग्रह है अज्ञानी का। नीचे आयेगा ९१वीं गाथा में। सूक्ष्म बात है, भैया! अनन्त काल में निजस्वरूप की पकड़ (की नहीं) और परस्वरूप की पकड़ कभी छोड़ी नहीं। निजस्वरूप की पकड़ कभी की नहीं। क्योंकि अन्दर में—गहराई में अन्तर अभ्यन्तर में शुभराग का परिणाम और देहादि की क्रिया वह मैं आत्मा हूँ तो राग होता है। तो उसका अर्थ ऐसा हुआ कि आत्मा राग की खान है, निधान है, ऐसा देखा उसमें। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा तो वीतरागस्वरूप है। राग क्या आत्मा की खान में पड़ा है ? राग-द्वेष, दया-दान, व्रत-भक्ति का जो शुभाशुभ विकल्प वृत्तियाँ हैं, वह आत्मा में है नहीं। उसका द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं। एक समय की कृत्रिम अंश में विभाव उत्पन्न करता है, वह द्रव्य-गुण में नहीं है, ऐसा पर्याय में उत्पन्न करता है। वह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न करता है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को उत्पन्न होता है, वह कमजोरी से उत्पन्न होता है। मिथ्यादृष्टि तो प्रेम-रुचि से उत्पन्न करते हैं। आहाहा! बहुत अन्तर।

तो आचार्य महाराज कहते हैं। अर्थ में तो ऐसा लिया है **आनन्दस्वरूप को अंगीकार करके...** शब्द इतना लिया है। पाठ में आनन्दस्वरूप ऐसा 'परिग्रहं कृत्वा'

पाठ ऐसा है। भारी सूक्ष्म बात, भाई! अरे भगवान! वीतरागमार्ग। आहाहा! प्रथम श्रेणी की, पहली शुरुआत की वीतरागस्वरूप मेरा है। ऐसी चैतन्यस्वरूप परमानन्द भगवान, उसकी पकड़ करे बिना, उसका आश्रय लिये बिना उसको वर्तमान दशा में उसका आधार बनाये बिना उसको सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। आहाहा! जिसके आधार में ऐसा स्वीकार करे कि शुभभाव है, राग मन्द है, व्रतादि का परिणाम है तो मेरा कल्याण होगा। तो उसने अपना शुद्ध वीतराग का आधार राग की पर्याय को माना। समझ में आया नहीं? ऐई! नवनीतभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विवाद नहीं.. विवाद नहीं... यह शब्द सादी में सादी हिन्दी भाषा है। सादी में सादी हिन्दी भाषा। सादी हिन्दी भाषा है। मजा माने छुटकारा है। समझ में आया? सादे में सादी भाषा उसमें दखल की तुमने बीच में। यह सादी भाषा चलती है, एकदम सादी। इसमें कोई ऐसा नहीं। एकदम सादी। चलने दो। समझ में आया?

भगवान... यह तो सादी में सादी भाषा में कुछ अड़चन नहीं, ऐसी भाषा थी। उसमें तुमने वह बीच में गड़बड़ है अन्दर में या अभी लोगों के लिये ऐसा करना, वह तुम्हारी गड़बड़ निकली बीच में से। उनके भाई आये हैं न इतने व्यक्ति। समझ में आया? इतनी तैयारी करन। कभी यह जाये और कभी एकदम ले जाये, ऐसी बात नहीं है। ये हमारे देखो सेठ कहाँ से आये हैं? यह हमारे माणेकचन्दजी कहाँ से आये हैं। तुम तो यहीं सदा पड़े हो। क्यों माणेकचन्दजी! वह तो समझते नहीं। यह कहाँ से आया है? पूना से आया है, दूर से, लो! अब तुम तो यहाँ से आओ। वह भी अन्तिम एक दिन आओ एक आध दिन रहकर। यहाँ सब निर्णय करके चलो भाई वहाँ अब। समझ में आया? एक भी प्रतिशत नहीं। ... यहाँ सुनो अब यह बात अभी चलती है। इस बात में गड़बड़ हो गयी, देखो बात आड़ी चली गयी बीच में। अब दो दिन है न फिर तुम तुम्हारे तुम हो यहाँ सब। हो ही न, कहाँ नहीं सदा ही? रहना हो तो कौन इनकार करता है तुमको?

यहाँ कहते हैं, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के यह प्रतिनिधि हैं योगीन्द्रदेव। प्रतिनिधिरूप से जगत को कहते हैं। हे आत्मा! इसमें कुछ भाषा कठिन है? अन्दर ज्ञानानन्दस्वभाव चिदानन्द परमात्मा शुद्ध पड़ा है, उसकी पकड़ कर। अब पकड़ कर, उसमें कहाँ भाषा कठिन आयी? समझ में आया? उसकी अन्तर एकाग्रता कर कहो, पकड़ कर कहो, अपना स्वरूप इतना है, ऐसी मान्यता को बनाओ। तो तेरा आत्मा शुद्ध-स्वभाव, वह सम्यग्दृष्टि का परिग्रह है। उसके अतिरिक्त शुभ-अशुभराग, देहादि की क्रिया वह मेरी, मैं हूँ तो होता है अथवा वह राग आया, वह राग का मैं आधार हूँ। आधार समझते नहीं आधार? यह लकड़ी है, उसका आधार यह है, ऐसा मानते हैं या नहीं? ऐसा है नहीं। यह लकड़ी का आधार पुस्तक है, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं आचार्य। ऐई! लकड़ी में एक-एक परमाणु-परमाणु रजकण पड़ा है पृथक्। एक-एक परमाणु में छह कारक पड़े हैं स्वतन्त्र। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, आधार, अधिकरण। एक-एक रजकण अपने आधार से वहाँ रहते हैं। नीचे के कारण से नहीं। ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा! अरे! कभी दरकार भी की नहीं कि क्या चीज़ है? ऐसा हो गया—धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्योति ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मा निजानन्दस्वरूप है। उसमें उसका अनुभव करने में, धर्म करने में, प्रतीति करने में, जो शुभराग आया। दया, दान, व्रत का कषाय मन्द। वह है तो मुझे सम्यग्दर्शन होगा, ऐसे राग को आधार मानना और स्वभाव राग के आधार से प्रगट होता है, ऐसा मानना मिथ्यादृष्टि का परिग्रह उसके पास है। समझ में आया? आहाहा! ऐई! रतिभाई! आहाहा! परम वीतराग आनन्द अवस्था। आत्मा पुण्य-पाप का जहर विकार से भिन्न। आहाहा! शुभ-अशुभराग है, वह जहर है। लो, यह बराबर कहते हैं राजमलजी तो। जवान व्यक्ति। शुभ-अशुभराग है, वह जहर है, उससे पृथक् भगवान अमृत आनन्दकन्द है। तो अपना अमृत आनन्दस्वरूप का, यह जहर है तो अमृत प्रगट होगा, (ऐसा मानना) मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व परिग्रह है। वजुभाई! परिग्रह नहीं समझते? यह परिग्रह तुम्हारे धूल में वह नहीं। वह तो ममता में परिग्रह, यह तो समता का परिग्रह है। आहाहा! समता कहो या वीतरागभाव कहो। समझ में आया? आहाहा! उसने कभी दरकार की नहीं। ऐसे के

ऐसे अनन्त काल जैन के... यहाँ वेश नाम से तो बात करते हैं। जैन का साधु मुण्डन किया, अनन्त बार मुण्डन किया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, परन्तु मनमुण्डन किया नहीं। अर्थात् चैतन्य रागरहित मेरी चीज़ क्या है? उसका अन्तर में सम्यग्दर्शन से अनुभव कभी किया नहीं। और अनुभव बिना तेरी क्रियाकाण्ड सब चार गति में भटकनेवाली है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग दुनिया को रुचे नहीं, जँचे नहीं और उससे उल्टा मार्ग जँचे और सुलटा मार्ग आवे तो कहे, नहीं, यह नहीं। अरे! एकान्त हो गया। सुन तो सही। एकान्त हो गया कि तेरा एकान्त है सुन तो सही। तूने कभी सुना नहीं। वजुभाई!

भगवान आत्मा सम्यक् चिदानन्द की मूर्ति एकाकार अनन्त आनन्द का कन्द, ऐसी दृष्टि करके शुद्ध आत्मा की पर्याय के आनन्द में 'यह आनन्द वही आत्मा' ऐसे आनन्द को आनन्द में पकड़ करके ऐसा कहते हैं यहाँ तो। भाई! पर्याय कही है न? यहाँ तो पर्याय को 'परिग्रहं कृत्वा' शुद्ध स्वभाव उसकी प्रतीति, ज्ञान का अन्तर भान हुआ। वह शुद्ध पर्याय की पकड़ की, यह आत्मा। उसका नाम भगवान सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसका नाम अभी चौथे गुणस्थान अविरति सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तीनों काल, तीनों लोक में... भगवान आत्मा, चाहे... समझ में आया? कौन कहता था? उसका लक्ष्य सदा ही रहता होगा? कोई ऐसा पूछता था कल। समझ में आया? बहुतों को ऐसा कि यह सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए युद्ध-बुद्ध बन्द हो गया और बाहर की प्रवृत्ति में बैठ गया अकेला। यह प्रवीणभाई। प्रवीणभाई या कोई कहता था। लक्ष्य-लक्ष्य ऐसा कि यह सदा ही लक्ष्य ऐसा होगा? किसी ने कल प्रश्न किया था। हिम्मतभाई गाँधी। अब कभी आवे सुनने। चले गये न वे तो? चले जाए न, एक दिन आये हो कभी। आवे तो भी। या ऐसा सदा ही इसमें यह सब करना और वापस लक्ष्य रहे कि मैं आत्मा ज्ञानानन्द हूँ। कौन करता है? सुन तो सही।

यहाँ तो भगवान आचार्यदेव कहते हैं कि यह आत्मा परमात्मस्वरूप शुद्ध वस्तु है, उसकी दृष्टि हुई, तीन काल में, मैं दूसरी चीज़ नहीं। तीन काल में। देखो! मन, वचन, काय,... दूसरी मैं चीज़ ही नहीं। कृत, कारित, अनुमोदनाकर देखे, सुने, अनुभवे जो परिग्रह उनकी वांछा सर्वथा त्यागनी चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं न। यह कहाँ शब्द जाने देते हैं।

कहते हैं कि, एक समय में भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि करके तीन काल—भूत, वर्तमान, भविष्य। पूर्व में शुभभाव हुआ तो वह ठीक था। वह दृष्टि छूट गयी। छोड़ दे दृष्टि, कहते हैं। पूर्व में शुभभाव था तो पुण्य बँधा, शरीर मिला, सुनने में तो आया न? छोड़ दे दृष्टि, वह मिथ्यात्व परिग्रह है। सुनने से लाभ नहीं होता है, अपने स्वभाव के आश्रय से लाभ होता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, तीन काल में। भूत—गत काल, वर्तमान, भविष्य काल तीनों काल में शुभ-अशुभराग या देह की क्रिया मेरी नहीं। मेरी नहीं, वर्तमान नहीं; भूतकाल में हुई, वह मेरी नहीं; भविष्य में होगी पर की, वह मेरी नहीं। तीनों काल मन, वचन, काया। देखो। मन, वचन और काया वह मेरा नहीं, उसका कार्य मेरा नहीं। **कृत, कारित, अनुमोदनाकर,...** शुभ-अशुभराग करना छोड़ दिया, कराना छोड़ दिया, करे तो सम्मत होता है, वह छोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया?

देखे,... जितना पदार्थ देखने में आया। जितना सुनने में आया, जितना अनुभव में आया **जो परिग्रह उनकी वांछा सर्वथा त्यागनी चाहिए।** धर्मी जीव अपने स्वरूप की दृष्टि करके तीन काल—तीन लोक, मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदन। समझ में आया? उसको देखे, सुने अनुभवे सब विकल्प को 'अपना नहीं, अपना शुद्ध चैतन्य है'—ऐसी दृष्टि करके तीन काल के परिग्रह की ममता दृष्टि में से छोड़ देना। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

ये परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत हैं। भगवान आत्मा शुद्ध भगवान परमात्मा निजस्वरूप का अनुभव जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह अनुभूति से शुभ-अशुभ राग विपरीत है, देह आदि की क्रिया विपरीत है, जड़ का बन्धन विपरीत है। तीन काल—तीन लोक में सब विपरीत है। आहाहा! समझ में आया? **ये परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत हैं।** उल्टा है। अपना शुद्ध भगवान आत्मा की दृष्टि में वह सब परिग्रह अनुभूति अर्थात् सम्यग्दर्शन की वीतरागी पर्याय से रागादि पर्याय, देहादि की

क्रिया सर्वथा विपरीत है। आहाहा! सोभागभाई! आहाहा! अरे! मुश्किल से मनुष्यपना मिला। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग मुश्किल-मुश्किल से प्रथम सुनने में आता है। सुनने में मिले नहीं ऐसी चीज़। लगा दो, करो क्रियाकाण्ड करो, शुभ करो, पूजा, भक्ति करते-करते तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। मिथ्यात्व होगा। भाषा, भाव बहुत कड़क लोगों को लगता है। तीन काल, तीन लोक में यह चीज़ माने बिना तीन काल में तेरा हित कभी हुआ नहीं, होगा नहीं। समझ में आया? आज समझे, कल समझे, बाद में समझे। यह समझे, उसका सम्यग्दर्शन का कल्याण होगा।

क्या कहते हैं, देखो! ये परिग्रह... भगवान आत्मा शुद्ध वीतराग चैतन्य ज्योति उसकी अन्तरदृष्टि हुई तो सम्यग्दृष्टि को अपनी निर्मल पर्याय और निर्मल पर्यायवान पूर्ण आत्मा उससे पुण्य-पाप, विकल्प, तीन काल, कृत, कारित, अनुमोदना सब विपरीत दिखते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह ९० गाथा हुई। यह ९० गाथा हुई। थोड़ा कल चला था। थोड़ा आज आधा घण्टा हुआ, आधा घण्टा। आधा घण्टा हुआ न? ३५ मिनिट।

★ ★ ★

गाथा - ९१

आगे जो सर्वसंग के त्यागरूप जिनमुद्रा को ग्रहण कर फिर परिग्रह को धारण करता है, वह वमन करके पीछे निगलता है,... जैसे भोजन करके वमन कर दिया और बाद में लेना, इसी प्रकार जिसने बाह्य परिग्रह को छोड़ दिया, जिनमुद्रा धारण की श्रावक की या मुनि की। और फिर पुण्य-पाप के राग को और बाह्य चीज़ को अपनी है, ऐसा मानते हैं, वह परिग्रह को छोड़ा और फिर वमन ले लिया बाद में। छोड़कर ले लिया। यह कहते हैं, देखो! ९१।

२१८) जे जिण-लिंगु धरेवि मुणि इट्ठ-परिग्रह लेंति।

छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति॥ ९१॥

जो कोई साधु नाम धराकर, जिनलिंग वेश धारकर ग्रहणकर फिर भी इच्छित परिग्रहों को ग्रहण करते हैं, हे जीव, वे ही वमन करके फिर उस वमन को पीछे

निगलते हैं। अब, परिग्रह की व्याख्या करते हैं। बहुत समझने की चीज़ है। कितना परिग्रह, अपने स्वरूप से पर कितना परिग्रह है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं? अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्द भगवान वह अपना निज परिग्रह। उसके अतिरिक्त विकल्प से लेकर सब परिग्रह का कितना भेद है, वह परिग्रह की व्याख्या करते हैं। वह बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह छोड़नेयोग्य है, ऐसा बताते हैं।

भावार्थ :- परिग्रह के तीन भेदों में गृहस्थ की अपेक्षा चेतन परिग्रह पुत्र कलत्रादि,... गृहस्थ को पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, यह चेतन परिग्रह। उसको मेरा मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। जयन्तीभाई! भारी बात, भाई! चेतन पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब मेरा है। मेरा है। ऐसा गृहस्थी को पर परिग्रह को अपना मानना मिथ्यात्व है। निज परिग्रह वह नहीं। आहाहा! भारी बात, भाई! अचेतन परिग्रह आभरणादि,... गहने, पैसा, रुपये, नगद के जेवर, वह अचेतन परिग्रह है।

मुमुक्षु : मोटर तो आवे न उसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोटर अचेतन में आ जाये। मोटर कहाँ थी पहले? पहले मोटर थी नहीं न। पहले तो संचा आदि थे, विमान थे राजा के पास। समझ में आया?

अचेतन परिग्रह वह गृहस्थ को गहने, वस्त्र, वह 'मेरा' मानना, वह गृहस्थी को मिथ्यात्व का परिग्रह है। वह मैं नहीं; मैं तो शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। समझ में आया? और मिश्र परिग्रह आभरण स्त्री, पुत्रादि,... कुटुम्ब में, गृहस्थ में मिश्र परिग्रह किसको कहा? दागीना। दागीना समझे? जेवर, कपड़ा, स्त्री, पुत्रादि, वह मिश्र परिग्रह। सम्यग्दृष्टि इन तीनों में से एक को भी अपना मानते नहीं। समझ में आया? साधु की अपेक्षा सचित्त परिग्रह शिष्यादि,... यह शिष्य मेरे, ऐसी मान्यता। वह शिष्य चेतन का परिग्रह है उसको...

मुमुक्षु : शिष्य वह परिग्रह?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह है, परचीज परिग्रह है। अभी तो सूक्ष्म आयेगा उसमें से। अभी तो स्थूल बात करते-करते। अभी तो बाहर की बात करते हैं। आहाहा!

अरे! एक भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव की अन्तर दृष्टि को छोड़कर,

बाह्य जितना परिग्रह है, जितने प्रकार का, सब अपने स्वरूप से भिन्न है। आहाहा! भिन्न को अपना मानना, वही मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व का परिग्रह है। क्या करना? छोड़ देना? छूटा ही पड़ा है, कब घुस गया तेरे में? शिष्य, गृहस्थ को पुत्र-कलत्रादि, स्त्री आदि। जेवर और चेतन दूसरे शिष्य आदि। क्या घुस गये हैं तेरे आत्मा में? क्या उन चीजों ने आत्मा में प्रवेश कर दिया है? भिन्न-भिन्न है। पोपटभाई! भिन्न है, उसको अपना मानना, वही मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। भेदज्ञान बताते हैं। आहाहा!

अचित्त परिग्रह (साधु को) पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि... वह पुस्तक, अचित्त कमण्डल भी मेरी चीज़ है। वह तो पर है। मेरा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का है। आत्मा का है वह? वह तो अजीव का रजकण है। पुद्गल स्कन्ध की पर्याय है। उसे अपना मानना, वह भी मिथ्यात्व परिग्रह है।

मिश्र परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि सहित शिष्यादि... पिच्छी, कमण्डलसहित शिष्य जो है, वह मिश्र परिग्रह है साधु को। वह भी मेरा नहीं। साधु को मेरा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु वह मेरी चीज़ है। वह (पर) चीज़ मेरी नहीं। मैं पर से रहित। अपरिग्रही हूँ। आहाहा! साथ में दिखते हुए भी अन्तर में एकत्व नहीं। साथ में दिखते हुए भी अन्तर में एकपने का अभिमान मिथ्यात्व नहीं। और साथ में न दिखते हुए भी उसके बिना मैं न रह सकूँ, यह चीज़ मुझे मददगार है, मेरे आत्म शान्ति स्वभाव में यह बाह्य की चीज़ मुझे सहायक है—ऐसा मानना, वही मिथ्यात्व का बड़ा परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया?

अथवा... वह बाह्य की चीज़ कही। अब अन्दर में। **साधु के भावों की अपेक्षा सचित्त परिग्रह मिथ्यात्व, रागादि,...** वह शुभभाव, पुण्यभाव मेरा है, मुझे हितकर है। वह सचित्त परिग्रह मिथ्यात्व का साधु को लागू पड़ता है। समझ में आया? भारी बात, भाई! लिखा है उसमें? दिखाओ। लिखा है? **साधु के भावों की अपेक्षा सचित्त परिग्रह मिथ्यात्व, रागादि,...** विपरीत मान्यता और रागादिभाव, वह मेरा है। ऐसा साधु को मिथ्यात्व का परिग्रह है, उसको साधु कहते नहीं। समझ में आया? साधु को ये मेरा राग

है, वह परिग्रह छूट गया है। आहाहा! वह परिग्रह उसको छूट गया है तो अन्तर में एकाग्र होकर आनन्द का अनुभव करते हैं, तो उसको सम्यग्दृष्टि और साधु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भावों की अपेक्षा सचित परिग्रह मिथ्यात्व.... यह परिग्रह की व्याख्या है, हों!

अचित परिग्रह द्रव्यकर्म, नोकर्म... आहाहा! ये जड़कर्म हैं न आठ? जड़कर्म, वह अचेत परिग्रह है, जड़ है मिट्टी आठ कर्म। वह परिग्रह मेरा है, कर्म मेरा है, वह विपरीत मान्यता है। बहुत कठिन, भाई! समझ में आया? अचित कर्म और नोकर्म अर्थात् शरीर और वाणी। वह वाणी नोकर्म है, आत्मा नहीं। वाणी नोकर्म है, शरीर नोकर्म है, आठ कर्म द्रव्यकर्म है। वह परिग्रह है। उसकी पकड़ है कि यह मेरा है, तब अपनी चैतन्य की पकड़ सम्यग्दर्शन नहीं। और सम्यग्दर्शन में अपने शुद्ध आत्मा की पकड़ दृष्टि हुई, उसको यह पकड़ है ही नहीं। यह तो मेरे ज्ञाता का ज्ञेय है। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ पवित्र निर्मल मार्ग लागों को समझ में आना कठिन लगता है। ऐसा मार्ग होता है? ऐसा मार्ग है! तो कैसा मार्ग हो? यह तो ऐसे मार्ग की बात करते हैं। तूने सुना नहीं, इसलिए मार्ग दूसरा हो जायेगा? समझ में आया?

कहते हैं, वह मिश्र परिग्रह जड़कर्म और भावकर्म। आहाहा! आठ कर्म जड़ और राग-द्वेष अन्दर पुण्य-पाप का भाव होता है न दया, दान, व्रत का? वह भावकर्म है और जड़कर्म—दो होकर मिश्र। समझ में आया? वह मिश्र परिग्रह मेरा है। स्वरूप की खबर नहीं। चैतन्य भगवान् आत्मा परमानन्द की मूर्ति, उसकी दृष्टि का उसको अभाव है। समझ में आया? यहाँ तक तो ठीक है। थोड़ी यह बात नयी है। वह समयसार में नहीं। समयसार में २०-२१-२२ गाथा में टीका में यह सब बोल आते हैं। उसमें भी थोड़ा अन्तर है, इसमें और उसमें। समझ में आया? अब तो कहते हैं कि साधु को अन्तर में कर्म और राग मेरा है, ऐसी दृष्टि छूट गयी है। फिर भी थोड़ा अभी अस्थिर परिग्रह विकल्प का रहता है। आहाहा!

वीतराग त्रिगुणि में लीन ध्यानी पुरुष की अपेक्षा सचित परिग्रह सिद्धपरमेष्ठी

का ध्यान,... सुनो। सिद्ध परमेश्वर है, उनका ध्यान करना, वह विकल्प है। उस विकल्प को मेरा मानना, वह सम्यग्दर्शन नहीं। और सम्यग्दृष्टि जो है, अपने स्वरूप में अन्तर्मुख में नहीं है, तब सिद्ध परमेष्ठी का विकल्प ध्यान करते हैं। तो भी वह विकल्प है, वह परिग्रह है, चारित्र का दोष। समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्व नहीं, अज्ञान नहीं। क्योंकि राग से पृथक् अपने स्वरूप का भान है, देह की, जड़ की क्रिया से अपना स्वरूप भिन्न है। ऐसा अन्तर में अनुभव दृष्टि हुई है और स्वरूप में बहुत शान्ति... शान्ति... शान्ति... आ गयी है। परन्तु कहते हैं, जब तक वीतराग अवस्था का अन्दर भाव न हो, तब तक वह चीज़—विकल्प है न अन्दर? सिद्ध का विचार करूँ, यह भी एक विकल्प राग है, यह भी एक चारित्र का दोष है। समझ में आया? सिद्ध-सिद्ध ध्यान है। पुस्तक है या नहीं वजुभाई?

अकेला भगवान आत्मा ज्ञानज्योति चैतन्य प्रभु, कहते हैं कि भान हुआ। मैं राग से पृथक् हूँ, शरीर से पृथक् हूँ, मेरी क्रिया शरीर राग में है ही नहीं। मेरी क्रिया तो ज्ञानानन्द शुद्ध की है। परन्तु वह मुनि भी सिद्ध का जो ध्यान करे, विकल्प आता है इतना परिग्रह चारित्रदोष है। वह छोड़े बिना वीतरागदशा नहीं होती। अरे! कोई पढ़े नहीं, विचारे नहीं। माणेकचन्दजी! यह सब पुस्तक बहुत पढ़े हमेशा। क्या कहलाये? तुम्हारी बहियाँ। बहीखाता। कितना लेना है? कितना देना है? पाँच लाख की पूँजी में कितना आयेगा, कितना आया नया? धूल में कितना आया और धूल में कितना गया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरा स्वभाव का शरीर, राग, पुण्य से पृथक् भान किया तो सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु जब तक अभी सिद्ध का ध्यान में—विकल्प रहे, तब तक वीतराग अवस्था नहीं होती। समझ में आया? तो वीतराग अवस्था की अपेक्षा से सिद्ध का विकल्प भी राग और परिग्रह है। भारी बात, भाई! उसमें देखो। सिद्ध परद्रव्य है न? स्वद्रव्य नहीं। वह परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य करते हैं तो राग ही आता है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव होता है, परन्तु है वह परिग्रह, इतना दोष है। मिथ्यात्व का नहीं? चारित्रदोष है चारित्र। अपनी वीतरागदशा में कमी है, भान अन्तर चिदानन्दस्वरूप का सम्यग्दर्शन पकड़ हो गया है और स्वरूप में स्थिरता की शान्ति भी बढ़ गयी है। परन्तु

पूर्ण वीतराग में इतना सिद्ध का लक्ष्य रहकर विकल्प आता है, वह स्वरूप की स्थिरता को रोकता है। आहाहा! कहाँ तक परिग्रह की व्याख्या? समझ में आया? पैसा, मकान, कपड़ा, स्त्री, परिवार, कर्म और पुण्य-पाप का भाव, उसके परिग्रह से दृष्टि छोड़कर स्वरूप में शुद्धता का भान हुआ, तो भी जब तक शुभभाव महाव्रत का आता है, वह भी उसको परिग्रह है, परन्तु वह चारित्र्य का दोष है और सिद्ध का विकल्प ध्यान का आता है, वह राग है, इतना भी चारित्र्यदोष है। गजब बात, भाई! आहाहा!

यह सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान-विकल्प होता है, इतना भी दोष है, कहते हैं। मिथ्यात्व नहीं। वह राग अपना स्वरूप है, राग से लाभ होता है, वह दृष्टि नहीं। समझ में आया? परन्तु अपना निजस्वरूप का लक्ष्य छोड़कर... आश्रय दृष्टि में है, सम्यग्दृष्टि को और सच्चे मुनि को अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि है। शुभविकल्प पर दृष्टि नहीं। तथापि स्वरूप की अस्थिरता के कारण सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करने का विकल्प आया। तो कहते हैं कि इतना भी दोष है, (ऐसा) स्वीकार करना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्णता तो केवलज्ञान में हुई। राग होता है। यह विचार आयेगा बाद में। यहाँ तो सिद्ध का विचार करना, वह विकल्प है। बाद में छह द्रव्य का विचार करना, वह भी विकल्प है, वह बाद में आयेगा। समझ में आया? यह बात ऐसी है, भाई! उसने कभी अन्तर में लक्ष्य दिया ही नहीं। आहाहा! यह पुस्तक अभी का है नहीं। ९०० वर्ष पहले योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त ने बनाया है और पश्चात् टीका बनायी है। टीका में यह अर्थ भरा पड़ा है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-केवलज्ञान नहीं। तो राग आता है, परन्तु राग से लाभ है, ऐसी मान्यता नहीं। और मुनि को स्वरूप की दृष्टि आनन्द हुआ है। अखण्डानन्दकन्द में हूँ, वह राग की क्रिया मेरी नहीं। फिर भी सिद्ध आदि पंच परमेष्ठी का ध्यान का विकल्प आता है, उस विकल्प को दोष समझते हैं। समझ में आया? उस विकल्प का दोष (का) अभाव करते हैं, तब वीतराग अवस्था होती है। परन्तु कोई ऐसा समझ ले कि विकल्प आया, वह मेरे स्वभाव में मदद करता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक मूँग की दो फाड़....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक पिता के दो पुत्र होवे तो पूरा बाँट ले। पूरा बाँटे, बापू! वरना विवाद उठेगा। यहाँ तो भगवान भेदज्ञान। 'भेदज्ञान साबु भयो समरस निर्मल नीर, धोबी अंतर आत्मा धोवे निजगुन चीर।' समझ में आया? आता है या नहीं? समयसार नाटक में आता है। 'भेदज्ञान साबु भयो समरस निर्मल नीर, धोबी अंतर आत्मा धोवे निजगुन चीर।' जितना शुभाशुभराग होता है, वह मैल है; मेरी चीज़ निर्मलानन्द भगवान है—ऐसे अपने गुण की एकाग्रता करके मैल को धो देते हैं। समझ में आया? वह धोबी अन्तर आत्मा। जिसको राग से, पुण्य से, शरीर से भिन्न आत्मा का भान हुआ और शुद्ध आनन्दकन्द में हूँ—ऐसा भान अन्तर में हुआ, वही अन्तर आत्मा धोबी मैल को टाल सकता है।

तो कहते हैं कि सिद्ध परमेष्ठी का विकल्प भी... बाद में अचित परिग्रह आयेगा, लो। अचित परिग्रह में छह द्रव्यों का विचार करना, वह भी अचित परिग्रह है। वह विकल्प अचित सन्मुख से हुआ न तो वह भी राग है। यह सूक्ष्म बात आयेगी। उसको भी छोड़कर स्थिर होना। अन्यथा ज्ञानी को इतना राग भी दोष है, ऐसा समझ में आता है, यह भी लाभकर्ता है नहीं। विशेष आयेगा....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ शुक्ल १, सोमवार, दिनांक २१-०२-१९६६
गाथा - ९१, प्रवचन - १३५

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है। ९१ गाथा। परिग्रह की व्याख्या है। परिग्रह कितने प्रकार का है? सब परिग्रह में कितने परिग्रह तो दोष के निमित्त है और कितने परिग्रह दोषस्वरूप है। क्या कहते हैं? अपना आत्मा शुद्ध वीतराग चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप से बाहर की चीज़ शुभविकल्प हो कि अशुभराग हो, वह भी परिग्रह ही है। अपनी चीज़ नहीं। समझ में आया? और कर्म, शरीर वह बाह्य दोष का निमित्त है, वह भी परिग्रह है। तो कहते हैं कि जितने प्रकार का परिग्रह है, इतने अन्तर में से सम्यग्दृष्टि को शुभ-अशुभराग का परिग्रह अपना है, ऐसा छोड़ दिया है। मुनि होकर बाह्य परिग्रह छूटा हो, परन्तु अन्तर में शुभ और अशुभराग और उसका बाह्य (निमित्त) दूसरा पदार्थ में ममता जो करता है तो वह जिनलिंग धारण करके वमन किया, (उसे) फिर लिया ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

कितना परिग्रह का त्याग बताया है, देखो! नवनीतभाई! शरीर परिग्रह, द्रव्यकर्म जड़ परिग्रह, स्त्री, पुत्रादि परिग्रह एक, शुभ-अशुभ भावकर्म, वह भी परिग्रह। समझ में आया? और यहाँ तो वहाँ तक आया। देखो, कि भगवान् आत्मा अपना वीतरागस्वरूप शुद्ध चिदानन्द को छोड़कर सिद्ध का भी ध्यान करे तो वह भी एक विकल्प परिग्रह है। समझ में आया? क्योंकि वह भी एक दोष है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है, विकल्प है, दोष है, इसलिए परिग्रह कहा। समझ में आया?

आत्मा वह तो शुद्ध चिदानन्द की वीतरागस्वरूप मूर्ति आत्मा है। उसकी दृष्टि में अपने स्वभाव के आश्रय के अतिरिक्त दूसरी सब चीज़ तो परिग्रह है ही, परन्तु अपना

स्व-आश्रय छोड़कर सिद्ध परमात्मा का लक्ष्य (किया) । सिद्ध परद्रव्य है । सिद्ध का भी लक्ष्य करके उसका ध्यान करना, वह भी एक विकल्प का दोष है, परिग्रह है । आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्त काल में उसने अपनी चीज़ क्या है और अपनी चीज़ से बाह्य और अभ्यन्तर, अपनी चीज़ से भिन्न बाह्य और अभ्यन्तर क्या है ? उसका अन्तर में भेदज्ञान-बोध किया नहीं । सोभागभाई ! बाहर की चीज़ तो कहाँ रह गयी । पुत्र, कलत्र, वह तो कहीं धूल रह गयी बाहर । आहाहा !

भगवान ! तेरी चीज़ तो... कहा था न पहले आ गया था । 'वीतराग परमानन्द परिग्रह' तेरी चीज़ तो स्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान, वह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, परद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई वासना, उससे रहित, अकेला चिदानन्द भगवान अनन्त गुण का प्रभु, वही तेरा परिग्रह, वही पकड़नेयोग्य है, वही दृष्टि करनेयोग्य है, वही आश्रय करनेयोग्य है और वही तेरी चीज़ है । निहालभाई ! गजब बात, भाई ! यहाँ तो कहते हैं कि जितने प्रमाण में जिसने अपना स्वभाव का आश्रय करके पुण्य-पाप आदि छोड़ दिया और फिर अंगीकार करता है, वह वमन को अंगीकार करता है, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! वमन कुत्ता खाता है । भोजन करते हैं न मनुष्य । उल्टी होती है न वमन ? उल्टी कहते हैं, भैया ? उल्टी । अन्दर गया तो उल्टी होती है, अन्दर जाये वह सुल्टी, बाहर निकले वह उल्टी ।

तो कहते हैं, अपना शुद्ध चैतन्य प्रभु अनन्त वीतराग मूर्ति आत्मा की दृष्टि करके फिर विकल्प रागादि मेरा है, ऐसी मान्यता है, वह वमन कर दिया । उस चीज़ को अंगीकार करते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? ये तो वीतरागी मार्ग है । वह अनन्त काल में उसको अन्तर में समझ में आया नहीं । बाहर से मान ले लोग अपनी क्रियाकाण्ड से और बाहर से । वह चीज़ नहीं । समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि मुनि होकर भी सचित शिष्यादि वह मेरे हैं, ऐसी कल्पना करे और माने कि मेरा ही है । मिथ्यात्व का परिग्रह पकड़ लिया है उसने । परद्रव्य अपना स्वद्रव्य का कभी तीन काल में होता नहीं । समझ में आया ? और उपकरण आदि जो है, वह भी मेरा मानते हैं तो वह चीज़ पर है । निमित्तरूप से, दया के विकल्प में वह निमित्तरूप है, फिर भी अपने स्वभाव का अधिकपना दृष्टि में न रखकर उसका अधिकपना दृष्टि में आ जाये (कि) वही चीज़ ही

मेरे धर्म का साधन और वही धर्म का कारण है, तो पकड़ लिया परवस्तु को। समझ में आया? आहाहा! उसका नाम ही मिथ्यात्व का परिग्रह कहते हैं। मूलचन्दभाई! गजब बात, भाई!

यहाँ तो वहाँ तक आया है। बाह्य तो परिग्रह है ही, परन्तु अभ्यन्तर में भगवान् आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव का आश्रय, लक्ष्य छोड़कर अकेले सिद्ध का ध्यान करे, विकल्प आते हैं, वह मेरी चीज़ है, ऐसा मान ले तो मिथ्यात्व का परिग्रह है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा सिद्ध परमात्मा का लक्ष्य आता है—विचार करता है (कि) ऐसे सिद्ध हैं, वह भी विकल्प चारित्र का दोषरूप परिग्रह है। कहो, सोभागभाई! बाहर के पैसे इसके अतिरिक्त तो अन्दर में घुस गया। आहाहा! अरे! कभी सुना नहीं उन्होंने। चैतन्य प्रभु निर्विकल्प अनाकुल आनन्दकन्द स्वरूप उसके अतिरिक्त दूसरा परिग्रह बाह्य की चीज़ तो है ही। परन्तु सिद्ध का विकल्प हुआ, परमात्मा का मैं ध्यान करता हूँ। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... और उसका ही एकान्त आश्रय हो जाये कि मुझे उसके आश्रय से धर्म होगा। तो मिथ्यात्व का परिग्रह है उसको। ऐई! मूलचन्दजी! मूलचन्दभाई और मूलचन्दजी दोनों साथ में बैठे हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो योगीन्द्रदेव परमात्मप्रकाश का वर्णन करते हैं कि परमात्मप्रकाश अपना निजस्वरूप आनन्द अनाकुल शान्तरस, पुण्य-पाप का रागरहित ऐसी चीज़ का लक्ष्य और आश्रय छोड़कर अकेले सिद्ध परमात्मा में लक्ष्य करूँ, उनका ध्यान करूँ तो मेरे आत्मा का ध्यान हो जायेगा—ऐसा पर का आश्रय करके आत्मा का ध्यान हो जायेगा, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व का परिग्रह है। समझ में आया? और ऐसा माने नहीं तो अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य की दृष्टि रखकर उसमें स्थिर न हो तो सिद्ध परमात्मा की स्मृति आदि का विचार आता है तो वह चारित्र का दोष का परिग्रह है। परन्तु वह भी परिग्रह है। आहाहा! वह भी दोष निकालने से आत्मा में निष्परिग्रहता वीतरागतारूपी निष्परिग्रहता आती है। आहाहा! रतनलालजी! बहुत सूक्ष्म भैया यह तो। आहाहा!

मुमुक्षु : पकड़ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ता नहीं, परन्तु है दोष। दोष पकड़कर आत्मा को लाभ

माने, तब तो मिथ्यात्व परिग्रह हो गया। सुनो। अपना स्वचैतन्य भगवान्, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और केवलज्ञान सब शुरुआत से पूरा अपना पूर्णानन्द भगवान् शुद्ध अखण्ड एक ज्ञायक, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से ही चारित्र होता है, उसके आश्रय से ही शुक्लध्यान होता है, उसके आश्रय से ही केवलज्ञान होता है। उसके अतिरिक्त—अपने आश्रय के अतिरिक्त, दूसरा आश्रय लक्ष्य में आकर उससे मुझे धर्म का लाभ होगा... (ऐसा मानना मिथ्यात्व है)।

कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि वह विकल्प तो है, परन्तु अपने ज्ञान की क्षयोपशम दशा है। उसके आश्रय से मुझे लाभ होगा, ऐसी मान्यता भी मिथ्यात्वदशा की मान्यता है। समझ में आया? क्या कहा? कि यह वस्तु भगवान् आत्मा है, पदार्थ चैतन्य वस्तु, अनन्त गुण की राशि-पिण्ड। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' सिद्धस्वरूप अपना। उसके अतिरिक्त थोड़ा भी परद्रव्य के आश्रय से मेरे सम्यग्दर्शन होगा, वह मिथ्यात्व है। उसके अतिरिक्त थोड़ा भी परद्रव्य के आश्रय से महाव्रत आदि का विकल्प आया, उससे मेरे चरित्र होगा, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादर्शन, वही परिग्रह, वही परिग्रह। दूसरा परिग्रह क्या? उसने पकड़ की, उसका नाम परिग्रह। पकड़ लिया। मुझे पहले कषाय की मन्दता हो तो मुझे सम्यग्दर्शन, आत्मदर्शन होगा, वही मिथ्यात्व का परिग्रह है। स्व-आश्रय लिया और सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में विकल्प आया पंच महाव्रतादि चारित्र लेने को। समझ में आया? तो विकल्प लिया और उससे ऐसा मान ले कि विकल्प हुआ तो मुझे चारित्र होगा। वमन कर दिया, ऐसा कहते हैं। जो स्व का आश्रय लिया था, पर का आश्रय छोड़ा था, वह पर का आश्रय फिर लिया (तो) उसने वमन को ले लिया फिर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्यों, डॉक्टर-बॉक्टर नहीं आये? सोते होंगे। वहाँ क्यों बैठे? ऐई! डॉक्टर! समझ में आया? तो इतने देर से क्यों आते हो? रेल में पहले बैठते हैं या नहीं? टाइम से पहले जाते हैं या नहीं? मूलचन्दजी! (गाड़ी) छूट जाती है। आहाहा!

योगीन्द्रदेव भगवान परमात्मा का रहस्य खोलते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा अपना स्वस्वभाव का आश्रय करके 'भूदत्थमस्मिदो खलु' भाई ! उसके ऊपर यह पूरी बात है। आहाहा ! एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वरूप के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। उसके अतिरिक्त ऐसा मानना कि निमित्त से मुझे होता है सम्यग्दर्शन धर्म। शुभविकल्प कषाय मन्द हुआ, मैं कषाय मन्द की क्रिया करता हूँ तो उससे मुझे सम्यग्दर्शन होगा।

मुमुक्षु : आगे लिखा है साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन निमित्त का साधन। यह साधन निश्चय करे तो उसको व्यवहार साधन का आरोप देते हैं। अभूतार्थ साधन को साधन व्यवहारनय कहते हैं। सच्चे साधन को साधन निश्चयनय कहते हैं। आहाहा ! सेठिया ! आहाहा ! स्व-आश्रय लिया और फिर विकल्प आया भक्ति का, व्रत का आदि वह भी दोष है, वह भी परिग्रह है, परन्तु स्वआश्रय की दृष्टि हो तो मिथ्यात्व नहीं है, चारित्रदोष है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रथम जिनलिंग। मेरे तो जिनलिंग का अर्थ वीतराग दृष्टि आयी। अन्तर लिंग, भाई ! जिनलिंग उसे ग्रहण करे अज्ञानी। जिनलिंग का अर्थ दो प्रकार का है। एक जिनलिंग वीतरागस्वरूप आत्मा, वह जिनलिंग है; एक बाह्य जिनलिंग वेश नग्नपना आदि बाह्य द्रव्यलिंग है। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप चैतन्य प्रभु की दृष्टि करके, फिर राग से लाभ होता है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यात्व को छोड़ दिया था, फिर ले लिया। समझ में आया ? और आगे बढ़कर शुभ शिष्य आदि हुए, महाव्रत का विकल्प आया, वह शिष्य है तो वह मेरे धर्मी की वृद्धि होती है। प्रभावना बहुत होती है और बहुत शिष्य हो और बहुत हो तो उससे धर्म की पर्याय उससे होती है, तो मुझे लाभ होगा। तो पर की पर्याय में से मुझे लाभ होगा, उसने मिथ्यात्व का त्याग किया था, पर से मेरे लाभ नहीं, फिर भी उससे पर्याय उसकी हुई, उससे मुझे धर्म का लाभ होगा, उसने फिर से मिथ्यात्व का परिग्रह ग्रहण कर लिया। सेठिया ! आहाहा ! समझ में आया ? और ऐसा मिथ्यात्व परिग्रह छोड़ दिया स्वद्रव्य के आश्रय से। वह शिष्य मेरा नहीं, परन्तु इतना ममत्व कि

मेरा शिष्य है, ऐसा विकल्प आया, तो विकल्प भी दोष है। तो वह दोष चारित्र का है। उस दोष को दोष न स्वीकारे और लाभ स्वीकारे तो मिथ्यात्व का परिग्रह हो जाता है। ऐई! भीखाभाई! गजब बात, भाई! जमुभाई, क्या है इसमें? क्या करना? आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग क्या है? वीतराग का मार्ग वीतरागता से शुरू होता है। उसको छोड़कर यहाँ तो कहते हैं (कि) ज्ञानी भी जितना स्व-आश्रय छोड़कर, सिद्ध का आश्रय लेकर विकल्प होता है, उसने अपने स्व-आश्रय से लाभ मानना नहीं छोड़ा, परन्तु पर के आश्रय में जरा विकल्प आया, वह राग का दोष है। दृष्टि में है तो वह भी आश्रय छोड़ूँ, स्व का उग्र आश्रय लूँ तो मेरी वीतरागता होगी। समझ में आया? आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सत्य ही ऐसा है। सत्य ही ऐसा है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जैसा है, ऐसा वीतराग ने जाना है, जाना ऐसा वाणी में आया है, आया है, ऐसा है। दुनिया कल्पना करे तो उससे दूसरी चीज़ हो जाती है? आहाहा! एक बात।

दूसरी बात। **अचित परिग्रह पुद्गलादि पाँच द्रव्य का विचार...** भगवान आत्मा अपने स्व-आश्रय की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि जब तक पाँच द्रव्य पुद्गल, परद्रव्य पुद्गल परमाणु से लेकर अनन्त स्कन्ध। समझे? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, वह अचेत के विकल्प विचार रहते हैं। वह भी विकल्प का ही एक परिग्रह है। यह भी एक दोष है। मैं परद्रव्य का विचार करूँ तो मेरे स्वद्रव्य को लाभ होगा, वह भी मिथ्यात्व का परिग्रह है, परन्तु परद्रव्य का आश्रय लेकर भी स्वद्रव्य का आश्रय से लाभ है, ऐसी दृष्टि रखकर परद्रव्य का आश्रय आया तो कहते हैं कि इतना राग का दोष, चारित्र का दोष तो है ही।

ओहोहो! 'वचनामृत वीतराग के परमशान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' नपुंसक। शास्त्र में चला है समयसार में। कि कोई भी प्राणी सामायिक की प्रतिज्ञा लेकर। समता वीतरागभाव तो अपने आश्रय से उत्पन्न होता है।— ऐसा न मानकर संक्लेश परिणाम अशुभ को तो छोड़ दिया और शुभ कषाय की मन्दता

को आदर किया और उसको छोड़कर वीतराग स्वभाव का ग्रहण न किया तो वह शुभ परिणाम छोड़ने में वह नपुंसक है। समयसार में लिया है। पुण्य अधिकार में। दो जगह लिया है। एक अजीव अधिकार में और एक पुण्य (-पाप) अधिकार में। संकल्प-विकल्प जो होता है, वह अजीव अधिकार में लिया है कि मेरा है, ऐसे मानता है, वह मिथ्यादृष्टि नपुंसक है। उसका वीर्य स्वभाव-सन्मुख रागरहित में काम न लिया, उसका वीर्य पर का विकल्प राग की मन्दता से मुझे लाभ होगा ऐसा वीर्य को बालवीर्य, नपुंसकवीर्य, हीजड़ा का वीर्य उसको कहते हैं। शास्त्रकार तो कड़क भाषा करते हैं। समयसार में, समयसार में, हों! समझ में आया? अजीव अधिकार में है और पुण्य-पाप के अधिकार में है। अजीव में है न? कितने में? ४४। ४४ में आता है न? अन्तिम। ४६ पृष्ठ। 'इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए...' ४३ गाथा है। ३९ से ४३। जीव अधिकार है। भगवान् आत्मा चैतन्य का लक्षण रागरहित ज्ञाता ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञान के लक्षण से आत्मा जाना जाता है। ऐसे न जानकर नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... आत्मा को नहीं जाननेवाले अज्ञानीजन बहुत प्रकार से पर को आत्मा कहते हैं। बकते हैं। शुभराग आया, दया, दान, विकल्प का राग आया, वह मैं आत्मा हूँ—ऐसा माननेवाला मूढ़, नपुंसक है। दिगम्बर सन्त थे। उनको लोगों के पास चन्दा नहीं करवाना था। नवनीतभाई! भाई! चन्दा-बन्दा करना तो उसे प्रसन्न रखना। प्रसन्न रहे न रहे, उसके घर में रहा। दुनिया को प्रसन्न करना और दुनिया से प्रसन्न रहना, दोनों दोष हैं।

वह तो कहते हैं कि अरे आत्मा! अपना भगवान् आत्मा उसका ज्ञानलक्षण से वह आत्मा जाना जाता है। ऐसा उसका लक्षण है। फिर ऐसे आ गया कि वह राग आया, मन्द राग दया, दान, व्रत, भक्ति, उसको आत्मा का सम्यग्दर्शन होगा। तो राग को छोड़ने में, श्रद्धा में से छोड़ने में तेरा वीर्य नपुंसक हो गया है। समझ में आया? और एक पुण्य-पाप के अधिकार में है। वहाँ ही आया। लो, यह पृष्ठ आया। (गाथा) १५४ भाई! १५४ समयसार। जो (सामायिक) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थभूत ज्ञान के भवनमात्र है, एकाग्रतालक्षणयुक्त है और समयसारस्वरूप है उसकी—प्रतिज्ञा लेकर भी,... प्रतिज्ञा लेते हैं कि हमारे समताभाव सामायिक चाहिए। लेकर भी, दुरन्त

कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता के कारण... नामर्द के कारण ऐसा। दोनों के शब्द तो एक ही हैं, भाई! संस्कृत में भाई! 'क्लीब' है 'क्लीब'। दोनों में शब्द तो 'क्लीब' है। 'क्लीब' का अर्थ नपुंसक है। यहाँ किया नामर्दाई, वहाँ कहा नपुंसक। पाठ में तो 'क्लीब' है। समझ में आया? अपना वीतरागस्वरूप शुद्ध चैतन्य को पहुँच न सका और शुभराग मन्द से मुझे अन्तर आत्मा में समता होगी। सामायिक मेरी शुभराग विकल्प स्मरण करूँ भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... उससे मुझे सामायिक होगी। तो शुभराग छोड़ने में उसका वीर्य नामर्दाई—नपुंसक हो गया है। मूलचन्दभाई! आहाहा! यह १५४ गाथा है। वह ३९ से ४३ गाथा है, उसमें वह लिखा है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में बसनेवाले। संस्कृत टीका में लिया है। दुनिया प्रसन्न रहो, न रहो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। सत्य का रहस्य खोल देना, वही सन्तों का काम है। समझ में आया? दुनिया प्रसन्न रहे या समाज को वह सब आता रुचे या न रुचे, उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। वैद्य ऐसे नहीं बाँधते कि उसको मीठी औषधि देना। उसका रोग मिटे, ऐसी दवा कड़वी लगे तो परन्तु वह दवा देना। मीठी न लगे तो क्या? भाई! हलुआ खिलाओ हलुआ। कफ हो गया न, कफ हो गया। समझ में आया?

एक बार बुखार आया था न बुखार बहुत। तब दवा बतानेवाला आया। कोई कहे कि उसको नीम का गिलोय। गिलोय होती है न गिलोय? नीम की गिलोय। तुम तो वैद्य हो तो खबर है न। गिलोय होती है। तो उसको गिलोय दो, कोई कहे कि नीम का पत्ता घिसकर दो, कोई कहे कि ऐसे कालीजीरी दो, कोई कहे कि ऐसा दो। एक व्यक्ति आया तो कहे उसको हलुआ दो। कफ पड़ा था। तो उसका लक्ष्य करके (कहा), वह क्या कहते हैं? हलुआ कहते हैं मरने का तेरे। मर जायेगा हलुआ खाकर। मरने की दवा। कफ चढ़ा है और हलुआ खाना है तुझे? ऐसे अज्ञानी को भगवान आत्मा मार्ग कहते हैं कि राग से रहित अपना ... आश्रयरहित तेरे धर्म तीन काल में नहीं होगा। दूसरा भाभा जैसा मिल जाये। भैया! राग करते, मन्द करते-करते कल्याण हो जायेगा। भाई क्या कहते हैं? वह मरने को कहते हैं, तेरी जिन्दगी निरर्थक जायेगी, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! हाँ, यह सही बात भाई, हों! यह रुचे वह सही। हाँ। कड़वी दवा। परन्तु कड़वी दवा बिना कफ छूटे नहीं। समझ में आया?

भगवान आचार्य कहते हैं अरे! आत्मा! तेरा स्वद्रव्य आश्रय छोड़कर सिद्ध का भी ध्यान करके विकल्प में लाभ माना कि उसका करते... करते... करते... करते... हम अन्दर में जायेंगे। वह तो मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व भाव है। भले नग्न मुनि हो या ध्यान करनेवाला गृहस्थ श्रावक हो, परन्तु परद्रव्य के आश्रय से स्वद्रव्य को लाभ होगा, ऐसी मान्यता को मिथ्यात्व का परिग्रह कहते हैं। यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि मुनि को सच्चा ध्यान आनन्द आता है। अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, आनन्द का अनुभव। क्षण में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, क्षण में विकल्प आता है। वह विकल्प जरा आया, उसमें सिद्ध का विचार हुआ, परन्तु वह विचार भी उसको तो विकल्प परिग्रह अर्थात् दोष है। आहाहा! समझ में आया? छठवें गुणस्थान में सप्तम में से ध्यान में से निकलकर बाहर आया और पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प उठा, वह है दोष। उस दोष को परिग्रह जानना चाहिए और उसे छोड़े तो वीतरागता अब होगी। उसके कारण से वीतरागता होगी नहीं। ऐसे मुनि सन्त अन्तर में जानते हैं। अज्ञानी को उस बात की खबर नहीं।

तो सिद्ध का ध्यान और परिग्रह, अचित्त परिग्रह पुद्गलादि पाँच द्रव्य का... देखो न! आकाश, बड़ा आकाश ऐसा विचार करते हैं। धर्मास्तिकाय ऐसा है और अधर्मास्तिकाय ऐसा है, ऐसे पाँच द्रव्य जो अचेत। उसका विचार करने से। कोई कहते हैं न कि परमाणु का। भाई! आ गया न प्रश्न? उसमें आया। परमाणु का विचार करने से आत्मा का विकल्प नहीं? प्रश्न पहले आ गया। वह परमाणु अर्थात् द्रव्य परमाणु आत्मा। ऐसा आया है पहले। आया या नहीं? कहाँ आया? ऐई! कहाँ आया है परन्तु पृष्ठ निकलाकर बताओ तब खबर पड़े न। ये देखते हैं हमारे चन्दुभाई देखते हैं। यह पुद्गल परमाणु की बात है न। नहीं, तत्त्वार्थसूत्र में वह नहीं है। १६९ पृष्ठ। दूसरे का? दूसरे का या पहले का? दूसरे की ३३वीं गाथा। ठीक। हाँ बराबर है। ३३ गाथा है। देखो!

यह कथन श्रीगुरु ने कहा, तब प्रभाकर भट्ट ने पूछा कि हे प्रभो!... महाराज! तुम तो पुद्गल का ध्यान छोड़ने को कहते हैं और अपने आत्मा की दृष्टि करना और

ध्यान करने को कहते हैं। तुमने कहा कि जो शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही मोक्ष को पाते हैं, दूसरा नहीं। तथा चारित्रसारादिक ग्रन्थों में ऐसा कहा है, जो द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करें, वे केवलज्ञान को पाते हैं। शिष्य का प्रश्न है। द्रव्य रजकण परमाणु, भावपरमाणु वह परमाणु की पर्याय रंग, गन्ध की उसका ध्यान करने से मोक्ष, वह शिष्य का प्रश्न है। इस विषय में मुझकों सन्देह है। तब श्री योगीन्द्रदेव समाधान करते हैं—द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता और भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता कही गयी है। उसमें पुद्गल परमाणु का कथन नहीं है। पुद्गल की बात यहाँ है ही नहीं। द्रव्यपरमाणु कहते हैं। देखो, तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में भी ऐसा कथन है, द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता... सूक्ष्म चैतन्य भगवान् आत्मा निराकुल अखण्ड आनन्द द्रव्य उसका नाम द्रव्य परमाणु है। समझ में आया? जड़ परमाणु का विकल्प विचार, वह राग है। आहाहा! गजब बात, भाई! है या नहीं? ऐई! इसमें यह बात पहले आ गयी है।

भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता समझना, अन्य द्रव्य का कथन न लेना। तत्त्वार्थसूत्र में भी पूज्यपादस्वामी ने संस्कृत टीका बनायी। द्रव्य परमाणु अर्थात् रजकण न लेना। परद्रव्य का लक्ष्य करके ध्यान आता है तो वह विकल्प ही आता है, राग है। आहाहा! समझ में आया? अपना द्रव्य परमाणु अर्थात् सूक्ष्म... सूक्ष्म... सूक्ष्म... स्वभाव। द्रव्य-द्रव्य। वह महान् अनाकुल द्रव्य अखण्ड अरूपीकन्द प्रभु स्वरूप अरूपी द्रव्य, उसको यहाँ द्रव्य परमाणु का लक्ष्य करना, ध्यान करना—ऐसा कहा है। रजकण का ध्यान करना, ऐसा शास्त्र में कहा नहीं।

भावपरमाणु में निज द्रव्य तथा निज गुण पर्याय का ही कथन है, अन्य द्रव्य का प्रयोजन नहीं है। द्रव्य अर्थात् आत्मद्रव्य उसकी सूक्ष्मता, वह द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। वह रागादि विकल्प की उपाधि से रहित है, उसको सूक्ष्मपना कैसे हो सकता है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया। उसका समाधान इस तरह है कि—मन इन्द्रियों के अगोचर होने से सूक्ष्म कहा जाता है, तथा भाव (स्वसंवेदनपरिणाम) भी परमसूक्ष्म हैं,... वह भाव सूक्ष्म क्या? वस्तु जो है, वह तो द्रव्यसूक्ष्म आत्मा वीतरागी स्वरूप त्रिकाल। परन्तु उसका वीतरागी वेदन हुआ, यह पुण्य-पाप के राग से रहित शान्ति और सम्यग्दर्शन में

वेदन हुआ, अरूपी उसका अर्थात् भाव सूक्ष्म परमाणु कहते हैं। है उसमें, है या नहीं? आहाहा! समझ में आया?

वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं, वहाँ मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं हैं, इसलिए सूक्ष्म है। ऐसा कथन सुनकर फिर शिष्य ने प्रश्न किया, कि तुमने परद्रव्य के आलम्बनरूप ध्यान का निषेध किया, और निज शुद्धात्मा के ध्यान से ही मोक्ष कहा। ऐसा कथन किस जगह कहा है? तब बाद में ... देखो, सिद्धभक्ति। सिद्धभक्ति। लिखा है। 'पूज्यपादस्वामिभिः—“आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन् स स्वयंभूः प्रवृत्तः” पूज्यपादस्वामी जिन्होंने तत्त्वार्थसूत्र की टीका की है, वह कहते हैं कि 'आत्मानमात्मा' भगवान् पूर्ण शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप वह आत्मा का ध्यान करने से, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति होती है। परमाणु से नहीं। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र का तो दृष्टान्त दिया पूज्यपादस्वामी का। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं भगवान् आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य का आश्रय छोड़कर जितना परद्रव्य का आश्रय करने से विकल्प हुआ, है तो दोषसहित और दोष को गुण मानना, वह मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि को दोष ऐसा आता है। समझते हैं कि मेरी कमजोरी है। मैं स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता हूँ तो सिद्ध का, द्रव्य-गुण-पर्याय का विकल्प आता है। समझ में आया? आहाहा! लो! वह अचित् परिग्रह कहा। परमाणु पुद्गल आदि पाँच द्रव्य, उसका विचार, कहते हैं कि भगवान्! वह स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य का विचार है तो विकल्प-राग, है तो दोष। उसको भगवान् योगीन्द्रदेव कहते हैं कि हम परिग्रह कहते हैं। इतने राग को भी परिग्रह कहते हैं। पुस्तक है वहाँ पीछे है। कभी सुना नहीं, सुना नहीं।

और मिश्र परिग्रह... मिश्र परिग्रह किसको कहते हैं? यह तो सचित सिद्ध का ध्यान का विकल्प दोषरूप, अचित् पुद्गल आदि पाँच द्रव्य का विचार वह विकल्प दोषरूप। और मिश्र परिग्रह गुणस्थान मार्गणास्थान जीवसमासादि संसारीजीव का विचार। आहाहा! यहाँ गुणस्थान आया। वह शुद्ध था न? गुणस्थान की विचारणा। पहले गुणस्थान में ऐसी दशा, चौथे गुणस्थान में ऐसी दशा, तेरहवें गुणस्थान में ऐसी

दशा। वह मिश्रपना हुआ। जरा राग भी है और पवित्रता भी है। और मार्गण का विचार। यह जीव इतने में है, जीव इतने में है, ऐसी पर्याय है, ऐसा समकिति है, ऐसा भव्य है, अभव्य है। ऐसा विकल्प मार्गणा का विचार करना, वह भी मिश्र परिग्रहरूप राग है। आहाहा! होता है, जब तक वीतराग न हो तब हो, परन्तु वह दोष है, उसका स्वीकार करना चाहिए। ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : स्वयं ही प्राप्त करना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कौन कर सके ऐसा है ? आहाहा!

परमात्मा कहते हैं कि हम 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहे।' शास्त्र और गुरु और परमात्मा उसको दिशा बताते हैं, यह दिशा तेरी। साथ में चलते नहीं। कहो, जमुभाई! दिशा दिखाकर अलग रहे। ये आनन्दधनजी कहते हैं। यहाँ आचार्य कहते हैं देखो न। कि वीतरागमार्ग ने कहा छह द्रव्य अपने अतिरिक्त। वह परद्रव्य का विचार करना, वह विकल्प है, हम तुमको कहते हैं। तुम्हारे निर्णय करना और निर्णय करके इतना विकल्प आया, उस दोष का स्वीकार करना। उसको गुण का स्वीकार मान लो तो उसको छूटकर वीतरागता प्रगट तेरी होगी नहीं। ... जायेगा, मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। आहाहा! वकील! भारी बात, भाई! यह तो परमात्मप्रकाश है न, तो परमात्मप्रकाश जो चैतन्य ज्योति है। इसका आश्रय जितना लिया अन्तर में एकाग्र होकर, उतना ही आत्मा को लाभ। उसके अतिरिक्त जितना पर का आश्रय विकल्प उठे सब दोष है। रतनलालजी! क्या करना? भगवान की भक्ति में भी राग वह दोष। भजन में आता है। एक भजन में आता है। भगवान! मैं क्या करूँ परन्तु? क्या करना? एक भजन में आता है। एक भजन नहीं आता? ऐई! आता है एक भजन में। जो फलाना करने जाऊँ तो ... दोष जाये, पर के लिये जाये, फलाना हो। परन्तु हमें करना क्या? आप तो हमें बहुत कठिन बात कहते हो। एक भजन में आता है। अभी याद है कहीं? स्वाध्याय उसमें है भजन। स्वाध्याय (स्तवन) मंजरी, उसमें कहीं है। फलाना करने जाऊँ तो उसके लिये जाता है, यह करने जाऊँ तो उसके लिये। हमारे तो उसमें कहीं रहता नहीं। हमें करना क्या?

भगवान! तेरे स्वचैतन्य परमानन्द की मूर्ति उसकी पहले दृष्टि करना और बाद में

भी उसका आश्रय करके जितना अवलम्बन लिया उतना लाभ है। जितना परद्रव्य के अवलम्बन में राग आया, उतना दोष को स्वीकार करना। ऐई! मूलचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... परन्तु यहाँ राग है न। वीतराग नहीं है तो वीतराग है तो सबको भेदाभेद को जानते हैं। परन्तु यहाँ रागी प्राणी है। जब एक विचार से यहाँ छूटकर परद्रव्य का विचार करते हैं तो राग ही है, तो राग आये बिना रहे नहीं। वह कारण है। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि अपना विचार छोड़कर जितना मिश्र गुणस्थान का विचार करना। मार्गणास्थान में तो बहुत आती है। केवलज्ञान भाई आया उसमें तो। ओहोहो! कि यह केवलज्ञानी ऐसा है, श्रुतज्ञानी ऐसा है, मतिज्ञानी ऐसा है। पाँच ज्ञान का भेद है मार्गणा में। कहते हैं कि केवलज्ञानी ऐसा है तो परद्रव्य है वह। परद्रव्य का विकल्प जितना आया वह केवलज्ञान की पर्याय निर्मल है और साथ में थोड़ा कर्म के उदय के साथ में... केवलज्ञानी तो है न। अभी सिद्ध जैसा निर्मल नहीं हुआ तो असिद्धभाव साथ में है। तो उसको मिश्र कहा। इसका विचार करना, वह विकल्प को मिश्र परिग्रह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अभी परिग्रह को सिद्ध करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह है, उसे सिद्ध करना है। कुछ नहीं उसको सिद्ध करना है ? इसमें तो बहुत विस्तार है, देखो! मिश्र परिग्रह में तो पहले गुणस्थान से चौदह गुणस्थान का विचार करना, वह भी मिश्र है। क्योंकि जितनी पवित्रता चौथे से है, इतनी पर्याय निर्मल। इसके साथ रागादि है, कर्म उदय है, इतना अचेतन। दो का मिश्र होकर दो का विचार करना। अपना स्व का आश्रय छोड़कर जितना पर का विकल्प आया, वह भी चारित्रदोष है, वह भी परिग्रह है। आहाहा! ऐई! माणेकचन्दजी! क्या करना अब यह ? कपड़े का धन्धा छोड़कर बैठे तो भी कहे अभी परिग्रह अन्दर। कितनी परिग्रह की विशाल व्याख्या! जैसे भगवान आत्मा के गुण की विशाल व्याख्या। यह स्वचैतन्य। ऐसा ही विकल्प राग पर की विशाल परिग्रह की व्याख्या।

फिर ऐसा भी सिद्ध करते हैं। वह चौदह गुणस्थान वीतरागमार्ग के अतिरिक्त दूसरे में होता नहीं। यह आत्मा के अतिरिक्त पाँच द्रव्य है, वह भी वीतरागमार्ग के अतिरिक्त दूसरे में होता नहीं। सिद्ध भी वीतराग के अतिरिक्त दूसरे में, सिद्ध परमेश्वर संसार का नाश करके सिद्ध हुआ, वह भी दूसरे में होता नहीं। यह भी बात सिद्ध करते जाते हैं। और उसके आश्रय में जितना विकल्प आया, उतना दोष, उसको सिद्ध करते जाते हैं। ओहो! भाई! तेरा कार्य करना है या नहीं? तुझे आत्मा का कुछ काम करना है या नहीं? तो आत्मा का काम भगवान तो तेरा वस्तु में पड़ा है शक्तिरूप सत्त्व प्रभु! उसके आश्रय से ही तेरा काम होगा। जितना अन्दर आत्मा भानसहित परद्रव्य का आश्रय लिया, वह विकल्प है, दोष है। सचित सिद्ध का विकल्प, अचित पुद्गल पाँच द्रव्य का। तो वीतराग के अतिरिक्त पाँच द्रव्य है नहीं कहीं। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। तो छह द्रव्य हैं, उतना तो सिद्ध किया। है, उसमें भी अपने आत्मा का स्व-आश्रय छोड़कर जितना पर का (आश्रय) लिया, वहाँ राग है, परिग्रह है, दोष है, बन्ध का कारण है। इतना ज्ञानी ने अन्तर में समझ लिया है। आहाहा! गजब बात, भाई!

गुणस्थान। देखो, छठवें गुणस्थान की बात विचारना यह भी मुनियों की दूसरे की, हों! सप्तम का विचारना, क्षपकश्रेणी का विचार करना पर की। वह भी मिश्र परिग्रह में आया। और मार्गणास्थान भव्य-अभव्य। छह लेश्या-अलेश्या, क्रोधी, मानी, माया, लोभी, एक अकषायी जीव है, कोई सकषाय है। ऐसा विचार परद्रव्य का मिश्र का आना वह विकल्प में निमित्त ऐसा है तो उसको परिग्रह को विकल्प उस परिग्रह को मिश्र कहने में आया है। समझ में आया? यह क्षायिक समकित, यह क्षयोपशम समकित, यह उपशम समकित—ऐसा भी परद्रव्य का विचार आना, वह भी मिश्र परिग्रह है, विकल्प है। अपना क्षायिक समकित स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह क्षायिक समकित का लक्ष्य करते हैं तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय का लक्ष्य करने से... धर्मदृष्टि है, वस्तु है, तथापि उसका लक्ष्य करने से तो विकल्प का दोष ही उत्पन्न होता है। स्वद्रव्य के आश्रय से एकाकार जितना हो, इतनी शुद्धि और धर्म की वृद्धि होती है। आहाहा! पूरब-पश्चिम का अन्तर। उगणमो-आथमणो क्या कहते हैं? पूर्व-पश्चिम। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है वीतरागमार्ग और दुनिया के साथ। दुनिया के

साथ वीतरागमार्ग में इतना अन्तर है। जैन में जन्मा, उसको भी वह बात सुनने में नहीं आती। क्या परिग्रह और क्या दोष और कब तक कैसी दोष की स्थिति है। समझे नहीं ऐसे और ऐसे करो धर्म करो। धूल है धर्म? मिथ्यात्वभाव है, धर्म कहाँ से आयेगा? स्व-पर के भेद की खबर नहीं। स्व के आश्रय से लाभ है, पर के आश्रय विकल्प दोष है, ऐसा विवेक तो है नहीं। कैसे धर्म होगा? समझ में आया?

जीवसमासादिरूप... एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय। है न, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त और चौदह जीवसमास। उसका विचार उसरूप **संसारी जीव का विचार**। लो, भाई! वह सचेतन में यह लिया था। सिद्ध यह मिश्र लेना है न। संसारीजीव का चौदहवें गुणस्थान तक की विचारधारा। उसका—परमेश्वर केवलज्ञानी का भी विचार... प्रवचनसार में ८० गाथा में लिया कि ‘**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्त-पज्जयत्तेहिं**।’ जो कोई अरिहन्त का द्रव्य, गुण और पर्याय से जानना करता है, उसको लक्ष्य छोड़कर स्वभाव में एकाग्र जब होते हैं, तब उसको मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

कोई कहते हैं कि वहाँ तो ऐसा आया न? ‘**जो जाणदि अरहंतं**’ ८० गाथा। ‘**दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं सो जाणदि अप्पाणं**’ तो जाने आया न ‘**अप्पाणं**’ परन्तु उसका अर्थ एक लक्ष्य जो है, वह परलक्ष्यमी ज्ञान है, द्रव्य-गुण-पर्याय का अरिहन्त का। उस लक्ष्य को छोड़कर अपने में समा देना। मैं ही स्वद्रव्य पूर्ण हूँ, मेरा ज्ञान आदि गुण है, मेरी निर्मल पर्याय अन्दर द्रव्य में अभेद होती है। ओहोहो! भारी सूक्ष्म बात, भाई! ऐसी दृष्टि किये बिना उसको सम्यग्दर्शन होता नहीं।

तो कहते हैं, **संसारी जीव का विचार**। लो यह परिग्रह की व्याख्या पूरी। बहुत करते... करते... करते... यहाँ तक आया। इस तरह बाहिर के और अन्तर के परिग्रह से... दो रहें। स्त्री, पुत्र आदि, साधु को शिष्य आदि, अन्दर सचेत मिथ्यात्व आदि, सचित राग आदि, मिश्र गुणस्थान आदि। यह सब अभ्यन्तर रागादि और बाह्य शरीरादि, स्त्री-कुटुम्ब आदि, शिष्य आदि यह परिग्रह से रहित जो जिनलिंग उसे ग्रहण कर... ऐसा आत्मा की अन्तर अनुभव दृष्टि प्रगट करके जो अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से

विपरीत... अपना भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति वीतरागस्वरूप। पर्याय की बात है यहाँ, हों! अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति... भगवान परमानन्द प्रभु की अनुभूति की वीतरागी पर्याय, उससे विपरीत परिग्रह। यह सब विपरीत है। सिद्ध का विकल्प आया वह शुद्ध अनुभूति से विपरीत है। संसारी जीव का विचार आया, वह शुद्ध अनुभूति से विपरीत है। समझ में आया? और पंच द्रव्य से—परमाणु से लेकर परद्रव्य का विचार विकल्प वह भी शुद्ध अनुभूति की पर्याय—अपना शुद्ध भगवान उसकी अनुभूति जो निर्मल धर्म, निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म, उससे यह सब बात विपरीत है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं उसमें? देखो न, लिखा है या नहीं उसमें?

क्या कहते हैं देखो, अज्ञानी अपना शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी अनुभूति। जितने प्रमाण में चौथे, पाँचवें, छठवें आदि वीतराग अनुभवदशा निर्विकल्प शान्ति और वीतरागभाव उससे विपरीत। सिद्ध का ध्यान भी अनुभूति से विपरीत है। मूलचन्दजी है या नहीं ऐसा? ऐसा अर्थ है या नहीं? उसमें लिखा है या नहीं? ... है, लो हमारे सेठ कहते हैं कि वह है। रसोई में सेठ है लड्डू के। कहो, समझ में आया? लड्डू का विकल्प कैसा होगा वह? वह कहाँ जाता होगा इसमें? वह उसमें अचित परिग्रह में जाये। समझ में आया? आहाहा! स्वाश्रय शुद्धि, पराश्रय बन्ध। एक सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। ऐसा जिसको अन्तर विवेक सम्यक् नहीं, वह पर के आश्रय से धर्म मानते हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी अनादिकाल का उस जाति का वह है।

कहते हैं, ऐसा जिनलिंग उसे ग्रहण कर जो अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से **विपरीत परिग्रह को...** यह जितना परिग्रह कहा वह सब। ग्रहण करते हैं,... अपना मानते हैं, उससे मेरे लाभ मानते हैं, वे वमन करके पीछे आहार करनेवालों के समान निन्दा के योग्य होते हैं। आहाहा! अरे! मार्ग वह भी मार्ग न! एकदम विकल्प और निमित्त की उपेक्षा। हो, भगवान पूर्ण स्वरूप स्वभाव परमात्मा की अपेक्षा। अपना द्रव्य परमात्मा, बस उसकी अपेक्षा। दूसरी बात होती है, जब तक वीतराग न हो तो ऐसा विचार, विकल्प आये बिना रहते नहीं। परन्तु उसके आश्रय से अपने को लाभ मान ले तो कहते हैं कि वह तो परिग्रह है। तेरा वीतराग परिग्रह से तो विपरीत है। उस विपरीत से तेरा अन्तर स्वभाव वीतराग परिग्रह कैसे सिद्ध होगा? समझ में आया? यहाँ तो अभी

बाहर की लक्ष्मी, उससे लाभ, पाँच-पचास लाख पूँजी हो और पाँच लाख-दस लाख दिया, जाओ धर्म हो गया हमारे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी धर्म नहीं है। कौन कहता है ? वह शुभराग मन्द करे तो पुण्य है। शुद्धात्मानुभूति से विपरीत भाव है। समझ में आया ? होता है भाव, ज्ञानी समझते हैं। मैं अन्तर में ठहर सकता नहीं तो ऐसा शुभभाव आता है, परन्तु धर्मी की दृष्टि... देखो ! क्या कहते हैं योगीन्द्रदेव ? मुनि ९०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त। भगवान परमात्मा जैसे कहते हैं, वही बात वे कहते हैं। अपनी शुद्धात्मानुभूति से विपरीत सब विकल्प हैं। शरीर, शिष्य, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो ऊपर ले लिया। लिया न ऊपर ? देखो, चेतन परिग्रह पुत्र आदि गृहस्थ को। अचेतन आभरण आदि, मिश्र स्त्री-पुत्र आदि सहित। साधु को सचित परिग्रह शिष्य आदि, अचित परिग्रह पिच्छी, कमण्डल, मिश्र परिग्रह कमण्डल आदि। साधु के अन्तर-बाह्य रागादि परिग्रह मिथ्यात्व, अचित परिग्रह द्रव्य-नोकर्म। मिश्र परिग्रह भावकर्म हुए।

ध्यानी पुरुष की अपेक्षा सचित परिग्रह सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान, अचित परिग्रह पुद्गलादि पाँच द्रव्य का विचार और मिश्र परिग्रह गुणस्थान... उन सबको परिग्रह कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा वमन करके—उसको छोड़ करके फिर उससे लाभ माननेवाला है, वह निन्दा के योग्य है। आहाहा ! भैया ऐसा है। उसमें लिखा है, हों ! तुम्हारे पुस्तक परमात्मप्रकाश दिया नहीं। स्वभाव का कारण बिल्कुल नहीं, यह कहते हैं। विकल्प आता है, वह अपने शुद्धस्वभाव में बिल्कुल... क्योंकि स्वभाव शुद्धता, उसकी अनुभूति वीतराग पर्याय, उससे यह सब विपरीत — ऐसा कहा। विपरीत कारण है उसको कारण क्यों कहते हैं ? समझ में आया ? ऐसा दूसरी जगह भी कहा है,... यह विशेष कहेंगे। लो समय हो गया।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

माघ शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक २२-०२-१९६६

गाथा - ९१-९२, प्रवचन - १३६

... समझ में आया ? ... कहो, सोभागभाई ! आहाहा ! ऐसा अवसर मिला । अनन्त काल से ... चैतन्य प्रभु निवृत्ति लेकर अन्तर श्रद्धा-ज्ञान का आचरण करने का अवसर है । ऐसा अन्तर्मुख का अवसर गँवाकर बहिर्मुख की वृत्ति में रुकता है, वह अशुभभाव में रुके या शुभभाव में रुके । रतनलालजी ! ... अरब रुपये का एक रत्न पड़ा था । एक मट्ठा की आवश्यकता पड़ी सवा सेर पीने की । दे दो भाई । चन्द्रकान्तभाई ! आहाहा ! 'भस्म निमित्तं रत्न राशि दहन वत्' थोड़ी भस्म चाहिए थी । राख-राख, राख कहते हैं न ? यह मूँग में डाले हैं, उड़द, बाजरा न सड़े तो थोड़ी राख—भस्म डाले । थोड़ी राख चाहिए थी तो रत्न राशि, करोड़ों रुपये का एक-एक रत्न ऐसे सौ, पाँच सौ, पचास हजार पड़े थे । जला दो । थोड़ी राख चाहिए । थोड़ी राख चाहिए । क्योंकि बाजरा सड़ जाता है । वह बाजरा में डालते हैं न ? बाजरा कहते हैं न । क्या कहते हैं ? वह बाजरा में नहीं ? गर्मी में ? राख थोड़ी डाले, ठण्डा रहे । ऐसी थोड़ी राख के लिए । ...कोई ?

यह तो दृष्टान्त है कि 'रत्न राशि दहन वत्' रत्न के ढेर जला देते हैं । उसी प्रकार भगवान् आत्मा परमात्मस्वरूप शुद्ध पुण्य शुभ-अशुभराग से रहित, उसकी दृष्टि नहीं करके, उसका लक्ष्य डोर न बाँधकर शुभ-अशुभभाव का हेतु में पड़ा है, उसके लक्ष्य में पड़ा है, वह आत्मदेव को जलाते हैं । आहाहा ! आत्मदेव को जलाते हैं और देव का देवालय । यहाँ तो कहेंगे । परम औदारिकशरीर भविष्य में मिलनेवाला हो, अनन्त ज्ञानादि प्राप्त हो तब परम औदारिकशरीर मिलता है । तो परम औदारिकशरीर को भी जलाते हैं । शरीर भी नहीं मिलेगा और अनन्त ज्ञान भी उसको नहीं मिलेगा । कहो, समझ में आया ? आहाहा ! गजब भाई !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो आचार्य, देखो, जयसेनाचार्य। आदि कहा न भाई! उनके जैसी ही टीका है न ब्रह्मदेवसूरी लगभग जयसेनाचार्य की जैसी ही टीका है। और जयसेनाचार्य कहते हैं यह। यह परमात्मप्रकाश की टीका है न? वही यहाँ टीका है। व्रत, तपश्चरण, दान, पूजा, करते हैं। हेतु व्रत, तपश्चरण में शुभभाव जो है, उसके ऊपर लक्ष्य बँधा है। अपना चिदानन्द भगवान विकल्प से पार है, ऐसे लक्ष्य की रुचि बँधी नहीं है, वह ... इसलिए रत्न को जला देते हैं। भस्म के लिए रत्न की राशि को दहन करते हैं। बराबर है? सूत्र निमित्तं हार चूरण वत्। एक सूत्र का टुकड़ा चाहिए था। डोरा-डोरा। एक हार था एक अरब रुपये का। रत्न का हार। उसको तोड़ दिया। सूत्र थोड़ा चाहिए, सूत्र थोड़ा चाहिए। सूत्र के लिये पूरे हार को चूर्ण कर। चूर्ण भुक्का वापस, हों! हार चूरणवत्। ऐसा-ऐसा टुकड़ा करे भुक्का कर दिया तो वह सलंग डोरा निकले। वह सूत्र के टुकड़े के लिये करोड़ों रुपये के हार को चूर्ण कर देते हैं। ऐसे अज्ञानी अपने शुद्धस्वरूप की रुचि, दृष्टि के हेतु का प्रसंग है, उसको छोड़कर शुभ और अशुभभाव का हेतु बनाकर अपना चैतन्यरत्न देव को जला देते हैं। आहाहा! मूलचन्दजी!

देखो, आचार्य ने दृष्टान्त दिया। आचार्य भी जंगल में ऐसा दृष्टान्त कहाँ से लाये होंगे? वह दिगम्बर मुनि है। जंगल में रहते थे। परन्तु दुनिया ऐसा ही करती है, ऐसा कहते हैं। अनादि से ऐसा करती आती है। अपना शुद्धस्वभाव का लक्ष्य और रुचि... उस समय भी वह कर, ऐसा कर... ऐसा कर... शुभाशुभ करने में सारी जिन्दगी गँवा दी। समझ में आया? अपना भगवान चिदानन्दस्वरूप को जला दिया और भविष्य में परम औदारिकशरीर मिलनेवाला हो, जिसने आत्मज्ञान दर्शन किया हो, उसे भविष्य में उसको अनन्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त होगा। और जिसने आत्मज्ञान प्राप्त किया हो, उसे अनन्त ज्ञान प्राप्तकाल में परम औदारिकशरीर भी मिलेगा। परम औदारिकशरीर समझते हैं? तीर्थंकर को जन्म से ही परम औदारिकशरीर है। भगवान तीर्थंकर जो है, उनको तो जन्म से ही औदारिकशरीर है। उसको पहले से आहार है, निहार नहीं। समझ में आया? तीर्थंकर जीव है, उन्होंने तो पूर्व में आत्मा का आराधन बहुत किया है। सम्यक् चैतन्यमूर्ति का शुद्ध का। आराधन में... थोड़े शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बँध गया। तो कहते हैं, वह जीव तो जब जहाँ जन्मे वहाँ तीन ज्ञान तो लेकर जन्मे। परन्तु शरीर परम

औदारिक पहले से होता है। उसके शरीर में रोग नहीं। जन्म के बाद आहार ले, परन्तु निहार नहीं, मल-मूत्र नहीं। समझ में आया ? और तीर्थकर न हो तो दूसरा जो आत्मज्ञान का आराधन करनेवाला शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा शुद्ध की, हों ! पुण्य-पाप विकल्प नहीं। शुद्ध की श्रद्धा-ज्ञान का आराधन करनेवाला भविष्य में अनन्त ज्ञान-दर्शन पानेवाला है, ऐसे आत्मा को पुण्य-पाप के हेतु में जलाता है और परम औदारिकशरीर मिलनेवाला है, उसको राख कर देता है। आहाहा ! कहो, जयन्तीभाई !

थोड़ा टुकड़ा चाहिए सूत का। करो चूर्ण। 'सूत्र निमित्त हार चूरण वत्' पाँचवाँ दृष्टान्त। '...अगुरुलघु वन छेदनवत्' एक थोड़ा कुदरवा चाहिए था। कुदरवा नहीं होता ? वह कोदरा किया है खाने के तुम्हारे। कोदरी-कोदरी। ये खाने में करते हैं न वहाँ ? चावल नहीं मिलता तो कोदरी करते हैं। कोदरी। वह कोदरी थोड़ी चाहिए थी। सेर-दो सेर। उसके लिए पूरा चन्दन का वन था, चन्दन का वन सूखड़ का। ऐसी सूखड़ ऊँची। देखो ! पाठ है, हों ! 'अगुरुलघु वन' पूरा चन्दन का वन था तो थोड़ा एक टुकड़ा कोदरवाका एक सेर, दो सेर, पाँच सेर उसको कोदरवा चाहिए। जला दो। लाओ कोदरवा। चन्दन के वन को जला दो। कोदरवा लाओ। लोग कोई नहीं करे। यह तो दृष्टान्त दिया है।

परन्तु कहते हैं, भगवान ! अरे ! तेरी चीज़ अन्दर परमात्मा सहजानन्दमूर्ति, वह शुभ-अशुभराग बिना की तेरी चीज़ परमात्मा है। ऐसी चीज़ का अन्तर लक्ष्य और श्रद्धा का अवसर मिला और नहीं करते हैं। समझ में आया ? अरे, मेरे पुण्य करना है, मेरे पाप करना है, मेरे ऐसा करना है, मेरे ऐसा करना है, ऐसा का ऐसा समय गँवाते हैं, ऐसा मूर्खवत्। वन का सारा चन्दन का वन जलाकर थोड़ा मण, दो मण, पाँच-पच्चीस मण कोदरवा के लिये जला देते हैं। कहो, ऐसे मूर्ख तो नहीं होंगे ? पाँच दृष्टान्त दिया है। देखो, १४७ गाथा है। पाठ में है हों, संस्कृत टीका में है। यहाँ परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव महाराज सन्त मुनि दिगम्बर थे। वह कहते हैं कि अरे जीव ! यह ... खातिर, ये इन्द्रिय के सुख के निमित्त से अथवा इन्द्रिय के सुख का अर्थ ? शुभाशुभभाव के लिये सारी जिन्दगी गँवाते हैं, वह मुनि... शरीर देवस्थान को और आत्मदेव को भव के आताप से भस्म कर देते हैं। आहाहा !

शुभभाव और अशुभभाव वह आताप-आकुलता है। मूल तो यह कहते हैं, भाई! आहाहा! शुभभाव हो, परन्तु वह आकुलता है। सवेरे आया था। शुभभाव हो नामस्मरण भगवान का स्मरण, देवदर्शन का भाव है, परन्तु भाव शुभ है। आताप है, आकुलता है, ऐसा कहते हैं। इतने के लिये मेरे वह रह गया... मेरे वह रह गया... परन्तु ये पूरा आत्मा रह गया, उसका तो विचार कर। भगवान आत्मा वह शुभ-अशुभ विकल्प से रहित चिदानन्द आत्मा मेरी श्रद्धा में ज्ञान में से नहीं रहता, इससे आ जाता है, ऐसा तो विचार कर। यहाँ आचार्य जरा ओलंभा देते हैं ओलंभा। ओलंभा कहते हैं न? भैया! ठपकारते हैं या नहीं? भाई ठपकारते हैं न थोड़ा? ओलंभा देते हैं न? हित के लिये है न?

आचार्य महाराज कहते हैं। आचार्य महाराज सन्त दिगम्बर करुणा से, हों! कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा... यहाँ तो परमात्मप्रकाश की रुचि छोड़कर, परमात्मस्वरूप अपनी रुचि में लक्ष्य उसका अन्तर लक्ष्य, रुचि, दक्ष, उसकी समझ छोड़कर दूसरी चीज़ में भटकते हैं, वह आत्मा का—देव का नाश कर देते हैं, ऐसा कहते हैं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! जिस समय। लो है न उसमें? भव के आताप से भस्म कर देते हैं। भगवान आत्मा। आहाहा! भव का भाव और भवरहित प्रभु आत्मा है। परमात्मप्रकाश है न? भगवान आत्मा, वह भव और भव का भाव शुभभाव आदि, उस भाव से रहित आत्मा है। ऐसा आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का वजन, वीर्य, अवलम्बन, आश्रय छोड़कर अकेला शुभभाव और अशुभभाव में रुकता है, वह भव के आताप से आत्मा को जला देते हैं। आहाहा! जयन्तीभाई!

क्या करे परन्तु? संसार में पुत्र, पुत्री, ... संसार पड़ा है। वह निवृत्तिवाले को मालूम पड़े। हमें पड़े नहीं। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। बहुत पैसेवाला था। बहुत साल पहले की बात है। उस समय पचास-साठ लाख रुपये थे। अभी तो आठ-दस करोड़ हो गये हैं। तो पहले यहाँ आया। यहाँ तो आते हैं न गृहस्थ लोग भी बहुत आते हैं। यहाँ तो कहा पहले। (संवत्) १९९४ के वर्ष की बात है। २८ पहले। ऐई! सेठ! आप कुछ यह सुनने के लिये समय निकालते हो या नहीं? ऐसा जवाब दिया। मिल मालिक था। मिल मालिक। ... पुत्र है। आठ-दस करोड़ रुपया है। तब ५०-६० लाख था। तो उसने

कहा। अरे महाराज! तुम ऐसे कहते हो। परन्तु हमारे स्थान में तुम हों तो खबर पड़े कि निवृत्ति मिलती है या नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! क्या कहते हो? क्या हुआ? कहा यह। क्या है? पैसा और पैसा की ममता का क्या पावर चढ़ गया है तुमको? ऐसे कहते हैं कि हमारे स्थान में तुम हो तो इतनी निवृत्ति तुमको न मिले। आहाहा! मरने की निवृत्ति मिलेगी या नहीं? कहा। पश्चात् ... क्या बोलते हो? किसके पास तुम बोलते हो? आपके पैसा ५० लाख धूल में है तो यहाँ बोलते हो ऐसी बात? हमारे स्थान में हो तो तुमको पता चले कि यह निवृत्ति पैसे के कारण नहीं मिलती है। सोभागभाई! यहाँ बनी थी बात बनी थी। दर्शन करने को तो आवे। मुम्बई आवे। यह है न। कहाँ गये पुरुषोत्तमभाई? यह रहे उनके। ऐ मंगलभाई! आये थे तब। पश्चात् ऐसा बोल गये बेचारे, हों! ऐसा बोल गया। पश्चात् तो बहुत बहुत... बोला था। किसके पास बोलते हो। तुम क्या है? इतना सारा पावर चढ़ गया है पैसे का? पैसे अर्थात् क्या? करोड़, अरब, धूल वह परचीज़। उसके कारण से तुम रुकते हो? ममता के कारण से रुका है और कहते हैं कि इतनी स्थिति में हम निवृत्ति कैसे ले सकें? मर जावे तब ले सकता है या नहीं? समझ में आया?

भगवान आत्मा निवृत्तस्वरूप ही है। पुण्य-पाप का राग से रहित स्वरूप है। निवृत्तस्वरूप ही है। वह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में लिया है। भाई! पाँचवाँ परिग्रह का अधिकार लिया है वहाँ। अमृतचन्द्राचार्य महाराज। अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार समयसार की। भगवान आत्मा अपरिग्रहस्वरूप ही है, निवृत्तस्वरूप ही है। उसमें शरीर, वाणी, कर्म नहीं, धूल और लक्ष्मी तो कहाँ रह गयी तेरी। वह तो धूल मिट्टी बाहर में है। विकल्प उठते हैं शुभ-अशुभ का, वह भी स्वरूप में नहीं। ऐसा आत्मा निवृत्तस्वरूप है, उसकी निवृत्ति करने का विचार नहीं। हमें यह सब बाधक है। धूल बाधक है तुझे (धूल) की ममता बाधक है? भीखाभाई! पश्चात् तो बेचारा स्थिर हो गया घड़ीक में, हों! मैंने कहा, भाई! किसके पास बोलते हो तुम यह? कौनसी दुकान है यह? किस दुकान मैं आया हूँ, इतना भी विवेक नहीं? इस दुकान के पास ऐसी बात करते हो तुम? पैसा अर्थात् क्या? राग अर्थात् क्या? समझ में आया?

पैर में एक बिच्छू काट ले। बिच्छू पूरा डंक मार दे, व्यापार-व्यापार सब बन्द

करके, अरे! मुझे ऐसा हो गया। हाय हाय रे! जयचन्दभाई! कहाँ गये मोहनभाई? एक बिच्छू अच्छे से काट ले तो, भाई! यह पीड़ा मेरे सहन नहीं होती। दूसरा रोग हो, दूसरा रोग हो तो सबमें यह सहन, यह पीड़ा। परन्तु दूसरे रोग के समय भी ऐसी पीड़ा तुमको लगेगी। चिल्लाहट ऐसी की ऐसी पड़ेगी। क्यों जयचन्दभाई! है बिच्छू अभी? तो क्या दुःख है?

मुमुक्षु : ममता का दुःख।

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता का है। अरे! दूसरे को मोहनभाई का शरीर अच्छा और मेरे नहीं। उसको ऐसा है, मुझे नहीं। कहा ऐसा पैसा बाह्य सामग्री से अधिक मिलना मानना वह मूढ़ता है। निरोगता-सरोगता बाह्य की चीज़ है, उससे अनुकूलता-प्रतिकूलता मानना, वही भ्रम अज्ञान है। बाहर की चीज़ की अधिकता और हीनता संयोग से आत्मा को कल्पना, वही मूढ़ है। समझ में आया? अरे! किसी ने शुभभाव बहुत किया। उससे यह अधिक है, मुझसे यह मानना भी मूढ़ है। क्या अधिक है? अधिक तो शुभ और अशुभभाव और उसका निमित्त सबका लक्ष्य छोड़कर भगवान आत्मा 'णाणसहावाधियं मुणदि आदं' समयसार की ३१वीं गाथा में है। विकार और पर से अधिक मुणदि मेरा आत्मा निवृत्तस्वरूप ही है। मुझे निवृत्ति है। अनादि-अनन्त मैं निवृत्तस्वरूप ही हूँ। आहाहा! चन्द्रकान्तजी! आहाहा! प्रवृत्ति कैसी? क्या परमाणु की जड़ की प्रवृत्ति आत्मा कर सकता है? क्या तेरी प्रवृत्ति है? तेरे में शुभ-अशुभ पापपरिणाम, शुद्ध चैतन्य भगवान का आश्रय छोड़कर, लक्ष्य छोड़कर, रुचि छोड़कर, उत्साह, सावधानी छोड़कर वहाँ सावधानी तेरी पड़ी है, तो कहते हैं कि आत्मा का चिदानन्द भगवान देव (को) जला देते हो तुम। आहाहा! जयन्तीभाई! आहाहा!

भावार्थ :- लो भस्म कर देते हैं। जिस समय ख्याति, पूजा, लाभ के अर्थ शुद्धात्मा की भावना को छोड़कर... देखो! अरे भगवान आत्मा मैं परमानन्द की मूर्ति। उसका अन्तर लक्ष्य और रुचि का जोर देना चाहिए, वह तो जोर देते नहीं। अज्ञान के कारण अज्ञानभावों में प्रवर्तन होता है,... अज्ञानभाव का अर्थ शुभाशुभभाव। समझ में आया? आहाहा! आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान भान हुआ, पश्चात् जरा शुभभाव होता है तो

उसको निमित्तरूप से समझे। निमित्तरूप से समझे। शुद्ध उपादान तो मैं ही आत्मा शुद्ध चैतन्यज्योति हूँ। उसके आश्रय से मैं मेरी शुद्धि की उत्पत्ति, शुद्धि की वृद्धि, शुद्धि का टिकना... क्या है, समझ में आया? मैं शुद्ध चैतन्य भगवान् पूर्णानन्द हूँ। उसके लक्ष्य से शुद्धि की उत्पत्ति, उसके आश्रय से शुद्धि का टिकना, उसके आश्रय से शुद्धि की वृद्धि। उसके सिवाय दूसरे कारण से शुभ-अशुभभाव से शुद्धि की उत्पत्ति हो, शुभ-अशुभभाव से शुद्धि की वृद्धि हो, शुभभाव से शुद्धि का टिकना हो, वह झूठ बात है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। विमलचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? वह तो हमारी दृष्टि गयी वहाँ। हमारे विमलचन्दजी ने देखा नहीं लड़की को। आयी नहीं? वह तुम्हारी लड़की को देखना है विमलचन्दजी ने। नये आये हैं कितने। आये हैं? पीछे बैठी है? समझ में आया?

क्या कहते हैं? आहाहा! यह तो एक पुनर्जन्म का एक दृष्टान्त। ऐसे अनादि से। अनादि-अनन्त आत्मा ने ऐसी की ऐसी जिन्दगी गंवायी। यहाँ तो भगवान् आत्मा का आश्रय अवलम्बन छोड़कर उसका, प्रेम रुचि छोड़कर शुभ-अशुभभाव की प्रेम-रुचि में पड़ा है, वह अज्ञानभाव में प्रवृत्त होते हैं। आहाहा! समझ में आया? **उस समय ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध होता है।** क्या कहते हैं? भगवान् बुद्ध चैतन्य भगवान् ज्ञानानन्द प्रभु का आदर करने से सम्यग्दर्शन में शुद्धस्वभाव केवलज्ञानमय हूँ — ऐसी प्रतीति होती है और केवलज्ञान प्रगटने का उपाय प्राप्त होता है। ऐसा शुद्ध भगवान् आत्मा की रुचि—लक्ष्य छोड़कर, शुभभाव शुभ की रुचि में अनन्त केवलज्ञान का आवरण केवलज्ञानावरणीय बँध जाता है। आहाहा! समझ में आया?

बनिया हो, वह थोड़ा फायदा हो तो न करे। अधिक फायदा हो और विशेष ऐसा हो तो ब्याज भी दे। पाँच लाख दे तो ब्याज बराबर मिले और रुपये वापस मिले तो ही ब्याज से दे। ब्याज के लिए रुपये जाएँ तो ब्याज से दे नहीं। यह पचास हजार दे। जाओ, एक प्रतिशत ब्याज दूँगा। परन्तु प्रतिशत के ब्याज में पचास लाख ले गया वह? यह फिल्म-बिल्म में करते हैं या नहीं? ऐई! फिल्म के लोभिया होते हैं न? नारणभाई! यहाँ एक मलूकचन्दभाई हैं और दोनों हैं, हों! वह तो उनका पुत्र है न। एक में यहाँ लाभ करने जाए, वहाँ जाए सब अन्दर से। कितना ऐसा का ऐसा एकदम मानो फायदा हो जाएगा। परन्तु पुण्य कितना है, उसकी खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं, अरे! तेरा चैतन्य भगवान् आत्मा शुद्ध निधान पड़ा है उसकी श्रद्धा, ज्ञान, रुचि का काल आया, उसको छोड़कर अज्ञान में प्रवर्तता है तो ज्ञानावरणीय बँध जायेगा। आत्मा का श्रद्धा आराधन में केवलज्ञान होगा। और आत्मा का आराधन छोड़कर शुभभाव का भी आराधन करने से केवलज्ञानावरणीय बँध जायेगा। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, वजुभाई! परन्तु क्या करना इसमें अब? पश्चात् शरीर में रोग आवे, लो। रोग के लिये रूकना पड़े। सर्दी हो रूकना पड़े। श्वास न निकले, तब तक क्या करना? अच्छा श्वास न आवे तो ध्यान नहीं हो सके, विचार न हो सके। यह सच्ची बात होगी? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनियों को महा रोग हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मुनियों को तो क्षय रोग हो शरीर को। असाता का उदय हो, उसमें क्या है? सनतकुमार चक्रवर्ती सात सौ वर्ष गलित कोढ़। गलित कोढ़। यह सब टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। क्या बाह्य साधन आत्मा की एकाग्रता को रोक सकता है? तीन काल—तीन लोक में बाह्य प्रतिकूलता आत्मा को कभी रोक सकती नहीं। और क्या बाह्य की अनुकूल सामग्री आत्मा को शान्ति और स्वभाव-सन्मुख होने में मदद करती है? शरीर ठीक हो तो ठीक रहे या नहीं?

यहाँ तो यह कहते हैं कि भगवान्! ठीक तो तेरी चीज़ चाहिए। बाह्य की ठीक या अठीक ऊपर कोई साधन है नहीं। इतना साधन थोड़ा हो न बाद में मैं धर्म करूँगा। इतना साधन हो तो बाद में धर्म करूँगा। मूढ़ है? साधन किसका तुझे लेना है? बड़ा साधन पड़ा है तेरे पास। अखण्डानन्द भगवान् उसमें साधन नाम का गुण पड़ा है। आत्मा में साधन नाम की गुणशक्ति पड़ी है। वह बाह्य के साधन की इच्छा नहीं करता। आहाहा! चन्द्रकान्तजी! आहाहा! आचार्य जरा यह कहते हैं। यह परमात्मप्रकाश है न, प्रभु! तेरे पास तो साधनशक्ति पड़ी है, कर्ताशक्ति पड़ी है, काम करने की, काम करने की, तेरे काम करने की शक्ति भी तुझमें पड़ी है। तेरा काम मोक्षमार्ग का काम कोई पर के कारण से होता नहीं। मोक्षमार्ग का कार्य करने में कार्यशक्ति तेरे पास पड़ी है। समझ में आया? पर का कार्य थोड़ा कर दूँ, पश्चात् मेरा करूँगा। ऐसा होता है या नहीं?

रतनलालजी ! होता है । कहाँ गया डॉक्टर ? आये नहीं अभी ? आये हैं । आओ आओ यहाँ निकट । थोड़ा ओलंभा तो सुनो ।

क्या कहा, समझ में आया ? आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा ज्ञान की मूर्ति, ज्ञान की डली, ऐसी अन्तर में रुचि लक्ष्य का आश्रय छोड़कर अकेला शुभ-अशुभभाव का आश्रय हेतु में पड़ा है, वह मूढ़ आत्मदेव को जला देता है । समझ में आया ? आहाहा ! वृद्ध (होऊँगा तब) करूँगा, कुछ पैसा पाँच-पचास लाख मिले । चार लड़के हैं । चार का भाग कर दूँ । पश्चात् निवृत्ति हो, चार लड़कों में झगड़ा न हो । किसी को आठ लड़के हों, लो न ! तुम्हारे कितने ? सात या छह ? उन्हें सबको भाग करके पश्चात् यह लोग क्लेश न करें न तो अपने निवृत्ति से धर्म कर सकेंगे । निवृत्ति से । मूढ़ है ? कौन कहता है ऐसा होता है ? वह कहते हैं । कन्या-बन्या हो ठिकाने पड़ जाये । जवान कन्या है घर में भाई तीन-चार । एक १८, एक २०, एक २२ वर्ष की । अब क्या करना ? हमारे एक-एक कन्या का विवाह करने को लाख-लाख रुपये चाहिए । सबकी व्यवस्था । ऐसा वेवाई मिले कड़क । वह सब व्यवस्था अच्छी हो जाये, फिर निश्चिन्तता से धर्म करूँगा । मूढ़ है ? ऐसा कहते हैं । वह तो यहाँ कहते हैं । तेरा साधन यहाँ पड़ा है, यह अनुकूल हो तो करूँगा ऐसा कहाँ से लाया ? आँख मींचकर चला जायेगा नरक-निगोद में । चार गति में पता नहीं लगेगा कि मनुष्य कब होगा ? वही यह कहते हैं कहाँ से मनुष्य होगा ? वह बेचारे कहते थे । धनजीभाई कहते थे । अरे ! ऐसा साधन मिला, अब यहाँ से गये तो मनुष्यपना मिलना महा साधन । मनसुखभाई ! भाई ! अवसर कब मिले ? आत्मा की चीज़ का कार्य करने का अवसर नहीं । दूसरा कार्य करने में अवसर मुझे मिलता नहीं । बड़ी अच्छी बात है । समझ में आया ? यहाँ आचार्य वही उलाहना देते हैं ।

भगवान ज्ञानानन्द प्रभु का आश्रय लेने का तुझे अवसर—काल हो, वह छोड़कर अज्ञानभाव में उसके आश्रय में ठीक पड़े तो पश्चात् मैं करूँगा । आत्म (देव को) भगवान ! तेरे आत्मदेव को जला देते हैं । मूढ़ होकर चार गति में चला जायेगा । तुझे ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा । मुश्किल-मुश्किल से मिला है । बराबर है या नहीं ? भाई !

आहाहा! गजब बात की। और मोह के उदय से अनन्त सुख। देखो, समझ में आया? मोह के उदय से। पहले केवलज्ञान लिया। पहले ज्ञान लिया। पहले सुख लिखा है। हे भगवान! तेरे आत्मा में सुख आनन्द है न, उसका लक्ष्य-कार्य छोड़कर मैं ऐसा कर लूँ... ऐसा कर लूँ... ऐसा कर लूँ... ऐसी मिथ्या भ्रम की दृष्टि में तुझे मोह बँधेगा। और मोह के कारण से आत्मा का अनन्त सुख ढँक जायेगा।

‘सुख प्राप्त करता सुख टले है।’ आता है या नहीं? वह श्रीमद् हुए न? श्रीमद् राजचन्द्र। बहुत छोटी उम्र में, हों! १६ वर्ष की उम्र। १६ वर्ष। १ और ६। १६ वर्ष में गायन बनाया। ‘सुख प्राप्त करता सुख टले है, लेश अे लक्षे लहो, क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो!’ इतना गम्भीर १६ वर्ष में लिखा। १६ वर्ष में हों, भैया! ३३ वर्ष में देह छूट गया। ३३ वर्ष और चार माह। फोटो है न अन्दर? सोलह वर्ष में बनाया। ‘सुख प्राप्त...’ पुण्य-पाप के परिणाम में रुककर अथवा बाह्य से सामग्री मिलेगी ठीक... ठीक... ठीक... ऐसी प्राप्ति की इच्छा में ‘सुख प्राप्त करता सुख टले है।’ अपना आनन्द-सुख का घात होता है। मूलचन्दभाई! बराबर है या नहीं? ‘सुख प्राप्त करता सुख टले है।’ अन्दर के सुख का नाश तुझे होता है, यहाँ आचार्य कहते हैं।

पश्चात् तो इतना जरा कड़क लिया। श्रीमद् राजचन्द्र १६ वर्ष में। ‘क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे कां अहो राची रहो?’ अरे! चैतन्य! क्षण-क्षण पुण्य और पाप में राग की एकता के कारण तेरी क्षण-क्षण मृत्यु होती है। आहाहा! (शान्ति) जला देते हैं। क्या कहा, समझ में आया? ‘क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां...’ भावमरण। द्रव्यमरण तो देह की स्थिति पूरी होगी तब होगा। परन्तु क्षण-क्षण भगवान बुद्ध वीतराग चिदानन्द प्रभु उसके लक्ष्य रुचि के काल में वह छोड़कर पुण्य-पाप की राग की एकताबुद्धि तेरे पड़ी है, तेरे क्षण-क्षण आनन्दकन्द की मृत्यु होती है। आहाहा! समझ में आया? डॉक्टर? १६ वर्ष में कहते हैं, १६ वर्ष में। श्रीमद् राजचन्द्र। ३३ वर्ष में देह छूट गया। एकावतारी हो गये। एक भव। एक भव। गृहस्थाश्रम में थे। परिवार भी था, लाखों का मोती का व्यापार था। क्या है? हो, परन्तु मेरी चीज़ भिन्न है। अन्तर में भान था। भानरहित त्यागी भी अनन्त संसार में भटकते हैं। रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा। और

भानवाला गृहस्थ भी एकावतारी—एक भवतारी हो जाता है। ऐसा भान था तो बोल गये अन्दर में।

‘अशेष कर्मनो भोग है, भोगना अवशेष रे, इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।’ ३३ वर्ष में देह छूटने से पहले कह गये कि हम देखते हैं तो एक ओर भगवान आत्मा की दृष्टि अनुभव में आती है। एक ओर थोड़ा राग भी दिखता है। तो राग की लम्बाई में इतना अन्दर में ख्याल आता है कि अभी ‘अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे’ थोड़ा रागादि है, थोड़ा भोगने का काल लगा है। ‘इससे देह एक धारकर...’ अब बाद में एकाध देह मनुष्य का धारकर ‘जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे’ सुभागचन्दभाई! देखो! आहाहा! गृहस्थाश्रम में। परन्तु गृहस्थाश्रम में क्या आत्मा का भान दर्शन हुआ? सम्यक् अनुभव हुआ, मैं राग पुण्य विकल्प से न्यारा हूँ। ऐसी चीज़ भान हुई, आवाज आत्मा मारता है। थोड़ा राग बाकी है। अभी मैं वीतराग चारित्र की स्थिरता स्वरूप में नहीं है। यह बाह्य की बात नहीं। अन्दर में स्थिरता चाहिए। तो मुझे लगता है कि एकाध भव मुझे करना पड़ेगा और एक भव पश्चात् स्वरूप के स्वदेश में राग और विकल्प का भव, वह सब परदेश है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव और उसका फल परदेश है। वह परदेश में थोड़ा एकाध भव रहना है, पश्चात् स्वरूप में समा जायेगा। पश्चात् हम केवलज्ञान, केवलदर्शन लेकर अपने स्वरूप की प्राप्ति कर स्वदेश में आ जायेंगे। समझ में आया? ऐसा आत्मा का सम्यग्दर्शन भान होने से अन्तर में अनुभव में आवाज होती है। ऐसे नहीं कि क्या होगा, हमारे अनन्त भव है या नहीं? हमारे गृहस्थाश्रम है। व्यापार-धन्धा, है क्या? हमारे है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा राग है तो देह की क्रिया बाहर की व्यापार-धन्धे की होती है। हो, हमारे क्या है? हम तो चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा आनन्द है। ऐसे भान में गृहस्थाश्रम में भी आत्मा को उजालते हैं, अज्ञानी ऐसे अवसर में पुण्य-पाप की एकात्मबुद्धि में आत्मा को जला देते हैं। समझ में आया?

पश्चात् गया कैसा? ‘क्षण क्षण भयंकर भाव मरण’ ऐसा कहा। भयंकर भावमरण। आहाहा! देह का छूटना तो अनन्त बार छूटा, परन्तु क्षण-क्षण प्रभु अमृत अनाकुल आनन्द के कन्द की रुचि और प्रेम छोड़कर, इस शुभ-अशुभराग की रुचि में पड़ा चैतन्य भगवान भावप्राण की हिंसा होती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यही कहते हैं। क्षण-क्षण भूल करते हैं ... भयंकर भूल ऐसी नहीं... धर्मी को थोड़ा, ज्ञानी को बाद में राग होता है थोड़ा भोग आदि का, परन्तु वह तो थोड़ा अल्प दोष है, अल्प दोष है। पूरे समुद्र में एक चिमटी राख जितना पाप है। अज्ञानी पुण्य और पाप की क्रिया से लाभ माननेवाला वह शुभ-अशुभभाव का कर्तव्य मेरा माननेवाला, देह की क्रिया मेरी है, ऐसे माननेवाला, आत्मा को क्षण-क्षण अनन्त संसार की वृद्धि से जला देते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त सुख वीर्यान्तराय के उदय से अनन्त बल... अपना चैतन्य अनन्त बल, चतुष्टय अन्दर पड़ा है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान को अन्तर्मुख होकर करते नहीं और बाह्य का शरीरादि बल अथवा बाह्य की क्रियाकाण्ड में अपनी रुचि जोड़कर अपने अनन्त बल को आवरण हो, ऐसा वीर्यान्तराय बाँध देते हैं। आहाहा! समझ में आया? और केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन आच्छादित होता है। भगवान् दृष्टा स्वभाव। परमात्मस्वभाव दृष्टा है, उसकी रुचि, प्रेम तो अन्तर नहीं और पुण्य-पाप विकल्प की क्रिया में रुचि और यह मेरा कर्तव्य, ऐसा माना। तो कहते हैं कि दर्शनावरणीय अनन्त बँधता है, तेरा दृष्टागुण ढँक जाता है। समझ में आया? इस प्रकार अनन्त चतुष्टय का आवरण हो रहा है। उस अनन्त चतुष्टय के अलाभ में परमौदारिकशरीर को नहीं पाता,... देवालय कहा न, देवालय? देवालय को जलाते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो प्राप्त होता है, स्वरूप की आराधना से। पुण्य-पाप, विकल्प देह की क्रिया की आराधना से नहीं। तो स्वरूप की आराधना की नहीं, राग की आराधना वह अन्दर में रुचि और प्रेम से की, केवलज्ञानादि चतुष्टय नहीं प्रगट होगा और वह चतुष्टय प्रगट होने में परमौदारिकशरीर (मिलता) है। वह भी उसको मिलेगा नहीं। देखो, पश्चात् यह भी बता दिया कि जब केवलज्ञान हो, तब परमौदारिकशरीर हो जाता है। ऐसा भगवान् केवली को रोग हो, क्षुधा हो, तृषा हो—ऐसा शरीर है ही नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परमौदारिक... कहते हैं न वह भगवान को रोग आया। सबमें कहते हैं स्थानकवासी,... रोग आया और छह महीने उसको क्या ? पेचिश रोग हुआ। होता ही नहीं भगवान को। केवलज्ञान हो उसको तो परमौदारिकशरीर है। रोग कैसा ? क्षुधा कैसी ? तृषा कैसी ? वह परम शरीर औदारिक... खबर है और अनन्त ज्ञान प्राप्त काल में परमौदारिकशरीर होता है। निमित्त ऐसा होता है, उपादान ऐसा होता है। दो की बात यहाँ कही है। समझ में आया ? जो ऐसे माने कि सर्वज्ञ होता है, पश्चात् भी रोग होता है। भगवान को भी रोग हो, भगवान को भी तृषा लगे, क्षुधा लगे। वह भी आहार, पानी, दवा ले। सब झूठ बात है। उसने भगवान आत्मा का स्वभाव क्या है, केवलज्ञान क्या है और केवलज्ञान का उपाय क्या है—किसी को जाना नहीं। मार्ग को जाना नहीं, मार्ग के फल को जाना नहीं, मार्ग का आराधन द्रव्य क्या है, उसको जाना नहीं। समझ में आया ? परमौदारिक को... मोक्ष होता है, उसका नाश होता है।

इसलिए जो कोई समभाव में शुद्धात्मा की भावना करे, तो अभी स्वर्ग में जाकर पीछे विदेहों में मनुष्य होकर मोक्ष पाता है। लो, क्या कहते हैं ? भले पंचम काल में है देह। ... क्यों कहते हैं ? अपना शुद्ध भगवान की श्रद्धा-ज्ञान से आत्मा का आराधन करे तो उसको एकाध भव रह जाये, स्वर्ग में जायेगा। यहाँ से देव होकर महाविदेह से मोक्ष जायेगा। देखो, अभी स्वर्ग में जाकर बाद में मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। भगवान आत्मा परमात्मा सच्चिदानन्द प्रभु वह पुण्य-पाप के रागरहित स्वभाव का आराधन करने से बाकी रहे थोड़ा राग, एकाध भव स्वर्ग का हो जायेगा, स्वर्ग से मनुष्य होकर, केवलज्ञान पाकर महाविदेह से मोक्ष हो जायेगा। समझ में आया ?

ऐसा ही कथन दूसरी जगह शास्त्रों में लिखा है,... यह कुन्दकुन्दाचार्य में है, मोक्षपाहुड़। कि तप से स्वर्ग तो सभी पाते हैं,... क्या कहते हैं ? कि पुण्य करने से, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करने से तो स्वर्ग मिलता है अज्ञानी को। परन्तु जो कोई ध्यान के योग से स्वर्ग पाता है, वह परभव में सासते (अविनाशी) सुख को (मोक्ष को) पाता है। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान की अन्तर निर्मल एकाग्रता हुई, अनुभव हुआ। ऐसे ध्यान के योग से, राग बाकी रह गया और स्वर्ग में जाता है तो बाद में एक भव करके मोक्ष जायेगा। तो आत्मा की श्रद्धा शुद्ध चिदानन्द आत्मा ज्ञानानन्द है,

उसके आश्रय से लाभ होता है। ऐसे भान बिना मात्र क्रियाकाण्ड करने से अज्ञानी तो अनन्त बार स्वर्ग में गया। उसकी कोई नवीन बात नहीं। वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं मोक्षप्राप्त। गाथा २३ है। गाथा २३ है। उसमें आधार दिया है टीकाकार ने कि भाई! स्वर्ग तो बहुत जीव पाते हैं अनन्त बार में। सम्यग्दर्शन—आत्मा शुद्ध निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि बिना राग का कर्ता, पुण्य का कर्ता होकर, व्रत, दान, तप करके मूढ़ मिथ्यादृष्टि स्वर्ग में अनन्त बार गया, वह कोई नयी चीज़ नहीं। परन्तु अपना शुद्ध चैतन्य अनुभव दृष्टि—राग का कर्ता मैं नहीं, पुण्य का कर्ता नहीं, पुण्य मुझे चाहिए नहीं, मुझे तो एक आत्मा शुद्ध स्वभाव चाहिए। ऐसे आराधन में कदाचित् राग रह जाये तो वह स्वर्ग में जाये, उसकी बलिहारी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अर्थात् स्वर्ग से आकर मनुष्य होकर मोक्ष पाता है, उसी का स्वर्ग पाना सफल है,... वह तो वर्तमान में पूर्ण केवलज्ञान ले सके नहीं तो अन्तर में ध्यान श्रद्धा, ज्ञान की निर्मलता द्वारा अनन्त संसार छेद दिया। थोड़ा रागादि रहा तो ... भूमिका में जायेगा ... पूरा होकर धर्मशालारूप से। धर्मशाला... सवेरे धर्मशाला छोड़कर, जहाँ जाना है वहाँ मनुष्यभव आकर साधन अन्तर करके केवलज्ञान पा लेगा। समझ में आया ? **और जो कोरे (अकेले) तप से स्वर्ग पाके फिर संसार में भ्रमता है,...** शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्मा अखण्डानन्द निर्विकल्प आनन्द उसका अनुभव और सम्यग्दर्शन रहित अकेले क्रियाकाण्ड से कोरे (अकेले) तप से... तप अर्थात् मुनिपना क्रियाकाण्ड का। अट्ठाईस मूलगुण का पालना वह। तप से स्वर्ग पाके फिर संसार में भ्रमता है, उसका स्वर्ग पाना वृथा है। कहो, समझ में आया ? यह ९२ गाथा पूरी हुई। यह परमात्मप्रकाश यहाँ पूरा हुआ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक ०२-०६-१९६५

गाथा - ९३-९४, प्रवचन - १३७

गाथा - ९३

यह परमात्मप्रकाश, दूसरे अध्याय की ९३वीं गाथा चलती है। भावार्थ है देखो। ९३ का भावार्थ। ९३ कहते हैं न? गाथा तो हो गयी है न? ऊपर उपोद्घात हुआ। यह गाथा।

२२०) अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गुरुयउ गंथहि तत्थु।

सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु ॥ ९३ ॥

उसका शब्दार्थ। जो मुनि... होकर बाह्य परिग्रह से अपने को महन्त मानता है,... स्पष्टीकरण भावार्थ में आयेगा। अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है,... मैं बड़ा हूँ— ऐसा मानता है। निश्चय से वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता, ऐसा जिनेश्वरदेव कहते हैं। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा कहा कि जिसको अपना आनन्द ज्ञायकस्वभाव राग विकल्प से भिन्न है, उसका भान नहीं, वही शुभराग शिष्य आदि, ग्रन्थ रचना आदि, शब्द शास्त्र आदि का वह अभिमान करता है। बड़ापन मानता है। बड़ापन उसमें है नहीं। और शास्त्र की रचना न आये, शिष्य अल्प हो, ऐसा परिग्रह की हीनता से अपने को हीन माने, वही मिथ्यादृष्टि परमस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसी परम चीज को वह नहीं जानता है। समझ में आया ?

भावार्थ :- निर्दोष परमात्मा से... अर्थात् अपने निजस्वरूप की यहाँ बात है। निर्दोष परमात्मा से... परम-आत्मा। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप ज्ञायकभाव स्वभावरूप ऐसा निर्दोष परम स्वरूप वीतराग अपना निजस्वरूप द्रव्य, उससे पराङ्मुख... उससे उल्टा। जो पूर्वसूत्र में कहे गये सचित्त,... शिष्य आदि सचित्त रागादि अचित्त,... आभरण अथवा मुनि की अपेक्षा से कमण्डल आदि और मिश्र... गुणस्थान, मार्गणा

आदि का विचार, वह विकल्प है परिग्रह है, उनसे अपने को महन्त मानता है,... मैं गुणस्थान, मार्गणास्थान का बड़ा विचार करने में बहुत बड़ा हूँ। भगवान! वह तो विकल्प है। उससे बड़ाई मानना, वह भगवान वीतरागस्वरूप चिदानन्द उसको हीन मानने जैसी बात है। समझ में आया ?

कहते हैं कि पूर्वसूत्र में कहे गये सचित्त, अचित्त, मिश्र परिग्रह है,... शुभ विकल्प जो उठता है, उसमें अपनी बड़ाई मानता है कि हम तो विकल्प द्वारा बहुत विचार कर सकते हैं। ऐसा गुणस्थान, मार्गणास्थान या सचित्त रागादि भाव से अपनी बड़ाई, महन्तता, अधिकता, श्रेयता मानता है, वह विकल्प-भेदविचार से रहित अपना वीतराग परमस्वरूप परमात्मा को जानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! उनसे अपने को महन्त मानता है, जो मैं बहुत पढ़ा हूँ। शब्दार्थ इतना लिखा है। टीका में तो विशेष है। 'ग्रन्थरचनारूपशब्दशास्त्रैर्वा आत्मानं महान्तं मन्यते' शास्त्र की रचना, शास्त्र का व्याख्यान, शास्त्र का स्वाध्याय आदि मैंने बहुत किया है। और शास्त्र की रचना भी मैंने बहुत की है। इससे अपनी अधिकाई माननेवाला, वह विकल्प और बाह्य परिग्रह शास्त्र आदि उसको अधिक माना। भगवान आत्मा उससे रहित, वह विकल्प से और रचना से भिन्न ऐसा अपना परमार्थस्वरूप उसने जाना नहीं। ऐसा जिनेश्वरदेव कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा जिसके अभिमान है,... भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन आनन्द आदि पूर्ण स्वभाव सम्पन्न, वह जिसकी दृष्टि में आया, उसको यह शास्त्र रचनादि की अधिकाई दृष्टि में लगती नहीं। समझ में आया ? वह विकल्प भी पुण्यबन्ध का कारण है, भगवान अबन्धस्वरूपी में वह एक कलंक है। आहाहा ! तो कलंक से अधिक मानना, वह निष्कलंक भगवान अपना निजस्वरूप को वह नहीं जानता। समझ में आया ? आहाहा ! देखो, मैंने बहुत शास्त्ररचना की, शास्त्र बहुत पढ़े और शास्त्र का स्वाध्याय वाँचन में भी मैं बहुत होशियार हूँ।

मुमुक्षु : गाने तो उसके ही गाये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका गाना ? किसने गाया ?

मुमुक्षु : आत्मा का।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का। वे गाते हैं पर के। विकल्प और शास्त्र की वाणी, भाषा, पुस्तक रचना, वह तो सब विकल्पात्मक भाव और परवस्तु जो जड़ है। वह तो बननेवाली थी तो बनी है, तेरे से बनी नहीं। शास्त्ररचना भी अपने से नहीं बनती कोई ज्ञानी-अज्ञानी से।

मुमुक्षु : आचार्य तो बनावे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बना सके ? तीन काल में नहीं बना सकते। रतनचन्दजी ! हमारे पण्डितजी तो रामजीभाई बोले तो बहुत....

कहते हैं, इस काल में बना सकते हैं ऐसा है ? मानते हैं तो तीनों काल मानते हैं, उसमें क्या आया ? भगवान तो ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसमें विकल्प आया, वह भी अपना स्वरूप क्या है ? समझ में आया ? वह प्रवचनसार में नहीं कहा ? प्रवचनसार में अमृतचन्द्राचार्य ने अन्त के श्लोक में कहा है। ओहोहो ! वह दूसरी। यह तो रचना मेरी नहीं, मेरी नहीं। भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। अरे भगवान ! वास्तव में पुद्गल स्वयं शब्दरूप से परिणमते हैं। आत्मा उनको परिणमा सकता नहीं। समझ में आया ?

व्याख्येयं किल विश्वामात्मसहितं व्याख्या तु गुम्फो गिरां

व्याख्येयं किल विश्वामात्मसहितं व्याख्या तु गुम्फो गिरां

व्याख्यातामृतचन्द्रसूरिरिति मा मोहाज्जनो वल्गातु।

वल्गात्वद्य विशुद्धबोधकलया स्याद्वादविद्याबलाद्

लब्ध्वैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः ॥२१॥

कहते हैं, आत्मा सहित विश्व वह व्याख्येय (समझाने योग्य) है, वाणी का गुंथन वह व्याख्या है और अमृतचन्द्रसूरि वे व्याख्याता हैं,... यह व्याख्या करनेवाले, समझानेवाले हैं, इस प्रकार जन मोह से मत नाचो... आहाहा ! वास्तव में पुद्गल ही स्वयं शब्दरूप परिणमित होते हैं,... आत्मा शब्द की पर्याय को उस काल में जड़ के उत्पाद को कैसे परिणमित करे ? वास्तव में सर्व पदार्थ ही स्वयं ज्ञेयरूप-प्रमेयरूप परिणमित होते हैं, शब्द उन्हें ज्ञेय बना-समझा नहीं सकते, इसलिए... हे जनो ! आप,

व्याख्या करनेवाला मैं हूँ, वाणी का गुंथन मैंने किया है, व्याख्याता—समझानेवाला मैं हूँ और उसके कारण से परजन समझते हैं—ऐसे मोह से, भ्रमणा से जनों न नाचो। न फुलाओ—न फुलाओ। भगवान! एक ज्ञानस्वरूप भगवान वह बाहर में क्या आया विकल्प में? और वह वाणी में कहाँ आया कि उसने रचना की? समझ में आया?

(किन्तु) स्याद्वादविद्या बल से... अर्थात् मैं मेरे स्वभाव में हूँ, मैं विभाव में नहीं, विभाव में स्वभाव नहीं। वाणी में राग नहीं, राग में वाणी नहीं, वाणी में मैं नहीं, मैं में वाणी नहीं। ऐसा स्याद्वादविद्या के बल से विशुद्ध ज्ञान की कला द्वारा... मैं तो ज्ञानस्वरूप राग से और वाणी से। शास्त्ररचना से मेरी चीज़ ही त्रिकाल भिन्न है, ऐसा ज्ञानकला द्वारा इस एक समस्त शाश्वत स्वतत्त्व को प्राप्त करके... भगवान ज्ञानमूर्ति सहजानन्दस्वरूप अपनी ज्ञानपर्याय से स्व को ज्ञेय के परिणमन करके आज ही आज ही (जन) अव्याकुलरूप से नाचो... अव्याकुलरूप से परिणमो। दूसरी कोई चीज़ उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? मैं व्याख्याता हूँ, वाणी व्याख्येय है, दूसरे को समझ सकता है—ऐसी भ्रान्ति न करो। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु वह विकल्प में, आस्रव में कहाँ से आया? और विकल्प आत्मस्वभाव में कहाँ सत्ता में रहा? और वाणी की पर्याय शब्द से परिणमती हैं, वह पर्याय आत्मा में से कहाँ से आयी? और आत्मा वह शब्द की पर्याय की सत्ता में कहाँ ... है? समझ में आया? भगवान आत्मा परमस्वरूप चिदानन्दस्वरूप की बड़ाई तो अपना पूर्ण शुद्धस्वरूप एक समय की पर्याय से भी पूर्ण अधिक है, उसमें उसकी दृष्टि की बड़ाई है। समझ में आया? तो कहते हैं कि क्षयोपशम ज्ञान हो, उसकी भी विशेष बड़ाई नहीं। एक समय का क्षयोपशम ज्ञान तो एक समय की पर्याय है। इसकी बड़ाई कहाँ? एक समय में ज्ञानसमुद्र चैतन्य रत्नाकर में अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का रस पड़ा है। ऐसी दृष्टि में परमार्थ जानने में पर का अभिमान क्षयोपशम का भी कहाँ से आता है? समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ कहा न। परमार्थ—परम अर्थ-परम पदार्थ। ओहो! एक राग नहीं, पर नहीं, अल्पज्ञ पर्याय का व्यक्तपना है, इतना नहीं। ऐसा पूर्ण परमार्थ

भगवान उसकी दृष्टि करनेवाले को ऐसी रचनादि या क्षयोपशम ज्ञानादि का या शास्त्र की व्याख्याता का कैसे अभिमान होगा ? और वह पर का अभिमान है तो कैसे परमार्थ जाना है उसने ? समझ में आया ? जिसकी केवलज्ञान की एक पर्याय में स्व-परप्रकाशक लोकालोक आ जाता है। ऐसी अनन्त पर्याय का समुदाय ज्ञानगुण है। जिसकी एक समय की पर्याय में षट्द्रव्य का तीन काल—तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय जानने की एक समय की सामर्थ्य है। ऐसा अनन्त पर्याय की सामर्थ्यरूप गुण है। ऐसी एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक के छह द्रव्य की श्रद्धा, विकल्प से श्रद्धा करने की श्रद्धापर्याय में सामर्थ्य है। ऐसी अनन्त श्रद्धा पर्याय का, निर्मल पर्याय का पिण्ड, वह श्रद्धागुण है। समझ में आया ? एक समय में चारित्र की पर्याय स्थिरता, शान्ति, बेहद अनन्त अनाकुलरूप परिणमन होना ऐसी एक चारित्रगुण की एक पर्याय में सामर्थ्य है। ऐसी अनन्त अनाकुल शान्तरूपी पर्याय का पिण्डरूप चारित्रगुण है। ऐसे-ऐसे अनन्त पर्याय का एक-एक गुण ऐसा पिण्ड है। ऐसा भगवान परमार्थ प्रभु उसकी श्रद्धा अनुभव प्रतीति में आया, उसको अल्पज्ञान और राग और पर का कर्ता(पना) अथवा पर की बड़ाई कैसे होती है ? समझ में आया ? आहाहा !

परमात्मप्रकाश है न ? परमात्मप्रकाश है न ? तो परमस्वरूप भगवान की दृष्टि में जिसको प्रकाश अन्दर आया, किसकी बड़ाई ? यह क्षयोपशम ज्ञान भी नाशवान है। वह भी नाश हो जायेगा। परमपारिणामिकस्वभावभाव त्रिकाल उसकी दृष्टि में अधिकता हो गयी, वह दूसरी चीज़ को बड़ाई में लाता नहीं, बड़ाई करता नहीं। समझ में आया ? आत्मा-आत्मा सब अन्यमति भी करते हैं। परन्तु यहाँ तो परमेश्वर के भास में आत्मा एक ज्ञान की एक पर्याय में छह द्रव्य का गुण-पर्याय जानने की सामर्थ्य, विकल्पसहित सामर्थ्य इतनी तो एक समय की पर्याय है। ऐसी पर्याय छह द्रव्य, हों ! छह द्रव्य। ऐसी एक पर्याय में छह द्रव्य जानने की सामर्थ्य क्षयोपशम श्रुतज्ञान की पर्याय में। ऐसी पर्याय को मानना, तब तक भी अभी पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। ऐसी पर्याय भी जिसकी प्रतीति में नहीं। छह द्रव्य, त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्यायसहित एक समय में श्रुतज्ञान की पर्याय में जानने की सामर्थ्यवाला, इसकी पर्याय की जिसको श्रद्धा नहीं, उसको द्रव्य की श्रद्धा होती नहीं। समझ में आया ? एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने श्रुतज्ञान की

पर्याय, हों! मात्र केवलज्ञान में प्रत्यक्ष और परोक्ष जितना अन्तर है। ज्ञान स्याद्वाद से श्रुतज्ञान की एक पर्याय छह द्रव्य—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु वह सब (जाने), ऐसी पर्याय को स्वीकार करे, तब भी अभी पर्यायदृष्टिवान है। तो राग को अधिक मानना और पर से अधिक मानना, वह तो परमार्थ से अनजान है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, आत्मा-आत्मा तो बहुत कहते हैं आत्मा-आत्मा। सब कहते हैं न? कि भाई! आत्मा तो जिसकी एक पर्याय में छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय। तो उसकी पर्याय को तब माना कहने में आये वह पर्याय को। छह द्रव्य जानने की सामर्थ्य विकल्प बिना निरपेक्षरूप से पर्याय के सामर्थ्य से। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय पिण्डरूप गुण, ऐसी श्रद्धा पर्याय, अनन्त पर्याय ... श्रद्धा, ऐसे चारित्र, ऐसे आनन्द, ऐसे अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व, विभुत्व, परमेश्वरता। ऐसी एक-एक समय की पर्याय, ऐसा समुदाय भगवान द्रव्य। जिसको यहाँ परमार्थ कहने में आया है। ऐसे परमार्थ को जानते हैं, उसको पर्याय के अंश की भी अधिकता का अभिमान है नहीं। समझ में आया?

विकल्प, बाह्य की चीज़ तो स्वतन्त्र परिणति है। उसकी बड़ाई जिसको है, उसको भगवान... ऐसा जिसके अभिमान है, वह परमार्थ यानि वीतराग परमानन्द-स्वभाव... देखो, राग बिना का परमानन्दस्वभाव निज आत्मा को नहीं जानता। ओहोहो! समझ में आया? आत्म-ज्ञान से रहित है, ... सम्यक् दृष्टि ही नहीं उसको। आहाहा! सम्यक् प्रतीति में तो सम्पूर्ण आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु आयी है। तो उसमें यह पर्याय क्षयोपशम की है, उसकी भी अधिकता दृष्टि में भासती नहीं। तो राग की और बाह्य सामग्री शिष्यों को मिले, पुस्तक रचे। कौन रचे? प्रभु! यह तो पुद्गल परावर्तन के काल में परमाणु की पर्याय रचनेयोग्य है, वह रच जाती है। उस परमाणु में उत्पाद शब्द का अक्षर, एक अक्षर में अनन्त स्कन्ध है और एक स्कन्ध में अनेक परमाणु है। एक-एक परमाणु अपनी पर्याय से उत्पाद स्वतन्त्र होता है। ऐसे

अनन्त परमाणु का एक अक्षर बने। कौन बनावे अक्षर ? आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा का ज्ञान इतना धीर है, इतना शान्त है कि जिसमें अक्षर बनाने की सामर्थ्य नहीं, परन्तु अक्षर बनाने में निमित्तरूप विकल्प बननेयोग्य तो उसमें था। निमित्तरूप विकल्प है तो बना, ऐसा नहीं। ऐसा विकल्प को भी जहाँ अपने मानते नहीं और उसकी अधिकता दृष्टि में नहीं, (तो) किसकी अधिकता ज्ञानी अपने में माने ? समझ में आया ? भगवान देखो, 'ग्रन्थरचनारूपशब्दशास्त्रैवा' शब्दशास्त्र यह, हों ! अन्य विकथा बनावे, उसकी तो बात नहीं। शब्दशास्त्ररूप भगवान शब्द की पर्याय तो उससे रचाती है। वह रचा, उसमें महन्तपना तूने लिया। हम बड़े हुए, मैंने करोड़ श्लोक बनाये, लाख श्लोक का ग्रन्थ बनाया। भगवान ! यह बड़ाई तो परमार्थ खो जाने की है। रतनचन्दजी ! आहाहा ! भगवान रतन परम अर्थ, परम पदार्थ वस्तु, ऐसा जिसको ज्ञान नहीं, उसको यह पर की बड़ाई, अभिमान आता है।

वह आत्म-ज्ञान से रहित है,... समझ में आया ? 'परमात्मानं न जानातीति' वह परमस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायक आदि अनन्त स्वभावभाव ऐसा भगवान अपना निजरूप, उसको पर के अभिमान में जान सकता नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ९४

आगे शिष्य प्रश्न करता है कि जो ग्रन्थ से अपने को महन्त मानता है, वह परमार्थ को क्यों नहीं जानता ? इसका समाधान आचार्य करते हैं—९४।

२११) बुद्धिंतहं परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोइ ।

जीवा सयल वि बंभु परु जेण वियाणइ सोइ ॥ ९४ ॥

हे जीव ! परमार्थ को समझनेवालों के... आहाहा ! देखो, भगवान आत्मा... स्वभाव, द्रव्यस्वभाव दृष्टि हुई, वह सब पदार्थ को—आत्मा को द्रव्यदृष्टि से शुद्ध ही देखते हैं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में द्रव्यस्वभाव का भान हुआ। ऐसा ही सर्व जीव को द्रव्यस्वभाव से शुद्ध ही देखते हैं। समझ में आया ? हे जीव ! परमार्थ को

समझनेवालों के कोई जीव बड़ा-छोटा नहीं है,... क्योंकि विकल्प के कारण और अल्पज्ञता के कारण जो पर्याय में, राग में भेद दिखते हैं, वह तो उसका स्वरूप है नहीं। आहाहा! अपने में भी यह दृष्टि हुई है कि राग और अल्पज्ञ तत्त्वदृष्टि अल्पवीर्य का क्षयोपशमभाव, उतना मैं नहीं। मैं तो शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... इदम् हूँ। ऐसे द्रव्यस्वभाव को दृष्टि करनेवाला समकिती दूसरे के निमित्त के आधीन होनेवाली पर्याय। निमित्त के आधीन, हों! ऐसी आधीनवाली पर्याय, या निमित्ताधीन होनेवाला विकल्प से वह परमार्थ भगवान् आत्मा में भेद दिखते हैं, वह यथार्थ नहीं। पर्याय में भेद है, वस्तु में भेद नहीं। तो जिसकी पर्यायबुद्धि नष्ट हुई, वह पर को भी पर्यायबुद्धि से न देखकर द्रव्यबुद्धि से देखते हैं। समझ में आया ?

कोई जीव बड़ा-छोटा नहीं है, सभी जीव परमब्रह्मस्वरूप हैं,... देखो, परम आनन्दमूर्ति सभी जीव हैं। अभव्य या भव्य। नित्यनिगोद या नौवे ग्रैवेयक जानेवाला। परमब्रह्म वस्तु-वस्तु। यहाँ तो क्या कहते हैं ? कि अव्यक्त ऐसा द्रव्य, पर्याय से भिन्न ऐसा अव्यक्त जिसकी दृष्टि में व्यक्त हो गया। दृष्टि में व्यक्त यह पदार्थ है, ऐसा हो गया, वह सर्व आत्मा में ऐसी द्रव्यदृष्टि से व्यक्तरूप से सब शुद्ध ही देखते हैं। पर्याय में भले भेदाभेद हो। समझ में आया ? समभाव करते हैं। भगवान् है। भूलते हैं तो पर्याय में भूल है। समझ में आया ? भगवान् है, प्रभु है, प्रभु है। आहाहा!

कहते हैं, सभी जीव परमब्रह्मस्वरूप हैं, क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि शुद्धरूप ही सबको जानता है। एक का अर्थ सरखा। सब (एक ही) सरीखा संग्रहनय से सब शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... परिपूर्ण शुद्ध... परिपूर्ण शुद्ध... परिपूर्ण शुद्ध... परम आत्मा, परमस्वरूप। पर्याय का अल्प स्वरूप, राग का विकृत स्वरूप, निमित्त का संयोगस्वरूप, स्वभाव का पूर्णस्वरूप। समझ में आया ? भगवान् आत्मा का पूर्ण स्वरूप, पर्याय का अल्पस्वरूप, राग का विकृत स्वरूप, निमित्त का संयोगस्वरूप, उन तीनों को न देखकर अकेला परमात्म पूर्णस्वरूप अपने में भी संयोग, निमित्त और अल्पज्ञ न देखे। वह तो पर्याय जाननेयोग्य हुई। आदरनेयोग्य नहीं हुआ। समझ में आया ? आदरनेयोग्य तो भगवान् पूर्ण महासत्ता शुद्धस्वभाव अकेला पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... ऐसी परमार्थ दृष्टि

जहाँ हुई तो ऐसा आत्मा वर्तमान विकार और अल्पज्ञ होने पर भी जैसे पूर्ण शुद्धस्वभाव की भूतार्थ दृष्टि हुई, सबको ऐसे देखते हैं। समझ में आया? किसको छोटा-बड़ा बाह्य संयोग से और पर्याय में हीनाधिक कारण किसको छोटा-बड़ा मानना स्वभाव में? समझ में आया?

भावार्थ :- कहते हैं, जो परमार्थ को नहीं जानता, वह परिग्रह से गुरुता समझता है,... कुछ विकल्प आया या कुछ विशेष क्षयोपशम हुआ या कुछ संयोग अनुकूल का गंज रहा, उससे तो गुरुता समझता है। समझ में आया? परलक्ष्यी क्षयोपशम ज्ञान परसत्तावलम्बी, वह भी मोक्ष का मार्ग नहीं। समझ में आया? राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं और मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के विषय में वह परसत्तावलम्बी जितना क्षयोपशमज्ञान हो उठाड़, वह भी मोक्षमार्ग नहीं। तो मोक्षमार्ग की पर्याय पूर्णानन्दस्वभाव को आश्रय करके प्रगट होती है। परसत्तावलम्बी ज्ञान से भी नहीं, राग से भी नहीं, निमित्त से भी नहीं। समझ में आया?

ऐसे परमार्थ को नहीं जानता, वह परिग्रह से गुरुता समझता है,... वस्तु का महान स्वभाव उसकी दृष्टि नहीं, वही पर्याय में हीनाधिक और राग से विशेष अधिक आदि या संयोग में शिष्यादिक, पुस्तक संग्रह आदि या रचना आदि से वह गुरुता मानता है। आहाहा! समझ में आया? और परिग्रह के न होने से लघुपना जानता है,... कोई ज्ञान का क्षयोपशम परसत्तावलम्बी ज्ञान थोड़ा हो तो कहे अरे लघुता हुई, दूसरे को ऐसे देखता है तो अपने को भी ऐसे लघुता देखता है। उसको परमार्थ की खबर नहीं। समझ में आया? क्या भैया! वह आत्मा... आत्मा... आत्मा... शरीर एकदम काला, बोलने में ऊँट जैसी भाषा। ऊँट-ऊँट जैसी। मूढ़ जैसी नहीं। ऐसी भाषा। बबुल के नीचे बैठा। हम आत्मा को साधते हैं। भाषा बोले भाई हमको कुछ समझाओ। भाषा ... हमारी समझने की शक्ति... वह बाह्य की लघुता से उसने आत्मा को छोटा माना। समझ में आया? अन्दर भगवान परमानन्द की मूर्ति दृष्टि में लेकर ध्यान में पड़ा है, उसकी महत्ता उसकी दृष्टि में आयी नहीं। समझ में आया? देखो, हम पूछते हैं, उसका उत्तर भी देते नहीं यह लोग। और कहे कि हम हो गये ज्ञानी, मुनि। सुन तो सही, भगवान! भाई! वह क्षयोपशम

ज्ञान, विकल्प और वाणी, वह सब वर्तमान दृष्टि का विषय है। समझ में आया ? त्रिकाल स्वभाव भगवान परमस्वभावरूप भाव की दृष्टि जहाँ हुई तो इतनी लघुता से मैं लघु हूँ और दूसरे की ऐसी लघुता से वह लघु है, ऐसा ज्ञानी मानते नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

दिगम्बर सन्तों ने कितना काम, एक वाणी में कितनी कथन पद्धति आ गयी है ! योगीन्द्रदेव देखो। ओहोहो ! पंचम काल के सन्त परमेश्वर के साथ बात करते हैं। भगवान ! तुम तो केवलज्ञान प्राप्त हो, हमारे केवलज्ञान प्राप्त नहीं ? यह केवलज्ञान की पर्याय के ऊपर भी जिसका लक्ष्य नहीं। क्योंकि केवलज्ञान पर्याय भी सद्भूत व्यवहारनय का-भेदरूप अंश है, उसका विषय है। केवलज्ञान पर्याय सद्भूत व्यवहारनय का अंश-भेद विषय है। जहाँ दृष्टि केवलज्ञान पर्याय ऊपर भी नहीं। अपने केवलज्ञान है नहीं। दूसरे का केवलज्ञान वह ... पर्याय है। तो पर्याय ऊपर दृष्टि उसकी नहीं। उसको केवलज्ञान से नहीं देखते, उसको पूर्ण स्वरूप से देखते हैं। समझ में आया ?

और वह केवलज्ञान है तो उस करण से भक्ति का विकल्प आता है, ऐसा नहीं। जो पर्यायबुद्धि हो तो उस कारण से विकल्प आते हैं। ऐसा नहीं। समझ में आया ? विकल्प आता है, वह कमजोरी से आता है। द्रव्य की दृष्टि है। पर्याय का ऐसा तो बहुमान उसके कारण से विकल्प आया तो पर्यायदृष्टि है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? ऐसे आत्मा में परमार्थ स्वभाव की दृष्टि हुई तो पर को केवलज्ञान पर्याय है, इसलिए बहुमान करता हूँ विकल्प से, उस कारण से विकल्प आता है, ऐसा नहीं। परन्तु स्वभाव के ऊपर अन्तर दृष्टि है, स्थिरता नहीं तो ऐसे विकल्प का काल बहुमान का आ जाता है। पर के कारण से नहीं। समझ में आया ? स्वभाव के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। उसका अर्थ क्या हुआ ? उस समय में ऐसी पर्याय की विकल्प आने की योग्यता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, प्रभु ! यह बात ऐसी है कि अन्तर स्वभाव, ओहोहो ! तीन काल, तीन लोक एक समय की पर्याय में समा जाये, इतनी उसकी सामर्थ्य है। वह तो उसने पर्याय मानी कहलाये। ऐसे-ऐसे ऐसा नहीं। एक पर्याय में षट् द्रव्य जानने की सामर्थ्य। विकल्प हो भले, परन्तु विकल्परहित सामर्थ्य ज्ञान की पर्याय में है। ऐसी

अनन्त पर्याय का पिण्ड प्रभु, परमार्थ प्रभु। उसकी दृष्टि हुई, किसका महन्तपना ? बाह्य के कारण महन्तपना, बाह्य की हीनता के कारण लघुपना कहाँ मानते हैं ? समझ में आया ? बाह्य की लघुता और गुरुता के कारण बड़ाई मानते हैं, पर्यायदृष्टिवन्त मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी ! वह कहते हैं। यहाँ साधारण बात कहते नहीं। यहाँ तो आचार्य है। आहाहा !

दिगम्बर सन्त। आहाहा ! पंचम काल के हो या चौथे काल की बात हो, अन्तर भाव में अन्तर नहीं। आहाहा ! देखो, क्या कहते हैं ? हे सम्यग्दृष्टि ! तू सब जीवों को एक मान। किस अपेक्षा से ? परिपूर्ण स्वभाव एक का ऐसा दूसरा, दूसरे का ऐसा तीसरा... यहाँ कुछ राग-द्वेष पर के कारण करने का जहाँ अवकाश ही रहा नहीं। वह कमजोरी के कारण आ जाये, वह दूसरी बात है। समझ में आया ?

कहते हैं कि यद्यपि गुरुता-लघुता कर्म के आवरण से जीवों में पायी जाती है,... क्या कहते हैं ? कर्म के निमित्त में वश होता है, इतना उससे अलग होकर थोड़ा क्षयोपशम होता है, यह सब विभिन्नता पर्यायदृष्टि में निमित्त के आधीन या अनाधीन सब वेश है। पर्याय में सब वेश वह आधीन-अनाधीनता है। स्वभाव की चीज़ उसमें है नहीं। समझ में आया ? कहते हैं, कर्म के आवरण से जीवों में पायी जाती है,... गुरुता-लघुता। पर्याय में हीनाधिक दिखती है, विकल्प में अशुभ-शुभ दिखते हैं, संयोग में हीनाधिकता खूब सामग्री किसी को थोड़ी सामग्री दिखती है तो भी शुद्धनय से सब समान हैं,... पर्यायदृष्टि से न देखो, वह हीनाधिकता पर्याय में, राग में और संयोग में न देखो। वस्तु शुद्धनय से सब समान है। ऐसी दृष्टि हुए बिना समभाव नहीं आता।

मुमुक्षु : साम्यवाद आप करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साम्यवाद यहाँ अन्दर। वह साम्यभाव का भान भी कब है ? समझ में आया ?

भगवानस्वरूप समता का पिण्ड है। ओहोहो ! पूरा लोकालोक प्रतिकूल होकर डोले तो विकल्प न आवे, ऐसा भगवान् चिदानन्द चिद्बिम्ब है। जानने की पूरी सामर्थ्य और प्रतिकूलता से हिलने की बिल्कुल सामर्थ्य है ही नहीं उसमें। समझ में आया ? ऐसे

आत्मा की यहाँ बात चलती है, भगवान! आहाहा! जानने की पूर्ण सामर्थ्य। एक प्रतिकूलता के कारण से विकल्प आता है, वह बिल्कुल नहीं। कि अनुकूलता के कारण राग है, वह बिल्कुल नहीं। समझ में आया? एक कमजोरी से बीच में आ जाये, वह दूसरी बात है। वह दृष्टि के विषय में है नहीं और आ जाये उसका आदर है नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

शुद्धनय से सब समान हैं, तथा ब्रह्म... सब न्याय कैसा देते हैं ब्रह्मदेव? ब्रह्म अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी केवलज्ञान से सबको जानते हैं,... देखो, यह उपमा कैसी देते हैं। जैसे सिद्ध परमेष्ठी भगवान केवलज्ञान से सबको जानते हैं। केवलज्ञान की पर्याय में सिद्ध भगवान सबको जानते हैं, देखते हैं। वह दृष्टान्त। कहाँ उतारते हैं दृष्टान्त? देखो, उसी प्रकार निश्चयनय से सम्यग्दृष्टि सब जीवों को शुद्धरूप ही देखता है। यह समझना। केवलज्ञान में सब तीन काल, तीन लोक जानते-देखते हैं। वैसे सम्यग्दृष्टि निश्चय से सब जीवों को... इस तरह देखो। दृष्टि में, ज्ञान में सब जीव शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... द्रव्यस्वभाव परम... परम... परम भाव... भाव... भाव... मेरा परमभाव स्वभाव दृष्टि में लिया, ऐसा ही सब परमभावरूप पूरा पिण्ड पूरे लोक परमब्रह्म भगवान से भरा है। चौदह ब्रह्माण्ड, अनन्त परमात्मा। एक अंगुल की असंख्यवें जगह में भी अनन्त परमात्मा शुद्ध भगवान परमब्रह्म से भरा है। ऐसे सम्पूर्ण चौदह ब्रह्माण्ड भरा है। आहाहा!

प्रगट पर्याय में... जिसको पर्याय का ही भरोसा नहीं, उसका अप्रगट-अव्यक्त पूरा... अव्यक्त पर्याय अपेक्षा से, वस्तु अपेक्षा से प्रगट सत्ता। ऐसी महान सत्ता जिसको स्वीकार में आयी, कि जिसकी महान सत्ता अनन्त गुण की अमर्यादित शक्ति एक-एक गुण की। एक गुण ऐसे अनन्त गुण, ऐसे अनन्त गुण में एक-एक गुण की अनन्त शक्ति (-सामर्थ्य) और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय। ऐसा भगवान आत्मा महन्त-महान दृष्टि में आया, उसकी दृष्टि सब जीव को केवलज्ञानी देखते हैं, ऐसे सम्यग्दृष्टि सब जीव को पूर्ण ब्रह्म। शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... अभव्य हो या भव्य हो। वह पर्याय का भेद है। एक अनन्त संसारी हो, एक एकावतारी हो अथवा एक वर्तमान सिद्ध पर्याय में हो। समझ में आया?

दृष्टान्त कैसे दिया है ? कि केवलज्ञानी जैसे सबको जानते-देखते हैं, वैसे सम्यग्दृष्टि अपने द्रव्य की महानसत्ता का अनुभव प्रतीति में आया तो सब आत्मा ऐसा ही है, ऐसी प्रतीति में देखते हैं। समझ में आया ? ओहोहो ! देखो, बात ! श्वेताम्बर सूत्र ४५ पढ़-पढ़कर मर जाये, उसमें से ऐसी एक पंक्ति भी निकले नहीं।

मुमुक्षु : एक गुण में अनन्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक गुण में अनन्त सामर्थ्य। क्योंकि एक गुण में अनन्त गुण में निमित्त होने की सामर्थ्य। ऐसे एक गुण में अनन्त पर्याय। ऐसे एक गुण में अनन्त अमर्यादित शक्ति। स्वभाव है न ? स्वभाव एक गुण चौड़ा भले शरीर प्रमाण असंख्य प्रदेश प्रमाण हो। पड़ोस समझे न चौड़ा ? परन्तु उसके स्वभाव के सामर्थ्य की अनन्तता-बेहदता है। तीन काल पर्याय भले हो, परन्तु स्वभाव सामर्थ्य जो है एक गुण का स्वभाव सामर्थ्य अनन्तगुणा स्वभाव सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त गुण का स्वभाव सामर्थ्यरूप भगवान् आत्मा। आहाहा ! यह है। गीता-गीता पण्डितजी कुछ कहते थे न। गीता। यह आत्मा की गीता है। पण्डितजी ने एक शब्द लिया था दो दिन पहले। यह आत्म गीता है। यह गीता गीत है। भगवान् ! वह तेरे स्वभाव में ऐसा पड़ा है। समझ में आया ? आहाहा !

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह गीता है। समझ में आया ? और यह महिमा आवे और राग और पर्याय को अपना माने... ऐसा कहते हैं। तो जैसे अपनी पर्याय में राग को अपना न माने, पूर्ण को मानते, ऐसे सब द्रव्य ऐसा ही भगवान् पूर्ण पड़ा है। चौदह ब्रह्माण्ड में अकेला भगवान् भरा है। अकेला अनन्त-अनन्त भगवान् ठसाठस। ठांसी-ठांसी को क्या कहते हैं ? ठसाठस। समझ में आया ? समभाव। भगवान् ऐसा है न प्रभु तुम। यह विकल्प की खदबदाहट होती है। भगवान् एक समय की है। एक समय की कौन देखे ? एक समय को कौन देखे ? क्षणिक है वह तो। समझ में आया ? अपनी भी क्षणिक पर्याय का जहाँ स्वीकार नहीं। वहाँ उसकी पर्याय का स्वीकार कहाँ से करे, वह ? जाने सही। यह वस्तु।

कहते हैं निश्चय से भगवान् सम्यग्दृष्टि सब जीवों को शुद्धरूप ही देखता है। देखो, किसके साथ दृष्टान्त दिया। पाठ ऐसा है, हों ! 'केवलज्ञानेन सर्वं जानाति यथा

तथा निश्चयनयेन सोऽप्येको' कोपी। कोपी अर्थात् सम्यग्दृष्टि 'सोऽप्येको विवक्षितो जीवः' 'सोऽप्येको विवक्षितो' एक अर्थात्? संग्रह नहीं ऐसे सब शुद्ध-शुद्ध। तो एक जाति। 'संसारी सर्व जानातीत्यभिप्रायः' ब्रह्मदेव की टीका। समझ में आया? दिगम्बर सन्त, दिगम्बर की वाणी, दिगम्बर गुरु और दिगम्बर का परमात्मा। ये तो अलौकिक बात है। समझ में आया? वस्तुस्वरूप ऐसा है। ऐसा कहते हैं। यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। लो, यह मेरा दिगम्बर सम्प्रदाय, तुम्हारा श्वेताम्बर। ऐसे जैन, वैसे अजैन। वस्तु ऐसी है। समझ में आया? पर्याय अल्प होने पर भी, राग अल्प होने पर भी दृष्टि के स्वीकार में जीत लिया द्रव्यस्वभाव जाना, पर्याय जितनी इतना नहीं, जीत लिया जाओ। क्रम-क्रम से स्वभाव पर एकाग्र होकर सर्वज्ञ हो जायेगा। उसका नाम जैन कहने में आता है। आहाहा! रतनचन्द्रजी!

भगवान! तो दूसरा विरोध करे न। विरोध करे, बापू! लो... विरुद्ध करना चाहिए। लोगे से? लोगे समझे? लोगे हमारी काठियावाड़ी भाषा है। कुछ सज्जनतापूर्वक। समझ में आया? एक भाई ऐसा था। एक हरिजन की स्त्री थी, हरिजन की स्त्री। तो बनिया ने विवाह कर लिया। तो हरिजन स्त्री ने ऐसा कहा कि हम तो बनिया की पुत्री हैं। वह बनिया के साथ विवाह कर लिया। तो बड़ी दुकान चलती थी। तो गाँव का दूसरा कठियारा। वह लड़की जिस गाँव की थी न, उसका कठियारा। कठियारा समझे? भारा। भारा बेचनेवाला। वह भारा सेठ ने लिया। तो डालने को घर में गये। घर में गये तो उस कन्य को देखे। अरे, यह अपने हरिजन की पुत्री। समझे? आहाहा! फिर किसी ने लड़के के चार, छह आठ आना कुछ किया होगा उसमें भूल पड़ी। लड़ाई चली। वह लड़की शरमा गयी। यह तो मेरे गाँव का है तो अभी कह देंगे कि हरिजन। बहिन! मैं लोगे लडीश। बस इतना कह दिया उसने। लोगे अर्थात् सज्जन रीति से लडूँगा। कहूँगा। तुझे नुकसान हो ऐसा नहीं करूँगा। इतनी भाषा में बोला 'लोगे' कि समझ गयी बाई कि ठीक, मुझे पहिचान गया है, परन्तु बोलेगा नहीं। बहिन... बहिन! मैंने तो आठ आना कहा है, दो पैसा कम। हिसाब के लिए बोलता हूँ। ऐसा बनिया को। दूसरे प्रकार से नहीं, ऐसा। 'लोगे' अर्थात् वह महिला समझ गयी। लोगे समझे न? वह मेरे पैसा दो कम हो ऐसा मैं कहूँगा। मेरे ख्याल में आ गयी परन्तु वह बात मैं यहाँ रखूँगा ही नहीं।

पण्डितजी ! बहिन ! इतना कहा । मैं लोगे (अर्थात्) सज्जनता से बात करूँगा, हों ! वह समझ गयी ।

इस प्रकार कहीं बातचीत में भी सज्जनता देखनी न, बापू ! वह परमात्मा है । उसे व्यक्ति के प्रति विरोध किसका ? विरोध किसका ? कोई भी दृष्टि विपरीत हो, विरोध किसका ? वह व्यक्ति के प्रति तो प्रेम होना चाहिए । ओहो ! यह तो आत्मा है । वह आत्मा है । उसको दुःखी होना पसन्द है ? परन्तु उसकी दृष्टि में वह बात जब तक न आये तो ऐसा होता है । हुआ तो क्या ? इसलिए व्यक्ति में विरोध नहीं होना चाहिए । प्रेम न जाये । पर के प्रति ज्ञाता में प्रेम रखते हैं । यहाँ आचार्य महाराज यह कहते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? पहले समझना तो चाहिए कि क्या मार्ग है, कैसी पद्धति है, निश्चय का क्या प्रकार है । यहाँ ... तो यह शिष्य पूछेगा आगे । कि महाराज ! यह आगे कहेंगे बाद में । तुम एक ही मानते हो सबको । तो वेदान्ती एक ही मानते हैं । वह प्रश्न बाद में आयेगा । तुम सबको एक देखो, वैसे वेदान्त भी एक-एक देखते हैं । भगवान ! हम दूसरी पद्धति से कहते हैं । वह चीज़ दूसरी बात, हमारी दूसरी है । हम जाति अपेक्षा से सब समान हैं, ऐसा कहते हैं । वस्तु एक है, ऐसा है नहीं । समझ में आया ? अभी आता है उसमें । कहो, समझ में आया ?

सब जीवों को शुद्धरूप ही देखता है । क्या ज्ञान चला जाता है ? उसकी भूल है, उसको ख्याल में नहीं आती ? सम्यग्दृष्टि को ख्याल में नहीं आती ? ख्याल में आती है, परन्तु जैसे अपने राग और अल्प पर्याय की अधिकता नहीं । अपने को तो उसका भी ज्ञान है । अल्पज्ञपना, राग का ज्ञान नहीं है ? और दूसरे का अल्पज्ञपना, हीनपना, रागादि का ज्ञान नहीं है ? ज्ञान होने पर भी स्वभाव का आदर है, ऐसा परमपदार्थ का सबका स्वभाव शुद्ध है, ऐसा आदर है । समझ में आया ? शीलचन्द्रजी ! बात ऐसी है, भैया ! यह वीतरागमार्ग ऐसा है । त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर । आहाहा ! समवसरण में इच्छा बिना ध्वनि भगवान की उठती है अभी । सीमन्धर प्रभु के पास । अनन्त तीर्थकर हुए, भरत, ऐरावत आदि । एक ही बात सब तीर्थकर की । एक ही पंथ, एक ही मार्ग, एक ही रीत और एक ही स्याद्वाद अनेकान्तस्वरूप । तो कहते हैं अहो ! अपने स्वरूप की जैसी

महिमा अन्तर में अनन्त काल में एक समय भी नहीं थी। ऐसी महिमा माहात्म्य अनुभव आत्मा का आया वह दर्शन किया भगवान आत्मा का। परमात्मा की भेंट हुई पर्याय में। पर्याय में भेंट हुई। तो सबको परमात्मा देखते हैं। वस्तु में परमात्मा। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सब जीवद्रव्य है न। ऐसा यहाँ योगीन्द्रदेव आचार्य जगत को, सम्यग्दृष्टि की विषय में जैसे परिपूर्णता है, पर्यायदृष्टि उसकी नहीं, तो सब जीवों में पर्याय है, उसे न देखकर उसका स्वभाव ही देखते हैं। ज्ञान चला नहीं जाता, हों!

व्यवहार जानना प्रयोजनवान है, ऐसा कहा १२वीं गाथा में। अपने में पर्याय, राग अल्प है। वह जानने के लिये प्रयोजनवान। जानने के लिये प्रयोजन। आदरनेयोग्य नहीं। तदात्वे प्रयोजनवान। उस काल में जानना प्रयोजनवान है। जितनी-जितनी शुद्धि हुई, जितनी अशुद्धि गयी। इतना-इतना ज्ञान, उस समय का ज्ञान हुआ, वह पर्याय ऐसी प्रगट हुई उसे जानते हैं, आदरते नहीं। आदरने में शुद्धस्वभाव एकरूप उस ओर दृष्टि झुकी है तो अन्तर्मुख का आश्रय में अकेला द्रव्य ही आ रहा है। समझ में आया? ऐसे सब द्रव्य की पर्याय की विभिन्नता ज्ञान में लेते हैं, परन्तु वह जाननेयोग्य है। जैसे अपनी पर्याय जाननेयोग्य है कि सम्यक्त्व कहो या रागादि जानना प्रयोजनवान। तदात्वे-उस काल को जानना प्रयोजनवान है। ऐसा। क्योंकि भिन्न-भिन्न पर्याय में भिन्न-भिन्न, राग भिन्न-भिन्न होता है। तो उस समय ज्ञान भी वही राग को जाने ऐसी ज्ञान की पर्याय भिन्न-भिन्न होती है। वह तदात्वे लिया है। जिस-जिस समय में जो रागादि, जिस-जिस समय में वह राग को जानने की ज्ञान की पर्याय अपनी स्वतन्त्र। आता है (जैसा राग) ज्ञान की पर्याय आती है, ऐसा नहीं। ऐसी जानने की पर्याय स्व को जानती है, पर को जानने से ऐसा प्रकाश होता है। जाना हुआ है। ऐसे सर्व द्रव्य की पर्याय अपने जितने जाति-प्रकार की है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदरणीय मैं द्रव्य शुद्ध हूँ—ऐसा भगवान सर्व शुद्ध है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय-व्यवहार की सन्धि कही। भगवान के मार्ग की ऐसी पद्धति है।

मुमुक्षु : ज्ञान दोनों का करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञान दोनों का करे, आदरणीय एक का। समझ में आया ? भाई ! वस्तु ऐसी है, प्रभु ! यह वस्तु ऐसी है। यह कोई पलाखा पीछे आवे, ऐसा नहीं। पलाखा समझे न ? गडीया बोलते हैं न गडीया। गडीया क्या कहते हैं ? पहाड़ा। यह तो अन्तर की बात है। पहाड़ा सीखते हैं न ? एक एकम् एक, दो एकम् दो, तीन एकम् तीन। यह तो पदार्थ है। समझ में आया ? लो। ओहोहो ! देखो, यह पंचम काल के मुनि। यह गाथा। यह उसका ऐसा भाव है। समझ में आया ?

इस तरह इकतालीस दोहों के महास्थल में परिग्रह त्याग के व्याख्यान की मुख्यता से... परिग्रह त्याग अर्थात् अल्पज्ञता, राग की पकड़ नहीं। जानना भले हो। स्वभाव त्रिकाल है, उसकी पकड़, उसका अर्थात् परिग्रह का त्याग। आहाहा ! समझ में आया ? मुख्यता से आठ दोहों को तीसरा अन्तरस्थल पूर्ण हुआ।

आगे तेरह दोहों तक शुद्ध निश्चय से सब जीव केवलज्ञानादिगुण से समान हैं... भगवान सब आत्मा शुद्ध निश्चय से, शुद्ध सत्य से, शुद्ध निश्चय कहो या सत्य कहो। सब जीव केवलज्ञानादिगुण से समान हैं... केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात् ? वह पर्याय केवल की, वह नहीं। केवलज्ञान-पूर्ण ज्ञान, ऐसा। वह पर्याय की यहाँ बात है नहीं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, पूर्ण आनन्द, एक आनन्द, एक ज्ञान, ऐसा पूर्णस्वभाव सब जीव समान हैं। इसलिए सोलहवान (ताव) के सुवर्ण की तरह भेद नहीं है,... सोलहवान के ताव में जैसा भेद पड़ते हैं दो वान, तीन वान। ऐसे स्वरूप में पूर्णस्वरूप में भेद है नहीं। जैसे सोलह वान सोना सौ प्रतिशत पूर्ण एकरूप है, ऐसा सब भगवान आत्मा केवलज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला शब्द से राग और पररहित। ऐसे स्वभाव से परिपूर्ण स्वभाव सब जीव है। ऐसी बात ! सब जीव समान हैं, ऐसा निश्चय करते हैं। तेरह गाथा में वह कहेंगे। उसमें पहली गाथा है ९५वीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक ०३-०६-१९६५

गाथा - ९५-९६, प्रवचन - १३८

गाथा - ९५

परमात्मप्रकाश। दूसरे अध्याय की ९५वीं गाथा। ९४ हुई। देखो, क्या कहते हैं ?

२२२) जो भक्त उ रयण-त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।

अच्छुउ कहिं वि कुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ ॥ ९५ ॥

देखो, उसका शब्दार्थ। जो... 'यः' शब्द पड़ा है न? जो (कोई) मुनि रत्नत्रय की आराधना... देखो, मुनि को रत्नत्रय की आराधना कहा। यह निश्चयरत्नत्रय की आराधना की बात है। कोई कहते हैं न कि रत्नत्रय निश्चय तो ऊपर के गुणस्थान में... यहाँ तो नीचे और इनकार करते हैं। नीचे हो नहीं सम्यग्दृष्टि को। यहाँ तो जो मुनि रत्नत्रय की आराधना... अर्थात् आत्मा शुद्ध पूर्ण स्वरूप। अखण्ड ज्ञायक उसकी अन्तर प्रतीति, उसका स्वसंवेदन ज्ञान और उसके स्वरूप में आचरणरूप स्थिरता, उसका नाम आराधना, उसका नाम सेवा। करनेवाला है। उसके यह लक्षण जानना कि किसी शरीर में जीव रहे,... एकेन्द्रिय में हो, दो इन्द्रिय में हो। व्यवहार से हों। वस्तु तो वस्तु है। वह ज्ञानी उस जीव का भेद नहीं करता,... जीवस्वरूप भगवान् पूर्ण ज्ञान आदि केवलज्ञान। केवल अर्थात्? केवल पर्याय की बात नहीं यहाँ। केवल—अकेला सूर्य, ज्ञानसूर्य, केवल दर्शन, केवल आनन्द, केवल एक वीर्य पूर्ण स्वभाव। ऐसा सब आत्मा रत्नत्रय का आराधक जीव। यद्यपि यहाँ मुनि की बात कही है।

नियमसार में तो श्रावक और मुनि दोनों को रत्नत्रय का भगत कहने में आया है। समझ में आया? पंचम गुणस्थान में भी निश्चयरत्नत्रय का भगत—सेवन करनेवाला कहने में आया है। मूल पाठ है। नियमसार, भक्ति अधिकार में। समझ में आया? कोई कहते हैं कि भाई! श्रावक को इतना तीन रत्नत्रय निश्चय कहाँ से आ गया? उसको तो

व्यवहाररत्नत्रय है। जो स्वभाव शुद्ध परिपूर्ण अपना ज्ञायक, उसकी दृष्टि, उसका अनुभव ज्ञान और अंश से संयम की स्थिरता पंचम गुणस्थान में भी है तो उसको भी तीन रत्न का आराधक भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य नियमसार में फरमाते हैं। समझ में आया ? और वहाँ भी है न अपने समयसार की अन्तिम गाथा। ... पाखण्डी। ४१०। गृहस्थ हो या पाखण्डी। पाखण्डी अर्थात् मुनि की बात है। पाप का खण्ड करनेवाला। पाखण्डी वह नहीं। गृहस्थ हो या मुनि हो। वह लीन है, वह धर्म नहीं। विकल्प और बाह्य वेश। उसका तीन रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह गृहस्थ को भी अपना स्वद्रव्य पूर्णानन्द प्रभु के आश्रय से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हुआ, निर्विकल्प अर्थात् रागरहित स्वसंवेदन ज्ञान हुआ और विकल्प व्यवहार बारह अणुव्रत (आदि) या पंच महाव्रतरहित जो स्वरूप की स्थिरता हुई, वह श्रावक को भी तीन रत्न का आराधन कहने में आया है। समझ में आया ?

देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद करता है, परन्तु... व्यवहार से ख्याल में लेते हैं। पर्याय में, ज्ञान में व्यवहार जितना भेद है, अल्पज्ञता है, पर्याय में राग है, वह व्यवहार से है, ऐसे ख्याल में लेते हैं। वस्तुदृष्टि, द्रव्यदृष्टि अपनी हुई तो अपना स्वभाव भी जैसे अधिक अनुभव करते हैं और भेदादि है, उसको जानते हैं तो दूसरे का आत्मा भी अभेद चिदानन्द अखण्ड केवलज्ञान की बेल के कन्द हैं वे सब। आहाहा! भगवान् पूर्ण स्वभाव, पूर्ण स्वभाव कहाँ, कहाँ विकार, कहाँ अल्पज्ञता, कहाँ गुरुता या लघुता! स्वभाव में तो है नहीं। अपना स्वभाव ऐसा दृष्टि में लिया तो सब जीव का ऐसा ही स्वभाव, द्रव्यस्वभावरूप ऐसे देखते हैं। पर्यायरूप से जानते हैं कि है पर्याय में इतना। वह व्यवहारनय से भेद है, वस्तु में भेद नहीं। समझ में आया ? परन्तु ज्ञानदृष्टि से सबको समान देखते हैं। अन्तर का ज्ञानस्वभाव जो सत्त्वरूप। सत्त्वस्वभावरूप पूर्ण ऐसा जो अनुभव में, दृष्टि में आया है तो श्रावक और मुनि सबको अन्तर में पूर्णानन्द स्वभाव ऐसे देखते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ :- अब यह शब्द पड़ा है न जरा। वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी... इसलिए लोग उलझन में आते हैं। वीतरागस्वरूप... ज्ञानी तो ऊपर में होते हैं आठवें, नवमें, दसवें। चौथे से शुरु होता है, पाँच में संयम का अंश बढ़ गया। उससे निमित्तपने यहाँ

से गिनने में आया। बाकी तो चौथे गुणस्थान में भी निश्चय सम्यग्दर्शनस्वरूप का अनुभव में प्रतीति, अनुभव का अन्तर ज्ञान और अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर अस्ति में स्वरूपाचरण हुआ, अभाव होकर स्वरूप में अस्तिरूप आचरण हुआ, उसको भी तीन रत्न का आराधन, आराधक कहने में आता है। एक अंश कहते हैं न। समझ में आया? नीचे व्यवहार है और ऊपर-नीचे है, ऐसा नहीं। वह तो एकान्त दृष्टि हो गयी। नय एकान्त व्यवहार रह गया वर्तमान और निश्चय रहा नहीं। निश्चय बाद में और व्यवहार पहले, वह नय का स्वरूप ही नहीं है। समझ में आया? एकान्त नय है। अकेला विकल्प शुभराग आदि, देव-गुरु-भक्ति आदि, उसको ही सम्यग्दर्शन मानना, वह तो एकान्त हो गया। निश्चयनय की अपेक्षा, दूसरे नय की अपेक्षा वहाँ रही नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी..** चौथे से सम्यग्दर्शन तो वीतरागभाव ही है। स्वरूपाचरण भी वीतरागभाव ही है और ज्ञान जो स्वभाव-सन्मुख हुआ स्व आश्रय का, वही वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान ही आंशिक है। समझ में आया? ऐसा **निश्चयरत्नत्रय के आराधक का...** स्व-आश्रय भगवान आत्मा की ज्ञान, प्रतीति में रमणता ऐसा निश्चयरत्नत्रय आराधक-सेवन करनेवाला, आराधक होनेवाला उसका **ये लक्षण प्रभाकरभट्ट! तू निःसन्देह जान,...** क्या? उसका यह लक्षण तू निःसन्देह जान। क्या? **जो किसी शरीर में कर्म के उदय से जीव रहे,...** पर्याय में कोई कर्म का निमित्त और भेद अपनी योग्यता से हो, निगोद से लेकर, सर्वार्थसिद्धि में, अरे! चौदह गुणस्थान में भी भेद है थोड़ा व्यवहारनय से। जितना उदयभाव है, असिद्धभाव। असिद्धभाव है, वह व्यवहारनय का उदयभाव है। उसको नय नहीं है। परन्तु साधक निश्चय का आराधन करते हैं, उस अपेक्षा से चौदहवें में भी व्यवहारनय का अंश अभी बाकी है, असिद्धभाव, उदयभाव। परन्तु वह नहीं देखते हैं। वस्तुस्वरूप पूर्ण शुद्ध। निगोद का जीव भी पूर्ण शुद्ध, अभव्य भी पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव। और चौदह गुणस्थान के भेद व्यवहारनय के विषय को गौण (करके), अपनी पर्याय में रागादि, एक समय की पर्याय गौण करके, वस्तु पूर्णानन्द प्रभु को दृष्टि में मुख्य किया, उस दृष्टि से सब जीव को देखते हैं। समझ में आया? आहाहा!

समभाव । किसके साथ बैर ? किसके साथ विरोध ? शान्त... शान्त... शान्त... पहले अपना स्वरूप शान्त । स्फटिक रत्न जैसा स्वच्छ शुद्ध । वह स्फटिक जड़ और यह चैतन्य शुद्ध चैतन्यरस, ऐसी शान्ति अन्दर में, पूर्ण शान्ति । पूर्ण शान्ति कहो या पूर्ण यथाख्यात स्वभाव, प्रसिद्ध शुद्धस्वभाव । ऐसा सब जीव का स्वभाव, निश्चयरत्नत्रय का सेवक-आराधक । वस्तुदृष्टि से सबको ऐसे देखते हैं । समझ में आया ?

परन्तु निश्चय से शुद्ध, बुद्ध (ज्ञानी) ही है । शरीर के, कर्म के उदय में निमित्तपना और उसमें नैमित्तिकपना अपना । इतना समय-समय में भेद एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, अरे ! गुणस्थान भेद में भी पहले से चौदह तक भेद हो, परन्तु निश्चय से शुद्ध, बुद्ध (ज्ञानी) ही है । अकेला शुद्ध-शान्त, बुद्ध ज्ञानमूर्ति एकाकार प्रभु । अपना स्वभाव ऐसा पूर्ण सबका है । यह जरा थोड़ी भूल है, यह शब्द में । जैसे सोने में वान-भेद है,... वह शब्द टीका में नहीं । यह तो जरा उन्होंने बताया है । क्यों ? कि इस शरीर के साथ बताना है न । शरीर में कर्म के उदय से जीव रहे तो इतना भेद है । जैसे सोने में वान-भेद है,.. इतना ले लेना । और पाठ में से उतना लिया है । 'षोडशवर्णिकासुवर्णवत्केवलज्ञानादिगुणैर्भेदं न करोतीति ।' यह तो दृष्टान्त दिया स्पष्ट करने के लिये । कि जैसे सोने में क्षण-क्षण वर्णभेद निमित्त में वर्णभेद दिखते हैं तो वह तो व्यवहार का विषय हुआ । अकेला सोना... सोना... सोना... सोना... देखो तो उसमें वर्णभेद है ही नहीं । ऐसे जीव की वर्तमान पर्याय में कर्म का निमित्त का सम्बन्ध में नैमित्तिक भिन्न-भिन्न अवस्था देखो तो व्यवहार से है, स्वभाव से देखो तो अकेला सोना जैसे सोलहवान है, ऐसा भगवान शुद्ध, बुद्ध, सोलहवान... समझ में आया ? आहाहा !

वैसे जीवों में वान-भेद नहीं है,... यह तो सोने में, पर्याय में भेद है, ऐसा जीवों में द्रव्य में भेद नहीं, ऐसा लेना । यह तो जरा शब्द अधिक अधिक पड़ गया है । समझ में आया ? केवलज्ञानादि अनन्त गुणों से सब जीव समान हैं । केवलज्ञान का अर्थ ? उस केवल पर्याय की बात यहाँ नहीं है । केवल एक ज्ञान, एक दर्शन, एक आनन्द, एक शान्ति—चारित्र, एक वीर्य, एक स्वच्छता, एक प्रभुता, एक कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान सारा एक ही पूर्ण स्वभाव, ऐसा अनन्त गुणों से सब जीव... भगवान आत्मा वर्तमान एक

समय में वस्तुस्थिति से, समय में विद्यमान है। आहाहा! अपना एक समय में ऐसा विद्यमान-विद्यमान अस्तिवाली सत्त्वरूप अपना व्यक्त प्रगट पदार्थ जैसे दृष्टि में आया, ऐसा सब पदार्थ ऐसा विद्यमान, विद्यमान। सोलहवान सोना जैसे सब आत्मा वस्तु से विद्यमान है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यक्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यक्त अर्थात् प्रगट। वस्तुरूप से प्रगट है। पर्यायरूप से (अप्रगट) है। समझ में आया? वस्तु तो प्रगट ही है। प्रगट अर्थात् अवस्था। हैं, हैं, सत्त्वरूप है, प्रगट ही है। वह सब कलश में आता है। प्रगट ही है, व्यक्त ही है। वस्तु-वस्तु वह तो पर्यायरूप से, अवस्थारूप से प्रगट नहीं। समझ में आया? वस्तु वस्तुरूप से।

यहाँ कहते हैं कि अपनी जैसे विद्यमान वस्तु। विद्यमान पदार्थ दृष्टि में, ज्ञान में लिया, ऐसा ही विद्यमान द्रव्यस्वभाव। एक पर्याय का विद्यमानपना द्रव्य में नहीं। ऐसा विद्यमान पदार्थ द्रव्यदृष्टि से सबको ज्ञानी एक देखते हैं। ओहोहो! कितनी सम्हाल! इसकी पर्याय का लक्ष्य करके विकल्प उठा है। उस कारण से ... भाव पर के कारण से हो, ऐसा तो है नहीं। पूर्ण श्रद्धान से देखते हैं। भेद है, वह व्यवहारनय से देखते हैं, बस देखते हैं, वह तो जानते हैं। समझ में आया? किसी व्यक्ति के प्रति राग-द्वेष आदि करने का कोई अवसर ही नहीं उसमें। समझ में आया? और व्यवहार से देखो तो वह जाननेयोग्य हुई। पर्याय भेदरूप व्यवहार जानने में आया। जानने में आया, उसमें राग या द्वेष का कारण क्या हुआ? समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी दृष्टि ली है कि जैसे अपना शुद्ध ज्ञान प्रगट प्रभु। है... है... विद्यमान। ऐसी दृष्टि पूर्ण की हुई तो व्यवहार है—शुद्ध का अंश बढ़ता है, अशुद्धता का अंश घटता है। वह एक उसका ज्ञान करना। वह ज्ञान करना, वह व्यवहारज्ञान हुआ। आदरणीय में तो यह रहा। तो राग का ज्ञान करने से राग होता है? और स्वभाव की दृष्टि करने से उसमें राग नहीं। राग कमजोरी से आया, पुरुषार्थ की कमजोरी से आया, परन्तु राग को जानने से राग होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? जैसे अपना निश्चय स्वभाव वस्तु की दृष्टि देखने से उसमें तो विकार नहीं और उसके कारण से विकार उत्पन्न होता

ही नहीं। अब अपनी पर्याय में विकार है सही। वह तो जाननेयोग्य व्यवहारनय। जाननेयोग्य व्यवहारनय। नय अर्थात् विषयी। वह है और विषय है। जानता है.. जानता है... कि है। तो जानना, जानने में राग का कारण क्या आया? समझ में आया? इस प्रकार परपदार्थ अनन्त पदार्थ भगवान पूर्ण प्रभु, दृष्टि का विषय जैसे विद्यमान अपनी प्रतीति में लिया ऐसी सब वस्तु पूर्ण है। वह प्रगट नहीं पर्याय में, तथापि विद्यमान है। पदार्थ प्रगट नहीं फिर भी दृष्टि से विद्यमान पदार्थ की पूर्ण की ज्ञान में वेदन करके स्वसंवेदन और अनुभव में, प्रतीति में लिया। प्रगट पर्याय में नहीं, फिर भी प्रगट विद्यमान है, ऐसा प्रतीति में लिया तो सब द्रव्य पर्याय में प्रगट नहीं, फिर भी वस्तु विद्यमान ऐसी की ऐसी है—ऐसी दृष्टि है।

और अपना जिसको रागादि भेद है। जानते हैं ... उस-उस काल में। पर का भी जिस जिस काल में जिस प्रकार की ... विविधता, निमित्तता अपनी पर्याय में निश्चय आश्रय लक्ष्य से हो, जाने। जानने में क्या आया? जानने से कोई राग होता है? आश्रय कर ले पर का... विकल्प का या पर का आश्रय कर ले तो राग होता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव ने परमात्मा प्रगटरूप, व्यक्तरूप केवलज्ञानी, शक्तिरूप सब परमात्मा, ऐसा वर्णन करना है। परमात्मप्रकाश है न? भगवान परमात्मा—परम आत्मा, परम स्वरूप। एक समय की पर्याय तो व्यवहारनय का आत्मा हुआ। समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय का व्यवहारनय का आत्मा आया। चार ज्ञान की पर्याय एक समय की व्यवहारनय का आत्मा है भेदरूप। निश्चयरूप भगवान आत्मा। समझ में आया? जिसमें अंश भेद नहीं, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... भेददृष्टि पर में ली। जैसी अपने में है, ऐसी पर में लिया। वही द्रव्य परमात्मा है। मैं भी विद्यमान द्रव्य से परमात्मा हूँ। स्वभाव का साधन करने से उस ओर का आदर करने से व्यक्तरूप परमात्मा हो जायेगा। पर्यायरूप से व्यक्त। समझ में आया? दूसरा तो कोई उसका उपाय ही नहीं। उपाय भी वही है कि वह पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... उसके अन्तर्मुख होकर प्रतीति, ज्ञान किया। वही परिणति ऐसे अन्तर्मुख चली रही। बाकी चलते... चलते... राग का अभाव हो जाता है और वीतराग प्रगट होता है। यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहते हैं ? देखो ! ओहोहो ! योगीन्द्रदेव कहते हैं कि ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया, हे भगवन् ! जो जीवों में देह के भेद से भेद नहीं है, ... देह के भेद से कहो पर्यायभेद में भेद है, यह सब भेद है नहीं। सब समान हैं, तब जो वेदान्ती एक ही आत्मा मानते हैं, ... उसमें और आप में अन्तर क्या आया ? वह अभी कितने कहते हैं न, देखो, शास्त्र का ... आया। ठाणांग में आता है न ? ठाणांगसूत्र में आपणे आवे यहाँ। यहाँ भी आता है। संग्रहनय में एक आया एक... आता है न। अगे आया, एक अजीव, एक संवर, एक निर्जरा, एक मोक्ष। संग्रह से तो सामान्य एक... एक... एक... एक आया। परन्तु एक आया अर्थात् सब होकर एक आत्मा ? ऐसा नहीं। वह तो संग्रहनय से। इसमें दृष्टान्त देंगे। वह संतवाल है न। वेदान्त में लगा देते हैं, यह जैन की बात। मुँहपत्ती लगाते हैं न वह स्थानकवासी। तो श्रद्धान ... श्रद्धा नहीं। ... भाषण बाषण करते हैं। अगे आया। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आया और गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, एक आया आत्मा, ऐसा। बात तो सच्ची है। यह सच्ची बात है। बात ऐसी है। अनन्त आत्मा गये। ऐसा लो न। अगे आया तो एक माना वहाँ अनन्त आत्मा गये।

मुमुक्षु : उसका अपना आत्मा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। परन्तु वह तो बात यह कि एक आत्मा की एक पर्याय में श्रुतज्ञान की। कल कहा था न ? अनन्त आत्मा का द्रव्य, गुण और पर्याय तीन काल, तीन लोक का। यहाँ एक पर्याय में इतनी सामर्थ्य मानने की है। जो एक पर्याय इतनी न माने तो वह पर्याय न मानी। तो अनन्त द्रव्य न माना तो उसने पर्याय नहीं मानी।

मुमुक्षु : पर्यायवान...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय। पश्चात् पर्यायवान वह तो दूसरी चीज़ रही। समझ में आया ? एक समय की पर्याय माने, उसने छह द्रव्य माना। क्योंकि एक पर्याय की सामर्थ्य इतनी है तो एक पर्याय... छह द्रव्य जो है, उसे माना उसने पर्याय मानी। एक

छह द्रव्य न माने, उसने अपनी पर्याय इतनी पूर्ण, छह द्रव्य को जाननेयोग्य इतनी पर्याय उस पर्याय को भी नहीं माना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : माने क्या ? वह पर्याय में छह द्रव्य (जानने की) सामर्थ्य है। वह आगे कलश टीका में लेंगे। कलशटीका में चौदह बोल है न पीछे ? ... कलशटीका अमृतचन्द्राचार्य अन्तिम कलश है। वहाँ ऐसे ही लेते हैं, वे। हाँ, स्याद्वाद अधिकार में चौदह बोल में कलशटीका में ऐसे लेते हैं। समझ में आया ? कोई पर्याय मानते हैं, द्रव्य नहीं मानते। 'पर्याय मानते हैं' में ऐसा अर्थ लिया है कि छह द्रव्य को मानते हैं। छह द्रव्य की जाननेवाली पर्याय को मानते हैं। द्रव्य को नहीं मानते हैं और कोई द्रव्य को मानते हैं, परन्तु एक पर्याय छह द्रव्य को जाननेवाली पर्याय को नहीं मानते। ऐसी बात ली है। समझ में आया ?

अनन्त आत्मा, इससे अनन्तगुणे परमाणु, इससे अनन्तगुणे काल का समय, उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुणे एक द्रव्य गुण। उसमें एक गुण की एक पर्याय, वह अनन्त की जो व्याख्या की। वह सबको विकल्पसहित एक पर्याय में जानने का, पर्याय का इतना सामर्थ्य है। इतना माने, तब उसने पर्याय को माना है।

मुमुक्षु : एक पर्याय मानी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी एक पर्याय। एक पर्याय ही तब मानी है। ऐसी-ऐसी अनन्त गुण की पर्याय और ऐसा-ऐसा अनन्त पर्याय का पिण्ड गुण और अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य। बापू! आत्मा किसको कहना ? आत्मा परमात्मा है। आहाहा! महन्त स्वभाव, सन्त महन्त। महापदार्थ है। समझ में आया ? महन्त पदार्थ मोटो ऐसा... बड़ा कहते हैं न तुम्हारे ? प्रवचनसार सब चला है। यहाँ तो व्याख्यान सब चला है। प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय, नियमसार जोरदार व्याख्यान चला है एक-एक गाथा का। कहो, समझ में आया ?

तो क्या कहते हैं कि हे भगवन्... तुम एक ही आत्मा मानते हो तो उनको क्यों दोष देते हो ? श्री गुरु उसका समाधान करते हैं—कि शुद्धसंग्रहनय से सेना एक ही

कही जाती है,... सेना और वन। दो शब्द हैं न? पाठ में दो हैं। समझ में आया? ९५ है न? एक ही है। कौन? सेना। समझे? इस ओर है। २३८ है। इस ओर है। पुस्तक में अन्तर है न। 'शुद्ध संग्रहनयेन सेनावनादिवत्' 'सेनावनादिवत्' जाति अपेक्षा से लेना। वह ९५ में संस्कृत टीका की दो पंक्ति यहाँ पर है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं कि भगवान! हम यदि सब जीव को एक कहते हैं, वह तो शुद्ध संग्रहनय से एक कहते हैं। सबकी सत्ता एक हो जाती है, ऐसा नहीं। स्वरूप अस्तित्व। आया न प्रवचनसार में? दूसरी गाथा में। सबका स्वरूप तो भिन्न-भिन्न है। वहाँ यहाँ दृष्टान्त लिया है। यह तो सब आचार्यों ने... अनुसरण सब किया है। वहाँ भी वृक्ष का वन का दृष्टान्त लिया है न, भाई! कि स्वरूप अस्तित्व सबका भिन्न है, फिर भी संग्रहनय से सबको एक कहने में आता है। महासत्ता-महासत्ता। इसलिए महासत्ता एक हो जाती है कोई? वस्तु एक हो जाती है? ऐसा नहीं। है... है... है... है... है... है... है... है... उसमें नहीं है, कहाँ आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ...नहीं है, एक नहीं है। सब मिलकर एक है, ऐसा नहीं। अनन्त है, उसको एक कहना, वह संग्रहनय से ज्ञान करनेयोग्य है। एक-एक भिन्न सत्ता सबकी एक सत्ता हो जाये, ऐसी जाति एक है। संख्या एक नहीं। जाति एक है, संख्या एक नहीं। ऐसा न समझे तो उसकी पर्याय की अनन्तता ही मानता नहीं वह तो।

सेना एक ही कही जाती है, लेकिन सेना में अनेक हैं,... है न हाथी आदि? तो भी ऐसे कहते हैं कि सेना आयी, सेना गयी,... ऐसा कहते हैं। सेना अकेली है। सेना नाम का पदार्थ भिन्न है? मनुष्य है? उसी प्रकार जाति की अपेक्षा से जीवों में भेद नहीं हैं,... जाति की अपेक्षा भेद नहीं। सब एक ही है। संख्या से एक है, ऐसा नहीं। जाति एक। जैसा वह... जैसा वह... लाख मण गेहूँ हो, लाख मण गेहूँ उसका गुण। सब एक गेहूँ... एक गेहूँ... एक गेहूँ... सब एक गेहूँ की जाति है। उस अपेक्षा से। दाना एक हो जाता है, ऐसा नहीं। सबका एक दाना हो जाये। लाख गुण का पैसा ही न आवे। एक दाने का पैसा आवे। समझ में आया? जैन के नाम से अभी अध्यात्म यहाँ से बहुत चला

तो कितने ऐसे आये निश्चयाभासी हो गये हैं। जैन के नाम पर। जाओ निश्चय से तो बस एक है, निश्चय से एक है। कैसे निश्चय एक है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सारा यह सब बहुत आ जाता है। कल कहा न। रजनीश ऐसे चले हैं, सन्तबाल ऐसे वह तो लौकिक की लाईन में से। छहों दर्शन समान। वेदान्त बतलावे इसलिए कहा। ऐसे बहुत कितने ही। एक व्यक्ति आया था नहीं साधु ? स्थानकवासी ... दो बार... यहाँ चौमासा था। यहाँ आया था। मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा, वह निश्चय के बाद क्या आवे ? माँस खाये, शराब पीवे उसमें क्या ? अरे ! मर जायेगा। सुन न, कहा। वह आया कहीं से ? ऐसा कि निश्चय जहाँ हुआ, पश्चात् माँस हो या रोटी हो। ऐसा कहता था। यहाँ दोपहर को आये। चौमासा था। मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा न वह निश्चय की दृष्टि। अरे ! निश्चय का अर्थ ऐसा नहीं। पर्याय में जितनी विवेकता, भिन्न-भिन्नता है, उसका बराबर ज्ञान करना चाहिए और उस पर्याय के योग्य उसको आहार लेने का विकल्प आता है। लो ये तो निश्चय हुआ तो माँस हो, शराब हो, परस्त्री हो, मर जायेगा, कहा। ऐसा निश्चयाभास की करना जाए, यह तो निश्चय और व्यवहार दोनों समझे। व्यवहार नहीं है ? व्यवहार नहीं है ? व्यवहार आश्रय करनेयोग्य नहीं है। परन्तु व्यवहार नहीं है। नहीं है तो एकान्त मिथ्यादृष्टि एक नय का मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : मर जायेगा अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् मर जायेगा कहा, उसमें उल्टा लेकर। शास्त्र का बहाना लेकर उल्टे अर्थ निकाले न। यह क्रियाकाण्ड का पक्ष था, तब क्रिया करना... क्रिया करना... वह मुख्य था। अब जब निश्चय का पक्ष था। क्रिया अब चाहे जैसी क्रिया हो, परन्तु चाहे जैसी क्रिया विकल्प। उसे मुनि के योग्य ही विकल्प होता है। चाहे जैसा कहाँ से आवे ? समझ में आया ? तभी प्रवचनसार में कहा न चरणानुयोग की शुरुआत में। क्या कहा ? ... द्रव्य शुद्ध। ऐसे कि...

मुमुक्षु : द्रव्यानुसारी चरणं, चरणानुसारी द्रव्यं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह। द्रव्यानुसारी चरणं, चरणानुसारी द्रव्यं। यह महासिद्धान्त

है उसमें। चरणानुयोग के पहले का कलश। भूमिका प्रमाण से जो विकल्प है चरणानुयोग, उस अनुसार वहाँ द्रव्य की शुद्धि अन्तर में हुई है। अन्तर में जितनी शुद्धि द्रव्य की हुई है, इतना प्रमाण में राग के विकल्प की जाति उसको होती है। है दोनों भिन्न-भिन्न है। वह चरणानुसारी मुनि है तो उसको अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प का ही चरणानुयोग की योग्यता है। उस प्रमाण से शुद्धि भी अपने कारण से वहाँ तीन कषाय के अभाव की शुद्धि है। यहाँ इतनी शुद्धि है तो इतनी ही विकल्प की जाति वहाँ आती है। ऐसा दो का बराबर ज्ञान करना चाहिए — ऐसा कहा है। वह लम्बी बात सब आ गयी है व्याख्यान में। समझ में आया ? ऐसे गड़बड़ करे कि द्रव्य ऐसा है, अब पर्याय चाहे सो हो। चाहे सो हो नहीं। सम्यग्दर्शन में अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व का नाश हुआ तो स्थिरता अंश प्रगट हुई तो स्वरूपाचरण तो उसके योग्य भूमिका में ऐसा भाव आता नहीं माँस, शराब ऐसा खाने का... माँस, शराब ऐसा विकल्प होता ही नहीं। वह सहजभाव है। समझ में आया ? ऐसे करे लो, अब हमें कुछ होगा नहीं। परद्रव्य को छूते नहीं, परद्रव्य हम खा सकते नहीं। खा सके कौन ? विकल्प आया, वह तेरे भाव में आया। तो विकल्प का विवेक है उसको। उस जाति का विवेक होता है राग की मन्दता का। अशुभराग तो उसकी योग्यता का, उसकी योग्यता का। इतनी मर्यादा है। स्वभाव में तो वह भी है नहीं। निश्चय और व्यवहार दो का बराबर ज्ञान करना चाहिए। अकेला निश्चय का करे, व्यवहार को छोड़ दे कि है ही नहीं व्यवहार। मूढ़ है ? व्यवहार नहीं हो तो उसकी पर्याय नहीं है ? विकल्प नहीं है ? भेद नहीं है ? आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया ? वह यहाँ कहते हैं देखो, उसी प्रकार जाति की अपेक्षा से भेद नहीं हैं, सब एक जाति हैं, और व्यवहारनय से... देखो, आया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही व्यवहार का। वह व्यवहार की क्या बात ? भेद की बात कहाँ है ?

व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं,... व्यक्ति भिन्न-भिन्न है आत्मा। प्रत्येक भिन्न-भिन्न है। एक भी अजीव कहे तो अनन्त परमाणु एक हो जाता है ? अजीव संग्रह से एक

अजीव, सामान्य। तो सत्ता एक हो जाती है ऐसा नहीं। अनन्त जीव है, एक नहीं। यह जैनदर्शन की निश्चय की जो बात यथार्थ जहाँ आवे तो लोग कहे वेदान्त जैसा हो गया। इसके पीछे व्यवहार-प्यवहार की पर्याय की योग्यता क्या? ... ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वस्तुस्वभाव विद्यमान देखो तो पूर्णानन्द प्रभु है। ऐसा सब पूर्णानन्द की जाति को देखने से एक आत्मा महा सत्ता की एक सत्ता कोई हो जाये। पिरोने में सबमें एक सत्ता। परोवीने क्या कहते हैं? जैसे डोरा पिरोते हैं माला में। ऐसे कोई महासत्ता पिरोकर नहीं है। परोवी क्या कहते हैं? .. समझ में आया?

अनन्त गुण परमात्मस्वरूप। यह परमात्मप्रकाश है न? द्रव्य परमात्मा अपना द्रव्य परमात्मा। वही पर्याय से भेद जाननेयोग्य है, परन्तु अनन्त पूर्णानन्द एक कहा, इसलिए अनन्त आत्मा एक हो जाये, ऐसा कभी है नहीं। जैसे दृष्टान्त। दूसरा दृष्टान्त। पाठ में एक है। 'सेनावनादिवत्' ऐसा है न? भिन्न-भिन्न दृष्टान्त देकर समझाया है। जैसे वन एक कहा जाता है, और वृक्ष जुदे-जुदे हैं,... वह प्रवचनसार में आता है ज्ञान अधिकार में। उसी तरह जाति से जीवों में एकता है, लेकिन द्रव्य जुदे-जुदे हैं,... लेकिन आया। तथा जैसे सेना एक है, परन्तु हाथी, घोड़े, रथ, सुभट अनेक हैं, उसी तरह जीवों में जानना। वस्तुरूप से जाति की अपेक्षा एक कहा, पर्याय में एक व्यक्ति में सब भिन्न है। समझ में आया? ऐसा व्यवहार से ज्ञान करना और निश्चय में जो वस्तु है, उसको अन्तर में आदर किया नहीं। तो ऐसा पर में है, ऐसा आदर करना। पूर्णानन्द प्रभु सब है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। संग्रहनय से कहने में आया है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अपना स्वरूप एक ही है। वह तो एक द्रव्य की बात है। सबकी नहीं। अध्यात्म। यहाँ एक तो अपना द्रव्य यहाँ। एकरूप ज्ञायक। वह तो एकरूप ही है। यह एक दूसरी जाति की बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह द्रव्यरूप से, उसकी जातिरूप से। जैसा यह द्रव्य है, वैसा वह द्रव्य... जाति से। जाति अर्थात् दूसरी जाति बस।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति ऐसी नहीं, ऐसी नहीं। वह पृथक् सत्ता है। प्रत्येक जीव की। जाति की ऐसा नहीं। यह जीव जाति... यह जीव जाति... यह जीव जाति... ऐसे एक। चेतन जाति ऐसी जाति। कोई जाति दूसरी नहीं।

मुमुक्षु : सातवाँ द्रव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सातवाँ द्रव्य नहीं। वह कहाँ आया ? सातवीं जाति कोई नहीं। वह तो जाति अर्थात् वस्तुस्वरूप। यह चैतन्य जाति, बस। यह चैतन्य जाति। यह चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... बस-बस एक। वह आया न जाति की अपेक्षा से... देखो पाठ में है सब। ...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसा नहीं। अब तो ख्याल में आया। वह तो पहले पूछते ख्याल में आया था न। ... नहीं। नहीं... यह जाति नहीं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय नहीं। वह चैतन्य जाति... चैतन्य जाति... चैतन्य जाति... बस इतना। बस इतना। जैसा यह चैतन्य, वैसा यह चैतन्य, वैसा वो चैतन्य। जाति कोई दूसरी नहीं है। बस इतना। लो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न। सब भिन्न। व्यक्ति लिखा है न अन्दर आता है न, हाँ, बस वह। 'व्यवहारनयेन पूनर्व्यक्तपेक्षया' यह। बस यह। अन्तिम लाईन है। व्यक्ति अर्थात् प्रगट जो पदार्थ है भिन्न-भिन्न उस अपेक्षा से तो अनन्त है। वह तो संग्रह करके कहने में आया है। कहने में आया है तो एक हो जाता है ? सत्ता की जाति एक करके बताना। वह ९५। छह द्रव्य अनादि-अनन्त। छह द्रव्य में एक द्रव्य कम माने तो उसकी पर्याय को मानते नहीं। ... हों। आहाहा! सर्वज्ञ के घर की बात है। छह द्रव्य—धर्मास्ति,

अधर्मास्ति, आकाश, काल। अमाप आकाश, असंख्य अणु, उसमें एक-एक अनन्त परमाणु, अनन्त जीव। इतनी स्वीकारता, छह द्रव्य की स्वीकारता हुए बिना एक द्रव्य का अन्तर में अनुभव हो सकता नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : छह द्रव्य हैं जगत में।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं... पर्याय नहीं। द्रव्य भिन्न-भिन्न है सब। भिन्न-भिन्न द्रव्य। वहाँ आगम में ज्ञानगम्य होता है। पर्याय में इतना। प्रतीति में आता है न प्रतीति में, कि वस्तु है या नहीं। आपने कहा, उसने सुना तो ऐसा ख्याल में आना चाहिए छह द्रव्य हैं। पर्याय में मान्यता में आना चाहिए। छह द्रव्य है। अव्यक्तपने तिर्यच को भी उसकी पर्याय में प्रतीति आती है व्यक्तपने। बहुत स्पष्ट नहीं। वह सम्यग्ज्ञानदीपिका में लिया है धर्मदास क्षुल्लक ने तो। जिसको छह द्रव्य की प्रतीति नहीं, उसको आत्मा का अनुभव प्रतीति होती नहीं। न्याय से बात है यह। लिखा है। सम्यग्ज्ञानदीपिका में। हम जो बोलते हैं, वह सब शास्त्र के आधार से। सम्यग्ज्ञानदीपिका में लिया है। और यह तो यहाँ आधार है, विशेष तो कलशटीका। एक समय की पर्याय मानी, उसने छह द्रव्य माने हैं और छह द्रव्य माने, पर्याय मानी परन्तु द्रव्य नहीं माना। एकान्त मिथ्यादृष्टि है। द्रव्य माना अकेला पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पर्याय नहीं मानी। तो द्रव्यस्वरूप पर्याय एक समय की पर्याय में सामर्थ्य। एकान्त मिथ्यात्व। समझ में आया ? बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : अपने शरीर में रहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कहाँ रहता होगा ? बाहर में रहता होगा ? मिथ्या अर्थात् विपरीत अभिप्राय। तो विपरीत अभिप्राय क्या ? आत्मा की पर्याय छोड़कर बाहर में रहते हैं ? सुख-दुःख का वेदन अपनी पर्याय को छोड़कर बाहर रहता है। संसार कहाँ रहते हैं, वह निश्चित करो, लो। संसार पर्याय में है। संसरण इति संसार। भगवान् पूर्णानन्द प्रभु चैतन्य ध्यान उसमें से हटकर रागादि विकल्पादि अल्पज्ञ पर्याय जितना माना, वह मान्यता, वही संसार है। संसार कोई अपनी पर्याय को छोड़कर परमाणु में

नहीं रहता। कर्म में संसार नहीं रहता। समझ में आया ? जयचन्दभाई ! क्या कहा ? यह दुःख कहीं शरीर में नहीं रहता। ऐसा कहा।

मुमुक्षु : शरीर के कारण तो दुःख होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है, बिल्कुल झूठ बात है। कौन कहता है ? शरीर में दुःख नहीं, शरीर को लेकर दुःख नहीं। अपनी पर्याय में जितना विकल्प उठाते हैं, इतना दुःख है। वह दुःख स्वभाव में नहीं, संयोग में नहीं, संयोग से नहीं। पर्याय में खड़ी की दुःखदशा है। समझे, जयचन्दभाई ! यह शोर मचाते हैं न। यह सवेरे आता है बारम्बार यह।

मुमुक्षु : अभी बराबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या होता नहीं ?

मुमुक्षु : बराबरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बराबरी परन्तु ? बराबरी यहाँ देखते हैं कि बाहर धूल में ?

मुमुक्षु : हमें तो धूल में दिखती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का क्या काम है यहाँ ? जयचन्दभाई ! वह तो और एक ओर ऐसा कहते थे कि मेरे इसका कोई काम नहीं। मेरे इसका काम नहीं। ऐसे और बोले बाद में मेरे पास आकर। यह ९५ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ९६

९६। आगे तीन लोक में रहनेवाले जीवों का अज्ञानी भेद करते हैं। अर्थ नीचे लिखा है। नये में डाला है? अर्थ रह गया है। 'अर्थ त्रिभुवनस्थजीवानां मूढा भेदं कुर्वन्ति, ज्ञानिनस्तु' यह ऊपर उपोद्घात है। संस्कृत है। उपोद्घात है। सबके समान नहीं जानते हैं और ज्ञानी जन केवलज्ञान लक्षण से सबको समान जानते हैं। 'भिन्नभिन्न-सुवर्णानां षोडशवर्णिकैकत्ववत्केवलज्ञानलक्षणैकैकत्वं जानन्तीति दर्शयति—'

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शीर्षक है। उसे शीर्षक होता है न! इन्हें भूल हो गयी है। अब मूल श्लोक।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अर्थ करे नीचे।

जीवपने से कोई कम-बढ़ नहीं हैं, कर्म के उदय से शरीर-भेद हैं, परन्तु द्रव्यकर सब समान हैं। जैसे सोने में वान-भेद है, वैसे ही पर के संयोग से भेद मालूम होता है, तो भी सुवर्णपने से सब समान हैं,... सोना एक नहीं हो जाता सब। कि यह सोलहवान सोना... यह सोलहवान सोना... यह सोलहवान सोना... एक नहीं हो जाता है। सोलहवान... सोलहवान...

२२३) जीवहं तिहुयण-संठियहं मूढा भेउ करंति।

केवल-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति ॥ ९६ ॥

दृष्टि का जोर है। तीन भुवन में रहनेवाले जीवों का मूर्ख ही भेद करते हैं, और ज्ञानी जीव... देखो आया केवलज्ञान से प्रगट... देखो। 'स्फुटं' का अर्थ प्रगट। प्रगट विद्यमान पदार्थ प्रगट पूर्ण है, प्रगट ही है। विद्यमानरूप से प्रगट है न। प्रगट क्या अभाव है उसका? वस्तु का अभाव है? अविद्यमान है? समझ में आया? ज्ञानी जीव केवलज्ञान से... केवल अर्थात् पूर्ण ज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, पूर्णानन्द आदि। अकेला का अर्थ जिसमें रागादि का भी स्पर्श नहीं, ऐसा अकेला। अकेला ज्ञान से प्रगट 'स्फुटं'

प्रगट सब जीवों को समान जानते हैं। 'एकं मन्यंते' 'एकं मन्यंते' की व्याख्या समान जानते हैं, यह की। पाठ में 'एकं मन्यंते' है। देखो, पाठ है न पाठ। यह तो एक हुआ न। एक जाति से एक हुआ न। जैसा वह आत्मा, वैसा वह आत्मा, जैसा एक गेहूँ, वैसा दूसरा गेहूँ, वैसा तीसरा गेहूँ....

भावार्थ :- व्यवहारनयकर सोलहवान के सुवर्ण भिन्न-भिन्न वस्त्रों में लपेटें... देखो, दृष्टान्त आया। सोलहवान के सुवर्ण ईंट भिन्न-भिन्न वस्त्र में लपेटें तो वस्त्र के भेद से भेद है,... कोई काला, कोई लाल, कोई हरा, कोई पीला, कोई जीर्ण, कोई जाड़ा, कोई पतला। ... वस्तु बाहर का दृष्टान्त वह तो बाहर से। वस्तु भिन्न हो जाती है अन्दर में? उस रूप आत्मा हो जाता है? वास्तव में आत्मा शरीररूप होता है? अरे! वास्तव में आत्मा रागरूप होता है? वास्तव में आत्मा एक समय की पर्याय व्यक्त इतना हो जाता है? समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण प्रगट विद्यमान पदार्थ। वह वस्तु को शरीर का लपेट हुआ भिन्न-भिन्न तो उसरूप होता है कोई? और राग भिन्न-भिन्न होता है तो रागरूप वह आत्मद्रव्य हो जाता है? अरे! एक समय की पर्याय प्रगट... प्रगट... प्रगट अंश तो उस अंशरूप सारा द्रव्य हो जाता है कभी? समझ में आया? परन्तु सुवर्णपने से भेद नहीं है,... सोलहवान के सुवर्ण भिन्न-भिन्न वस्त्रों में लपेटे तो वस्त्र के भेद से भेद है,... यह सोने का दृष्टान्त आया, हों! परन्तु सुवर्णपने से भेद नहीं है,... सोना... सोना... सोना... सोना... सोना... ... उसी प्रकार तीन लोक में तिष्ठे हुए जीवों का व्यवहारनय से शरीर के भेद से भेद है,... वह शरीर के भेद से वस्तु है? वस्तु ज्ञानस्वरूप है, मैं चिदानन्दस्वरूप हूँ।

परन्तु जीवनपने से भेद नहीं है। जीवपना, जीवपना, शुद्धपना, परमार्थपना, परमात्मपना। ऐसे में कोई भेद है नहीं। द्रव्यस्वभाव एक समय की पर्यायरूप कभी होता है? वह देखो, समझ में आया? एक समय की पर्यायरूप द्रव्य होता है? विशेषता आंशिक सामान्य विशेषरूप हो जाता है? और विशेष सामान्यरूप हो जाता है? तो दो अंश रहते नहीं। समझ में आया? शान्त स्वभाव। सामान्य अर्थात्? एकरूप सदृश।

सदृश ज्ञान, दर्शन, आनन्द एकरूप स्वरूप वहाँ विशेष एक अंशरूप कभी हुआ है ? तो रागरूप कभी नहीं और शरीररूप तो कभी नहीं। समझ में आया ? ऐसी वस्तु निजस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, ऐसी दृष्टि से देखो तो सब जीवपने से भेद है नहीं। शरीर के भेद से भेद है। आहाहा ! पर्दे के पीछे प्रभु पूर्ण है।

शरीर और विकल्प और अल्पज्ञ पर्याय। तीन लिये देखो। उसके पीछे भगवान् पूर्ण-पूर्ण प्रभु है। उसमें कमी-बेसी कभी हुई नहीं। केवलज्ञान हुआ तो वहाँ स्वभाव में कोई कमी हुई है ? और मतिज्ञान की पर्याय प्रगटरूप एक अंश है तो वस्तु में वहाँ कोई विशेष अधिक भाग रह गया है ? समझ में आया ? केवलपर्याय, कहाँ अक्षर के अनन्तवें भाग में पर्याय निगोद। तो वह पर्याय और केवलज्ञान पर्याय। तो क्या केवलज्ञान पर्याय हुई तो वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... एकरूप वस्तु में क्या कमी हो गयी है ? बहुत पर्याय प्रगट हुई तो क्या वस्तु में कमी हुई है ? और अल्प-अक्षर के अनन्तवें भाग में रहा तो वहाँ बहुत उघाड़ नहीं तो वहाँ वस्तु में कोई अधिकता भाव रह गया है अन्दर में ? जरा पर्याय और द्रव्य की स्वतन्त्रता सिद्ध होती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त-फृष्टान्त यहाँ लागू नहीं पड़ते। यह तो संयोग के दृष्टान्त हैं। समझ में आया ? भगवान् द्रव्यस्वभाव तो ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त। अनादि-अनन्त एकरूप-एकरूप। पर्याय की अपेक्षा बिना निरपेक्ष पदार्थ ऐसा का ऐसा है। वह तो सिद्ध किया। समझ में आया ? ऐसा ख्याल अपना आया ऐसा ख्याल सबका आ गया। ऐसी बात करते हैं यहाँ तो। परमात्मप्रकाश है न ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब परमात्मा हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सब व्यक्त परमात्मा हुआ, तो भी स्वरूप तो परमात्मा पूर्ण... पूर्ण... और पूर्ण है। ऐसा बताना है यहाँ। सब परमात्मा। विद्यमानता से सब भगवान् परमात्मा हैं। कमी-बेसी किसमें देखना ? वस्तु से, हों ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सामान्य द्रव्य । एकरूप स्वभाव अपनी अपेक्षा से । एक ही है । सब अपना अपना एक, हों ! सब एक उसमें रहा । उसका सामान्य एक में रहा । ऐसा सब । सब एक ही है जाति से । पर्याय से गौण है ।

देह का भेद देखकर मूढ़ जीव भेद मानते हैं,... वह वस्तु अपेक्षा से, हों ! अल्पज्ञ ... देखने से ऐसा मान ले कि वह पूरा आत्मा अल्पज्ञ है । ऐसा नहीं । वह तो पर्याय अल्पज्ञ है । राग आया तीव्र रौद्रध्यान लो पर्याय । तो पर्याय है तो क्या है ? वस्तु तो है, ऐसी है । समझ में आया ? और शुक्लध्यान की पर्याय प्रगट है तो भी वस्तु तो है ऐसी है । ऐसी वस्तु की विद्यमानता जिसकी दृष्टि में आयी, वह विद्यमानता से सब ऐसा द्रव्य देखते हैं । ऐसी बात है । आहाहा ! ख्याल यह वस्तु... मूल पर्याय से बाहर में लक्ष्य किया है अनादि से । वह पर्याय बाहर प्रगट है न, बाह्य पर्याय ? तो वह पर्याय का लक्ष्य यहाँ इन्द्रिय, मन, पाँच ... ऐसे... ऐसे... ऐसे... पूरा तत्त्व क्या है, ऐसा स्वविषय कभी किया नहीं और ... सब स्वविषय पूर्णानन्द ऐसे हैं । एक अपेक्षा से तो बराबर है । श्रुत परिचित अनुभूता । आता है न ? ‘श्रुत परिचित अनुभूता ... काम भोग बन्ध कहा ।’ जीवों को । देखो, वहाँ कब तक कहा ? ‘सव्वस्स वि कामभोगबन्ध कहा’ सुना । तो निगोद ने सुनी है ? हाँ । भाव पड़ा है न ? यहाँ पाठ तो ऐसा लिया है । ‘श्रुत परिचित अनुभूता सव्वस्स वि कामभोगबन्ध कहा’ तो क्या कामभोग अर्थात् कर्ता-भोक्ता विकल्प की पर्याय का ऐसा तो अनन्त बार सुना और अनुभवा । वह अनुभवा वही सुना है परमार्थ से । निगोद ने सुना, वही उसे वेदन में है । समझ में आया ? वही सुना, वही परिचय और वही अनुभव । और नौवें ग्रैवेयक गये जैन दिगम्बर सन्त होकर, तो भी ‘श्रुत परिचित अनुभूता काम भोग कहा’ बाह्य का शुभविकल्प वह कामभोग कर्ता और वह भोक्ता । कर्ता और वह भोक्ता । वही बात वेदी है, वही जानी है और वह परिचय किया । है ।

भगवान आत्मा एक समय के विकल्प से पार एकत्व, विभक्त । पर से विभक्त, स्व से एकत्व—ऐसी बात उसने कभी सुनी नहीं । एक स्वरूप भगवान पूर्ण... पूर्ण... वह तो परमाणु भी है, परन्तु यह तो ज्ञानादि से पूर्ण, ऐसा लेना है । इसलिए केवलज्ञानादि लेते हैं न ? केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य, केवल स्वच्छता,

केवल प्रभुता। अकेले स्वभाव की मर्यादा क्या? स्वभाव की हद क्या? स्वभाव का क्षेत्र भले छोटा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं, परन्तु स्वभाव के भाव की मर्यादा क्या? समझ में आया? एक धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश का स्वभाव अनन्त पुद्गल और जीव जो सूक्ष्म होकर वहाँ प्रदेश के पास आये तो गति में निमित्त होने की, अनन्त इतना त्रिकाल जीवादि तो एक (धर्मास्तिकाय के) प्रदेश में सामर्थ्य है निमित्त होने की। ऐसे अधर्मास्ति में एक सामर्थ्य है जो वहाँ आकर गति स्थिर हो गति करके। एक समय में अनन्त में निमित्त होने की, नैमित्तिक उसमें सामर्थ्य है। एक कालाणु में अनन्त पदार्थ आकर वहाँ निकट हो तो अनन्त अपना परिणमन करते हैं तो उसमें एक कालाणु निमित्त होने की इतनी सामर्थ्य है। समझ में आया? ऐसे आकाश। आकाश के एक प्रदेश में इतनी सामर्थ्य है कि यह सब पाँचों सूक्ष्म हो, परन्तु कदाचित् सूक्ष्म सब होकर एक प्रदेश में आ जाये तो समा देने की शक्ति है। स्वभाव की मर्यादा क्या? अवगाहन गुण है, गति गुण अपना स्वभाव है। ऐसे स्वभाव आत्मा की एक पर्याय का स्वभाव इतना अपार... अपार... अपार... और उसके गुण का स्वभाव अपार। भाई! यह वस्तु है। समझ में आया?

यहाँ ... कहाँ से आवे एक प्रदेश में आकाश अनन्त? परन्तु प्रदेश में इतनी स्वभाव की सामर्थ्य अवगाहन लेने की। सम्पूर्ण लोक सूक्ष्मरूप होकर आ जाये तो अवगाहन देने की सामर्थ्य है। देखो तो सही! वह यहाँ स्वभाव का वर्णन करना है। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... वीतरागस्वभाव, केवलज्ञानस्वभाव, केवलदर्शनस्वभाव, भाई! वह वस्तु है। आनन्दस्वभाव। क्षेत्र इतना साढ़े तीन हाथ का, उसका लक्ष्य न करना। इसलिए तो व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय को भिन्न बताया है। व्यंजनपर्याय बड़ी हो तो केवलज्ञान हो और व्यंजनपर्याय हो तो थोड़ी हो तो केवलज्ञान न हो ऐसा है? पाँचों ... व्यंजनपर्याय... केवलज्ञान हो। क्योंकि अर्थपर्याय तो पूर्ण प्रगट है। आकृति विशेष हो उसके साथ ... है नहीं। क्षेत्र का आकार के साथ गुण के भाव की विशेषता नहीं, वह तो उसमें बताया है। समझ में आया? भगवान आत्मा क्षेत्र से तो पाँच सौ धनुष हो या सात हाथ। पर्याय में तो केवलज्ञान प्रगट पूर्ण हो जाता है। सात हाथ व्यंजनपर्याय संक्षिप्त है तो केवलज्ञान संक्षिप्त हो जाता है, ऐसा है? पाँच सौ धनुष है तो उसका

केवलज्ञान बड़ा है ? आकृति ऊपर, क्षेत्र ऊपर विशेष नहीं है। समझ में आया ? वेदान्त क्या सर्वव्यापक... सर्वव्यापक क्षेत्र पर ले गये। खबर नहीं ... समझ में आया ? यहाँ तो आत्म भगवान जितना क्षेत्र में व्यंजनपर्याय थोड़ी-संक्षिप्त क्षेत्र से हो तो भी स्वभाव पूर्ण है, ऐसी दृष्टि सब जीव में ज्ञानी देखते हैं। कहो, समझ में आया ?

वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी... वह वीतराग पश्चात् स्वसंवेदन अर्थात् चौथे गुणस्थान से, हों ! वह ... अर्थ करते हैं न। कौन जाने क्या करते हैं ? चौथा, पाँचवाँ, छठवें से छोड़कर सातवाँ, आठवाँ, नवमाँ... भगवन ! तू जोरदार है न। अनन्त तीर्थकर आवे तो माने नहीं और सुल्टा पड़े तो अनन्त लोक प्रतिकूल होकर आवे तो हिले नहीं। ऐसा है न वह जोरदार। विघ्न को गिने नहीं। अनुकूलता की अपनी ऊँचाई हो तो भी उसे गिने नहीं। ऐसी सामर्थ्य है उसमें। कहो, समझ में आया ?

केवलज्ञानवेलि के कन्द... देखो भाषा ! आहाहा ! सभी जीव केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति है, ... सुख पंक्ति है। सुख का हार। आनन्द का हार। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द की पंक्ति जैसे हो आनन्द-आनन्द। सबमें आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... पूरा आत्मा आनन्द और केवलज्ञान का कन्द। कोई कम-बढ़ है नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक ०४-०६-१९६५

गाथा - ९७-९८, प्रवचन - १३९

ज्ञान पंचमी का दिन है। सौराष्ट्र में गिरनार पर्वत में एक धरसेनाचार्य पूर्व का एकदेश (ज्ञान) परम्परा से उनको मिला है, वह दो मुनियों एक पुष्पदन्त और भूतबली मुनि को यह दिया। और वे अंकलेश्वर चले गये। वहाँ जाकर मुनियों ने शास्त्र पूरा करके आज के दिन में वहाँ मुनियों ने उत्सव सबने मनाया था वह दिन आज है ज्ञान पंचमी का। वह भगवान का ज्ञान परम्परा से चला आया था। वह दिगम्बर सन्त मुनि चन्द्रगुफा में गिरनार में विराजते थे। उनको अन्दर में क्षयोपशमभाव में ज्ञान विद्यमान था। उनको भय लगा कि मेरे बाद क्या होगा? दो मुनियों को बुलाया। दो मुनि भी महा जाति, कुल आदि से शुद्ध है, पवित्र है, उनको दिया। परीक्षा करके वह दिया। परीक्षा ... बहुत चलती है। बारह अंग की पूर्व सन्धि होनेवाला वह षट्खण्डागम यहाँ गिरनार में उसका बीजरूप आया। गिरनार में पुष्पदन्त, भूतबली को देने में आया। तो अंकलेश्वर में थोड़ा लिखावट हुई। वह भगवान की बारह अंग की वाणी के साथ सन्धि रखता है। ऐसी बात है। समझ में आया? वह समयसार से भी पहले, समयसार से भी पहले यह षट्खण्डागम हुआ है। महासिद्धान्त है। सर्वज्ञ परमात्मा के मुख से जो भावश्रुत निकला। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थकरदेव वीतराग परमेश्वर विपुलाचल पर्वत से शुद्ध ज्ञान का प्रवाह निकला भावश्रुत का। वह तो केवलज्ञान है। प्रवाह भावश्रुत का निकला। और भावश्रुत को धरनेवाले गणधर को बारह अंग में परिणत हो गयी पर्याय। बारह अंगरूप शुद्ध ज्ञान से पर्याय परिणत हुई। एक अन्तर्मुहूर्त में उसकी रचना हो गयी। वह श्रुत की परम्परा से आयी हुई बात धरसेनाचार्य ने पुष्पदन्त और भूतबली को दी थी। उस बात का आज दिवस ज्ञानपंचमी मांगलिक दिवस, स्मृति में मांगलिक दिवस है यह। समझ में आया? समयसारादि बाद में लिखा। ... वह षट्खण्डागम की टीका कुन्दकुन्दाचार्य ने की थी। 'परिकर्म' नाम की टीका। वर्तमान में (उपलब्ध) नहीं। परन्तु वह वाणी तो ठेठ

परमात्मा बारह अंग उससे निकला वहाँ से वह वाणी का सार एक अंश भी भले पूर्व का लिखा यहाँ....

सभी अंग और पूर्वों का एक देश आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। सौराष्ट्र देश के गिरनार नगर की चन्द्रगुफा में रहनेवाले। महा ... प्रवचन वात्सल्य। प्रवचन वात्सल्य। ओहो! यह ज्ञान परम्परा... टिके ऐसा जिसको प्रेम है। तो दो मुनियों को बुलाया। और मुनि भी महा... कैसे हैं मुनि? देखो! कहते हैं, गुरु ने आज्ञा दी कि जाओ। यहाँ पत्र लिखा है न? तो कहते हैं कि ... भेजनेरूप भोजन से तृप्त हुए। गुरु ने आज्ञा की कि जाओ मुनि के पास। जैसे भोजन से तृप्त हुए... देश, काल, जाति से शुद्ध है। उत्तम देश, उत्तम कुल, उत्तम जाति और उत्तम महाभावलिङ्गी वीतरागी मुनि है। आहाहा! पुष्पदन्त, भूतबली वीतरागी मुनि। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। वीतरागी, भाई! लिखा है। कोई कहते हैं नीचे छठवें में वीतरागी नहीं होते। वीतरागी ऊपर होते हैं। पाठ में है वीतरागी मुनि। वीतराग मुनि है वीतरागी। आगे। इसमें इतने शब्द नहीं। वह दूसरे पाठ में है। यहाँ वीतरागी पुस्तक में आया न? वीतराग भूतबली ऐसा पाठ है। याद सब तो है नहीं। भगवान वीतरागी भूतबली, पुष्पदन्त वीतरागी मुनि। एक संज्वलन का कषायमन्द। ऐसे मुनियों ने यह शास्त्र की रचना की। वह परम्परा सर्वज्ञ से आयी, वही बात है। उसकी रचना का आज पूर्ण—समाप्ति का दिन है। आज मांगलिक दिन कहने में आता है। समझ में आया? यह इतना जरा मांगलिक किया।

★ ★ ★

गाथा - ९७

अब, उसमें सार क्या था, वह अपने चलता है, उसमें परमात्मप्रकाश। देखो ९७ गाथा। ९७। ९६ हो गयी। आगे... यह शास्त्र में, भगवान की वाणी में आया, वही शास्त्र में रचा है। कहो, समझ में आया? श्वेताम्बर शास्त्र तो बाद में, बाद में कल्पित रचे हैं। भगवान की वाणी की सन्धि (उसमें) नहीं है। यहाँ भगवान की वाणी की सन्धि में ऐसा आयसा, ऐसा मुनियों ने अनुभव किया और अनुभव करके भावश्रुतरूप कितनी पर्यायरूप

परिणत हुआ, ऐसा परमात्मप्रकाश करनेवाले योगीन्द्रदेव ९७वीं गाथा में कहते हैं। देखो, ९७।

आगे केवलज्ञानादि लक्षण से शुद्ध संग्रहनयकर सब जीव एक हैं,... सब भगवान अनन्त आत्मायें केवलज्ञान अर्थात् ? वह पर्याय की बात नहीं है। अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान। चैतन्यसूर्य... चैतन्यसूर्य... चैतन्यसूर्य... चैतन्यसूर्य... सारे अनन्त जीव जो... समझ में आया ? वह सब जीव। सिद्ध से भी अनन्तगुना। वह सब जीव। कहते हैं कि शुद्धसंग्रहनयकर सब जीव एक हैं,... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... केवल अकेला ज्ञानसूर्य... ज्ञानसूर्य... ज्ञानसूर्य... ऐसा कहते हैं—

२२४) जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण-विमुक्क।

जीव-पएसहिं सयल सम सयल वि सगुणहिं एक्क ॥ ७३ ॥

सभी जीव... ओहोहो! इतनी स्वीकारता। अनन्त-अनन्त आत्मा और वह सब ज्ञानमय। अकेला केवलज्ञानमय, दर्शनमय, आनन्दमय। पर्याय की बात यहाँ नहीं। गुण-गुण स्वभाव। वह जीव ज्ञानमय है। समझ में आया ? 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' अपने आता है न। योगसार में भी आता है। योगसार। 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' यहाँ योगीन्द्रदेव करनेवाले। वह भी योगीन्द्रदेव ने कहा योगसार। श्रीमद् में ऐसा आवे 'सर्व जीव है सिद्ध सम। सर्व जीव है सिद्ध सम' योगीन्द्रदेव में ऐसा आता है 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' यहाँ भी ज्ञानमय योगीन्द्रदेव कहते हैं। अकेला चैतन्यबिम्ब ज्ञानमय स्वरूप। ज्ञानवाला, ऐसा भी नहीं। अकेला चैतन्यसूर्यमय अभेद वह सब अनन्त आत्मा। आहाहा! इतनी सत्ता!

ऐसा अनन्त-अनन्त ज्ञानमय भगवान ऐसा अनन्त आत्मा, उसकी सत्ता का स्वीकार करनेवाला भावश्रुतज्ञान में परिणत, वही स्वीकार कर सकता है। समझ में आया ? यहाँ तो यह कहना है न कि सम्यग्दृष्टि सबको ज्ञानमय देखते हैं। ऐसा कहते हैं द्रव्यदृष्टि। आहाहा! अनन्त-अनन्त। ... गुणे अनन्त मुक्ति चले जाते हैं तो भी अनन्त-अनन्त गुणा जीव। अनन्त-अनन्त गुणा जीव। एक शरीर में अनन्तवें भाग। मुक्त हुए, वे होंगे तो भी एक शरीर में अनन्तवें भाग। ऐसा-ऐसा असंख्य चौबीसी जितना तो निगोद का शरीर

है। एक शरीर में अनन्तवें भाग उससे अनन्त गुना एक शरीर में ऐसा-ऐसा असंख्य चौबीसी का समय जितना निगोद शरीर है। ओहोहो! ज्ञानमय भगवान ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... आत्मायें हैं। ऐसा सम्यग्दृष्टि द्रव्यदृष्टि से अपने को जैसा चैतन्यमय देखते हैं, ऐसा सबको चैतन्यमय देखते हैं। समझ में आया? शरीर है, कर्म है, अल्पज्ञता है, विकार है। वह नहीं। वह तो जाननेयोग्य है। यह जीव। अकेला भगवान पूरा-सारा ज्ञानमय।

और जन्म-मरण सहित अपने-अपने प्रदेशों से सब समान हैं... इसका अर्थ नहीं। अर्थ रहा गया है। अर्थ रह गया है। शब्द पड़ा है, अर्थ रह गया है। कैसा है? जन्म-मरण से रहित है। 'जन्ममरणविमुक्ताः' एक अर्थ रह गया है। नीचे अन्दर में आयेगा। टीका में आयेगा। ओहोहो! अरे! जन्म-मरण की पर्याय में होने पर भी जन्म-मरणरहित स्वभाव का स्वीकार। समझ में आया? जन्म-मरण से एक समय की पर्याय में होने पर भी वस्तु-वस्तु, जन्म-मरणरहित वस्तु। वस्तु में जन्म-मरण कहाँ? राग कहाँ? ऐसा जिसको देखते हैं। और अपने अपने प्रदेशों से सब समान हैं... भाषा भिन्न-भिन्न बताना है तो अपना असंख्य प्रदेश, अपना असंख्य प्रदेश। असंख्य प्रदेश ऐसा अनन्त आत्मा। असंख्य प्रदेश क्षेत्र चैतन्य धाम का क्षेत्र। असंख्य प्रदेश ज्ञान का क्षेत्र। ऐसे सब जीव समान हैं।

और सब जीव अपने केवलज्ञानादि गुणों से समान हैं। 'स्वगुणैः एके' 'एके' का अर्थ समान। जाति से सब एक हैं। यह स्वीकारता। आहाहा! समझ में आया? वह विकल्प से इतनी स्वीकारता नहीं आती। समझ में आया? वह विकल्प राग, मन के सम्बन्ध से इतना आत्मा, ऐसा वह तो अपना निर्विकल्प चैतन्य प्रभु एक समय में पूर्ण स्वभाव ऐसी दृष्टि हुई, उसको वह ज्ञान की पर्याय में ऐसा अनन्त है, वह ज्ञान की पर्याय में समा जाता है। सब अनन्त है। ऐसा शुद्ध है। पर्याय में जानना है न? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। पर्याय में से जानते हैं। जानते हैं पर्याय में, परन्तु जानते हैं सब ज्ञान में पूर्ण अनन्त। जानते यहाँ पर्याय में, परन्तु जानते में पूर्ण द्रव्य एक। समय की पर्याय में जानना, परन्तु जानना क्या? द्रव्य पूर्ण एकरूप हूँ। ऐसा जानना पर्याय में सब अनन्त जीव केवलज्ञान की वेल का कूंड है, ऐसे श्रद्धा में लेते, ओहोहो! परमेश्वर की

हार (-पंक्ति) बैठी है । अनन्त-अनन्त परमेश्वर की पंक्ति । समझ में आया ?

मुमुक्षु : जहाँ देखूँ वहाँ भगवान देखूँ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ देखूँ वहाँ भगवान देखूँ, कहे । वह स्वभाव की दृष्टि है न स्वभाव की, उस अपेक्षा से बात चलती है । भगवान... भगवान... भगवान... यह भगवान उसका यह । उसमें आता है न अन्यमति में ? वह तो उसमें देव आया था और फलाना आया था यह बतलाने के लिये । वह तो भगवान महिमास्वरूप सम्यग्दर्शन में अपना स्वरूप जहाँ पूर्ण स्वभाव, स्वस्वभाव, जो पर्याय में नहीं । एक समय की पूर्ण-पूर्ण स्वभाव, ऐसा प्रगटरूप प्रतीति में, ज्ञान में आया विद्यमान पदार्थ । ऐसा सबको ज्ञानी द्रव्यदृष्टि से समान देखते हैं ।

देखो, भावार्थ :- व्यवहार से लोक-अलोक का प्रकाशक... व्यवहार से । परवस्तु है न ? उस उपेक्षा से व्यवहार से लोक-अलोक का प्रकाशक और निश्चयनय से निज शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला... निश्चय से शुद्ध आत्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला जो केवलज्ञान, वह यद्यपि... केवलज्ञान । पर्याय की बात है, हों ! व्यवहारनय से केवलज्ञानावरणकर्म से ढँका हुआ है,... क्या कहा, समझ में आया ? अपनी पर्याय में हीनपनेरूपी परिणमन, वह केवलज्ञानावरणीय का वहाँ निमित्त है तो केवलज्ञानावरणीय ने अपनी ज्ञान की पर्याय पूर्ण है तीन काल, तीन लोक जाननेवाली, उसको व्यवहार से आच्छादन है — ऐसा कहने में आया ।

तो भी शुद्ध निश्चयनय से केवलज्ञानावरण का अभाव होने से... भगवान आत्मा में केवलज्ञानावरणी नहीं और अल्पज्ञान का अभाव और केवलज्ञानावरणी का तो अभाव है ही । वस्तु... वस्तु... वस्तु... आहाहा ! केवलज्ञानावरण का वस्तु-पदार्थ में परमाणु की पर्याय का अभाव है और वस्तु त्रिकाल में अल्पज्ञ एक समय की पर्याय का भी उसमें अभाव है । पर्याय में हीन है तो निमित्तपना उसमें वह है । दोनों का अभाव देखकर, अपना शुद्धस्वरूप देखा । ऐसा सब जीव केवलज्ञानस्वभाव से सभी जीव केवलज्ञानमयी हैं । ओहोहो ! ऐसा ज्ञान में-भावश्रुतज्ञान में सम्यग्दृष्टि सबको ऐसा द्रव्य से जानते हैं । एक बात । दूसरा, वह जन्म-मरण का अर्थ नहीं किया इसमें ।

यद्यपि व्यवहारनयकर सब संसारी जीव जन्म-मरण सहित हैं,... पर्याय में उदयभाव आदि है, निमित्त कर्म आदि हैं। एक समय का संसार। एक समय का संसार। वह तो प्रवाहरूप से अनादि से। द्रव्य में संसार एक समय रहता है। देवचन्दजी! क्या? एक समय ही रहता है। उस समय के अतिरिक्त का परमात्मा पूर्णानन्द है, वह यहाँ बताना है। संसार एक समय ही है। पर्याय है न वह संसार? वह कोई गुण, द्रव्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो परमेश्वर के घर की बात है। समझ में आया? महा परमेश्वर अपना स्वरूप निर्विकल्प जहाँ प्रतीति में आया। बाहर का तो बहुत ज्ञान अनन्त बार किया, परन्तु स्व का एक समय में जहाँ जात्यान्तर ज्ञान हो गया। जो ज्ञान अकेला पर को जानता था, वह ज्ञान स्व को जानने लगा, सम्यग्ज्ञान जात्यान्तर हो गया। वह ज्ञान से जहाँ अपना स्वरूप पूर्ण है, ऐसा प्रतीति में, भान में आया। ओहोहो! मैं भी पर्याय में ऐसा था। वस्तु में तो है ही है। ऐसा सब जीव को समभाव की दृष्टि से द्रव्यदृष्टि से ऐसा देखते हैं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... ओहोहो! समझ में आया?

वह सब संसारी जीव जन्म-मरण सहित... एक पर्याय में सहित देखने में आता है एक समय में। तो भी निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप अतीन्द्रिय सुखमयी है... भगवान आत्मा रागरहित निजानन्द -निज आनन्दस्वरूप त्रिकाल पड़ा है। आनन्दरूप अतीन्द्रिय सुखमय है, अतीन्द्रिय सुखमय है। जिसमें सुख की ध्रुव पाट पड़ी है। आनन्द की-सुख की, अतीन्द्रिय आनन्द की पाट है। पाट क्या? शिला। शिला कहते हैं न? बर्फ की शिला। पाँच मण की शिला। भगवान आत्मा अरूपी शिला। वीतराग आनन्दमय शिला। आहाहा! यह वह कहाँ... समझ में आया? वह परमात्मप्रकाश की बात है न? वह परमात्मा एक समय में भगवान पूर्ण। कहते हैं कि भगवान आत्मा समय में जन्म-मरणसहित दिखता है व्यवहार से। परमार्थ से देखो तो भगवान आत्मा। आहाहा! विद्यमान का अविद्यमान करना और अविद्यमान दृष्टि में उसको छति करना। आहाहा! समझ में आया? एक समय का संसार छतां—प्रगट दिखता है, उसको अछता करना कि है ही नहीं स्वभाव में। आहाहा! और पर्याय में छता नहीं उसको छता, छता क्या कहते हैं आपकी भाषा में? महासत्ता प्रगट करे। प्रगट है, व्यक्त है... व्यक्त है... व्यक्त है... मौजूदगी। मौजूदगी। समझ में आया? मौजूदगी। एक समय की मौजूदगी-छती

उसको अमौजूदगी करना। और त्रिकाल जो पर्याय में मौजूदगी नहीं, वह मौजूद दृष्टि में लेना। आहाहा! समझ में आया? अस्ति-मौजूदगी।

जिनकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं ऐसे हैं... भगवान अनन्त आत्मा... आदि-अन्त क्या? वह तो पर्याय जन्म-मरण है उदय से उत्पन्न होते हैं और दूसरे समय व्यय होते हैं। उत्पन्नध्वंसी। उत्पन्न-ध्वंसी। वह तो एक समय की विकारी अल्पज्ञ पर्याय उत्पन्न-ध्वंसी है। वस्तु तो त्रिकाल एकरूप है, उसको उत्पन्न-ध्वंसी-फंसी है नहीं। आदि-अन्त है ही नहीं। समझ में आया? देखो, यह भगवान की ज्ञानपंचमी का यह, देखो। यह ज्ञानमय आया देखो यहाँ। ज्ञानपंचमी, ओहोहो! सन्तों ने। दिगम्बर मुनि धरसेनाचार्य। धर्म के स्तम्भ। ओहोहो! उन्हें ऐसा विकल्प वात्सल्य प्रेम आया। अरे! यह ज्ञान बारह अंग के साथ जुड़ानवाला। मेरा देह छूटने के बाद में क्या होगा? इतना प्रेम विकल्प से आ गया। समझ में आया? आहाहा! वरना तो उनको वीतरागभाव है। महा ... अरे! यह नहीं। बाद में कौन होगा? कौन है? आहाहा! मुनि बुलाये, तो मुनि भी ऐसा वीतराग-वीतराग का कन्द प्रभु। अरे! पंचम काल में भी आत्मा है न वह? मुनि है भाई! समझ में आया? ये मुनि को ऐसे देखते हैं न जरा। आहाहा! उस क्षेत्र में जब देखते होंगे। यह वस्तु... यह वस्तु... यह। वह ... ग्रहण-धारण मुनि करते होंगे। ... मुनि के मुख में से निकलता होगा। आहाहा! वह ... ग्रहण धारण। वहाँ क्या पृष्ठ लिखा था? कि पृष्ठ हाथ में लेकर चले जाये। समझ में आया?

एक तो वीतरागी दशा में झूलते हैं, इतने में ऐसा-ऐसा आचार्य गुरुदेव धरसेनाचार्य देते हैं। अन्दर धारण... धारण... धारण... धारण... धारण... कर लिया। बिना लिखे, बिना छापे। ओहोहो! ये पंचम काल के मुनि। आत्मा है न। विद्या दी। जाओ सिद्ध करो। महा वीतरागी मुनि। महाराज! हमें उस विद्या का क्या काम है? ऐसा नहीं कहा। गुरु का कोई हेतु होगा। जाओ विद्या सिद्ध करो। वीतरागी मुनि, हों! ओहोहो! विद्या सिद्ध करके देवी का रूप कुरूप देखते हैं। आहाहा! देवी कुरूप होती नहीं। कोई विद्या में कमी है। ओहोहो! वीतरागी सन्तों ने विद्या को शोधकर। ... अन्तर है, शब्दों में अन्तर है उसमें। विद्या... बराबर... महाराज! प्रभु! अच्छा, कल्याण हो... कल्याण हो... आहाहा! वह... परन्तु ज्ञाता-दृष्टा रहता हूँ मैं। ऐसा विकल्प में ग्रहण धारण, वह व्यवहार

ऐसा हुआ था। आहाहा! जैनशासन का द्रव्य तो अलग जाति का, उसके व्यवहार की भी अलौकिक बात है। समझ में आया? जैन ने कहा, उसके अतिरिक्त ऐसा व्यवहार भी तीन काल में होता नहीं। वह चीज़ वस्तु की ऐसी है। तृप्त-तृप्त हुआ। आनन्द...

गुरु को लगा कि मेरी स्थिति अल्प है। यहाँ उसे ... होगा। कि चले जाओ। चले जाओ। नाथ! इतना उपकार किया और मुझे यहाँ से चला जाना। विकल्प नहीं। गुरु कहते हैं जाओ। आहाहा! ग्यारस से पहुँचे हैं जहाँ। ताड़पत्र। अभी वहाँ ताड़ है हों! लाखों ताड़ी अभी भी है। ... गाँव में देखा है न। ... सजोद। सजोद में दो हजार वर्ष पहले की एक प्रतिमा है शीतलनाथ। उसको देखा। ओहो! जरा ... हो गयी है। गुफा-भोंयरा में है। शीतल... शीतल... शीतल... शान्त। और आसपास देखो तो हजारों-लाखों ताड़ी अभी भी हैं। उस समय ताड़पत्र नीचे पड़े हों। उस विकल्प का कर्ता नहीं। अकर्ता कर्ता नहीं। यह वह कहीं गजब बात है न! समझ में आया? यह पुस्तक यहाँ रह गयी, वह भी एक जगत का भाग्य है। समझ में आया? जहाँ केवलज्ञानी ... वह आज ज्ञानपंचमी है। पाठ में भी अपने यह आया सहज ही।

‘जीव सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण-विमुक्क।’ भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानमय है। वह शास्त्रज्ञान भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने ज्ञान में क्षयोपशम निजस्वरूप का उत्पन्न हुआ, वह क्षयोपशम ज्ञान इतना भी नहीं। शास्त्रज्ञान तो नहीं, अपने निज स्वरूप में दृष्टि करके जो आत्मज्ञान, आत्मज्ञान का कण निकला अन्दर में से, वह भी एक समय की पर्याय है। भगवान आत्मा ज्ञानमय पूर्ण है। आहाहा! समझ में आया? एक समय का ज्ञान, वह व्यवहार हुआ। निजस्वरूप का ज्ञान, हों! वह पर्याय भी व्यवहार हुई। किस अपेक्षा से? त्रिकाल वस्तु की अपेक्षा से। समझ में आया? त्रिकाल वस्तु वीतराग निजानन्दरूप, अतीन्द्रिय सुखमय एकरूप। निजानन्द का एक अंश आनन्द का आया सम्यग्दर्शन में। ज्ञानकला उदय हुई, परन्तु वह तो वर्तमान पर्याय अंश है, वह तो व्यवहारनय का विषय हुआ। भले उसका भेदरूप सद्भूत व्यवहार हो, परन्तु है व्यवहार। भगवान आत्मा कहते हैं कि अंश के अतिरिक्त पूरा नित्यानन्द सुखमय प्रभु है। ऐसा सब भगवान ऐसा है। समझ में आया?

शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत जन्म-मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म, उनके उदय के अभाव से... स्वभाव में उदय का अभाव है। जन्म-मरण रहित हैं। भगवान् आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... पदार्थ, उसमें उदयभाव का तो अभाव है। उदयभाव का अभाव है। उदयभाव तो पर्याय में गति आदि का एक समय की पर्याय में है। वस्तु उत्पन्न हो, व्यय हो, उत्पन्न हो। वस्तु तो जन्म-मरणरहित त्रिकाल ज्ञान। ऐसी अन्तरदृष्टि हुई, वह दृष्टि अन्तरात्मा अन्तर में स्वभाव को देखते हैं, पर्याय को जानकर जानने में आता है, परन्तु अन्तर में दृष्टि का आदर अपना स्वभाव का हुआ तो ऐसा ही सब द्रव्य ऐसे देखते हैं। परमात्मा देखते हैं।

यद्यपि संसारअवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेशों का संकोच-विस्तार को धारण करते हुए... व्यवहार है। असंख्य प्रदेश में संकोच-विकास, वह पर्याय। संकोच-विकास है। देहप्रमाण हैं और मुक्त-अवस्था में चरम (अंतिम) शरीर से कुछ कम देहप्रमाण हैं,... परन्तु वह भी व्यवहार है। तो भी निश्चयनयकर लोकाकाश प्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं,... असंख्य प्रदेश में एक प्रदेश कम और बढ़ नहीं होता है। वह तो क्षेत्र में ऐसा-ऐसा होता है संकोच-विकास। असंख्य प्रदेश तो ऐसा-ऐसा अनादि-अनन्त है। निश्चय से उसमें संकोच-विकास। असंख्य प्रदेश में संकोच-विकास क्या ? घटे तो संकोच और बढ़े तो विकास। वह तो है ही नहीं। वह तो उसकी आकृति की पर्याय में-व्यंजनपर्याय में ऐसा संकोच-विकास है। वस्तु असंख्य प्रदेशी निश्चयनयकर असंख्यातप्रदेशी है।

हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर (सब भगवान्) सब समान हैं,... आहाहा ! सब भगवान् का ज्ञानानन्द बँगला सबका समान है, लो। ज्ञानस्वभाव की दृष्टि में। जिनवाणी में तो दोनों ही आते हैं। व्यवहार और निश्चय, परन्तु यहाँ निश्चय में वह बात है। निश्चय की बात चलती है न। समझ में आया ? व्यवहार भी आता है न ? जाननेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया ? हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर सब समान हैं, और यद्यपि व्यवहारनय से संसार-अवस्था में इन जीवों के अव्याबाध अनन्त सुखादिगुण कर्मों से ढँके हुए हैं,... पर्याय में व्यक्त नहीं और कर्म का निमित्त है तो ढँका हुआ है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। अशुद्ध निश्चय से अपनी पर्याय

में हीन परिणमन हुआ है। पर्याय में हीन परिणमन हुआ है। वस्तु में परिणमन हीन या अधिक, ऐसा है ही नहीं।

तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से... वर्तमान, हों! और कर्म का अभाव होगा, ऐसा नहीं। वर्तमान में भगवान आत्मा, सब आत्मा वर्तमान कर्म का निमित्त और हीनपने का परिणमन अशुद्ध उपादान, वह वस्तु में है ही नहीं। परन्तु वर्तमान कर्म के अभाव से सभी जीव गुणोंकर समान हैं। सब गुणोंकर समान जीव हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है,... ऐसा जो त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, वही ध्यान करनेयोग्य है। वही श्रद्धा-ज्ञान में, चारित्र में लेने योग्य है। सब पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... ऐसा शुद्धस्वरूप एकरूप अव्याबाध आदि अनन्त गुणस्वरूप, असंख्य प्रदेशरूप, वह क्षेत्र बताया न? गुण बताया, क्षेत्र बताया। समझे? उसकी शक्ति पूर्ण उसरूप प्रभु, वही ध्यान करने अर्थात् ध्येय में लेकर एकाग्र होनेयोग्य है। समझ में आया?

ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है,... संस्कृत में है। 'यदुक्तं शुद्धात्मनः स्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यम्॥' तात्पर्य भी कहते हैं। जानकर करना क्या? भगवान पूर्ण स्वरूप, उस-सन्मुख होना। पर्याय, विकल्प से विमुख होकर, स्वभाव से सन्मुख होना, वह उसका तात्पर्य है। समझ में आया? जो चीज महापदार्थ। सन्मुख-सन्मुख—उसके सामने देखना। विमुख-पर्याय और विकल्प होने पर भी विमुख (अर्थात्) मुख वहाँ से हटाना। समझ में आया? पाँचवें काल में? अरे भगवान! पाँचवाँ काल, इसलिए कहते हैं कि भाई! पाँचवें काल में आत्मा तो जैसा है वैसा है। पाँचवें काल में, चौथे काल में कि निगोद में हो या चाहे... आत्मा तो ऐसा का ऐसा तीन काल, तीन लोक में पड़ा है शान्तबिम्ब एकरूप। दूसरा क्या है तुझे? पाँचवाँ काल और चौथा काल क्या है? यह तो इनकार करते नहीं? एकरूप भगवान अभी भी है। चौथे काल में था, अनन्त काल पहले था, वह तो है ही है। ऐसा भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप उसका ध्यान, परन्तु वह समझे बिना ध्यान किसका। उसके बिना ध्यान अकेला बैठ जाये ध्यान...

एक व्यक्ति अभी आया था। सोलह वर्ष से ध्यान करता हूँ, कहे। महाराज! एक

शब्द ऐसा बताओ। भाई! एक शब्द ऐसा नहीं चीज़ है। कोई आया नहीं था अभी? अन्दर आया था। सोलह वर्ष से ध्यान करता हूँ, परन्तु कुछ दिखता नहीं। क्या दिखे? कहा धूल दिखे? एक यहाँ लेने आया हूँ। एक शब्द दो। शब्द-शब्द और ऐसा नहीं कहा। स्वरूप कैसा है? पर्याय वस्तु अनन्त उसका बराबर उसको ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान हुए बिना किसकी महत्ता आवे? महत्ता आये बिना स्वभाव-सन्मुख कैसे रुचि ढले? समझ में आया? ऐसा और ऐसा ध्यान करूँ। क्या ध्यान करे? थोथा हो जायेगा। कितना और वह चढ़ जाये ध्यान करूँ। परन्तु किसका ध्यान? ध्यान का ध्येय चीज़ कैसी है? किस प्रकार की है? अनन्त गुण कैसा है? सामर्थ्य कैसा है? पर्याय कितनी है? किस प्रकार की है? उसका जहाँ बोध भी नहीं, तो महत्ता पर्याय की उठकर स्वभाव की महत्ता कहाँ से आयेगी? समझ में आया? यह तो लोगों को ऐसा हो कि एकदम ले लूँ। कुछ बतावे तो। ॐ... ॐ... ॐ... अब ॐ-ॐ क्या करते हैं? यह तो विकल्प है ॐ का। आत्मा समझे बिना ॐ-ॐ क्या तेरा करता था? भगवान-भगवान।

मुमुक्षु : ॐ शान्ति...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परन्तु ॐ उसका वाच्य क्या है? ॐ तो वाचक है। शब्द है। शक्कर शब्द है, उसमें शक्कर आ गयी? शक्कर शब्द में वाचक तो वाच्य आ गया? वाच्य शक्कर की मिठास भिन्न है। ऐसे आत्मा शब्द है, तो आत्म शब्द का वाच्य कौन? पदार्थ है। कौन है परन्तु ये? समझ में आया? अस्तिरूप से-अस्तिरूप से, मौजूदगीरूप से, अस्तिरूप से कैसी है चीज़? ऐसी चीज़ का यथार्थ ज्ञान हुए बिना उस तरफ वीर्य का झुकना कभी हो सकता नहीं। वह झुकना अन्दर में वह ध्यान है। समझ में आया? वह कहते हैं। वह आता है न ध्यान करना शास्त्र को, लो। परन्तु ध्यान समझे बिना? यहाँ तो सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में ध्यान होता है। वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... इतनी माहात्म्यवाली चीज़ जो दृष्टि में आ गयी, निर्विकल्प प्रतीति हुई, तब उस ओर की आवश्यकता जाने बिना वहाँ वीर्य झुके बिना रहे नहीं। समझ में आया? परन्तु उसका बोध यथार्थ स्वपदार्थ को होना चाहिए। इसलिए पहले व्याख्या की, फिर सार कहा। जानकर व्यवहार-निश्चय, व्यवहार-निश्चय। समझ में आया? परमात्मप्रकाश।

मुमुक्षु : ध्यानवाला ...

पूज्य गुरुदेव श्री : बैठ जाये आँख मींच कर। क्या परन्तु आँख बन्द ही है। अब वहाँ कब घुस गयी आँख आत्मा में? आँख ऐसे हो या ऐसे हो, वह तो जड़ की पर्याय है। आँख क्या आत्मा बन्द कर सकता है? ऐसे कर सकता है? ऐसे उघाड़ सकता है? यह तो जड़ की पर्याय है। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... क्या है ॐ? यह तो विकल्प है, कल्पना की जाल है। समझ में आया? चैतन्य पदार्थ... ज्ञान में ज्ञेय इतना माहात्म्यवाला है, ऐसा ज्ञान में, पर्याय में माहात्म्य पर्यायवान का आये बिना पर्याय से हटकर पर्यायवान में वीर्य नहीं घुस सकता। समझ में आया? वह तात्पर्य में यह कहा है। ऐसी चीज़ समझाकर बाद में कहा। ऐसा भगवान आत्मा अपनी पर्याय को, पर्यायवान में एकाग्र करना, उसका नाम ध्यान है। समझ में आया? ध्यान में हमें लाल-पीला दिखे, एकदम लाल दिखता है, पीला दिखता है। यहाँ एक था न वह सात प्रतिमावाला। प्रभु नहीं था एक प्रभु? चिदानन्दजी के साथ। चिदानन्दजी ने दो चातुर्मास किये न! उसने सात प्रतिमा ली, उन्होंने। पश्चात् उनसे पूछा कि ... आत्मा कैसा? कि आत्मा होता है लाल। एक आर्यिका आयी थी शाम को सब। फिर किसी ने पूछा कि आत्मा कैसा? कि पहले हो लाल और फिर दिखे सफेद। पहले राता। लाल-लाल। पश्चात् सफेद। भगवान! क्या हुआ? यहाँ लाल वस्त्र पहनने के बाद सफेद। पहले ऐसा कि लाल दिखे अन्दर में लाल। लाल और सफेद, लाल और सफेद, वह तो जड़ है। आर्यिका थी, हों ग्यारह प्रतिमा लेकर यहाँ आयी थी न। ... भगवान! क्या करता है यह? खबर पड़ती नहीं। उसकी कीमत क्या है? यह मैं क्या लेकर बैठता हूँ, उसकी खबर नहीं। उसे अपने को कुछ बेचारे को दुःख लेने का कहीं भाव हो? परन्तु वस्तु की खबर नहीं। खबर नहीं। यह चीज़ क्या है, यह मैं क्या करना चाहता हूँ? कहाँ से आयेगा? यह शान्ति चाहता हूँ, सम्यक् वह कहाँ से आयेगा? वह कहाँ भरा है अन्दर में, वह आयेगा? इस चीज़ की ही जहाँ खबर नहीं और ऐसा का ऐसा राग और यह का यह। यह तो अनन्त काल ऐसा का ऐसा जन्म-मरण में बीता निगोद से नव ग्रैवेयक। उनके यह क्रमचक्र है। समझ में आया?

आचार्य महाराज ने इसलिए कहा, पूरी बात करके, बाद में। 'यदुक्तं शुद्धात्मनः'

जो कहा ऐसा शुद्धात्मा 'स्वरूपं तदेवोपादेयमिति' यही अन्तर में उपादेय करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य। उपादेय अंगीकार करनेयोग्य का अर्थ कि उसमें ही एकाग्र होनेयोग्य है। यह उपादेय। और यह उपादेय ऐसा भेद भी कहाँ है? समझ में आया? यह वस्तु... वस्तु... वस्तु... वह ... है, ऐसा ज्ञान होकर बाद में अन्तर्मुख में एकाकार होना, वही उसका तात्पर्य और जानने का फल है। समझ में आया? ओहोहो! ग्यारह-ग्यारह अंग, नौ-नौ पूर्व पर्याय में खिल जाये, परन्तु अन्तर स्वभाव के माहात्म्य की पर्याय प्रगट न हो तो कुछ उसकी कीमत है नहीं। एक स्वभाव शुद्ध ऐसा परिपूर्ण सत्त्व मौजूदगी विद्यमान ऐसा लक्ष्य में, दृष्टि में लिया और ज्ञान जो आया, कीमत हो गयी। वह केवलज्ञान लेकर छूटेगा। दूज उगी वह केवलज्ञान पूनम होकर छूटेगी। दूज उगी वह पूर्णिमा होगी ही होगी। ऐसा बोधीबीज अन्दर का बोधीबीज स्वरूप की दृष्टि का बोधीबीज उगा, केवलज्ञान होगा। ग्यारह अंग का, नवपूर्व का हो उसके साथ सम्बन्ध कुछ है नहीं। वह यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वही ध्यान करनेयोग्य है। ओहोहो!

★ ★ ★

गाथा - ९८

आगे जीवों का ज्ञान-दर्शन लक्षण कहते हैं—अब इसके लक्षण बताते हैं। 'जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ' ओहोहो! आचार्य को भगवान का नाम लेना पड़ता है बीच में। हम कहते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु जिनवर ऐसा कहते हैं। क्या करे? विश्वास।

२२५) जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।

तेण ण किज्जउ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु ॥ ९८ ॥

आहाहा! जीवों का लक्षण जिनेन्द्रदेव ने... भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जैन परमेश्वर ने, वीतरागभाव ने परमेश्वर वीतराग जिनवर कहा। वीतरागभाव के परमेश्वर। वह परमेश्वर ने दर्शन और ज्ञान (लक्षण जीव का) कहा है,... पुण्य-पाप, व्यवहाररत्नत्रय, विकल्प वह आत्मा का लक्षण नहीं। समझ में आया? पुण्य-पाप का

विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग आदि, पंच महाव्रत का विकल्प वह कोई आत्मा का लक्षण नहीं। वह तो आस्रव है। आहाहा! भगवान आत्मा 'जीवानां लक्षणं जिनवरैः दर्शनं ज्ञानं भाषितं' योगीन्द्रदेव ने ऐसी ओथ ली। कुन्दकुन्दाचार्य भी ऐसा कहते हैं, भाई! भगवान तो ऐसा कहते हैं न कि उसके आयुष्य में जीता है। भगवान! तूने आयुष्य दिया कि तूने उसको जीवन दिया? जिनवर तो इनकार करते हैं कि किसी का आयुष्य कोई देते नहीं। अरे! मुनि तुम भी कहो न। भगवान ऐसा कहते हैं। परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया, प्रभु! आहाहा! जिनवर ऐसा कहते हैं। 'श्रुत न जाणही किंचित्' आता है न भाई अन्तिम गाथाओं में (गाथा ३१० समयसार)। समयसार। 'श्रुत न जाणे किंचित्' श्रुत क्या जाने आत्मा को? श्रुत से पहले सार जिनवर कहते हैं कि आत्मा तेरा है। समझ में आया?

इसलिए उन जीवों में भेद मत कर,... राग-द्वेष की हीनता का और कर्म की बहुता का या घटने का लक्षण से तू जीव में लक्षण न मान। जीव की पर्याय में हीनाधिकता, राग-द्वेष की मन्दता-तीव्रता और कर्म के संयोग में बहुत-अल्प स्थिति रसवाला-ऐसा जीव का उस कारण से भेद न कर। उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में... 'विभातः जातः' ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् है शिष्य! तू सबको समान जान। यहाँ तो कहे, सम्यग्ज्ञान चैतन्य का हुआ तो तेरे ज्ञान की परिपूर्णता देखी, वह ज्ञानलक्षण से लक्षित देखा, सब ऐसी वस्तु है। पहले द्रव्य से कहा था, पश्चात् गुण से, केवलज्ञान से कहा, अभी लक्षण से कहा। समझ में आया? देखो, 'विभातः जातः' है न? 'जइ मणि जाउ विहाणु' व्यवहार। जो ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है। देखो, पर्याय की बात है, हों! ज्ञानरूपी सूर्य तो है त्रिकाल। उसके लक्षण से लक्षित करके, ज्ञानरूपी सूर्य तेरी पर्याय में प्रगट हुआ सम्यग्ज्ञान मति-श्रुत का कण। समझ में आया? ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, तो है शिष्य! तू सबको समान जान। वस्तु में कुछ हीन-अधिकता हो गयी नहीं। तीन काल, तीन लोक में ... अभव्य को भी केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय है। समझ में आया?

उसके साथ चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८५ में। ८५ के वर्ष में चर्चा हुई। भाई! तो वह कहे कि केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय अभव्य को नहीं। तब कितनी

प्रकृति है उसको ? कहे तीन। मति, श्रुत, अवधि अरे भगवान ! द्रव्य में क्या अन्तर किया ? ऐसा कि जो केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शन हो तो उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन अन्दर में हो तो उसकी पर्याय में आवरणवाला ऐसा है। ऐसा है। क्या अभव्य को तीन आवरण है पाँच प्रकृति में और भव्य को पाँच ? अभव्य को तीन, भव्य को पाँच हैं ? समझ में आया ? ८५ में मोहनभाई है न ? मोहनलालजी थे न। ... हाँ की उसमें। अरे ! कहा यह क्या करते हो तुम ? अभव्य को ऐसा कि केवलज्ञानावरणीय न हो। क्योंकि केवलज्ञानावरणीय हो तो केवल का आवरण.. तो केवलज्ञान है उसमें हो गया निर्णय। और अभव्य को केवलज्ञान होता नहीं कभी।

यहाँ तो इसलिए कहते हैं कि हे शिष्य ! तेरी ज्ञानसूर्य की पर्याय प्रगट हुई सम्यक्, सब जीव अभव्य को भी केवलज्ञान का कन्द मान। आहाहा ! समझ में आया ? अभव्य को ... प्रकृति मोहनीय की ? मोक्ष जानेवाले को अट्टाईस प्रकृति अनादि की और मोक्ष न जानेवाले अभव्य को २७ प्रकृति। ऐसा प्रश्न चला। कहा, ऐसा है नहीं। ऐसा क्या चलाया तुमने ? ऐसा कि २८ प्रकृति हो सत्ता में तो मोक्ष जानेवाला होगा समकितमोहनीय प्रकृति। ऐसा केवलज्ञानावरणीय हो तो केवलज्ञान प्रगट होना ही चाहिए। उसे होता नहीं, इसलिए केवलज्ञानावरणीय नहीं। ऐसा नहीं। भगवान ! यह भव्य भी भगवान है। पर्याय में प्रगट होने की योग्यता नहीं। समझ में आया ? केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय प्रकृति अभव्य को पाँच प्रकृति है। ज्ञानावरणीय में तीन प्रकृति है, ऐसा नहीं।

यहाँ क्या कहा ? देखो, **तू सबको समान जान**। उसमें क्या आया ? अभव्य हो, भव्य हो, स्वभाव दृष्टि में तो सब समान है। पर्याय में अन्तर है, वह पर्याय की दृष्टि तेरी छूट गयी है तो सबको समान जान। समझ में आया ?

भावार्थ :- यद्यपि... अर्थात् जो कि व्यवहारनय से संसारी अवस्था में मत्यादि ज्ञान,... है। है। मत्यादिज्ञान पर्याय है। पर्याय-पर्याय। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवलज्ञान पर्याय नहीं है ? और चक्षुरादि दर्शन... है। वह जीव के लक्षण... पर्याय से कहने में आया है। पर्याय से, हों ! यह लक्षण, मतिज्ञान लक्षण से

लक्षित पर्याय के लक्षण से वह लक्षण कहने में आता है। लक्षण तो पर्याय है, उससे लक्ष्य द्रव्य है। तो पर्याय मति... है। वह पर्याय से है, परन्तु निश्चयनय करके केवलदर्शन, केवलज्ञान वह लक्षण है। केवल अकेला दर्शन और अकेला पूर्ण ज्ञान, वही उसका लक्षण है। समझ में आया? यह केवलज्ञान, केवलदर्शन अर्थात् पर्याय नहीं, हों! वह दर्शन भी लक्षण है, दर्शन भी लक्षण है सामान्यतः।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्व-पर को जानते हैं। हाँ, तथापि उसको दर्शन है न परिपूर्ण।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जातिवाद। ... उसको चारित्र भी कहा एक स्थान पर। चारित्र को भी लक्षण कहा है। स्थिरता होती है न तो उसको भी लक्षण कहा है। आगे है पाठ में। वह तो दर्शन लक्षण का ज्ञान से ऐसा जहाँ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन है साथ में। दर्शन साथ में है। दोनों यहाँ तो परिपूर्ण दोनों पड़ा है, बस इतना। दर्शन सामान्य और विशेष ऐसा कोई समय भेद नहीं। जब ज्ञान से लक्ष्य किया तो दर्शन से लक्ष्य उसमें आ गया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूर्ण-पूर्ण। ज्ञान का वेदन आ गया, दर्शन का भी वेदन आ गया। पर्याय है न। वह बाद में रात्रि (चर्चा में) रखो।

यहाँ तो अकेला दर्शन और ज्ञान, उसका लक्षण। पाठ है न देखो न। 'लक्खणु जिणवरहि भासिउ' है न मूल पाठ है न। वह तो आगे तो तीनों आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान पाता है। और दर्शन उपयोग अन्दर...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला दर्शन को जाने। सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, ऐसा उसका स्वभाव त्रिकाल है। उसमें से एक निकाले तो वस्तु सिद्ध होती नहीं।

व्यवहारनय से संसार ऐसा। **निश्चयनयकर-केवलदर्शन...** केवल अर्थात् अकेला दर्शन, हों! वह केवलदर्शन पर्याय नहीं। पर्याय की बात यहाँ नहीं। पर्याय की पहले व्यवहारनय में आया। **केवलज्ञान ये ही लक्षण हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने वर्णन किया है।** सामान्य स्वरूप एक है उसमें। एक दर्शनमय है, एक ज्ञानमय है। सामान्य दर्शनमय ज्ञानमय आत्मा वस्तु है। तो उसको लक्षण कहकर वीतराग परमात्मा ने वह लक्षण कहा। निश्चय में तो वही लक्षण है। समझ में आया? **इसलिए (हे शिष्य!) व्यवहारनयकर देह-भेद से भी भेद नहीं है,...** देह भेद से भी भेद नहीं है। वस्तु में भेद कैसा? आहाहा! ऐसी महासत्ता और उसका दर्शन और ज्ञान महास्वभाव। महास्वभाव। उपयोग कहा न उपयोग? उपयोग को जीव कहा है। उपयोग के अतिरिक्त अचेतन कहा सप्तभंगी में। उपयोग ज्ञान-दर्शन, वह जीव। इसके अतिरिक्त वीर्य आदि, वह अजीव। ऐसी सप्तभंगी... उतारी है। समझ में आया? वह सप्तभंगी में उतारा है। सप्तभंगी है। सप्तभंगी तरंगिणी में उसमें है। अपने में और अपने में उपयोग, वह जीव और उपयोग के अतिरिक्त चीज़ वह अजीव—ऐसा सप्तभंगी में उतारा। ओहोहो! क्यों? कि जानने-देखने का खास स्वभाव वह जीव। इसके अतिरिक्त दूसरा... वहाँ तो जानना-देखना दोनों उपयोग लिये हैं और उपयोगरूप जीव लिया है। सप्तभंगी तरंगिणी में। यह तो पहले कहा जा चुका है।

यहाँ केवलदर्शन और केवलज्ञान लक्षण... इसलिए व्यवहार से भेद नहीं। **केवलज्ञानदर्शनरूप निजलक्षणकर सब समान है, कोई भी बड़ा-छोटा नहीं है।** शक्तिरूप पूर्ण है, उस अपेक्षा से। पूर्ण है वह। कोई छोटा-बड़ा है नहीं। ओहो! पर्याय में कहाँ अक्षर के अनन्तवें भाग विकास की पर्याय और एक विकास की केवलज्ञान पर्याय। अन्तर में तो सब एकरूप हैं। चौदह पूर्व का ज्ञान श्रुतज्ञान। इतना श्रुतज्ञान, ओहोहो! शास्त्र में तो इतना चलता है कि बारह अंग का ज्ञान इतना वीर्यान्तराय क्षयोपशम अपनी पर्याय में प्रगट हुआ हो। मनबलिया। शास्त्र में चला है। साधु। मनोबलिया, वचनबलिया, कालबलिया। छद्मस्थ की बात है, हों!

मुमुक्षु : ... अन्तर डाला सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग पारायण कर डाले। उपयोग में हों। आहाहा! ऐसी सामर्थ्य है। वचनबलिया ऐसा लिखा है। अन्तर्मुहूर्त में पारायण कर डाले एकदम.. एकदम... एकदम... इतना उघाड़ और वीर्य का... पूरी नजर बदल जाये उपयोग में हो उपयोग। अरे! क्या? क्रम थोड़ा पड़े, परन्तु क्रम अन्तर्मुहूर्त में पूरा हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : अपनी हीन पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छद्मस्थ की बात है, हों! मनोबलिया, वचनबलिया, कायबलिया चला है न। वह शक्ति, वस्तु। और छद्मस्थ भी वस्तु आत्मा है न? केवलज्ञान की पर्याय, वह तो क्या कहना? परन्तु यह भी उसकी पर्याय वह स्वभाव की खिल गयी अन्दर में से। ओहोहो! एक अन्तर्मुहूर्त में रचना करे बारह अंग की। उसकी कितनी सामर्थ्य गणधर की। वह बारह अंग की रचना में कोई दो-तीन-चार दिन नहीं जाते हैं। यह वह कहीं बात है! ऐसा अन्तर में लक्षण है, ऐसी प्रतीति-अनुभव करते हैं। पर्याय में ऐसा भाव प्रगट हुए बिना रहता नहीं। कम-ज्यादा प्रगट है... समझ में आया? विशेष कहेंगे, लो....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक ०५-०६-१९६५

गाथा - ९८-९९, प्रवचन - १४०

यह परमात्माप्रकाश। ९८वीं गाथा चलती है। ९८। १०० में दो कम। नीचे अन्तिम लाईन है यह पुराने में। केवलज्ञानदर्शनरूप निजलक्षणकर सब समान हैं, कोई भी बड़ा-छोटा नहीं है। ९८। दूसरा भाग। क्या कहते हैं, देखो! 'जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।' भगवान सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर ने जीव का लक्षण ज्ञान-दर्शन कहा है। जानना और देखना, वह जीव का लक्षण है। कोई पुण्य-पाप, विकार या विकल्प, वह कोई आत्मा का लक्षण है नहीं। वह उसमें है नहीं त्रिकाल में। जो त्रिकाली हो वस्तु, उसका लक्षण हो सकता है। कृत्रिम रागादि लक्षण नहीं, वह तो विकार है। ज्ञान-दर्शन सामान्य विशेष त्रिकाल उसमें गुण पड़ा है। तो केवलज्ञान, केवलदर्शन ऐसी केवल पर्याय की यहाँ बात नहीं। त्रिकाल ज्ञान, त्रिकाल दर्शन स्वभाव ऐसा निजलक्षणकर सब समान हैं। सब जीव समान। समभाव-समभाव। अपनी पर्याय को गौणकर वस्तु का स्वभाव जैसे ज्ञान-दर्शन से लक्षित मुख्य दृष्टि में किया हो, वही सब जीव को वर्तमान विकल्प पर्याय को गौणकर उसके ज्ञान-दर्शन से लक्षित आत्मा ही उसे पूर्णस्वरूप देखता है। समझ में आया ?

जो तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,... ऐसा कहते हैं, देखो! तेरा स्वभाव तेरी दृष्टि में तुझे आया हो। शुद्धात्मस्वभाव अभिमुख की दृष्टि करके चैतन्यरागरहित स्वसंवेदन अभेद अपना ज्ञानस्वरूप से वेदन करके ऐसा आत्मा तेरी पर्याय में भेदज्ञानरूपी सूर्य प्रगट हुआ हो। और मोह-निद्रा के अभाव से आत्म-बोधरूप प्रभात हुआ है,... पाठ में 'प्रभातसमय इति' ओहो! देखो यह प्रभात कहा। समझ में आया? समयसार में अन्तिम कलश में केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्रभात कहा है। मंगल प्रभात खिल गया केवलज्ञान, केवलदर्शन उग गया। उग गया अर्थात्? प्रगट हो गया। ऐसा वहाँ बताया। यहाँ तो सम्यग्ज्ञान को ही प्रभात कहा है।

भगवान आत्मा की अन्तर आँख खिल गयी। स्वभावसन्मुख के अभिप्राय से, एकत्व से शुद्ध चैतन्य द्रव्य पूर्ण स्वभाव सम्पन्न ऐसा बोध जो हुआ हो तो तू सबों को समान देख। आहाहा! समझ में आया ?

तेरी पर्याय अल्पज्ञ और रागादि गौण करके, लक्ष्य छोड़ के स्वभाव सम्पन्न चैतन्य प्रभु का तुझे सूर्य उग गया हो स्वसंवेदन का, तो तेरा स्वभाव पर्याय और राग जितना तूने नहीं माना। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... ऐसी दृष्टि से सबको देख। आहाहा! सब आत्मा केवलज्ञान-दर्शन लक्षण से पूर्ण लक्षित हैं, ऐसा वीतरागभाव से तेरी दृष्टि में आया वीतरागभाव स्वभाव का लक्ष्य करने से। ऐसा सबको जान। कहो, समझ में आया ? अनन्त आत्मा ऐसा पूर्ण शुद्ध और अकेला सामान्य ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित अर्थात् पूरा। ऐसा तो अन्तर में अपना स्वभाव की महिमा अन्तर में जागृत हुई हो, वह परद्रव्य को ऐसे जानता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

जैसे यद्यपि सोलहवानी के सोने सब समान वृत्त हैं,... सोलहवानी का सोना समान सब पूरा समान है। लाख ईंट हो, करोड़ ईंट हो समान। तो भी उन सुवर्ण-राशियों में से एक सुवर्ण को ग्रहण किया, तो उसके ग्रहण करने से सब सुवर्ण साथ नहीं आते,... सोलहवानी के सोना से सब समान सोना। लाख, करोड़ ईंटें हो तो, परन्तु एक ईंट ग्रहण करने से सब ग्रहण होती नहीं। उसी प्रकार यद्यपि केवलज्ञान-दर्शन लक्षण सब जीव समान हैं,... जाति एक परन्तु वस्तु एक ? समझ में आया ? तो भी एक जीव का ग्रहण करने से... अर्थात् अपना ज्ञान-दर्शन लक्षण से अपने स्वरूप का भान होने से, अपना एक द्रव्य अपनी स्वरूप दृष्टि में आया, वह भिन्न पड़ गया। अनन्त आत्मा, कोई एक को ग्रहण करने से अनन्त ग्रहण नहीं होता। क्योंकि भिन्न-भिन्न अनन्त आत्मा, भिन्न-भिन्न वीतरागस्वभाव एक जीव का ग्रहण करने से सबका ग्रहण नहीं होता। ओहोहो! परमात्मप्रकाश।

एक परमात्मा अपना निजस्वरूप लक्षण से ग्रहण में आया तो ग्रहण में सब यहाँ पर्याय में सब आते हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। अपना ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित पूर्ण स्वभाव लक्ष्य में, ध्येय में, ग्रहण में आया, ऐसा सब आत्मायें होने पर भी अपने

ग्रहण में वे अनन्त आत्मा नहीं आते। आहाहा! अनन्त आत्मा अपने ज्ञान में ज्ञेय होते हैं, परन्तु अपना ज्ञेय जैसे वस्तु में ग्रहण में आता है, दृष्टि में, ज्ञान में, ऐसा सब आत्मा ग्रहण-पकड़ में अपने अभेद में जानने में आता नहीं। भिन्न है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद एकरूप हो जाना। एक होता नहीं। ज्ञान, दर्शन लक्षण से अपना आत्मा एक होता है। पर का आत्मा सब यहाँ अन्दर आ जाता है? पर की अनुभूति सब अपनी पर्याय में आती है? सबकी अनुभूति भिन्न है। समझ में आया?

कल कहा था नहीं वह? नियमसार में भी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। १२१ गाथा है। १०२। इसमें भी १०२ में आयेगा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन लक्षण आयेंगे। उसमें दो लिये।

एगो मे सासदो अप्या णाणदंसणलक्खणो।

सेसा मे बाहिरा भाव सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १०२ ॥

आहाहा! 'एगो मे सासदो अप्या णाणदंसणलक्खणो।' जानना-देखना सामान्य लक्षण से त्रिकाल यह मैं एक आत्मा हूँ। 'सेसा मे बाहिरा भावा' ये पुण्य और पाप विकल्प आदि सब बाहिरभाव संयोगलक्षण से लक्षित है। संयोगलक्षण से लक्षित है। ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित नहीं। समझ में आया? 'सव्वे संजोगलक्खणा' यह तो अपने आता है न, भाई! कर्ता-कर्म। ६९-७० में। कि आत्मा और ज्ञान-दर्शन को तादात्म्यसम्बन्ध है। तादात्म्यसम्बन्ध लक्षण है। तादात्म्यसम्बन्ध। और पुण्य-पाप के भाव के साथ संयोग सम्बन्ध है, संयोग सिद्ध। यह तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध, ये संयोगसिद्ध सम्बन्ध। ६९ और ७० में कर्ताकर्म में शुरुआत में यह दो मूल बात हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीसरा। यह परस्पर अवगाहनलक्षण सम्बन्ध इतना कहा है। वह विशिष्ट... शब्द नहीं लिया वहाँ। वह प्रवचनसार में विशिष्ट लिया है न? दोनों के बीच में परस्पर अवगाह विशिष्ट सम्बन्ध। परन्तु वहाँ ऐसा लिया है ६९-७० में। परस्पर अवगाह लक्षण सम्बन्ध। तीन लक्षण सम्बन्ध बताये दो गाथा में।

भगवान आत्मा अपना ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि से तादात्म्यसम्बन्ध है। तादात्म्यसम्बन्ध है और पुण्य और पाप, विकल्प, दया, दान, व्रतादि शुभभाव को वहाँ क्रोधादि कहा है। उससे विपरीत, स्वरूप की स्थिति छूट गयी और विकार की स्थिति हुई तो वह विकार क्रोध हुआ, स्वभाव के प्रति अरुचि। ऐसा जो भाव वह संयोगसिद्ध सम्बन्ध है। ओहोहो! समझ में आया? संयोग विकार। संयोग है न। स्वभाव नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यहाँ तो विकार का है। यहाँ तो विकार का।

मुमुक्षु : संयोगीभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव है न। स्वभावभाव नहीं। वह अभी आया न?

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।

सेसा मे बाहिरा भाव सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १०२ ॥

यह वहाँ राग-द्वेष आदि संयोग लक्षण और ६९-७० में भी वह आया। संयोगसिद्ध सम्बन्ध। पुण्य-पाप, विकल्प, रागादि के साथ संयोगसिद्ध सम्बन्ध है। स्वभावसिद्ध सम्बन्ध है ही नहीं। छूट जाता है, (वह) उसका स्वभाव है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्णित बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : नक्की-चौक्कस। वह तीनों में सिद्ध कहा है। है न वस्तु है न, वस्तु। यहाँ तो ६९ संयोगसिद्ध तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध और संयोगसिद्धसम्बन्ध। कर्ता-कर्म। जैसे यह आत्मा, जिनके तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध है, ऐसे आत्मा और ज्ञान में... अपना ज्ञान और आत्मा। जैसे यह आत्मा, जिनके तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध... तद्रूपसिद्ध सम्बन्ध है, ऐसे आत्मा और ज्ञान में विशेष न होने से उनके भेद को न देखता हुआ, निःशंकतया ज्ञान में अपनेपने से प्रवर्तता है,... ६९-७०। वह समयसार है? ६९-७०। ऐसा सम्बन्ध। तीन सम्बन्ध है। दो गाथा में तीन ले लिये हैं। भावबन्ध। निश्चय।

उसके बाद। जैसे यह आत्मा... १२७ से शुरू होता है। जैसे यह आत्मा, जिनके तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध है... जिनके तादात्म्यसिद्धसम्बन्ध ऐसे आत्मा और ज्ञान में विशेष

न होने से... मूल पाठ में है। उनके भेद को न देखता हुआ,... भगवान आत्मा अपना ज्ञान और आत्मा दोनों के बीच में भेद नहीं देखते हुए, ज्ञान और आत्मा के बीच तादात्म्यसम्बन्ध देखते हुए निःशंकतया ज्ञान में अपनेपने से प्रवर्तता है,... निःसन्देहरूप से यह ज्ञान में आत्मा प्रवर्तता है, और वहाँ (ज्ञान में अपनेपने से) प्रवर्तता हुआ वह, ज्ञानक्रिया का स्वभावभूत होने से निषेध नहीं किया गया है,... देखो, भगवान आत्मा अपना ज्ञान से तादात्म्यसम्बन्ध रखता है। ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई, तो जो ज्ञान की क्रिया हुई, वह ज्ञान की क्रिया स्वभावभूत होने से। वह पर्याय है। वह पर्याय है परन्तु यह, ज्ञानक्रिया स्वभाव, वह तो पर्याय है। वह गुण है त्रिकाल। परन्तु ऐसा त्रिकाल गुण और आत्मा तादात्म्य है, ऐसी जहाँ पर्याय में एकत्वबुद्धि हुई तो ऐसे ज्ञानक्रिया स्वभावभूत होने से। ज्ञानक्रिया का अर्थ वह श्रद्धा, शान्ति, आनन्द के साथ जो पर्याय परिणमती है, उस पर्याय को यहाँ ज्ञानक्रिया कहने में आया है। एक नाम से कहने में आया।

ज्ञानक्रिया का स्वभावभूत... भगवान आत्मा अपना द्रव्य, उसके साथ ज्ञान तादात्म्यसम्बन्ध है, ऐसे अन्तर में निःशंकतया ज्ञान आत्मा में वर्तता है तो जो क्रिया उत्पन्न हुई, वह ज्ञानक्रिया, श्रद्धाक्रिया, शान्तक्रिया, आनन्दक्रिया, वह मोक्षमार्ग की निर्मल निर्विकल्प क्रिया स्वभावभूत होने से निषेध नहीं किया गया है,... वह निषेध नहीं होती, अभेद हो गयी। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अपना ज्ञान-दर्शन तादात्म्यसम्बन्ध में एकरूप होने से, निःशंकरूप से उसमें वर्तते... वह वर्तता है, वह ज्ञानक्रिया हुई। ज्ञानक्रिया स्वभावभूत हुई और स्वभावभूत होने से वह अभेद हुई। वह अभाव नहीं हो सकता, उसका निषेध नहीं किया जा सकता। ऐसा पाठ है। निषेध नहीं किया गया है,... अर्थात् उसका अभाव नहीं हो सकता, ऐसा अर्थ है।

इसलिए, जानता है—जाननेरूप में परिणमित होता है,... यह सिद्धान्त हुआ। इसी प्रकार जबतक यह आत्मा, जिन्हें संयोगसिद्ध सम्बन्ध है, ऐसे आत्मा और क्रोधादि आस्त्रवों में भी,... क्रोधादि—पुण्य, पाप, विकल्प, विकार। उसमें अपने अज्ञानभाव से... भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनलक्षण से तादात्म्यसम्बन्ध। उसको छोड़कर वह आत्मा संयोगसिद्ध सम्बन्ध, ऐसा पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ विकृतभाव के साथ में एकाकाररूप परिणमता है, वह अज्ञानरूप से, अज्ञानभाव से विशेष न जानता हुआ, विकारी विकृत

पर्याय और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसको भेद न जानते हुए, उसको भेद न जानते हुए। उनके भेद को नहीं देखता... भगवान ज्ञान शान्त अनाकुल प्रशमरस पिण्ड की पर्याय निर्मल होनी चाहिए। ऐसा न देखते क्रोधादिक पुण्य-पाप के भाव में अपना स्वभाव, उसमें वर्तता है, तादात्म्यरूप है। है संयोगसिद्ध सम्बन्ध। परन्तु एकरूप मानने से क्रोधादि आस्रवों में भी, अपने अज्ञानभाव से,... देखो, विशेष न जानता हुआ उनके भेद को नहीं देखता... विकल्प, दया, दान, व्रतादि है, उसको भेद को नहीं करता, उसको अभेद अनुभवता है।

तब तक निःशंकतया क्रोधादि में अपनेपने से प्रवर्तता है,... अपनापना है न। जहाँ माना है, वहाँ अपनापना ही माना है। अपनेपने से लिया न? अपनेपने से। वह विकल्प जो है, वह अपने में है—ऐसा पर्यायबुद्धि में एकाकार होकर अज्ञानरूप से वर्तता है और वहाँ प्रवर्तता हुआ वह, यद्यपि क्रोधादि क्रिया का परभावभूत होने से... वह पुण्य-पाप का भाव परभावभूत होने से निषेध किया गया है... निषेध, भगवान ने निषेध किया है। अर्थात् निषेध हो सकता है अर्थात् पुण्य-पाप का भाव स्वभाव में से अभावरूप हो सकता है। तथापि अज्ञानी वह अभावरूप स्वभाव में नहीं, फिर भी उसमें अपनेपने से प्रवर्तता है, वह अज्ञान का कर्ताकर्मपना है। आहाहा! समझ में आया?

देखो, रागरूप परिणमित होता है, मोहरूप परिणमित होता है। अब यहाँ, जो यह आत्मा अपने अज्ञानभाव से ज्ञानभवनमात्र सहज उदासीन अवस्था का त्याग करके... यह तो समझाया है। अवस्था थी और त्याग किया, ऐसा नहीं है। यह भगवान आत्मा... यह तो बहुत बार हो गया है। चौदह बार सभा में व्याख्यान हो गया है। भगवान चिदानन्द प्रभु अपने स्वभाव में से ज्ञानक्रिया, ज्ञाता-दृष्टा की क्रिया, ज्ञानभवन उदासीन क्रिया ऐसा उत्पन्न होना चाहिए। ऐसा उत्पन्न न होकर उस अवस्था का त्याग करके। ऐसी भाषा ली है। वह कोई अवस्था प्रगट है और त्याग किया है, ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु वह बताते हैं कि वस्तु ज्ञानदर्शन से तादात्म्यस्वरूप उसकी जो एकाकार की क्रिया है, वह ज्ञानभवनमात्र की अवस्था पर्याय उसकी है। ऐसी पर्याय को प्रगट न कर, विकल्प में एकाकार होकर, अज्ञानरूप से उसको अपना मानकर जो

ज्ञानभवन क्रिया उदासीनी क्रिया है, (उसे) छोड़ देते हैं। ज्ञानअवस्थामात्र जो प्रगट करना वह छोड़ देते हैं और विकार क्रिया को उत्पन्न करते हैं।

पाठ ऐसा है हों! **अवस्था का त्याग करके**,... यह तो भाई शैली तो आती है, वह आती है न? **ज्ञानभवनमात्र सहज उदासीन अवस्था का त्याग करके**,... ऐसा पाठ है। जयचन्दजी! क्या वहाँ प्रगट है? ऐसा कहते हैं कि भगवान! तेरी तो उदासीन ज्ञानभवन ही क्रिया होनी चाहिए। जैसा द्रव्य, जैसा गुण, ऐसी ज्ञानभवन क्रिया ही होनी चाहिए, वही तेरी अवस्था होनी चाहिए। परन्तु ऐसा न होकर विकल्प, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रतादि, क्रोधादि जो स्वभाव से विपरीत कहा, उसमें अपनापन मानकर प्रवर्त रहा है तो उसकी उदासीन अवस्था का त्याग कर दिया। अर्थात् वह अवस्था और अवस्था के धरनेवाला द्रव्य का दृष्टि में अभाव कर दिया। कहो, ...भाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! भगवान भी अकेला... आहाहा! चोक्खा, स्पष्ट-स्पष्ट। यह तो उसका नेत्र, उसकी सूर्य जैसी आँख करे तो प्रगट दिखायी दे ऐसी।

यहाँ तो प्रगट वस्तु ही ऐसी है। तेरी अवस्था। पुण्य-पाप के परिणाम, भगवान! यह तेरी अवस्था? यह तेरी पर्याय? सम्पूर्ण द्रव्य विकारमय है, उसका अर्थ वह हो गया। भगवान आत्मा तो ज्ञानदर्शन-आनन्द से तादात्म्य है। तो तादात्म्य सम्बन्ध की पर्याय भी ज्ञानभवमात्र उदासीन क्रिया होनी चाहिए और ये क्रिया, वही मोक्षमार्ग है, ये क्रिया वही ज्ञानक्रिया, दर्शनक्रिया, आनन्दक्रिया है। वह पर्याय। यह अवस्था उत्पन्न करने का त्याग करके। यह समझाया। विकार की पर्याय में एकत्व होकर विकार की पर्याय उत्पन्न की? समझे? अज्ञानभवन व्यापार प्रगट किया? ऐसा कहते हैं। आहाहा! टीका वह भी टीका है न! अमृतचन्द्राचार्य इस काल में गणधर जैसे कुन्दकुन्दाचार्य की टीका का काम किया है। ओहो! भाव... भाव... भाव... भाव... भगवान! तुम तो आनन्द और ज्ञान से तन्मय है न, प्रभु! जिससे तन्मय, तत्-मय, उसरूप, उस स्वरूप ऐसे भगवान आत्मा में तो वह तन्मय, उदासीन (और) राग से, पर से भिन्न ऐसा स्वभाव के अवलम्बन से ज्ञानभवनक्रिया का उत्पाद होना चाहिए, भगवान! तेरा लक्ष्य विकार पर पड़ा है, तो उस उदासीन अवस्था का त्याग कर अज्ञानभवनरूप... अज्ञान का अर्थ? वह ज्ञानभवनरूप था, विकार परिणाम भी अज्ञानभवन है। आहाहा! उसमें चैतन्य के

प्रकाश का नूर का—तेज का अभाव है। पुण्य-पाप के भाव में दया, दान, व्रत, विकल्प जो है, उसमें भगवान ज्ञानतेज चैतन्यलक्षण का अंश का उसमें अभाव है। अंश आता ही नहीं उसमें।

अज्ञानभवनव्यापाररूप अर्थात् क्रोधादिव्यापाररूप... उसकी व्याख्या।
अज्ञानभवनव्यापाररूप अर्थात् क्रोधादिव्यापाररूप प्रवर्तमान होता हुआ प्रतिभासित होता है;...

मुमुक्षु : दिखता है ... और।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भासित है अज्ञानी को। उसे भासित है। यह मैं करता हूँ, मैं कता हूँ। अज्ञान से उसे भासित है कि यह मैं उसका कर्ता हूँ। समझ में आया ? गजब टीका है पहली। समझे ? यहाँ तो यह आया था।

एगो मे सासदो अप्या णाणदंसणलक्खणो।

सेसा मे बाहिरा भाव सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १०२ ॥

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी संयोगलक्षण सम्बन्ध है। आहाहा ! बाह्यभाव है, भगवान ! वह कुछ अन्तर में अन्तर पिण्ड भगवान शुद्ध उसमें से नहीं उत्पन्न हुआ है। यह तो परलक्ष्यी बहिर्भाव उत्पन्न हुआ है। बहिर्भाव वह कोई अन्तर में से उत्पन्न नहीं हुआ। वह पर्याय के अंश में पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। ऐसी क्रिया के काल में, भगवान ! तेरी उदासीन ज्ञानभवन क्रिया होनी चाहिए। तुमने द्रव्यस्वभाव का आश्रय छोड़ दिया और उदासीन क्रिया उत्पन्न होने का त्याग कर दिया और क्रोधादि विकल्प में एकाकार हो गया। अज्ञानभवन व्यापार में प्रतिभासित होता है, वही मैं परिणमा ऐसा अज्ञानी को प्रतिभासित होता है। वह कर्ता होता है। समझ में आया ? बाकी बात लम्बी है। यहाँ तो फिर वह परस्पर अवगाहलक्षण सम्बन्ध। समझ में आया ? ओहोहो ! ...तो भगवान ! शरीर को संयोग कहने में आता है, कर्म को संयोग कहने में आता है।

मुमुक्षु : जल जैसा सम्बन्ध, वह गाथा आती है न वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी सम्बन्ध ही है ऐसा। विकार के साथ संयोग सम्बन्ध ही है। स्वभाव सम्बन्ध नहीं अर्थात् संयोग सम्बन्ध।

मुमुक्षु : विभाव कहो या संयोग कहो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग कहो । समझ में आया ? उसकी पर्याय में उत्पन्न होते हुए वह पुण्य-पाप का विकार संयोगलक्षण सम्बन्ध है । उसका स्वभाव नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ही पड़ा है । संयोगलक्षण कहा न ? संयोग कहा न ? संयोग कहा न ? तो पर्याय में तन्मय नहीं । संयोगलक्षण है । यह स्वभावलक्षण है । ज्ञान-दर्शन लक्षण भगवान आत्मा वह तन्मय-तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध है । ऐसे एक स्वरूप को अन्तर भगवान आत्मा अपना ज्ञान-दर्शनलक्षण से ग्रहित होते हैं, ऐसा ही सब आत्मा है । परन्तु सब आत्मा ग्रहित नहीं होते । अनुभव में तो एक ही आत्मा की जाति अपनी अपने में आती है । समझ में आया ? सुनाई देता है ? वरना यहाँ आओ नजदीक । कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : परिवार देखना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिवार देखा । और क्या ? और हमारे भाई ने प्रश्न किया कि यह संयोगलक्षण पुण्य-पाप के भाव यह परिवार देखना ? यह परिवार संयोग है ऐसा न ? ऐसा ही । यह स्त्री, पुत्र है न परिवार ? यह संयोग में है न ? ऐसा पुण्य-पाप का भाव ? एक ही भाव । यह सब संयोगलक्षण को हारडो । हारडो अर्थात् सब एक जाति है । समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! भगवान ! तूने तेरी चीज़ की महिमा कभी सुनी नहीं । आहाहा ! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे ।' कुण्ड भरा है न, प्रभु ! अमृत का कुण्ड तादात्म्य सम्बन्ध से त्रिकाल भगवान ! तेरा स्वभाव, अरे ! उसकी आश्रय दृष्टि छोड़कर, विकार में तन्मय होकर अज्ञानभवनक्रिया उत्पन्न की, कर्ता तुझे भासित हुआ कि मैं उसका कर्ता हूँ । समझ में आया ? वस्तुस्वरूप में यह है नहीं । गजब बात, भाई !

कहते हैं कि **क्योंकि प्रदेश सबके भिन्न-भिन्न हैं,...** भगवान आत्मा सोलहवान के सोना समान सर्व जीव का एक स्वरूप है तथा सोलहवान के सोना जैसा पाँच ईंट ऐसी सो ईंटें भिन्न-भिन्न हैं । ऐसे अपने आत्मा से अनन्त आत्मा द्रव्यस्वभाव से एक

समान होने पर भी सत्ता और प्रदेश से सब भिन्न हैं। कोई एक मान ले तो उसको वस्तु का भान है नहीं। एक ज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त आत्मा और अनन्त छह द्रव्य-गुण आदि पर्याय जानने की, ज्ञेय करने की सामर्थ्यवाली एक पर्याय है, फिर भी वह पर्याय पररूप होती नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातै वचन भेद भ्रम भारी। ज्ञेय शक्ति द्विविधा प्रकाशी निजरूपा पररूपा भासी।' यह बनारसीदास में श्लोक है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी।' शक्ति हमारी है। स्व और पर को जानने का अपना अस्तित्व और अपना लक्षण और अपनी शक्ति है। उसको पर का जानना, वह पर से जानना हुआ—ऐसा नहीं है। समझ में आया? 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी तातै वचन भेद भ्रम भारी, निजशक्ति द्विविधा रे प्रकाशी, निजरूपा पररूपा रे भासी।' अनन्त भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव सोलहवान सोना जैसा है, परन्तु पररूप भासा है। वह ज्ञान की पर्याय में पररूप भासा है। अपना स्वरूप वह पररूप भासा है। समझ में आया?

उसी प्रकार यद्यपि केवलज्ञान-दर्शन लक्षण सब जीव समान हैं, तो भी एक जीव का ग्रहण करने से सबका ग्रहण नहीं होता। सबका अनुभव पर्याय में आ जाये तो एक हो जाये, ऐसा तीन काल में है नहीं। समझ में आया? क्योंकि प्रदेश सबके भिन्न-भिन्न हैं, इससे यह निश्चय हुआ, कि यद्यपि केवलज्ञान-दर्शन लक्षण से सब जीव समान है, तो भी प्रदेश सबके जुदे-जुदे हैं, यह तात्पर्य जानना... सत्ता, स्वरूप अस्तित्व, प्रत्येक के स्वरूप का होना भी सबका भिन्न-भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

आगे जाति के कथन से सब जीवों की एक जाति है,... जाति शब्द से जैसे यह हीरे की जाति, माणिक की जाति ऐसे। जाति कोई ऐसा पदार्थ नहीं कि एकरूप हो जाये। पाठ में है देखो, 'अथ शुद्धात्मनां जीवजातिरूपेणैकत्वं दर्शयति'—यह द्रव्यस्वभाव का माहात्म्य नहीं लिया न, उसके लिये बारम्बार कहते हैं। जिसको द्रव्यस्वभाव, ओहोहो! चैतन्य चमत्कार सृष्टि को नजर में नहीं आता है। गुप्त चमत्कार। वह गुप्त चमत्कार। गुप्त चमत्कार। पर्याय एक अंश है, परन्तु सारा द्रव्य गुप्त चमत्कार। एक समय में पूर्ण ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त स्वभाव से ऐसा एक भगवान गुप्त चमत्काररूप से भरा पड़ा आत्मा है। एक समय की पर्याय को तूने गौण कर दी तो सबको गौण करके देख।

यह भी भगवान है, परमात्मा है। यह परमात्मप्रकाश है या नहीं? कारणपरमात्मा। देखो, आहाहा! सब कारणपरमात्मा अथवा सब कारणजीव। कारणजीव उसको कहते हैं, पूर्ण शुद्धस्वभाव एकाकार, उसको कारणजीव कहते हैं। कारणपरमात्मा भी उसको कहते हैं। कार्यपरमात्मा तो पर्याय प्रगट हो जाये तो वह कार्यपरमात्मा, पर्याय परमात्मा। कार्य अर्थात् पर्याय परमात्मा, कार्य अर्थात् पर्याय परमात्मा। यह द्रव्य से परमात्मा, वस्तु से परमात्मा। ऐसी बात परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने बहुत बार ली है, वह इस कारण से। द्रव्य परमात्मा, वह पर्याय परमात्मा। समझ में आया? देखो,

★ ★ ★

गाथा - ९१

२२५) बंभहँ भुवणि वसंताहँ जे णवि भेउ करंति।

ते परमप्प-पयासयर जोइय विमलु मुणंति॥ ९१॥

इस लोक में... 'वसन्तः' अर्थात् रहनेवाले जीवों का भेद (जो) नहीं करते हैं,... भगवान अनन्त आत्मा द्रव्य से परमात्मस्वरूप विराजमान हैं। उसमें भेद नहीं करता द्रव्यदृष्टि में। वे परमात्मा के प्रकाश करनेवाले... देखो, वह शब्द आया। 'परमात्मप्रकाशकराः' वे परमात्मा के प्रकाश करनेवाले योगी,... योगी अर्थात् स्वरूप में जुड़ान दृष्टि हुई, उसको योगी कहते हैं, समकिती को भी योगी कहते हैं। समझ में आया? अनादि पुण्य और पाप कृत्रिम क्षणिक पर्याय में एकत्वबुद्धि है, वह अयोग है और स्वभाव पूर्ण में दृष्टि लगाई, अपनी वीर्य पर्याय को वहाँ जोड़ा, उसका नाम योगी। योग को साधनेवाला योगी, स्वरूप को साधनेवाला योगी। तो हे योगी! उन बाबा योगी की बात नहीं, हों! अन्यमति बाबा-योगी कहते हैं। वह शब्द आवे वहाँ भड़के। मेरे अपने कहाँ से योगी आये?

योग, वस्तु पूर्ण स्वरूप एक समय में उसकी दृष्टि और ज्ञान उसमें लगाया, वही योग। वह योग को साधनेवाला योगी। आहाहा! शब्द में क्या झगड़ा करना? दूसरे योगी को भान भी कहाँ है? योगी मर जाये बेचारे क्रियाकाण्ड कर-करके। आत्मा कितना

इतना है, ऐसा अनन्त आत्मा है, ऐसा परमाणु अनन्तगुना है, वह भी जड़ेश्वर पूरा है। परमाणु भी जड़ेश्वर पूरा है। एक परमाणु में जितना जीव में अनन्तानन्त गुण, इतना एक परमाणु में अनन्तानन्तगुण। क्षेत्र परमाणु और अनन्तानन्त गुण, आकाश सर्वव्यापक, द्रव्य एक सर्वव्यापक, तो अनन्तानन्त गुण जितना इतना एक परमाणु अनन्तानन्त गुण। एक कम-ज्यादा नहीं बिल्कुल। आहाहा! यह वह कहीं! क्षेत्र की विशेषता नहीं, ऐसा बताना है। आकाश वहाँ सर्वव्यापक। कहीं अन्त नहीं। है कहीं? बताओ। छोर लाओ छोर। परन्तु पीछे क्या? पीछे क्या? क्षेत्र की अपारता की नास्तिक विचार करे तो यह क्या चीज़ है? पीछे... पीछे... पीछे... अनन्त योजन, अनन्त योजन, अनन्त का अनन्त वर्ग करके, अनन्त वर्ग के अनन्तगुना। पीछे? पीछे क्या? परन्तु यह क्या है? भगवान! प्रकृति का क्षेत्र स्वभाव भी अचिन्त्य और अलौकिक है। तो एक क्षेत्र स्वभाव जाननेवाला भगवान! उसका स्वभाव अचिन्त्य और अलौकिक है। क्षेत्र से न देख। इतना क्षेत्र में है, ऐसा न देख। एक परमाणु में भी, जितना आकाश में गुण है एक सत्ता नाम का गुण सारा व्यापक आकाश में और एक सत्ता नाम का गुण एक परमाणु में व्यापक, समान। क्षेत्र में अन्तर, भाव का सामर्थ्य समान, समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! कहो, वहाँ थी बात?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा। यह वह बहुत अब बातें करने लगे। जहाँ यहाँ बात बाहर आयी न ३० वर्ष से। अब कितने ही कहते अध्यात्म बस वेदान्त और अध्यात्म। ओहोहो! गप्पगप्प सुनने को, खबर नहीं मिले। बापू! यह नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा आत्मा और ऐसी पूर्णदशा जिसे हुई उसने जाना, उसने कहा ऐसा है। इससे तीन काल में दूसरा हो सकता नहीं। अध्यात्म की बातें करे कि आत्मा ऐसा है। आत्मा ऐसा है। परन्तु आत्मा... खबर है तुझे? आत्मा में अनन्तानन्त गुण, एक-एक गुण में अनन्तानन्त सामर्थ्य, एक-एक गुण की तीन काल की पर्याय, ऐसा एक आत्मा, इतना ही गुण एक परमाणु में। एक कम या अधिक बिल्कुल नहीं। इतना ही गुण आकाश में, इतना ही गुण धर्मास्ति में, इतना ही गुण अधर्मास्ति में, इतना ही गुण एक कालाणु में। एक कालाणु एक प्रदेश इतना ही गुण, इतनी संख्या। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... समझ में आया?

कहते हैं कि हे योगी! अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं। इसमें सन्देह नहीं। समझ में आया? परमात्मप्रकाश करनेवाला योगी। अपने स्वभाव-शक्ति में से व्यक्तता दृष्टि में की, अनुभव में की। एक अंश भी सम्यक् चैतन्य में से निकाला, वह सर्व आत्मा को परमात्मा देखते हैं, कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- यद्यपि... देखो! परमात्मप्रकाश कहा। अब परमात्मा के प्रकाश करनेवाले योगी, अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं। ... सब मेरे जैसे ही हैं। मेरे जैसे। समझ में आया? अरे भगवान! अभव्य को तो कभी भव घटे नहीं एक और यहाँ तो एक भव से मुक्ति होना और जिसको मुक्ति हुई, वह सब द्रव्य समान? यह कौन दृष्टि स्वीकारे? सम्यक्पने जिसको एक भव में मुक्ति होनी है, जिसको मुक्ति वर्तमान हो गयी है, जिसको एक भव भी (कम) कभी होता नहीं, अभव्य को एक भव कभी घटते नहीं। तो द्रव्यस्वभाव सब समान। उसमें अन्तर नहीं। ऐसा निःसन्देह तू जान। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नारायण खबर है मुझे। उसे भान कब था? बातें सभी नारायण। यह भगत था हमारे। क्या नाम कहा? ... भगत। आते थे उपाश्रय आते थे। उपाश्रय आते थे। नारायण भगत। वह नारायण, सब नारायण है। क्या नारायण?

मुमुक्षु : वह तो पर्याय में नारायण कहलाये। यह तो द्रव्य में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब पर्याय में भी भान कहाँ है इसे? इसे भान भी कहाँ है? द्रव्य क्या और पर्याय क्या? नारायण... नारायण... नारायण... क्या परन्तु नारायण?

यह तो पर्याय में एक समय का विकृतभाव, एक क्षण में किसी को रहनेवाला है और केवलज्ञान पायेगा, किसी को अनन्त काल रहनेवाला है और कभी केवलज्ञान नहीं पायेगा। और किसी को केवलज्ञान पाकर वर्तमान अनन्त परमात्मा विराजते हैं। सब जीव द्रव्यस्वभाव से समान है। ऐसा अनन्त-अनन्त। ऐसी दृष्टि अपने स्वभाव में से विकल्प गौण करके वस्तु का स्वभाव प्रतीति, भान में लिया तो कहते हैं कि सब जीव में तो शुद्ध ही (देखता) हूँ। पर्याय का ज्ञान है, व्यवहार का ज्ञान है।

यद्यपि जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है, तो भी प्रदेशभेद से प्रगटरूप सब जुदे-जुदे हैं। प्रगटरूप सब भिन्न-भिन्न हैं। एक ब्रह्मा में से सब उत्पन्न हुए हैं, ऐसा नहीं। कहो, देवचन्दजी! एक ब्रह्म में से उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। अरे, ब्रह्मा वह तो उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक द्रव्य की व्याख्या। बाद में रूपक बना दिया। पदार्थ का उत्पाद, वह ब्रह्मा। समझ में आया? व्यय, वह शंकर; ध्रुव, वह विष्णु। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश दूसरा कौन था? भगवान आत्मा और प्रत्येक द्रव्य समय-समय में उत्पन्न होते हैं, वह ब्रह्मा। व्यय होता है, वह शंकर; ध्रुव रहता है, वह विष्णु। एक-एक आत्मा ऐसा है। अब वहाँ यह मिलावे कहाँ?

बनारसीदास में मिलाते हैं यह सब वहाँ। बनारसीविलास है न एक पुस्तक? बनारसीविलास पुस्तक है। सबमें बहुत मिलाया है। यह चिट्ठी अपने दो निकाली हैं न अभी? परमार्थ वचनिका और उपादान-निमित्त की चिट्ठी। ये उसमें से निकाली थी। बहुत वर्ष पहले जब देखा था। बहुत वर्ष पहले बनारसीविलास। कहा, यह चिट्ठी यहाँ गुप्त रह गयी। बड़ी चिट्ठी। बहुत बहुत वर्ष पहले। २७-२८ वर्ष पहले यहाँ देखा था। ३० वर्ष पहले यहाँ हीराभाई के मकान में। ...परमार्थवचनिका ऐसी गुप्त रह गयी। ... पाँच-सात-दस हजार छपवाई है। अपने मोक्षमार्गप्रकाशक है न। कहा, ऐसी चीज़ गुप्त रहे? प्रकाशित है। लक्ष्मी कैसी? आत्मलक्ष्मी में छपायी है। ...भाई की ओर से छपवायी। कहा, यह गुप्त चीज़ ऐसी रही। कभी ध्यान ही रखा नहीं। कितनी चीज़ है अन्दर में! बनारसीविलास में है। बनारसीदास बहुत मस्त अध्यात्मी हो गये। भले गृहस्थाश्रम हो तो क्या, वह तो पर्याय की मन्दता है। मस्त थे वे पूर्णानन्द प्रभु। असंख्यात लोकप्रमाण व्यवहार मिथ्यात्वभाव उक्त है। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये। उस समय में वह श्वेताम्बर में कौन था? मेघविजय। मेघविजय थे और यहीं मार्यो कोरडो। बन्ध अधिकार का है न एक श्लोक? 'सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं' उसमें से निकाला। उसमें है कलशटीका में। 'जितना मिथ्यात्व भाव इतना व्यवहार भाव केवली उक्त है।' हाय! हाय! समझ तो सही! ऐई! समझ में आया? चिल्लाहट मचा गया। मेघविजय ने पुस्तक बनाया विरुद्ध। अरे! सुन तो सही, भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चले संसार में। यह है न कलश ?

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-

स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलाऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।

सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदनी निष्कंपाक्रम्य किं

शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बन्धन्ति सन्तो धृतिम् ॥११-१७३॥

उसका अर्थ किया। 'असंख्यात लोकप्रमाण जो मिथ्यात्वभाव तेई व्यवहारभाव केवली उक्त है। चिल्लाहट मचा गया वह। अरर! किस अपेक्षा से? भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप निश्चय से व्यवहार भिन्न है। भिन्न को एकत्व मानना, जितना मिथ्यात्व, इतना व्यवहार।

असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात्व भाव,

तेई विवहार भाव केवली-उक्त हैं।

जिन्हकौ मिथ्यात्व गयौ सम्यक दरस भयो,

ते नियत-लीन विवहारसौ मुक्त हैं ॥

व्यवहार से मुक्त है सम्यग्दृष्टि। व्यवहार है सही, परन्तु मुक्त है।

निरविकल्प निरुपाधि आत्म समाधि,

साधि जे सुगुन मोख पंथकौ दुक्त हैं।

तेई जीव परम दसामैं थिररूप हैकै,

धरममें धुके न करमसौं रुक्त हैं ॥ ३२ ॥

गाथा बहुत कठोर लिखी है। दिखाया तुमको। जो लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर मिथ्यात्वभाव के अध्यवसाय हैं, वे व्यवहारनय से हैं। जिस जीव को मिथ्यात्व नष्ट होने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह व्यवहार छोड़कर निश्चय में लीन होता है, वह विकल्प और उपाधिरहित आत्म-अनुभव ग्रहण करके दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग में लगता है और वही परमध्यान में स्थिर होकर निर्वाण प्राप्त करता है,... यह ... शब्द है, उसके सामने देखो व्यवहार मिथ्यात्व? पर्यायबुद्धि छोड़ दी। मिथ्यादृष्टि है, ऐसा ले लिया। वह श्लोक है ३२ बन्ध अधिकार में। बन्ध अधिकार में ३२ श्लोक है।

वह व्यवहार का अर्थ यह है कि भाई! कि विकल्प जितना है, उतना निर्विकल्प वस्तु से भिन्न है। निर्विकल्प चिदानन्द प्रभु जहाँ दृष्टि में आया तो निर्विकल्प वस्तु निश्चय हुई तो पर्याय से निश्चय हुआ। तब वह विकल्प आदि व्यवहार वह दो भिन्न हो गया। निश्चय में व्यवहार नहीं, व्यवहार में निश्चय नहीं। दो भिन्न द्रव्य हो गये। जैसे द्रव्य भिन्न है, ऐसे दो भाव भिन्न हो गये। जैसे द्रव्य भिन्न है, वैसे दो भाव भिन्न हो गये। निश्चय में लीन, व्यवहार से मुक्त है। हो व्यवहार, परन्तु स्वभाव निश्चय से व्यवहार मुक्त है। उस व्यवहार को एकत्व मानते हैं, इतने प्रकार का सब मिथ्यात्व है। समझ में आया? देवचन्दजी! बहुत कठिन पड़े हों तुम्हारे सुनने में वहाँ। अब वह लिखा है या नहीं? यहाँ आया तो ऐसा कहेंगे। अरे भगवान! भगवान! सुन तो सही प्रभु! तूने सुना नहीं बात, भाई! आहाहा! कोई आवे तो यहाँ करूँगा ऐसे। प्रश्न करूँगा। अरे भगवान! अभी आया पहले नकार कहाँ करता है तू? यह आत्मलीला है न एक पर्याय की। पर्यायलीला। समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो, यद्यपि जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है तो भी प्रदेशभेद से प्रगटरूप सब जुदे-जुदे हैं। देखो, ऐसी स्वभाव की दृष्टि हुई तो स्वभाव से एकत्व है और व्यवहार से (विभक्त है)। वह भी परवस्तु हो गयी। अरे! वास्तव में तो परद्रव्य ही कहा है उसको। गाथा बतायी थी न वह परद्रव्य। ५० गाथा। नियमसार की ५० गाथा।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।

सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च हवे अप्पा॥५०॥

अपना एक ही तत्त्व है। वह विकल्प आदि क्षायिकभाव आदि सब परद्रव्य। शोर मचा जाये वह, हों! कभी सुना नहीं न। भगवान! सुन न, बापू! ऐसे पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... यह तो एक समय की पर्याय है। यह तो पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... जिसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान निकला करे। क्या केवलज्ञान में से केवलज्ञान निकलता है? क्या क्षायिकभाव में से क्षायिकभाव उत्पन्न होता है?

भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप, वही स्वद्रव्य अपना। पर्याय, विकल्प, परद्रव्य। वह

तो चिल्लाहट कर जाये परन्तु ऐसे। भगवान! जैसे परद्रव्य में से अपनी निर्मल पर्याय नयी उत्पन्न नहीं होती, ऐसे पर्याय में से पर्याय उत्पन्न नहीं होती, तो वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं हुआ, तो परद्रव्य जैसे आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसी अपनी पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं। तो उस अपेक्षा से परद्रव्य कहा है। समझ में आया? स्वभाव से, त्रिकाल स्वभाव जितना नहीं। एक समय की पर्याय है, उस अपेक्षा से उसको परद्रव्य में डाला। चिल्लाहट कर जाये। भगवान! तेरी एक समय की पर्याय और त्रिकाल अनन्तगुण का एक पिण्ड प्रभु! कितना अन्तर है, उसमें! आहाहा! जिसमें तो केवलज्ञान सादि-अनन्त, सादि-अनन्त अनन्त अनादि सान्तकाल से सादि अनन्त काल अनन्तगुना है। अनादि सान्त जितना समय है ऐसे सादि अनन्त समय अनन्तगुना है। अनन्तगुना समय, ये एक समय, अनन्त समय, दूसरे एक समय, अनन्त समय, तीसरे एक समय, अनन्त समय। ऐसा अनादि सान्त जितना समय, इससे अनन्तगुना समय भविष्य का है। तो इतना भविष्य का अनन्त समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन समय-समय में प्रगट प्रवाह चला ही जाता है अन्दर में से। अब एक पर्याय की कितनी कीमत! समझ में आया? ऐसे भगवान पूर्णानन्द प्रभु जाति अपेक्षा से सबको ज्ञानी एक देखते हैं। ऐसा कहते हैं, देखो! प्रदेश भेद है, हों! प्रदेश सबका एक नहीं।

जैसे वृक्ष जातिकर वृक्षों का एकपना है,... है न? जैसे वृक्ष जातिकर वृक्षों का एकपना है,... जाति। जाति अर्थात् कोई जाति दूसरा पदार्थ नहीं। वृक्ष जाति, फूल जाति, फूल के वृक्ष की जाति, यह हीरा की जाति, यह पत्थर की जाति, ऐसा। जैसे वृक्ष जातिकर वृक्षों का एकपना है, तो भी सब वृक्ष जुदे-जुदे हैं,... वृक्ष सब एक हो जाते नहीं। और पहाड़ जाति से सब पहाड़ों का एकत्व है,... सम्मोदशिखर भी पहाड़, गिरनार भी पहाड़, छोटे-बड़े सब पहाड़। पहाड़ तो पहाड़ है न। तो भी सब जुदे-जुदे हैं,... पहाड़ सब एक हो जाते नहीं। तथा रत्न-जाति से रत्नों का एकत्व है,... करोड़ों-अरबों रत्न पड़े हैं। एक जाति के रत्न लाख... लाख... लाख की कीमत का एक-एक। यह लाख... यह लाख... यह लाख रुपये की कीमत। परन्तु सब रत्न पृथक्-पृथक् हैं, घट-जाति की अपेक्षा सब घटों का एकपना है,...

मुमुक्षु : बहुत दृष्टान्त दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दृष्टान्त देकर... वे वापस एक मान लेते हैं न वेदान्त की भाँति। यहाँ आत्मा की जहाँ बात की तो सब ऐसे हैं अर्थात् सब एक जाति। अर्थात् एक सरीखे हैं। सरीखे हैं अर्थात् एकरूप हैं। सरीखे का अर्थ एकरूप अर्थात् इकट्ठेरूप— ऐसा नहीं। जैसा इसका रूप, वैसा इसका रूप, उसका रूप बस। **घट-जाति की अपेक्षा सब घटों का एकपना है, परन्तु सब जुदे-जुदे हैं...** और दृष्टान्त। और **पुरुष-जातिकर सबकी एकता है,...** कितने दृष्टान्त दिये, देखो। समझ में आया? वृक्ष।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बाद में आयेगा। आवरण का अर्थ कि उसके आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है। क्षायिकभाव समकित है न, तो उसका लक्ष्य करते हैं तो विकल्प उत्पन्न होता है। उसके आश्रय से निर्विकल्पता उत्पन्न होती नहीं। तो आवरण कह दिया। वह तो अपेक्षा से। एक अपेक्षा से प्रत्येक पर्याय पारिणामिकभाव है। सुनो। उदय भी पारिणामिकभाव है और एक अपेक्षा से चार पंचास्तिकाय में लिया कि चार भाव कर्म बिना नहीं होता। श्लोक (गाथा) है न? चार भाव। पंचास्तिकाय। वह किस अपेक्षा से है, यह समझना चाहिए। ५८ है न। 'विणा' है न भाई! देखो, आया।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।

खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥ ५८ ॥

चार भाव कर्म के बिना नहीं होते, इसलिए चार को कर्मकृत कहते हैं। किस अपेक्षा कहते हैं? समझ में आया? कि अकेले परमस्वभाव में निमित्त की अपेक्षा नहीं है। उदय में निमित्त की, उपशम, क्षयोपशम में निमित्त के अभाव के। इतनी अपेक्षा गिनकर...

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।

खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥ ५८ ॥

बाद में प्रश्न उठाया।

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।

जब कर्मकृत भाव है आभास, तो आत्मा अपने कर्म का कर्ता किस प्रकार है?

ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥ ५१ ॥

महाराज ! आप तो कहते थे न कि आत्मा अपने भाव के अतिरिक्त पर का तो कर्ता है नहीं। तो कर्म बिना चार भाव नहीं तो भाव का कर्ता कौन हो गया ? यह तो कर्म हो गया। नहीं। नहीं। भगवान ! किस अपेक्षा से कहा है ? वह अकेला स्वभावभाव जिसमें निमित्त का सद्भाव, निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं लगती, उसको अकेला भाव कहते हैं। उसमें जरा अपेक्षा लगती है न अपेक्षा ? उसे और उसे जब जयधवला में लिया तो उदयभाव पारिणामिक कह दिया। है न। अपने चर्चा हो गयी। अभेद विकार। अभेद विकार अभेद होता है। अपने कारण से नहीं।

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।

जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥ ६२ ॥

अभेद षट्कारक अर्थात् पर की अपेक्षा विकार करने में (नहीं है), जीव षट्काररूप से विकार परिणमता है, पर की अपेक्षा निरपेक्ष है। पाठ है पाठ। उसमें पाठ। वह तो बराबर है। जहाँ जो अपेक्षा है, वहाँ उसे समझना चाहिए। सावरण कहा देखो भगवान। आहाहा ! चार को विभाव कहा, कर्म बिना नहीं कहा, एक ओर चार भाव को सावरण संयुक्त कहा। सावरण का अर्थ ? निमित्त की सापेक्षता आती है और जिसके लक्ष्य से विकल्प उत्पन्न होते हैं, उसका नाम सावरण... भगवान परमानन्द पूर्ण स्वभाव के लक्ष्य से विकल्प उत्पन्न नहीं होता, वह त्रिकाल निरावरण। समझ में आया ? आहाहा ! यह वह कहीं बात है ! परमेश्वर के अतिरिक्त तीन काल, तीन लोक में कहीं हो नहीं। सर्वज्ञ जैन परमेश्वर। जैन परमेश्वर। उसकी दृष्टि में आ जाता है कि जैन परमेश्वर क्या कहते हैं ? सब उसके ख्याल में आ जाता है। 'सब आगम भेद सु उर बसे।' सम्यक् भान होते सम्पूर्ण आगम में क्या कहा, कहाँ रहा ? 'सब भेद उर बसे' हृदय में बस जाता है। आया न भाई नहीं ८६वीं गाथा में। प्रवचनसार नहीं ? हार्दव। ८६वीं गाथा में है न ? वह कल कहा था न भावलक्ष्य। भाव।

मुमुक्षु : भावज्ञान से अभ्यास।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भावज्ञान के लक्ष्य से अभ्यास करना। यह ज्ञेय की अधिकार

की पहली गाथा भिन्न थी। यह आता है न भाई! सहृदयजनों के हृदय को आनन्द का उद्भेद देनेवाले... सहृदय। है न? सामने के भाव की वृत्ति... शास्त्र में जिस समय जिस भाव का प्रसंग हो, उस भाव को हृदय में ग्रहण करनेवाला... सहृदय की व्याख्या है। शास्त्र में जिस समय जिस भाव का प्रसंग हो उस भाव को हृदय में ग्रहण करनेवाले बुध-पण्डित उसको सहृदय कहने में आया है। टीका में है, हों! अमृतचन्द्राचार्य। और उस धर्मात्मा को भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़ किये गये परिणाम से... शास्त्र अभ्यास ऐसे करना भगवान! ऐसा कहते हैं। भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा... समझ में आया? पाठ है। 'भावज्ञानावष्टम्भदृढीकृतपरिणमेन सम्यगधीयमानमुपायान्तरम्' तो भावज्ञान चैतन्य का लक्ष्य करके द्रव्यश्रुत का अभ्यास करना। आहाहा! इसके बिना, शास्त्र क्या कहते हैं और शास्त्र में कौन-सी अपेक्षा पड़ी है? इसके बिना नहीं जानते भगवान! सब कपाट खुल जाये। यह अन्तर का कपाट खुला तो सब कपाट जहाँ-जहाँ जैसी बात है। सहृदय पड़ा है शब्द में। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा एक कहने में कुछ एक हो जाता नहीं। पुरुष-जातिकर सबकी एकता है, परन्तु सब अलग अलग हैं। उसी प्रकर जीव-जाति की अपेक्षा से सब जीवों का एकपना है, तो भी प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं। अब, इसके ऊपर कोई शंका करेगा वेदान्ती। भाव हो तो वह एक का अनेक दिखता है। ऐसी शंका करेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ७, रविवार, दिनांक ०६-०६-१९६५

गाथा - ९९-१००, प्रवचन - १४१

९९वीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश। यहाँ आया देखो। प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं। वहाँ तक आया है। इस गाथा में क्या कहना है कि सब जीव की जाति एक है। समझ में आया ? संख्या भिन्न-भिन्न है। फिर भी जीव एक जैसा अनन्त अभव्य हो, भव्य हो, अनन्त संसारपर्याय में हो, मुक्तपर्याय हो। वस्तुरूप से आत्मा की जाति एक है। ऐसी दृष्टि करना, उसमें जैनशासन का सार समा जाता है। तो कहते हैं, जाति की अपेक्षा से सब जीवों का एकपना है, तो भी प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं। इस पर कोई परवादी प्रश्न करता है... परवादी-अन्यवादी। जैसे एक ही चन्द्रमा जल के भरे बहुत घड़ों में जुदा-जुदा भासता है,... जब आचार्य ने ऐसा कहा कि सब जीव की जाति एक, प्रदेश भिन्न। तो दूसरे ने प्रश्न किया कि नहीं, सब जीव ही एक है। एक जीव ही सर्वव्यापक है। कैसे ? दृष्टान्त देते हैं। जैसे एक ही चन्द्रमा जल के भरे बहुत घड़ों में... सैकड़ों हजारों में जुदा-जुदा भासता है,... चन्द्रमा देखो नीचे। उसी प्रकार एक ही जीव बहुत शरीरों में भिन्न-भिन्न भास रहा है। एक जीव ब्रह्म है, वह सबमें व्याप रहा है।

उसका श्रीगुरु समाधान करते हैं—ऐसा नहीं। ऐसा है नहीं। जो बहुत जल के घड़ों में चन्द्रमा की किरणों की उपाधि से... उपाधि अर्थात् निमित्त। जल-जाति के पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार के परिणत हो गये हैं,... चन्द्रमा की किरणें तो निमित्त हैं। नीचे कहेंगे। उपाधि है, कोष्ठक में निमित्त है। देवदत्त के दृष्टान्त में। जो बहुत जल के घड़ों में चन्द्रमा की किरणों की उपाधि (निमित्त) से जल-जाति के पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार के परिणत हो गये हैं,... वह चन्द्रमा नहीं वहाँ। जल में चन्द्र नहीं है। चन्द्र तो वहाँ है। और जल का पुद्गल चन्द्रमा के आकार(रूप) अपने में परिणमन हो गया है।

लेकिन आकाश में स्थित चन्द्रमा तो एक ही है, चन्द्रमा तो बहुत स्वरूप नहीं हो गया। चन्द्र कहीं सब स्वरूप से होता नहीं। हजार घड़े हों, हजार घड़े, लाख घड़े पानी के। लेकिन आकाश में स्थित चन्द्रमा तो एक ही है, चन्द्रमा तो बहुत स्वरूप नहीं हो गया। उनका दृष्टान्त देते हैं। जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुष... बाद में इसका दृष्टान्त। काँच का मन्दिर हो भवन, उसमें एक देवदत्त पुरुष खड़ा हो। देवदत्त पुरुष। उसके मुख की उपाधि (निमित्त) से... देखो, वहाँ उपाधि का अर्थ निमित्त लिया है। उसके मुख की उपाधि (निमित्त) से अनेक प्रकार के दर्पणों से शोभायमान काँच का महल उसमें वे काँचरूप पुद्गल ही अनेक मुख के आकार के परिणत हुए हैं,... वह कोई देवदत्त का मुख वहाँ नहीं आया। देवदत्त का मुख तो यहाँ जीव है, चेतन है। वहाँ आया हो तो सब चेतन हो जाये सारे। हजार काँच का हो और काँच का भवन। कुछ देवदत्त का मुख अनेकरूप नहीं परिणत हुआ है, मुख एक ही है। मुख तो एक ही है यहाँ चेतन। यह तो वहाँ पुद्गल काँच की पर्याय उसरूप अपने कारण से परिणमन उपादान से हुआ है।

कुछ देवदत्त का मुख अनेकरूप नहीं परिणत हुआ है, मुख एक ही है। जो कदाचित् देवदत्त का मुख अनेकरूप परिणमन करे, तो दर्पण में तिष्ठते हुए मुखों के प्रतिबिम्ब चेतन हो जावें। यही चेतन है, ऐसा वहाँ चेतन हो जाये। परन्तु चेतन नहीं होते, जड़ ही रहते हैं, उसी प्रकार एक चन्द्रमा भी अनेकरूप नहीं परिणमता। वे जलरूप पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार में परिणत हो जाते हैं। उस समय की पर्याय पुद्गल में ऐसी परिणत होने से दिखती है कि जैसे चन्द्र है, वह तो पुद्गल उसरूप परिणमा है। समझ में आया ? वे जलरूप पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार में परिणत हो जाते हैं। इसलिए ऐसा निश्चय समझना, कि जो कोई ऐसा कहते हैं कि एक ही ब्रह्म के नानारूप दिखते हैं। यह कहना ठीक नहीं है। 'यश्चन्द्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः न चैको ब्रह्मनामा' जीव जुदे-जुदे हैं। वेदान्त कहते हैं न सब आत्मा एक। द्रव्य की अपेक्षा लिया यहाँ। सब द्रव्य एक ही है, ऐसा है नहीं। सब सब द्रव्य भिन्न, अखण्ड परिपूर्ण द्रव्य भिन्न है। कोई आत्मा किसी रूप कभी हुआ नहीं। अनन्त एक जाति, तथापि संख्या में एक हुए नहीं।

आगे ऐसा कहते हैं कि सब ही जीव द्रव्य से तो जुदे-जुदे हैं, परन्तु जाति से एक हैं और गुणोंकर समान हैं, ऐसी धारणा करना मुक्ति का कारण है—ओहोहो! ‘जो पस्सदि अप्पाणं’ आता है न, भाई! ‘जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणण्णयंविसेसं। अपदेससुत्तमज्झं पस्सइ जिणसासणं सव्वं ॥’ ‘जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणण्णयं णियदं। अविसेसमसंजुत्तं...’ क्या आया? ... ऐसे पाँच बोल आये हैं न? ऐसे आत्मा को देखते हैं। उसका अर्थ सत्ता तो अस्तिरूप है, परन्तु पर से ऐसे भिन्न देखे, वही जैनशासन का सार देखते हैं। अपदेश का अर्थ उन्होंने ऐसा किया है, हों! यह ९९वीं गाथा में है न वह। इसमें पहले भाग में। पहले भाग में ९९ है। ऐसा अर्थ किया है। ९९ है ९९। ९९ है न ९९। पहले भाग में ९९, हों! पहले भाग की ९९ गाथा। नीचे है छठवीं लाईन।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने किया है ‘जो पस्सइ’ इत्यादि—इसका अर्थ यह है कि जो निकट-संसारी जीव स्वसंवेदन ज्ञानकर अपने आत्मा को अनुभवता है, सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है, वह सब जैनशासन को देखता है, ऐसा जिनसूत्र में कहा है। यह अपदेश का अर्थ किया। जैनसिद्धान्त द्रव्यसूत्र में वही कहा है कि तेरा आत्मा राग और विकल्प से भिन्न है। अन्तर है?

मुमुक्षु : १०४।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक यह अन्तर है। ९९ गाथ है। ‘जो पस्सइ’ मूल पाठ में—श्लोक में है।

इसका अर्थ यह है कि तो निकट-संसारी जीव स्वसंवेदन ज्ञानकर... अपने ज्ञान द्वारा अपने आत्मा को अनुभवता... है। मैं शुद्ध आनन्द, पर से भिन्न, बद्धस्पृष्ट से रहित, बद्धस्पृष्ट से रहित अबद्धस्पृष्ट हूँ। पर का संयोग सम्बन्ध से रहित। लो देखो। और नियत, निश्चय हूँ, सामान्य हूँ। अविशेष अर्थात् विशेष नहीं अर्थात् सामान्य। असंयुक्त हूँ। ऐसा आत्मा को अन्तर में एकरूप अनुभव करता है, वह सब जैनशासन को देखता है। सम्पूर्ण जैनशासन देखा। बल्लभदासभाई! देखो!

‘जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणण्णयंविसेसं।’ ऐसा जिनसूत्र में... ‘अपदेस’

अर्थात् द्रव्यसूत्र में कहा ऐसा भाव। द्रव्यसूत्र वाचक है, यह वाच्य है। अपना स्वरूप पुण्य-पाप का विकल्प, शरीर का कर्म आदि बन्ध से रहित है। यहाँ नास्ति से कहा। रहित अविशेष सामान्यस्वरूप, निश्चयस्वरूप एकरूप अनन्त गुण का पुंजरूप वीतरागस्वभावभाव ऐसा जो दृष्टि से, ज्ञान-वेदन से अपने को अनुभवता है, वह सारा जैनशासन का सार देखा। वीतरागता, जैनशासन का सार वीतरागता। दूसरा क्या है? तो वीतरागता का अर्थ? निमित्त, भेद, संयोग, राग विकल्प, एक समय की पर्याय, इन सबका लक्ष्य छोड़ करके अखण्ड द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि करना और स्वसंवेदन से आत्मा का अनुभव करना, वह वीतरागपर्यायरूप भावश्रुतज्ञान, वह जैनशासन का सार है। आहाहा! रागादि करना या रागादि में रुकना, वह जैनशासन नहीं। हो, भूमिका प्रमाण से। परन्तु वह जाननेयोग्य है। वह सार नहीं। सार तो भगवान् आत्मा महान्, गुण से पूर्ण स्वभाव अखण्ड जिसका ज्ञान सामर्थ्य अखण्ड, आनन्द सामर्थ्य अखण्ड। क्यों? कि एक जीवद्रव्य है, एक वस्तु है तो उसका गुण भी एकरूप अर्थात् अखण्ड एकरूप अन्दर है। ऐसा पर से बद्धस्पृष्ट से रहित, संयोग से रहित, विशेष से रहित सामान्य स्वरूप, अनियत से रहित निश्चयस्वरूप, असंयुक्त अर्थात् विकार से सहितपने से रहित अपना शुद्धस्वभाव। चार बोल लिये हैं न भाई इसमें ये? चार व्याख्यान। ये चारों ही बोल पूर्वाचार्यों के मान्य रखे हैं। १००वीं गाथा में अन्तिम है न चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिए, क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है। आत्मा को जाने वह सर्व जाने, श्रुतज्ञान से सब जाना, श्रुतज्ञान में सर्वव्यापक, सर्वव्याप्त दशा आत्मा की आ गयी। उस अपेक्षा से लोकालोक में व्यापता है, ऐसा भी कहने में आता है। ऐसे चार अर्थ आ गये हैं।

मुमुक्षु : यह व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्यों ने माना है। हाँ, है न। देखो, चार बोल हैं न, चार बोल देखो। चार बोल हैं, देखो। १००। आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है, इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी उन्होंने सबको जाना। हाँ यह। एकड़ा है न वह? यह एक बोल। उस दिन लिया था अपने चार बोल। देखो, फिर से लिये। यह

श्लोक ही लिया न ९९, देखो। यह ९९ है न पहले ? पहले की ९९ देखो। पहले अध्याय की ९९ गाथा। भावार्थ देखो।

वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। एक बोल। क्या कहते हैं ? यह आत्मा। यहाँ जो कहते हैं, वही सर्वगुण सम्पन्न भगवान आत्मा वीतराग अर्थात् राग-विकल्परहित, निर्विकल्प अर्थात् अभेद स्वसंवेदनज्ञान। ज्ञान से ज्ञान को स्व-अभिमुख होकर, स्व-अभिमुख होकर ज्ञान से स्वरूप से, स्वरूप को स्वरूप से, ज्ञान को ज्ञान से जानकर शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। सम्पूर्ण बारह अंग का सार क्या है, यह उसमें आ गया। सबका हृदय, कल कहा था न, भाई ! कल कहा था न। सहृदय। ८६वीं गाथा। वह यहाँ आया कि जहाँ-जहाँ कहना है, वह सब। आत्मा को जाना, वह सब हृदय शास्त्र का जान लेता है। सम्पूर्ण शास्त्र का हृदय क्या कहना है, कैसी अपेक्षा, क्या प्रकार। वह यहाँ आया। कि शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। क्योंकि जैसे रामचन्द्र, पाण्डव, भरत, सगर आदि महान पुरुष भी जिनराज की दीक्षा लेकर फिर द्वादशांग को पढ़कर, द्वादशांग पढ़ने का फल निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्ध परमात्मा, उसके ध्यान में लीन हुए तिष्ठे थे। बारह अंग में वह कहा था और बारह अंग पढ़कर भी काम तो वह किया। सार यह है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव-सन्मुख होना और पर से उपेक्षा करना, इतना सिद्धान्त।

अब, इसलिए वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है, आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है,... सबका जानना तब सफल होता है। इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी, उन्होंने सबको जाना। एक बोल। हाँ, इसलिए जिन्होंने यह जाना, उन्होंने सब जान लिया। आत्मा जाना—ऐगं जाणेई सव्वं जाणेई। लो ! भगवान एक आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय से वेदन कर जाना, सम्पूर्ण लोक चौदह ब्रह्माण्ड में क्या है और बारह अंग में क्या कहना है, वह सब उसने जान लिया। एक बोल। अथवा दूसरा। निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न हुआ जो परमानन्द सुखरस

उसके आस्वाद होने पर ज्ञानीपुरुष ऐसा जानता है कि मेरा स्वरूप जुदा है और देह, रागादिक मेरे से दूसरे हैं, मेरे नहीं हैं,... यह व्यवहार भी मेरे नहीं। विकल्प आदि व्यवहाररत्नत्रय। इसलिए आत्मा के जानने से सब भेद जाने जाते हैं। जिसने अपने को जान लिया उसने अपने से भिन्न सब पदार्थ जाने। यह दूसरा बोल।

तीसरा आ गया ठीक। यह दो हुए। पहला बोल इसमें गया होगा। अब आयेगा न अंक बराबर। दो हुए। अब तीसरा आया देखो। अथवा आत्मा श्रुतज्ञानरूप व्याप्तिज्ञान से... देखो अब यह। आत्मा भावश्रुत ज्ञानरूप अपने स्वरूप का ज्ञान करने से वह व्याप्तिज्ञान से सब लोकालोक को जानता है, इसलिए आत्मा के जानने से सब जाना गया है। जाना गया। यह तीसरा। यह तीन बोल। अथवा वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न करके जैसे दर्पण में घटपटादि पदार्थ झलकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में सब लोक-अलोक भासते हैं। इससे यह बात निश्चय हुई कि आत्मा के जानने से सब जाना जाता है। चार बोल आये। बस यहाँ पर सारांश यह हुआ कि इन चारों व्याख्यानों का रहस्य जानकर बाह्य-अभ्यन्तर सब परिग्रह छोड़कर सब तरह से अपने शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए। ऐसा ही कथन समयसार में श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ने किया है। लो 'जो पस्सदि अप्पाणं' भावश्रुतज्ञान सम्पूर्ण जैनशासन का सार। उसमें से केवलज्ञान होता है। द्रव्यश्रुत में वह कहा, द्रव्यश्रुत में वह कहा। द्रव्यश्रुत वाचक है, भावश्रुत वाच्य। तो भावश्रुत वह (कि) पूर्णानन्द प्रभु बद्धरहित अभेद निश्चय एकरूप विकार का संयुक्तरहित, ऐसा अन्तर स्वरूप का अन्तर में दृष्टि देर अनुभव करना, वही भावश्रुतज्ञान उसमें लोकालोक जानने में आता है व्याप्ति ज्ञान से। समझ में आया?

वह स्वयं कहते हैं न बाद में यहाँ १००वीं गाथा में। यहाँ पर भी विशेष करके पूर्व सूत्रकथित चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिए, क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है। एक आत्मा को जाने तो सब जाना जाता है, ऐसे बड़े-बड़े आचार्य ऐसा कहते आये हैं। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध प्रभु अनन्तगुण सम्पन्न अपने स्वभाव को जिसने अन्तर्मुख होकर जाना, उसने सब जाना। निश्चय क्या, व्यवहार क्या, उपादान क्या, निमित्त क्या, वह सब उसके पेट में—ज्ञान में

आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बल्लभभाई! आहाहा! बस, वह यहाँ कहते हैं देखो अब। यह ९९ में वह ९९ में आ गयी। यह ९९, वह ९९। दोनों ९-९ है न? ९-९ का समभाव। ९ का आंकड़ा अफर है या नहीं? नौ दूनी अठारह, नौ तिया सत्ताईस, नवे नव निन्यानवे। सब नवे नव।

मोटा—बड़े-बड़े आचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान सब सन्तों ने भगवान अपना आत्मा सब आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा अपने को देखा तो सबको ऐसे ही देखते हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। समभाव हो गया। विषमता नहीं कि यह ऐसा है। वह ज्ञान करने की, जानने की बात हुई। दुर्लक्ष करना। व्यवहार में अन्तर हो, पर्याय में अन्तर हो, जान लेना, उसमें कोई तिरस्कार करने की बात है नहीं। जान लेना। वह आत्मा है न? भगवान है। मैंने मेरी पर्याय को जैसे गौण करके पूर्णानन्द की प्रसिद्धि कर ली तो उसकी भी प्रसिद्धि, विकार आदि से रहित ही उसकी प्रसिद्धि मैं करता हूँ कि यह आत्मा तो ऐसा ही है। शशीभाई! आहाहा! किसी के प्रति विषमभाव रहा नहीं। ज्ञाता-दृष्टा कहना है। मूल तो ऐसा कहना है। समझ में आया? जैसा ज्ञानस्वभाव का स्व-पर को पूर्ण जानने का स्वभाव है, ऐसे का अनुभव और प्रतीति किया तो सब पर को जानना-देखना ही रह गया। किसी में विषमता करना या ऐसा करना, वह वस्तु में है नहीं। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १००

आगे ऐसा कहते हैं,... अब १०० गाथा अपने चलती है। अब यहाँ विशेष क्या कहते हैं देखो, गुण को समभाव बताते हैं। **गुणों को समान हैं, ऐसी धारणा करना मुक्ति का कारण है**—सब भगवान ज्ञान से पूर्ण, दर्शन से पूर्ण। पर्याय में कमी, वह बात लक्ष्य में नहीं, वह तो पर्यायदृष्टि का विषय है। वस्तु देखो तो सब जीव गुण से पूर्ण। यहाँ गुण से बात लेना है। ज्ञान से पूर्ण, दर्शन से पूर्ण, आनन्द से पूर्ण, शान्ति से पूर्ण, शान्ति अर्थात् चारित्र। समझ में आया? महा विद्यमान मौजूद पदार्थ ऐसा सब भगवान

गुण से समान, ऐसी धारण करना मुक्ति का कारण है। वह बात कहते हैं, देखो!

२२७) राय-दोस बे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।

ते सम-भावि परिट्टिया लहु णिव्वाणु लहंति ॥ १०० ॥

शब्दार्थ नीचे। जो राग और द्वेष को दूर करके... अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प से लक्ष्य छोड़ करके सब जीवों को समान... अपना स्वभाव पुण्य-पाप रागादि विकाररहित ऐसा जाना तो सब जीवों को समान जाना उसने। वे साधु समभाव में विराजमान शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं। समभाव... समभाव... अपनी समभाव की मस्ती पूर्णानन्द में हूँ, भगवान सब आत्मा गुण से पूर्ण। यहाँ गुण से लिया है, वह जाति से भाई! एक लिया था। जाति में इतना अन्तर है। गुण में पूर्ण है, वह जाति एक थी। गुण में पूर्ण है, ऐसा मैं भी गुण में पूर्ण हूँ। सब भगवान आत्मा गुण में पूर्ण है। कोई हीनाधिकता है नहीं। और हीनाधिकता है तो अपनी पर्याय अंश में है। यह भी हीनाधिकता अपने कारण से है। यह समय की योग्यता है हीनाधिकता। तब इतनी स्वतन्त्रता स्वीकार की कि ज्ञान की पर्याय में हीनाधिकता होती है, वह ज्ञानावरणीय के कारण नहीं। क्योंकि जब पूर्ण स्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... स्वतन्त्र ऐसा है तो पर्याय भी अल्पज्ञपने, अल्पदर्शीपने है, वह भी स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र है, परन्तु इतना अंश की दृष्टि छोड़कर पूर्णानन्द की दृष्टि करना, वही समभाव का कारण है। समझ में आया?

उसकी पर्याय में हीनाधिकता है ज्ञान की, वीर्य की, वह स्वतन्त्र पर्याय, अंश इतना स्वतन्त्र है। इतना स्वतन्त्र है, परन्तु इतना तो पर्यायदृष्टि का विषय हुआ। तो जब इतना स्वतन्त्र है अंशदृष्टि में, इतना नहीं, पूर्ण स्वतन्त्र है। एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड स्वतन्त्र है। ऐसी दृष्टि में यह स्वतन्त्र मानकर, बाद में पूर्ण स्वतन्त्र पर दृष्टि करना, वही सम्यग्दर्शन का सार और वही वीतरागभाव है। समझ में आया? लो और यह आया। यहाँ गुण से कहा है न! गुणोंकर समान। ऐसी धारणा करना, प्रतीति करना, वह मुक्ति का कारण। समभाव से मोक्ष पाते हैं।

भावार्थ :- वीतराग निजानन्दरूप जो निज आत्मद्रव्य... देखो, व्याख्या की। निजात्म कैसा है? निज भगवान आत्मद्रव्य कैसा है? वीतराग निजानन्दस्वरूप... एक

ही बात। अल्पज्ञपना नहीं, रागपना नहीं, निमित्ता का सम्बन्ध तो कहाँ रहा ? भगवान् आत्मा... यहाँ गुण से बात ली है। **वीतराग निजानन्दस्वरूप जो निज...** भगवान् द्रव्य **उसकी भावना से विमुख...** ऐसा निजानन्द प्रभु वस्तु, वीतराग को जैसा प्रगट हुआ पर्याय में, ऐसा ही वस्तु में त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। ऐसी उसकी भावना। देखो, भावना। भावना का अर्थ विकल्प नहीं। भावना का अर्थ उसमें एकाग्रता। उससे विमुख।

राग-द्वेष उनको छोड़कर... उसके विमुख कौन ? कि राग-द्वेष। अटपटी भाषा। वीतराग निजानन्दस्वरूप आत्मपदार्थ की भावना से विमुख राग और द्वेष, उनको छोड़कर। ऐसी गुलांट खायी। **जो महान् पुरुष केवलज्ञान-दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों की समान गिनते हैं...** यहाँ गुण से लिया है। केवलदर्शन, केवलज्ञान। वह पर्याय नहीं, हों ! केवलदर्शन, केवलज्ञान। गुण-गुण सामान्य। ऐसे सबको **सब ही जीवों को समान गिनते हैं, वे पुरुष समभाव में स्थित शीघ्र ही शिवपुर को पाते हैं।** अपना स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा ऐसा वीतराग समभाव प्रगट किया, वह अल्पकाल में पूर्ण वीतरागस्वभाव मुक्ति को प्राप्त होगा। देखो, उसमें कहकर वह व्यवहार विकल्प बीच में आते हैं, उससे वीतरागता की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

अपना स्वभाव पूर्ण केवलदर्शन ज्ञानस्वरूप ऐसे सबको देखते हैं, वह पुरुष समभाव में स्थित हैं। विषम पर्याय को न देखकर अकेला समभाव स्वभाव को देखनेवाले **शीघ्र ही शिवपुर को पाते हैं।** शिवनगरी निरूपद्रव पर्याय। शिवनगरी कौन ? अपनी पूर्ण निरूपद्रव पर्याय। शिवपुर अर्थात् पूरा निरूपद्रव पर्याय का पूरा अनन्त-अनन्तगुण की पूर्ण पर्याय का पूरा उसको प्राप्त होता है। अपनी-अपनी प्राप्ति। समझ में आया ? अध्यात्म बात है थोड़ी।

समभाव का लक्षण ऐसा है कि जीवित, मरण,... शरीर जीवित हो या व्यय हो। लाभ, अलाभ, ... हो। शिष्यों का, इज्जत का, कीर्ति का, पदार्थ का लाभ हो या अलाभ हो, वह तो सब जानने की बात हुई। उसमें लाभ-अलाभ में मुझे लाभ हुआ तो ठीक, अलाभ हुआ तो मुझे अठीक, वह कहाँ आया ? यह तो पदार्थ उसके कारण से आया, उसके कारण से जाते हैं। जीवन शरीर की भी स्थिति प्रमाण रहता है और जीवन की

स्थिति पूरी होते ही चले जाते हैं। मैं तो उसको जानने-देखनेवाला हूँ। मैं उसको रखनेवाला या दूर करनेवाला नहीं। समझ में आया? ओहोहो! एक २५, ५० वर्ष का जीवन, अनादि-अनन्त में मनुष्य देह थोड़ा। उसमें ... चिपटा। यह स्त्री, कुटुम्ब में, परिवार में, धन्धे में, व्यापार में। वहाँ से निकला तो साधु हुआ या त्यागी कहीं हुआ, यह मेरा संघ, यह मेरा सम्प्रदाय, मेरा इतना जानपना, उसमें मैं अधिक। वह चिपटा, वह वस्तु पड़ी रही एक ओर। २५-५० वर्ष बीच में रहा। ऐसा अनादि, ऐसे भविष्य संसार बड़ा। बीच में इतना काल मिला। उसमें यह गड़बड़-गड़बड़ में रुक जाये और स्वरत्न चैतन्य की प्राप्ति न करे।

मुमुक्षु : बहुत रस चढ़ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रस चढ़ गया है। सवेरे कहा नहीं था हिम्मतभाई! ऐई! मलूकचन्दभाई! यहाँ जहाँ जन्मे, वहाँ उसे ऐसा हो जाये कि शरीर आया, यह वाणी, यह पिता मेरा, यह मेरा पुत्र, उसकी बहू, उसका विवाह करना, उसे सम्हालना, उसे आया। यह सब व्यवस्था करना... उससे कुछ हो सकता नहीं, हों!

मुमुक्षु : यह तो आपने कहा। हम तो हो सकता है, ऐसा मानते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं हो सकता। यह तो यहाँ कहते हैं। कि उसका यह जाननेवाला है। जीवन-मरण कैसे हो, लाभ-अलाभ कैसे हो, ऐसा जाननेवाला वह तो है। करनेवाला-बदनलेवाला कुछ तीन काल में आत्मा नहीं है। आहाहा! बाद में त्याग हुआ और कुछ जानपना थोड़ा-बहुत हो। वह भी एक परिग्रह में गया। वह कहते हैं न योगसार में, भाई! अमितगति आचार्य। विद्वानों का संसार शास्त्र है। दूसरे को स्त्री, पुत्र हो, कुटुम्ब-परिवार। ऐसा पाठ है। अमितगति, योगसार। उस शास्त्र में यह लिखा है, उस शास्त्र में यह लिखा है। भाई! सब लिख है, परन्तु उसका सार वीतरागता निकाले बिना तेरा सार कुछ नहीं है। लो! समझ में आया? है या नहीं? ऐई! लाओ न भाई! पाठ हो तो अपने को ठीक पड़े। रामजीभाई पाठ बताते हैं। जज के पास बतावे न कानून। यह आचार्य का कानून। सन्तों के कहे हुए, किसी के घर के नहीं। आहाहा! मुश्किल से थोड़ा काल मिला और काम करना बहुत। उसमें यह मैं जानपना, यह मैं

जानपना, ये कम है, उसका ज्यादा, उसका ठीक है। ऐसी खदबदाहट में रुकना, भगवान! तेरा ज्ञाता-दृष्टापने का करने का काल चला जाता है। १३१। पृष्ठ १३१, हों! अध्यात्म बहुत लिया है।

संसारः पुत्र-दारादिः पुंसां संमूढचेतसाम्।

संसारी विदूषां शास्त्रमध्यात्मरहितात्मनाम् ॥ ३४६ ॥

जो पुरुष आनी है, वास्तविकरूप से हित-अहित को नहीं पहचानते, उनका पुत्र-स्त्री आदि संसार। किन्तु जो विद्वान है, उसका शास्त्रों का अक्षराभ्यास पढ़ चुके हैं, परन्तु आत्मध्यान से शून्य है, उसका संसार शास्त्र है।' आहाहा! वस्तुस्थिति क्या है, वह समझने का प्रयास, प्रयत्न करते नहीं और इस शास्त्र में ये लिखा है, इस शास्त्र में यह लिखा है, इस शास्त्र में यह लिखा है। सब लिखा है, भगवान! वह शास्त्र सब लाख लिखे हों तो अपना शुद्ध उपादान से अपना कार्य होता है, एक ही बात है। ऐसा समभाव की दृष्टि स्वभाव में से निकाले नहीं और स्वभाव में स्वीकार न करे, तब तक तेरा शास्त्र भी संसार है।

मुमुक्षु : शास्त्र ऐसा कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र ऐसा कहते हैं यह देखो न। यह ४४ गाथा है। अधिकार देखो। मोक्ष अधिकार शुरु किया है उसमें ४४ गाथा है। 'संसारो विदूषां शास्त्रमध्यात्म-रहितात्मनाम्' भगवान आत्मा गुण से पूर्ण है। राग और अल्पज्ञ वह वस्तु के पूर्ण स्वभाव में नहीं, ऐसी दृष्टि सम्पूर्ण शास्त्र का सार है। ऐसा सार निकाला नहीं और वाद-विवाद। वह भी शब्द है कहीं पर। वाद-विवाद में अन्तर। यह १३८ में है।

मुक्तवा वाद-प्रवादाद्यमध्यात्मं चिन्त्यतां ततः।

नाविधूते तमःस्तोमे ज्ञेये ज्ञानं प्रवर्तते ॥ ३४० ॥

विद्वानों को चाहिए वाद-विवादादि को छोड़कर आत्मसम्बन्धी विचार करे। जब तक अन्धकार का नाश नहीं होता, तब तक ज्ञान ज्ञेय को प्रकाशित नहीं कर सकता। बहुत सरस बात। योगसार ऐसी पुस्तक है। बहुत सरस है। अमितगति आचार्य हैं। यह सम्पूर्ण व्याख्यान में वाँचन हो गया है। सम्पूर्ण व्याख्यान में सब आ गया है।

एक-एक व्याख्यान पूरा हो गया सवेरे में। समझ में आया ? ओहोहो ! भगवान ! यहाँ कहते हैं कि परन्तु द्वादशांग का सार तो ज्ञानमय पूर्णानन्द प्रभु ऐसी तेरी दृष्टि करना। सब जीव भगवान ऐसा है। भगवान है सब। उसकी तेरे विषमता करनी। कौन तेरा दुश्मन ? और कौन तेरा सज्जन ? यहाँ तो कहे वह ज्ञान का ज्ञेय है। जाननेयोग्य है। वह भी पर उपयोग से नहीं, अपना स्वभाव ऐसा ही स्व-परप्रकाशक होता है, उसमें जानते हैं। है, उसमें क्या ? यहाँ घुस गया है ?

जीवित, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःखादि... देखो, सुख-दुःख का अर्थ क्या ? सुख-दुःख विकल्प नहीं। सुख-दुःख संयोग। कहो, समझ में आया इसमें ? ऐ जयचन्दभाई ! यह शरीर की कल्पना यह रोग हुआ, निरोगी, संयोग को सुख-दुःख कहलाता है, हों ! यह संयोग को, हों ! **सुख, दुःखादि सबको समान जानें।** खो गया बस यह। आज सवेरे में था, इसलिए मैंने याद किया। हाथ रखो, कहे, महाराज ! हाथ रखो। अब किसके ऊपर हाथ मूक ?

मुमुक्षु : शरीर या आत्मा पर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा पर। शरीर का क्या है ? धूल है शरीर। यह तो चलेगा, रहना होगा तो रहेगा। जाना होगा तो जायेगा। भले चला जाये। और चलते हो तो रोक सकते नहीं और नहीं चलता हो तो टाल सकते नहीं। लाख अफीम खाये तो रहनेवाला हो तो रह जाता है। कहो, समझ में आया ? और जब जानेवाला है तो लाख तेरा उपाय इन्द्रादि लावे तो उसी समय छूटेगा। लाभ-अलाभ, जीवित, मरण। भगवान ! तू ज्ञाता-दृष्टा है, उसका नाम समभाव है। ऐसा जीव बड़ा हो तो ठीक। बड़े-छोटे का क्या काम है तेरे ? तेरा आत्मा बड़ा ज्ञानानन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप की दृष्टि कर और ज्ञाता-दृष्टा हो, वही सम्पूर्ण शास्त्र का सार है। समझ में आया ?

सुख-दुःखादि सबको समान जानें। जो अनन्त सिद्ध हुए... देखो, जो अनन्त भगवान परमात्मा मुक्ति को प्राप्त हुए और होवेंगे। अनन्त-अनन्त भविष्य में होंगे। कितनी अस्ति सिद्ध करते हैं ! यह सब समभाव का प्रभाव है। समभाव का प्रभाव है। वह ज्ञाता-दृष्टा का प्रभाव है, ऐसा कहते हैं। जैसे सर्वज्ञ भगवान पूर्ण ज्ञान से पूर्ण को

जानते-देखते हैं। यह अल्पज्ञान में विषय पूर्ण हो, लक्ष्य में सब आते हैं। ऐसा अल्पज्ञान में जानते हैं कि है, सब है। समझ में आया ? **समभाव से मोक्ष मिलता है।** वीतरागभाव से मोक्ष मिलता है, ऐसा कहते हैं। वह कोई विकल्प बीच में आता है, उससे मोक्ष मिलता है ? वह तो विषमभाव है। भगवान आत्मा अपना शुद्धात्माभिमुख परिणाम, जिसको समभाव कहते हैं, उस समभाव से मोक्ष मिलता है। शुद्धात्मसन्मुख परिणाम से मोक्ष मिलता है। परान्मुख में विकल्प, वह तो तेरा स्वरूप नहीं, तेरा लाभ नहीं।

कैसा है वह मोक्षस्थान, जो अत्यन्त अद्भुत अचिन्त्य केवलज्ञानादि अनन्त गुणों का स्थान है। यहाँ गुण से बात कही है न ? जब अपना गुणस्वरूप पूर्ण है, ऐसा भान किया तो उसका फल भी कैसा आया ? **अत्यन्त अद्भुत अचिन्त्य केवलज्ञानादि...** आहाहा ! एक समय की पर्याय केवलज्ञान वह यह बात है ! समय एक, समय एक, अनन्त केवलियों को जाने।

मुमुक्षु : अनन्त केवलियों की पूर्व की पर्याय हो, वह जाने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त केवली के वर्तमान जाने तो केवल की त्रिकाल पर्याय तो उसमें आ गयी। ऐसा कहते हैं यहाँ। कि अत्यन्त अद्भुत अचिन्त्य केवलज्ञान। एक समय के ज्ञान की पर्याय में भगवान अनन्त केवली को जानते हैं। सिद्ध आ गये या नहीं लोक में ? तो अनन्त सिद्ध अनन्त केवलज्ञानी है या नहीं ? तो एक केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त केवली जानने में आते हैं। ऐसी अद्भुत पर्याय। वह गुण सामान्य सन्मुख का अनुभव करने से ऐसे गुण की पूर्ण अद्भुत शक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अद्भुत को अत्यन्त विशेषण हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभी थोड़ा बाकी था। इतने पर अभी लक्ष्य आया।

अत्यन्त अद्भुत अचिन्त्य... ऐसा विशेषण है। समझ में आया ? **‘आत्यन्तिक-स्वभावैकाचिन्त्याद्भुत’** यह पाठ है। यह तो पाठ का अर्थ किया। कहते हैं कि अपना शुद्धस्वभाव पूर्ण गुण ऐसे अपने को देखते हैं। ऐसे सब आत्मा का पूर्ण गुण प्रगट नहीं है, तथापि विद्यमान प्रगट... प्रगट। वस्तुस्वभाव विद्यमान प्रगट है सब। ऐसी जिसकी

समभाव दृष्टि हो गयी, उसके फल की क्या बात कहना ? ऐसा कहते हैं। **अत्यन्त अद्भुत अचिन्त्य...** बहुत अद्भुत और अचिन्त्य। यह केवलज्ञान चिन्तवन में आवे विकल्प से ? एक समय की पर्याय अनन्त केवली को गर्भित में रखी, यह एक पर्याय में अनन्त केवली रखे, अनन्त सिद्ध समा जायें। परन्तु एक केवली में तीन काल, तीन लोक समाहित हो जाते हैं। ऐसे अनन्त केवली एक पर्याय में अचिन्त्य अद्भुत सामर्थ्य। समझ में आया ?

अनन्त गुणों का स्थान है। ऐसा-ऐसा तो अनन्त गुणों का स्थान आत्मा की पर्याय। मोक्षस्थान। मोक्षस्थान अपनी दशा। आहाहा ! 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता ते पामे ते पंथ। समझाव्यो संक्षेपमां सकल मार्ग निर्ग्रंथ' श्रीमद् कहते हैं कि 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, मोक्ष कह्यो निज शुद्धता' आत्मा की पूर्ण शुद्धता की प्रगट दशा, वह मोक्ष। 'ते पामे ते पंथ' वह पूर्ण निर्मल आनन्द अचिन्त्य अद्भुत पर्याय। उसे पावे वह पंथ अर्थात् मार्ग। 'समझाव्यो संक्षेपमां सकल मार्ग निर्ग्रंथ।' निर्ग्रन्थ वीतरागमार्ग के अन्दर यह बात पूर्ण रूप से समझायी है। समझायी है। अन्यत्र है नहीं। अन्यत्र है नहीं और यह भाव आत्मा के अतिरिक्त दूसरे में है नहीं। आहाहा ! अकेला अध्यात्म घोंटाया है।

यहाँ यह व्याख्यान जानकर राग-द्वेष को छोड़के शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो समभाव... देखो, इसका नाम समभाव। इसको समभाव कहना, दूसरे को समभाव किसे कहना ? भगवान आत्मा पूर्ण वीतराग-विज्ञानघन अखण्ड स्वरूप प्रभु। एक-एक गुण अखण्ड। वस्तु द्रव्य अखण्ड, एक-एक गुण अखण्ड। ज्ञान अखण्ड, दर्शन अखण्ड, आनन्द अखण्ड। ऐसा शुद्धात्मा, उसके अनुभवरूप जो समभाव, **उसका सेवन सदा करना चाहिए।** करनेयोग्य यह है। बाकी सब जाननेयोग्य हो दुनिया सब। भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव। श्रीमद् ने लिखा न। टुकड़ों में लिखा। 'जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से, उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है।' पहलो चौका। पूर्व का पहलो चौका (पाटिया)। यह थोड़े शब्दों में द्रव्य और गुण की सामर्थ्यता बतायी है और उसका उपाय भी बताया है और उसका फल भी एक इतने में सब आ जाता है। 'जीव एक...' एक अपने में, हों ! सब होकर ऐसा नहीं। 'एक अखण्ड...' एकरूप वह अखण्ड है। खण्ड-खण्ड नहीं। और **सम्पूर्ण द्रव्य...** है। वह

पूर्ण द्रव्य। सब होकर द्रव्य आत्मा और सब होकर ऐसा नहीं। ऐसा नहीं है। एक ही आत्मा सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण... सम्पूर्ण... सम्पूर्ण... सम्पूर्ण...

‘सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है।’ देखो, वस्तु एक अखण्ड द्रव्य सम्पूर्ण होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य एक अखण्ड सम्पूर्ण है। वह सम्पूर्ण में सब समा दिया। इतनी बहुत संक्षिप्त भाषा है। ‘जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से, उसका ज्ञान सामर्थ्य...’ एक द्रव्य होने से उसका ज्ञानसामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण ज्ञान-सर्वज्ञ हुआ। अपूर्ण वीतराग में सम्पूर्ण ज्ञान की प्रतीति आवे, परन्तु सम्पूर्ण वीतराग होने पर ही सम्पूर्ण सर्वज्ञदशा प्रगट होती है।

मुमुक्षु : सम्पूर्ण अखण्ड....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो गुण में बताया। वह तो द्रव्य को बताया न? द्रव्य को बताया, सम्पूर्ण गुण में आ गया। कि वस्तु एक अखण्ड सम्पूर्ण वस्तु-द्रव्य होने से। होवा थी है न, हमारी गुजराती भाषा। उसका ज्ञान सामर्थ्य, जैसा एक अखण्ड द्रव्य सम्पूर्ण तो उसका ज्ञान एक अखण्ड पूर्ण गुण है, पूर्ण गुण है, ऐसा कहना है। ऐसा एक-एक दर्शन अखण्ड, एक अखण्ड पूर्ण है। इस प्रकार एक, यहाँ आता है न। २०४ गाथा नहीं? समयसार। निर्जरा अधिकार। पाँच पर्याय में नहीं, वह तो अभेद होता है। वस्तु एकरूप है न अन्तर? तो पाँच पर्याय का भंग नहीं। वह मति आदि अभेद होता है अभिनन्दन करे। अन्दर एकाकार होता है। स्वभाव का पूर्ण सामर्थ्य पर एकाकार होने से जितनी शुद्धि का अंश आया सब मति, श्रुत, केवल वह तो सब अभेद होता है। अन्तर में अभेद होता है। पूर्ण की ओर की दृष्टि से अभेद ही होता है। समझ में आया? वह निर्जरा अधिकार में २०४ गाथा।

यहाँ कहते हैं यह जो समभाव उसका सेवन सदा करना चाहिए। तो उसका अर्थ है कि विकल्प की भावना करना, वह विषमभाव है। निमित्त की भावना करना कि मैं निमित्त मिलाऊँ, छोड़ूँ, विषमभाव है। कौन मिलावे, भाई! एक-एक रजकण, एक-एक द्रव्य स्वतन्त्र अपना स्वक्षेत्र-काल-भाव से स्वतन्त्र परिणमन कर रहा है। कोई किसी का स्वामी-अधिकारी है नहीं। तो कैसे कहा? कि पर का द्रव्य-क्षेत्र-

काल-भाव, वह मिलाना या मिलना छोड़ दे। उसका आत्मा परिपूर्ण ऐसा जान ले। और परमाणु आदि भी उसके द्रव्य-गुण-पर्याय से स्वतन्त्र है। तेरा आत्मा स्वतन्त्र शुद्धस्वभाव उसकी दृष्टि करके अनुभव कर। समभाव आया, वह समभाव ही मोक्ष का कारण है।

उसका सेवन सदा करना चाहिए। बीच में व्यवहार से लाभ होगा, ऐसा नहीं लेना चाहिए। भाई! वस्तु तो ऐसी है, भाई! समझे? 'सदा' शब्द पड़ा है या नहीं? करना नहीं और करना, यह दोनों नहीं इसमें। जो आया, उसको ज्ञानस्वभाव सन्मुख से जानने में रखना, बस इतनी बात है। वह व्यवहार को तो याद भी नहीं किया है। अस्ति की बात करने में नास्ति को याद करते नहीं। समझ में आया? यह शैली है अस्ति की। पहली गाथा (कलश) में आया न? 'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे' नास्ति की बात ही नहीं की देखो! 'नमः समयसाराय... भावाय चित्स्वभावाय' 'भावाय' द्रव्य। 'चित्स्वभावाय' गुण। 'स्वानुभूत्या चकासते' यह शुद्ध अनुभव पर्याय संवर, निर्जरा। 'भावाय' द्रव्य 'चित्स्वभावाय' गुण और 'स्वानुभूत्या चकासते', वह अपनी अनुभूति की क्रिया से प्रकाशमान होता है। संवर-निर्जरा लिया। भाव, द्रव्य, गुण, पर्याय। पूर्ण। 'सर्वभावांतरच्छिदे' मोक्ष ले लिया। ये कोई भी अपना भाव सिवाय-भावांतर-अन्य सब भाव 'च्छिदे'—उसको जाननेवाला पूर्ण केवलज्ञान, तो द्रव्य लिया, गुण लिया, पर्याय लिया, अपूर्ण साधक लिया, पूर्ण साध्य लिया। बस। आस्रव, बन्ध उसमें है नहीं। अजीव है नहीं, वह बात ली ही नहीं। पहले श्लोक में ऐसा मंगलाचरण कर दिया है समयसार में। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें ऐसा कहाँ लिखा?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है उसमें। यह पण्डित लोग विराजते हैं या नहीं यहाँ? पण्डितजी! ऐसा कहते हैं कि लिखा है उसमें? मैंने कहा यह पण्डित रहा। परन्तु इतना शब्द पड़ा है या नहीं? 'नमः समयसाराय' समयसार को नमस्कार करता हूँ। समयसार। समय अर्थात् आत्मा, सार अर्थात् विकार द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरहित। अब? 'भावाय' 'भावाय' द्रव्य लिया। कैसा है भाव? 'भावाय' दूसरा पदार्थ भी 'भावाय' है।

परमाणु भी भाव है कि यह तो 'चित्स्वभावाय' उसका गुण 'चित्स्वभावाय' ज्ञान स्वभावाय। परन्तु प्रगट कैसे होता है? 'स्वानुभूत्या चकासते' उसकी अनुभूति की क्रिया से आत्मख्याति प्रगट होती है। यह टीका है न आत्मख्याति? आत्मख्याति का पहला श्लोक है न? तो पहले 'स्वानुभूत्या चकासते' व्यवहार-प्यवहार सब बात की ही नहीं उसमें।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जानने की चीज़ आवे, जानने की। यहाँ तो अस्ति से अकेला... देखो। सात तत्त्व में आस्रव, बन्ध और अजीव की बात नहीं की। क्योंकि वहाँ जैसे स्वानुभूति संवर, निर्जरा का भान हुआ तो आस्रव-बन्ध उसमें नहीं, ऐसा भी ज्ञान आ गया। जहाँ 'भावाय' 'चित्स्वभावाय' तो अजीव उसमें नहीं और दूसरा जीव भी उसमें नहीं—ऐसा उसमें ज्ञान आ गया। और 'स्वानुभूत्या चकासते' अर्थात् व्यवहार से आत्मा प्रगट होता है, वह भी छूट गया। अकेली अन्तर की अनुभव क्रिया कैसे प्रगट होती है? कि 'सर्वभावांतरच्छिदे' पर्याय। वह मोक्ष ले लिया। 'सर्वभावांतर' अपने भाव के अतिरिक्त अन्य सब भाव तीन काल, तीन लोक जानने की पर्याय प्रगट होती है। क्या बाकी रखा? आहाहा! अरे! परन्तु आचार्य गजब काम करते हैं न! एकान्त करते हैं। अरे, सुन तो सही भगवान! उसमें तो ऐसा तो न लिया सात तत्त्व की श्रद्धा। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' सात नहीं है? जीव, अजीव, उमास्वामी पहला सूत्र कहते हैं। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनं। जीव, अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष तत्त्वः तो यह सब क्यों न कहा? इसमें ही आ गया? भाई! उसमें सब आ गया, सुन तो सही। समझ में आया? भगवान एक अस्ति पूर्ण 'चित्स्वभावाय' द्रव्य 'चित्स्वभावाय' एक द्रव्य ज्ञानसामर्थ्य सम्पूर्ण। लो, यह द्रव्य। और सम्पूर्ण वीतराग हुआ। अपूर्ण वीतराग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, पूर्ण वीतराग हो गया, इसलिए केवलज्ञान है। तो वीतरागभाव से केवलज्ञान है। उसमें भी वह आया, उसमें भी वह आया। समझ में आया?

भाई! परन्तु उसका अन्तर माहात्म्य वह चीज़ क्या अस्तिरूप है। नास्ति की बात

करने से वह तो दूसरी। पहले अस्ति की क्या बात है? समझ में आया? अस्ति ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... महान पदार्थ बड़ा। १९२ में आता है न प्रवचनसार में। महान पदार्थ। प्रवचनसार। महान पदार्थ। महान अर्थात् बड़ा क्षेत्र है? भगवान इसका... ओहोहो! ... प्रवचनसार में है या नहीं? महत्तम। महत्तम है। १९२ में है। व्याख्यान सब गाथा का हो गया है पूरा। १९२ देखो पाठ है। 'एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं।' महत्थं—पदार्थ बड़ा अतीन्द्रिय महापदार्थ। ऐसा लिखा है, हों! अतीन्द्रिय महापदार्थ। ऐसा पाठ है देखो!

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं।

ध्रुवमचलमणालंबं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं ॥ १९२ ॥

मुमुक्षु : महत्तम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा। महान अर्थ। यह ज्ञान, दर्शन, आनन्द से महान।

मुमुक्षु : महिमावन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमावन्त अथवा महिमावन्त की व्याख्या यहाँ तो। महान पदार्थ। दूसरा तो पदार्थ है। आकाश पदार्थ नहीं है? परन्तु यह तो महान ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सम्पूर्ण स्वभाव से महान है। वह लिखा है न पहला? ज्ञान दर्शन... शब्द वह पहले आ गया न? पहले शब्द ले लिया पश्चात् बात की है। देखो, 'एवं णाणप्पाणं' वहाँ से लिया है। 'दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं' ऐसा ज्ञान और ऐसा दर्शन से महान पदार्थ है। कोई चीज़ है नहीं तीन काल में। मैं आत्मा...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। बढ़िया-बढ़िया। विशेष। और यहाँ कहा न?

मैं आत्मा को इस प्रकार ज्ञानात्मक दर्शनभूत अतीन्द्रिय महा पदार्थ, ध्रुव अचल, निरालम्ब और शुद्ध मानता हूँ। महान का अर्थ ज्ञान और आनन्द और दर्शन ऐसा कहीं है दुनिया में? महान अनन्त महिमावन्त अपना स्वभाव से वह पदार्थ महान है। भाव की अचिन्त्यता से महान है। भाव में भी वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि। दूसरा गुण तो दूसरे में भी है — अस्तित्व, वस्तुत्व आदि... समझ में आया? तो कहते हैं, यही इस ग्रन्थ का

अभिप्राय है। लो। वह अपने चलता है देखो। 'इति अभिप्राय' है न संस्कृत में ?
'समभावना कर्तव्येत्यभिप्रायः' आया ?

★ ★ ★

गाथा - १०१

अब १०१। अगे सब जीवों में केवलज्ञान और केवलदर्शन... देखो, वह आया।
जहाँ ... केवलज्ञान, दर्शन, यही उसकी महानता है। इनके बिना कोई जीव नहीं है। ये
गुण शक्तिरूप सब जीवों में पाये जाते हैं, ऐसा कहते हैं—१०१।

२२८) जीवहँ दंसणु णाणु जिय लक्खणु जाणइ जो जि।

देह-विभेएँ भेउ तहँ णाणि कि मण्णइ सो जि ॥ १०१ ॥

अरे! जीवों के दर्शन और ज्ञान निज लक्षण को जो कोई जानता है,... यह
लक्षण उसका है। उसकी महानता दर्शन-ज्ञान से है। ऐसा लक्षण से... दो लिया है यहाँ,
हों! १०२ में फिर तीन लेंगे। ज्ञान, दर्शन और चारित्र। साथ है न, सब गुण एक साथ है
न? जीवों के दर्शन और ज्ञान निज लक्षण को जो कोई जानता है, हे जीव! वही ज्ञानी
देह के भेद से उन जीवों के भेद को क्या मान सकता है,... देह के भेद से और पर्याय
में जरा अल्पज्ञता आदि भेद से, ऐसा सब लेना, हो! क्या (भेद) मान सकता है,...
पूर्णानन्द, ज्ञानानन्द, दर्शन आदि पूर्ण स्वभाव है सब। क्या (ज्ञानी) मान सकता है,
नहीं मान सकता। समझ में आया? सब समान गुण है, ऐसा नहीं। उसकी व्याख्या
आयेगी विशेष....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक ०८-०६-१९६५

गाथा - १०१ - १०२, प्रवचन - १४२

परमात्मप्रकाश चलता है, दूसरा भाग, इसकी १०१ गाथा। क्या कहते हैं ? देखो,

भावार्थ :- तीन लोक और तीन कालवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक ही समय में जानने में समर्थ... यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल और तीन लोक में वर्तनेवाले द्रव्य, गुण और पर्याय को एक ही समय में जानने में समर्थ है। ऐसे केवलदर्शन और केवलज्ञान है,... ऐसा केवलदर्शन और केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव है। एक समय में तीन काल-तीन लोक के अनन्त द्रव्य, उनके गुण, उनकी पर्यायों को जानने का सामर्थ्य, ऐसा अपना केवलज्ञान, केवलदर्शन गुण है। उसे निज लक्षणों से जो कोई जानता है,... जो कोई आत्मा अपने ऐसे सामान्य जानपने और दर्शन के लक्षण द्वारा आत्मा को जानता है, वही सिद्ध-पद पाता है। क्या कहते हैं ? आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन गुण। पर्याय की हीनता, पुण्य-पाप का भाव, वह तो पर्यायदृष्टि का वर्तमान क्षणिक का विषय है। वस्तु स्वभाव देखने से केवलज्ञान और केवलदर्शन, ऐसे लक्षण से लक्षित निज आत्मा को जो कोई जानता है, वह सिद्धपद को पाता है। क्योंकि पर्यायबुद्धि निकल गयी और परजीव को देखने के लिये भी पर्याय से देखता नहीं। वर्तमान पर्याय... देखो, लोग चिल्लाहट मचाते हैं न। वर्तमान कर्मबन्धन रहित ? कर्मबन्धनरहित ? भाई ! कर्मबन्धन तो व्यवहारनय का विषय है, सुन न ! वर्तमान कर्मबन्धनरहित, वर्तमान विकाररहित ? भगवान ! वर्तमान विकार और कर्मबन्ध तो एक निमित्त। तो एक वर्तमानकाल एक समय जितना वह सम्बन्ध है। उसकी रुचि और उसका आश्रय छोड़कर बन्धरहित ऐसा अपना स्वभाव ज्ञान और दर्शन लक्षण से लक्षित आत्मा को करने से आत्मा को अनुभव—शान्ति के अनुभव का स्वाद आवे और उसके द्वारा आत्मा को मुक्ति की प्राप्ति होती है। कहो, समझ में आया ?

जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे... जो कोई धर्मी... अच्छी

तरह का अर्थ ? अकेले ज्ञान-दर्शन लक्षण से... ज्ञान-दर्शन लक्षण से, ऐसा नहीं। नहीं, ऐसा नहीं। अच्छी तरह अर्थात् अनुभव करके जाने, ऐसा। शुद्धस्वरूप ज्ञान-दर्शन लक्षण उसका स्वस्वभाव के अभिमुख होकर ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण में लक्षित आत्मा हूँ, ऐसे शुद्धात्मा के अभिमुख होकर जो अच्छी तरह अनुभव करे, जाने, उसका नाम जानना। वैसे तो ग्यारह अंग में बहुत आ गया था। यह बात नहीं आयी थी ? ग्यारह अंग में बात तो आयी थी कि यह आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वरूप है। परन्तु वह ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित अन्तर्मुख स्वभाववान, वह स्वभाववाला आत्मा स्वभाववान ऐसा है—ऐसा अनुभव में निर्णय करके जानना, उसका नाम जाना हुआ कहा जाता है। उसका नाम जानना कहा जाता है। समझ में आया ?

इसलिए जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे वह देह के भेद से जीवों का भेद नहीं मान सकता। देह का भेद... अभी कहेंगे, यह तो आत्मा का मूल स्वभाव, उसका अभाव, उसका—विकार का स्वाद, उससे उत्पन्न हुए कर्म, उनसे प्राप्त सामग्री और विकार आदि का लक्ष्य पर्याय—उन सब स्वभाव से विरुद्ध भाव की भावना से हुए भाव और उनसे प्राप्त संयोग को न देखो तो अकेला आत्मा ज्ञान-दर्शन के आनन्द से भरपूर अनुभव सम्पन्न है, ऐसा जो जाने, अनुभव करे, उसे अल्पकाल में मुक्ति होती है। कहो, समझ में आया ? देखो, कहेंगे।

जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे... अपने ज्ञान और दर्शनस्वभाव द्वारा... ऐसे धारणा नहीं। धारण तो ग्यारह अंग की,... अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा परलक्ष्यी अनन्त बार हुई। वह नहीं। अन्तर भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन पूर्ण स्वभाव से लक्षित तो होता है पर्याय द्वारा, परन्तु यह गुण परिपूर्ण है, ऐसा पर्याय में परिपूर्ण गुण का लक्ष्य करके जो गुण का धारक भगवान लक्षित करनेयोग्य है। ऐसी जहाँ अन्तर में शुद्धपने की दृष्टि हुई, तब शुद्ध के अनुभव में पूर्ण शुद्ध हूँ—ऐसा अपना अपने को भान हुआ। तब उसे अच्छी तरह जानना कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : अच्छी तरह का अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छी तरह का अर्थ भले प्रकार से। जैसा है, वैसा—ऐसा। अच्छी तरह अर्थात्? यह ज्ञान में धारणा कर ली कि ऐसा आत्मा, वह कहाँ इसे (भासित हुआ है)? ऐसे अन्तर ज्ञान-दर्शन लक्षण से भरपूर पूर्ण तत्त्व, वह लक्ष्य करनेयोग्य है, ऐसे अन्तर्मुख में जब तक न हो, तब तक उसने ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण लक्षवाला मैं हूँ, ऐसा उसने जाना-माना नहीं। समझ में आया?

देखो, यह कहते हैं। जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे, वह देह के भेद से जीवों का भेद नहीं मान सकता। क्यों? क्यों?—कि देह से उत्पन्न जो विषय-सुख... जिसे आत्मा के लक्षण से लक्षित भगवान आत्मा हुआ नहीं, अनुभव किया नहीं, उसे विषय-सुख उनके रस के आस्वाद से... देह से उत्पन्न हुए (विषयसुख)। आत्मा से उत्पन्न हुए आनन्द के स्वाद का अनुभव नहीं, इसलिए देह से उत्पन्न हुए विषयसुख का रस एकाकार ज्ञेय करके उसके स्वाद से, उसका जो आस्वाद विकार का, पुण्य-पाप का, उससे विमुख... भाषा देखो! देह के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ पुण्य-पाप का विकारी स्वाद, उस स्वाद से विमुख शुद्धात्मा की भावना, उस स्वाद से विमुख शुद्धात्मा की एकाग्रता का स्वाद, उससे रहित। त्रिपुटी नकार किया। क्या कहा?

देह से उत्पन्न ऐसा विषयसुख। पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, यह सब विषयसुख है, वह आकुलता का सुख है, आकुलता है। वह आकुलता का स्वाद, उसका अनुभव, उससे विमुख, ऐसा शुद्धात्मा का आनन्द स्वाद अर्थात् भावना—शुद्धात्मा की एकाग्रता। जो राग की, पुण्य-पाप के सुख-दुःख के स्वाद की एकाग्रता (थी), उससे विमुख शुद्धात्मा की एकाग्रता। उस शुद्धात्मा की एकाग्रता से रहित। अब गुलॉट खाता है वापिस। उस शुद्धात्मा की भावना से रहित जो जीव, उसने उपार्जन किये... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण लक्षण से लक्षित हुआ आत्मा, उसके वेदन में तो अनाकुल आनन्द के स्वाद का रस का वेदन होता है। उससे नये कर्म बँधते नहीं, नये कर्म बँधते नहीं। तब देह के विषय के सुख के स्वाद में उससे विमुख शुद्धात्मा का स्वाद, उससे रहित। समझ में आया?

ऐसे शुद्धात्मा की भावना से रहित जो जीव, उसने उपार्जन किये... ऐसे जीव ने

उपार्जन किये ऐसे जो ज्ञानावरणादिकर्म,... पाठ में कर्म समुच्चय पड़ा है। 'यान्युपार्जितानि कर्माणि' अर्थ में स्पष्टीकरण किया है। पहली लाईन है। २४४। 'जीवेन यान्युपार्जितानि कर्माणि' क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना निज स्वाद स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द की एकाग्रतारूपी स्वाद चूककर देह के और विषय के पर सन्मुख के ध्येय के लक्ष्य से जो पुण्य-पाप का आकुलता का स्वाद, उसका नाम देह के विषय से उत्पन्न हुआ आनन्द स्वाद विकारी। उससे विमुख भगवान आत्मा का स्वाद, उससे रहित विकारी आनन्द के स्वाद से उपार्जित आठ कर्म। समझ में आया?

उसने उपार्जन किये जो ज्ञानावरणादिकर्म, उनके उदय से उत्पन्न हुए... क्या कहते हैं? कि स्वभाव शुद्ध चैतन्य प्रभु ज्ञान-दर्शन के लक्षण से लक्षित करे और पर्याय में आनन्द का अनुभव हो, उसे बन्धन होता नहीं। उसे नया बन्धन होता नहीं, पुराना बन्धन छूट जाता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति, उसे अन्तर के ज्ञान और दर्शन के सामान्य स्वभाव के लक्षण द्वारा, पर्याय में उस लक्षण द्वारा वह लक्ष्य आत्मा है, ऐसा जिसने पर्याय में आत्मा के अनाकुल आनन्द का स्वाद आया, उसे बन्धन नहीं होता, उसे आवरण नहीं होते। नये आवरण (आते) नहीं और पुराने आवरण रहते नहीं। इसलिए ऐसा कहते हैं कि देह के लक्ष्य से, व्यवहार के लक्ष्य से, पर के लक्ष्य से (हुए भाव)। शुभभाव, वह भी देह के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है, पर के लक्ष्य से। स्व के लक्ष्य से होता नहीं। जो पुण्यभाव, वह पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ, उसका जो स्वाद आकुलता का, उससे विमुख शुद्धात्मा का स्वाद एकाग्रता। उससे रहित अज्ञान के स्वाद के कारण उपार्जित आठ कर्म। इन आठ कर्म के उदय से प्राप्त सामग्री। ज्ञान की हीनता, दर्शन की हीनता, वीर्य की हीनता, वेदनीय के अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, नामकर्म के कारण संयोग इत्यादि। ज्ञानावरणादिकर्म, उनके उदय से उत्पन्न हुए देहादिक के भेद से जीवों का भेद... ऐसे अल्पज्ञान, अल्पदर्शन, अल्पवीर्य, पुण्य, पाप, काम, क्रोध, शरीर आदि के भेद। उनके भेद से जीव का भेद ज्ञानी मानता नहीं। समझ में आया?

यह तो परमात्मप्रकाश है न! भगवान परमात्मस्वरूप—परमस्वरूप, परम आत्मा परमस्वरूप, परमस्वरूप, अखण्ड आनन्द आदि परमस्वरूप के लक्ष्य से आनन्द की उत्पत्ति से तो बन्धन होता नहीं, पूर्व के आवरण टिकते नहीं। इसलिए उसके लक्ष्य को

छोड़कर, पुण्य और पाप के विकल्प के लक्ष्य से देह से उत्पन्न हुआ वह सब, उसके विषय से उत्पन्न हुआ, पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ पुण्य और पाप का भाव, उसका जो स्वाद, उसके स्वाद से विपरीत आत्मा की एकाग्रता भावनारूप स्वाद से रहित। उससे रहित जो पर की भावना से उपार्जित कर्म, उनसे बना हुआ संयोग, उनसे हुआ संयोग, बाहर संयोग देह का भेद, वाणी का भेद, कर्म का भेद, अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्प वीर्यता, पुण्य-पाप का भेद, वह सब स्वभाव के स्वाद से विपरीत स्वाद से उत्पन्न किये हुए आठ कर्म, उनका यह फल और भेद है। समझ में आया ?

देहादिक के भेद से जीवों का भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी कदापि नहीं मान सकता। आहाहा! अपना स्वभाव ही जहाँ ज्ञेय बनाया। पर्याय में, वर्तमान अवस्था में शुद्धात्माभिमुख पर्याय की और स्वज्ञेय की परिपूर्णता को पर्याय ने ज्ञेय बनाया। समझ में आया ? भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप द्रव्य और गुण से उसे वर्तमान पर्याय में अभिमुख होकर, सन्मुख होकर स्वज्ञेय परिपूर्ण द्रव्य, उसे ज्ञेय बनाया, उसकी दशा में आनन्द का अनुभव हुए बिना रहता नहीं। उसके द्वारा नया कर्म बिल्कुल बँधता नहीं। आहाहा !

भगवान आत्मा की भावनारहित, उसकी भावनारहित अर्थात् कि पूर्ण स्वभाव की एकाग्रतारहित, पुण्य-पाप के विकल्प में एकाग्रतासहित, पुण्य-पाप के भाव में एकाग्रतासहित उपार्जित आठ कर्म, उनसे प्राप्त हीनदशा और विकारभाव और संयोग, उनसे आत्मा को देखे, वह आत्मा को बराबर देख नहीं सकता। समझ में आया ? भाई ! यह तो अध्यात्म अन्तर की परमात्मा की बात है। यह कहीं बातों से बड़ा हो, ऐसा नहीं। बातों से बड़ा, क्या कहते हैं ? समझते हो ? नहीं, तुम्हारे हिन्दी में नहीं आता है ? ऐसा कि यह बात करे और बड़ा हो जाये। बड़ा नहीं खुराक ? वह तेल में बड़ा नहीं होता है ? ऐसा कि बात करने से बड़ा हो जाता है ? तेल चाहिए, आटा चाहिए उसमें। तो बड़ा होता है। बड़ा-बड़ा नहीं कहते हैं ? दहीबड़ा। अमल किसे कहना ? श्रद्धा और ज्ञान में यह बात लेना, उसका नाम अमल नहीं ? अमल का अर्थ क्या ? अमल का अर्थ क्या ?

भगवान निर्मलानन्द प्रभु एक समय की पर्याय जितना नहीं, पुण्य-पाप का विकार विद्यमान है, तथापि नहीं, बन्धन निमित्त में विद्यमान है-विद्यमान, तथापि नहीं

और जो चीज़ व्यक्त प्रगट पर्याय में नहीं, उसे पूर्ण वीर्य और प्रतीति द्वारा दृष्टि में लेना, उसका नाम अमल में, श्रद्धा और ज्ञान में अमल में आत्मा को रखा, ऐसा कहा जाता है। अमल में क्या रखना था ? दौड़ना था कहीं ? अपवास कर डालना था कि इसने पाँच अपवास किये और इसने पच्चीस किये, इसलिए बढ़ गया। धूल में भी नहीं। अब लाख करे न अपवास। अपवास कहाँ इसकी चीज़ थी।

मुमुक्षु : वस्त्र निकाल दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन निकाल दे ? वस्त्र थे ही कहाँ ?

यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प की अस्ति होने पर भी, आठ कर्म के बन्धन के निमित्तपने का सम्बन्ध होने पर भी, असंग भगवान राग और निमित्त से असंग हूँ, ऐसा जिस वीर्य ने, जिस श्रद्धा ने, जिस ज्ञान ने अपने पूर्ण स्वभाव को स्वीकार किया, उसे दृष्टि में अल्पज्ञता राग और निमित्त का त्याग हो गया। समझ में आया ? आहाहा ! वस्तु एक समय में अल्पज्ञ, वीर्य अल्प, ज्ञान अल्प, दर्शन और पुण्य-पाप के भाव अर्थात् चार घाति हो गये। चार घाति। ज्ञानावरणीय के निमित्त में अपनी अल्पज्ञता अपने कारण से, दर्शनावरणीय के निमित्त में दर्शन की अल्पता, अन्तराय के कारण से वीर्य की अल्पता, मोह के निमित्त में अपने कारण से पुण्य-पाप की विकारता। अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता और विपरीतता—विकार और संयोग। चार अघाति (कर्म) वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और संयोग। वह संयोग, विकार और अल्पज्ञता, जिनका दृष्टि में निषेध हो गया (कि) यह नहीं। इतना मैं नहीं; मैं पूर्णानन्द हूँ। समझ में आया ? आहाहा ! अब वह दृष्टि का त्याग क्या है, वह इसे समझ में नहीं आता। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : नजर में पड़े नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर में तो सूक्ष्म पदार्थ है, वह न्याय से नजर पड़े ? वह आँख तो जड़-मिट्टी है। ज्ञान प्रत्यक्ष, ज्ञान में प्रत्यक्ष हो, क्या इन्द्रिय से प्रत्यक्ष है इस जड़ से ? समझ में आया ? ज्ञान प्रत्यक्ष है। ज्ञान का स्वभाव प्रत्यक्ष है तो ज्ञान में प्रत्यक्ष करके जाने। रागादि पुण्यादि विकल्प और अल्पज्ञता, इतना नहीं। वह तो पूर्व के उपार्जित कर्म

के निमित्त के सम्बन्ध में वह हीन और विपरीत दशा और संयोग अर्थात् आठों ही कर्म आ गये, आठों ही कर्म आ गये। समझ में आया ? ज्ञान की हीनता, दर्शन की हीनता, वीर्य की हीनता में तीन कर्म का निमित्त आया, अपना उपादान और विकार की विपरीतता में मोह का निमित्त आया, चार और वेदनीय के कारण अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, आयुष्य के कारण शरीर आदि की स्थिति, नामकर्म के कारण यश-अपयश की प्राप्ति या यह शरीर, मन, वचन की प्राप्ति और गोत्रकर्म के कारण उच्च-नीच की प्राप्ति—यह सब मेरा नहीं। यह सब उपार्जित, आत्मा के आनन्द के स्वाद से विपरीत उपार्जित विकार के भाव के यह फलरूप से, कर्म और कर्म के फलरूप से यह संयोग है। आहाहा!

ऐसा अन्तर में भगवान् आत्मा स्वभाव की दृष्टि करे, उसे यह दृष्टि उड़ जाती है, इसलिए दूसरे जीवों को कर्म के संयोग से, उनकी अल्पज्ञता आदि के भेद से जीव का भेद ज्ञानी करता नहीं। आहाहा! जीवपना किसे कहते हैं ? वास्तव में लो। ध्यान रखो, कि कर्म, शरीर, वह अजीव; पुण्य-पाप के भाव, वे आस्रव। अल्पज्ञ पर्याय, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य, वह व्यवहारनय का पर्याय जीव है। व्यवहारनय का पर्याय जीव है, द्रव्य जीव नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ? तीन प्रकार किये—एक तो यह संयोगी चीज है, वह पर है। कर्म हो, शरीर हो, वाणी हो, वह पर। एक (बात)। आत्मा में पुण्य-पाप के विकार हों, वह विकारी भाव आस्रवतत्त्व है। दो (बात)। अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्पवीर्यता की वर्तमान प्रगट अंश अवस्था, उतना तो व्यवहारनय का पर्याय आत्मा है, निश्चय आत्मा नहीं। आहाहा! निश्चय द्रव्य का आत्मा तो अखण्ड परिपूर्ण स्वभाव। आहाहा! यह गजब आया! समझ में आया ?

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में द्रव्यस्वरूप। यहाँ तो यह बात लेनी है न, पूर्ण ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित। पर्याय नहीं। पूर्ण दर्शन के लक्षण से लक्षित। भले हो पर्याय में वेदन, परन्तु पूर्ण स्वभाव से, पूर्ण लक्षण से पूर्ण द्रव्य का लक्ष्य किया, ऐसे आत्मा को जिसने रागरहित एकत्व स्वभाव में होकर वीतराग स्वसंवेदन द्वारा आत्मा को जिसने जाना (कि) यह आत्मा पर से भिन्न है। इस प्रकार सब आत्माओं को पर से भिन्न ज्ञानी जानते हैं। पर्यायदृष्टि से उसका जो स्वरूप वर्तमान भिन्न-भिन्न वर्तता है, वह

पर्याय से है, ऐसा जानते हैं। निगोद से लेकर सिद्ध तक में पर्यायभेद से भेद है, इतना पर्याय से, व्यवहारनय से जानते हैं। वस्तुरूप से यह जानते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

संवर-निर्जरा की पर्याय भी एक समय की अवस्था, मोक्ष भी एक समय की अवस्था, सिद्धपद एक समय की अवस्था। पुण्य-पाप, वह आस्रवतत्त्व। शरीर, कर्म अजीव, वह जड़तत्त्व। जड़, आस्रव और एक समय की अवस्था, वह सब व्यवहारनय का वर्तमान विषय हुआ। उसे गौण करके जहाँ आत्मा पूर्ण दर्शन-ज्ञान लक्षण से लक्षित हुआ कि मैं तो परिपूर्ण स्वभाव हूँ। ऐसा भान होने पर पर्याय में वेदन आया, परन्तु वह वेदन आत्मा के साथ अभेद है। इस प्रकार सभी आत्माओं को द्रव्यदृष्टि से वस्तु से देखता है, इसलिए उसे समभाव... समभाव... किसी के प्रति विरोध, किसी के प्रति मित्र की एकता दृष्टि में आती नहीं। समझ में आया ? सिद्ध मित्र और सिर काटनेवाला शत्रु, वे दोनों वृत्ति-विकल्प दृष्टि में आता नहीं। वह तो संयोग है। संयोग तो मुझमें नहीं। तथा वह संयोग दूसरा आत्मा करे, उसमें भी नहीं। उसने तो एक विकल्प किया है। तो विकल्प तो आस्रवतत्त्व है, वह कहीं जीव नहीं। उसे शरीर की क्रिया ऐसे-ऐसे हुई, ऐसे-ऐसे हुई, वह तो जड़—अजीवतत्त्व है, इसलिए उसने कुछ किया नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! भगवान स्वयं परम आत्म। बहिरात्मा, अन्तरात्मा नहीं और यहाँ तो परमात्मा। परमात्म अपना स्वरूप, परम स्वरूप पूर्ण दर्शन-ज्ञान परम स्वरूप से लक्षित पूर्ण द्रव्य। इस प्रकार से जहाँ परमात्मस्वरूप दृष्टि में आया, भले वह वर्तमान अन्तरात्मा है पर्याय से, परन्तु दृष्टि में परमात्मा है। समझ में आया ? तो अन्तरात्मा की पर्याय भी एक समय की अवस्था है और यह वस्तु पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... दृष्टि का विषय पूर्ण है। दृष्टि का विषय दृष्टि नहीं। समझ में आया ? दृष्टि सम्यक् है, वह पर्याय है, परन्तु उसका विषय—दृष्टि का विषय पर्याय नहीं, पूर्ण है। आहाहा!

‘भूदत्थमस्सिदो’ की व्याख्या चलती है। ‘भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो ववहारो’ यह सूत्र (समयसार गाथा ११) महासिद्धान्त। ‘ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो

देसिदो दु सुद्धणओ । ' ' भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ' भूतार्थ परिपूर्ण दर्शन-ज्ञान लक्षण से लक्षित, ऐसा भूतार्थ पदार्थ त्रिकाल, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, पर्याय अभूतार्थ, मेरी पर्याय अभूतार्थ, दूसरे की अभूतार्थ । नहीं, ऐसा नहीं; है अवश्य, परन्तु वह दृष्टि में आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए उसे अभूतार्थ कहकर, गौण करके, यही आत्मा मेरा और ऐसे ही सब आत्मा हैं । आहाहा !

कोई निन्दा करता हो तो निन्दा का तो मात्र विकल्प है उसके पास । तो विकल्प तो आस्रव है । वह जीव है ? और अक्षर लिखे पुस्तक में, वह तो अजीवतत्त्व की पर्याय हुई है । क्या उस विकल्प के कारण पर्याय हुई है ? पत्र में लिखने में आया । वह पत्र तो परमाणु की पर्याय है, वह तो अजीवतत्त्व है । उस अजीवतत्त्व का यह जीव कर्ता है ? और वास्तव में वह विकल्प है, वह जीव का स्वरूप है ? अर्थात् उसने कुछ नहीं किया । उसने तो जानने-देखने का (कार्य किया), इसकी उसे खबर भले न हो । समझ में आया ? कौन किसकी निन्दा करे ? कौन किसकी प्रशंसा करे ? कौन किसको नीचे उतारे ? समझ में आया ? लाख अपराध करता हो विकल्प में, परन्तु वह तो आस्रवतत्त्व है । वह जीवतत्त्व है ? और अक्षर से बोलता हो भाषा से कोई विरुद्ध भाषा से । वह तो अजीवतत्त्व की पर्याय हुई । क्या उसने की है ? उस द्रव्य-गुण की पर्याय उसने की है ? और पृष्ठ में लिखा गया, वह तो पर्याय हुई । वह तो परमाणु की एक समय की पर्याय परमाणु की अजीवपर्याय है । वह अजीवपर्याय है । क्या उसने—आस्रवतत्त्व ने अजीवपर्याय की है ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन सामान्य, केवलज्ञान-दर्शन से लक्षित । आहाहा ! वह परमात्मा ही लक्ष्य में आया । सामने का जीव परमात्मा ही देखता है । वह अन्तरात्मारूप से पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय है और प्रगट पर्याय परमात्मा की, वह व्यवहारनय का विषय है । यह तो पूरा परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण गुण से, पूर्ण द्रव्य, पूर्ण गुण से पूर्ण द्रव्य । समझ में आया ? क्या हो परन्तु यह कुछ... ? वह तो इसे भासित हो, तब इसकी कीमत हो । वरना तो इसकी कीमत कुछ लगती नहीं कि यह बाहर से यह छोड़कर बैठो, यह छोड़कर बैठो ।

मुमुक्षु : यहाँ तो हथेली में चाँद बतलाने जैसी बात है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही ऐसी है । हथेली में क्या ? वस्तु ही ऐसी है ।

भगवान महान पदार्थ महामहिमावाला ज्ञान-दर्शन से भरपूर ऐसा प्रभु । ज्ञान-दर्शन ही यहाँ लिये हैं न ? (प्रवचनसार, गाथा) १९२ में यह लिया न ? ‘**एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं**’ ‘**अदिंदियमहत्थं**’ अतीन्द्रिय तो दूसरे पदार्थ भी अतीन्द्रिय हैं, परमाणु अतीन्द्रिय है, छहों द्रव्य अतीन्द्रिय है । कोई द्रव्य इन्द्रियग्राह्य नहीं । वह तो पुद्गल के परमाणु की स्कन्ध की विभावपर्याय यह दिखाई देती है । वह इन्द्रियग्राह्य है । परमाणु के बहुत स्कन्ध की पर्याय दिखती है । कोई द्रव्य है, वे तो सब अतीन्द्रिय हैं । छहों द्रव्य अतीन्द्रिय । और परमाणु, वह पुद्गल है । (शरीर) पूरा पुद्गल नहीं । यह काल आया था भाई सज्जाय में । नियमसार में । स्कन्ध है, वह व्यवहार पुद्गल है, वह तो औपचारिक पुद्गल । (वास्तव में) पुद्गल तो एक परमाणु है । तो एक परमाणु और सभी द्रव्य अरूपी आदि सब अतीन्द्रिय है, इन्द्रियग्राह्य कोई है ही नहीं । समझ में आया ?

अब जहाँ आगे अतीन्द्रिय आत्मा ज्ञान-दर्शन के लक्षण से लक्षित हुआ, वहाँ किस द्रव्य को वह स्वयं माने कि यह परमाणुवाला जीव है, विकारवाला जीव है, अल्पज्ञ अल्पदशावाला द्रव्य है ? समझ में आया ? अपनी पर्याय, राग और निमित्त को जहाँ गौण किया । होने पर भी गौण किया, विद्यमान होने पर भी गौण किया, तो दूसरे की विद्यमान दशा होने पर भी गौण करके (देखा कि) यह आत्मा है । इसने राग भी किया नहीं, वह तो आस्रवतत्त्व है । इसने निन्दा भी की नहीं, वह तो भाषा की पर्याय है । इसने प्रशंसा भी की नहीं । कोई प्रशंसा करे कि तुम ऐसे... ऐसे । वह क्या करे ? उसे तो विकल्प हुआ है । भाषा हुई वह उससे हुई है ? वह तो परमाणु की पर्याय, भाषावर्गणा की पर्याय हुई है । या परमाणु की भाषावर्गणावाली प्रशंसा करती है उसकी ? उसे विकल्प आया तो वह आस्रवतत्त्व है । उससे रहित वह है । इसलिए प्रशंसावाले को सुनकर यहाँ हर्ष होता है, ऐसा है नहीं । समझ में आया ? आहाहा ! यह तो वह गुजराती आया, इसलिए इतना स्पष्ट आया । हिन्दी में अटकना पड़ता है । समझ में आया ? हिन्दी में जरा भाषा खोजनी पड़ती है ।

यह वस्तु भगवान आत्मा... आत्मा न? या आस्रव? आत्मा न? या अजीव? पूर्ण आत्मा न? या एक समय का? वह यहाँ योगीन्द्रदेव कहना चाहते हैं। दिगम्बर मुनि जंगल में मस्ती मनाते थे। आहाहा! परमात्मा के साथ बातें करते थे। एक भाई था, नहीं वह? गिरधरभाई थे। वहाँ वडवा, नहीं? भोज-भोज। भोज था एक। भोजक। फिर उसकी ऐसी आदत। भोजक वह गानेवाला। प्रतिमा के पास जाये भगवान के पास। भगवान! अब तुम्हें प्रसन्न होना है या नहीं? भगवान को—मूर्ति को कहे कि अब हम कहाँ तक तुम्हारी सेवा करेंगे? कहो। वह बाहर के साथ बातें करे, यह (मुनि) अन्तर के साथ बातें करते हैं।

भगवान! तू परिपूर्ण है। मैं तुझे अपूर्ण मान सकूँ? तू परिपूर्ण है। उसे मैं आस्रववाला मान सकूँ? तू परिपूर्ण है। मैं उसे शरीर और अजीववाला मान सकूँ? समझ में आया? चैतन्यबिम्ब पड़ा है पूरा। अनन्त गुण का कन्द महाबिम्ब पूरी पाट पड़ी है बड़ी। जैसे बर्फ की पाट शीतल होती है। पाट समझे न पाट? शिला। उसी प्रकार चैतन्यशिला अरूपी, परन्तु वस्तु है न! अवस्तु है? वस्तु अरूपी कन्द है, निजानन्द सहजानन्द पूर्ण है। दल पड़ा है, ऐसा शरीर प्रमाण भिन्न। ऐसे आत्मा को मैं अपूर्ण मानूँ? उसे आस्रववाला मानूँ? उसे संयोगवाला मानूँ? तो दूसरे को ऐसा मानूँ? कि दूसरा संयोगवाला, वह आत्मा; आस्रववाला, वह आत्मा; अल्पज्ञ वर्तमान दशा वर्ते, उतना वह आत्मा। ज्ञायकतत्त्व की भूल पड़ गयी। सात तत्त्व हैं या नहीं? अजीवतत्त्व भिन्न, आस्रवतत्त्व भिन्न और अल्पज्ञ नहीं। जो ज्ञायकभाव, पूरा ज्ञायकभाव। समझ में आया? संवर-निर्जरा भिन्न तत्त्व गिना है। है तो निर्मल पर्याय, परन्तु भिन्न तत्त्व। क्योंकि एक समय की पर्याय है। मोक्षतत्त्व भिन्न गिना है। क्योंकि मोक्षतत्त्व एक समय की पर्याय है। आस्रव, बन्ध, अजीव ऐसे निकल गये। निर्मलता में संवर-निर्जरा-मोक्ष निकल गयी पर्याय। एक रह गया ज्ञायक आत्मा। समझ में आया? सात तत्त्व में यह कहा है। कुछ दूसरा कहा है? आहाहा!

भूतार्थ भगवान आत्मा एक त्रिकाल-त्रिकाल। अरे! यह वह दृष्टि तो लावे। आहाहा! मोक्ष एक समय की पर्याय, संवर-निर्जरा एक समय की पर्याय। शुद्ध परन्तु

एक समय की। आस्रव-बन्ध विकारी पर्याय अपना भाव बन्ध हों, विकार एक वह जड़ बन्ध अजीव में जाता है। जड़ बन्ध अजीवतत्त्व में गया। जड़ बन्ध, जड़ आस्रव, जड़... के आवे, वह सब जड़ में गया और इस ओर में संवर, निर्जरा, मोक्ष तीन पर्यायों और एक ओर ज्ञायकभाव। अब ज्ञायकभाव को संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय जितना मानना है? वह पर्याय तो बदलती है, वह (ज्ञायकभाव) तो एकरूप त्रिकाल रहता है। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने कुछ बात नहीं की। यह तो अलौकिक बात को सिद्ध किया है। ऐसे समझे नहीं कि यह पंचम काल के मुनि थे और उन्होंने.... अरे! पंचम काल... परन्तु परमात्मा था या नहीं? सुन न अब! पंचम काल का आत्मा है? आत्मा को लाओ अब कालवाला आत्मा कहो। कहो, आत्मा पंचम कालवाला है? आत्मा चौथे कालवाला है? आत्मा नारकी के क्षेत्रवाला है? आत्मा मनुष्य के क्षेत्रवाला है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वैभव की अपेक्षा से तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में वैभव रहा अजीव में धूल में। अजीव में डाला धूल में है। शरीर का रोग-अरोग धूल अजीव में गया। आत्मा को क्या है? समझ में आया? अरे! संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय एक समय की पर्याय वह वास्तव में अभूतार्थ है। आहाहा! वह केवलज्ञान, केवलदर्शन सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, वह कहीं निश्चय का विषय नहीं। सद्भूत व्यवहार। पर्याय अंश पड़ गया न, भेद पड़ गया न?

भगवान आत्मा यहाँ तो ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण, हों! परिपूर्ण लक्षण सामान्य ज्ञान-दर्शन केवलज्ञान—केवलदर्शनस्वभाव से स्वभाववान, वह तो अभेद हो गया। ऐसी दृष्टि होने पर भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी कदापि (भेद) नहीं मान सकता। अपने में नहीं मानते। दूसरे में नहीं। वह चिल्लाहट मचाये। अररर! परन्तु ऐसे-ऐसे कर्म और ऐसे पापी को ऐसा आत्मा मानना अभी? अब सुन न! यह कसाई का आत्मा, कोई कहे ... कसाई का आत्मा है? कसाई का भाव है एक समय की पर्याय। शरीर भी अजीव और बाहर की क्रिया, वह भी चिल्लाहट मचाये बेचारे। अररर! ऐसा करके। कल बहुत आया वापस। यह लोग एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का असर नहीं मानते, यह सारे

भारतक्षेत्र का नाश करनेवाले हैं। अररर! ऐसा आया है। सब उसके प्रमाण में होता है ... के कारण से। आर्यता का नाश करनेवाले हैं। अरे भगवान! एक रजकण की पर्याय दूसरे को स्पर्श करे, अडे की व्याख्या? छुए, उसकी व्याख्या क्या? व्याख्या क्या?

प्रत्येक एक समय में अनन्त पदार्थ वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... ऐसा अनादि से चला आता है ऐसा का ऐसा। अनन्त पदार्थ-अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति। ऐसे वर्तमान-वर्तमान प्रत्येक का अनन्त उत्पाद वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... दूसरे समय में वर्तमान, तीसरे समय में वर्तमान। उसमें प्रत्येक में अनन्त गुण का अनन्त उत्पाद एक समय में और दूसरे के, ऐसे अनन्त गुणों का उत्पाद (एक समय में होता है)। वह एक समय में ऐसा सब है। अब उसके कारण से यह और इसके कारण से वह, ऐसा है कहाँ? इसका अर्थ ही कि दूसरी चीज़ को निमित्त कहा जाता है। उसके कारण से यह (हो) तो निमित्त कहलाये नहीं। यह वस्तु।

पूरा दल ऐसा का ऐसा अनादि से अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु समय-समय में उत्पाद-उत्पाद, पूर्व का व्यय, वर्तमान उत्पाद अपने यहाँ उत्पाद। ऐसे अनन्त पदार्थ वर्तमान में उत्पादरूप ऐसे हो रहे हैं सब। अब इसका उत्पाद इसके कारण से और इसका उत्पाद इसके कारण से, यह है कहाँ वस्तु में? अर्थात् कि इसका अर्थ यह कि इसका असर इसमें, इसका प्रभाव इसमें (हो नहीं सकता)। भगवान! जरा शान्त तो हो बापू! यह तो आर्य आत्मा की बात है। तीर्थकर आर्य थे। ओहोहो! महान आर्य। सरलता। अर्थात् जैसा स्वभाव सीधा है, वैसा प्रगट हो गया। वह महान आर्य। वह महान आर्य पुरुषों की बातें, वह महा आर्य हुए बिना समझ में आये, ऐसी नहीं है। समझ में आया? कहो, रतिभाई! आहाहा!

देखो, देहादिक के भेद से जीवों का भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी... किसके ऊपर द्वेष? यह उसने यह लिखा। यह क्या इसका अर्थ? इसका अर्थ क्या? उसने लिखा है? तो अजीवतत्त्व की श्रद्धा तेरी कहाँ गयी? उसके भाव का ख्याल आया—प्रसिद्धि (हुई) उसका भाव इतना, इस जाति का विकल्प, यह ख्याल आया। वह

विकल्प वास्तव में स्वरूप में तो है नहीं। समझ में आया ? यह ऐसा उसने लिखा। सब ठीक है। जहाँ है, वहाँ है। ऐसी आत्मा की दृष्टि हुए बिना समभाव किसी प्रकार से होता नहीं। ऐसा कहे, समभाव करो... समभाव करो। क्या समभाव करे परन्तु ? यथार्थ वस्तु के स्वभाव के भान और विवेक बिना समभाव सहज हो नहीं सकता। सहज नहीं हो सकता। ऐसे रखो अपने द्वेष न करो। यह तो हठ हुई। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विकल्प आवे, परन्तु उसके विकल्प पर कहाँ वजन है ? वह तू स्वयं उसमें कहाँ आ गया है ? विकल्प आवे, उसमें कहाँ आत्मा आ गया है ? इसलिए समाप्त हो गया, वह विकल्प व्यय हो गया। समझ में आया ? यह तो भाई ! अन्तर की क्रीड़ा है। 'राणा क्रीड़ा छोड़, सेना आयी किनारे।' खबर है तुम्हारे ? इनके गाँव में हुआ था। यह राणपुर है न। साढ़े चार सौ वर्ष पहले एक राजा था। अभी गढ़ है, साढ़े चार सौ वर्ष पहले का। बड़ा गढ़ है। मजबूत गढ़ है। यादगीरी के लिये इतिहास में रखा। नीचे पूरकर क्या कहलाता है वह ? सीसम नहीं, सीसा। सीसा डालकर गढ़ रखा है न ? गया था। एक बार देखने गया था बहुत वर्ष पहले। गढ़ है। तो उसका राजा था। वह राणा क्रीड़ा करता था। क्रीड़ा। रमत समझे न ? शतरंज। कटक—लश्कर आया। वह खेल रहा था। 'राणा खेल छोड़, सेना आयी किनारे।' किनारुं गाँव है, वहाँ राणपुर से दो मील है। वह खेलता... परन्तु कहे यह आया। यह मारेगा, स्त्रियों—स्त्रियों को ले जायेगा। रानी बहुत होशियार थी। फिर उठा, फिर गया, फिर हार गया तो नहीं था परन्तु जरा उसने लक्षण बतलाया था, ऐसा कहा था उसने कि वहाँ आगे मेरी ध्वजा यदि गिर जाये तो समझना कि मैं हार गया। तो बीच में किसी ने उसकी ध्वजा गिरा दी अर्थात् राजा हार गया। इसलिए रानियाँ थीं, यहाँ रानियाँ, वह वहाँ कुँआ है, अभी बड़ी कुँआ है। भू... गिरी, सैंकड़ों रानियाँ मर गयी वहाँ गिरकर। वह कुँआ। देखा है न। कुँआ भी देखा हुआ है। उसमें रानियाँ गिरी थीं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि ! राणा क्रीड़ा छोड़, यह काल आया किनारे। पर के साथ तुझे कब तक क्रीड़ा करनी है ? समझ में आया ? तेरा राज सम्हालना है या

नहीं ? पुण्य और पाप की क्रीड़ा माँड़ी, संसार खड़ा किया, वह तेरी क्रीड़ा नहीं, भाई ! तेरी क्रीड़ा तो ज्ञान-दर्शन के लक्षण से लक्षित आत्मा को करना, वह तेरी क्रीड़ा । समझ में आया ? बाकी लाख बात हो और करोड़ बात, दुनिया उसके घर में रही ।

यहाँ कहते हैं, देह के भेद से पूर्व के उपार्जन से भेद दिखते हैं, वे अपने आत्मा के पूर्व के उपार्जन के कारण संयोग को भी जो अपने में देखता नहीं और घातिकर्म के निमित्त में अपनी अशुद्ध उपादान की पर्याय हीन पड़े, उसे भी मुख्यरूप से गिनता नहीं, वह आत्मा के लक्ष्य से लक्षित हुआ दूसरे को मुख्यरूप से कैसे उसे गिने ? सब भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर हैं । समझ में आया ? देह में भेद हुआ तो क्या, गुण से सब समान हैं,... गुण तो समान हैं, सामान्य ऐसे लठ्ठा पड़े हैं । चैतन्य का लठ्ठा चिद्रूप... चिद्रूप... चिद्रूप... चिद्रूप... उसका रूप तो यह है । विकार परिणाम उसका रूप है ? शरीर उसका रूप है ? कर्म उसका रूप है ? वाणी उसका रूप है ? बिल्कुल नहीं । समझ में आया ? देह में भेद हुआ तो क्या, गुण से सब समान हैं, और जीव-जातिकर एक हैं । दो बातें लीं । गुण से समान और जातिकर एक । जीव जाति एक जाति है । पूरी जाति पड़ी है भगवान की । आहाहा ! यह वीर्य की खुमारी का पावर तो लावे । बातें करनी है कि यह किया और वह किया और छोड़ा । अभी यह वस्तु क्या है, उसकी तो खबर नहीं ।

यहाँ पर जो कोई ब्रह्माद्वैतवादी... वह जाति एक कही न, इसलिए तर्क उठाया । वेदान्ती नाना जीवों को नहीं मानते हैं,... वेदान्ती, ब्रह्माद्वैतवादी अलग-अलग अनेक आत्माओं को नहीं मानते । और वे एक ही जीव मानते हैं,... एक जीव मानते हैं । उनकी यह बात अप्रमाण है । झूठी है । प्रमाण में सच्चे के ज्ञान में आती नहीं । अप्रमाण समझे ? सच्चे ज्ञान में वह बात आती नहीं । वह खोटी है । उनके मत में एक ही जीव के मानने से बड़ा भारी दोष होता है । वेदान्त एक ही आत्मा माने । यहाँ तो जाति अपेक्षा से एक कहा, गुण अपेक्षा से एक कहा है, परन्तु संख्या अपेक्षा से एक मानते हैं, वे एक माने तो बड़ा भारी दोष होता है । वह इस तरह है कि एक जीव के जीने-मरने,... एक जीवे तो सब जीना चाहिए, एक मरे तो सब मरना चाहिए । एक सुखी संयोगवाला तो सब सुख संयोगवाले (होना चाहिए), एक दुःखी तो सब दुःखी होना चाहिए, एक रोगी तो

सब रोगी होना चाहिए, एक निरोगी तो सब निरोगी होना चाहिए। ऐसे सब जीवों के उसी समय जीना, मरना, सुख, दुःखादि होना चाहिए... यदि एक हो तो। ऐसा है नहीं।

क्योंकि उनके मत में वस्तु एक है। एक हो तो एकपने का जीवन, एकपने का मृत्यु, एकपने का सुख-दुःख की कल्पना अथवा संयोग। सब एक समान होना चाहिए। एक समान है नहीं। इसलिए एक प्रकार के जीव हैं नहीं। एक ही जाति का जीव है, ऐसा नहीं। जीव भिन्न... भिन्न... भिन्न हैं। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिए उनका वस्तु एक मानना वृथा है, ऐसा जानो। लो! अब दो लक्षण के ऊपर यह तीसरा लक्षण डालते हैं अब। अब यहाँ तक ज्ञान-दर्शन लक्षण लिया। १०२ में अब चारित्र लक्षण डालते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १०२

आगे जीव ही को जानते हैं, परन्तु उसके लक्षण नहीं जानते, वह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं:— १०२ (गाथा)।

२२९) देह-विभेयडूँ जो कुणइ जीवडूँ भेउ विचित्तु।

सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसणु णाणु चरित्तु ॥१०२॥

तीन लक्षण। एक के दो और दो के तीन। ज्ञानलक्षण कहा था पहला, फिर ज्ञान-दर्शन दो लक्षण कहे थे, फिर यहाँ ज्ञान-दर्शन (चारित्र) तीन लक्षण। अनेक गुण सम्पन्न हैं, इसलिए एक ही गुण उसमें है, ऐसा है नहीं। नीचे अर्थ।

जो शरीरों के भेद से... 'जीवानां' जीवों का... 'विचित्रम्' नानारूप भेद करता है, वह उन जीवों का दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण नहीं जानता,... अब आया। क्या कहा? कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी के देह के भिन्न, विकार के भिन्न और आत्मा की भिन्नता जानता है। समझ में आया? उन जीवों का दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण नहीं जानता,... उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अभेद लक्षण भगवान्, उसे वह जानता नहीं। वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र के लक्षण वाला वह आत्मा है। और तू भेद से भेद जान, परन्तु

वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र लक्षण गुणसम्पन्न भगवान है। भेद जानता है तो यह अभेद को तू जानता नहीं। उस अभेद के लक्षण से आत्मा को पहिचानता नहीं। समभाव की खुमारी चढ़ाई है। समझ में आया ? कौन मारे पत्थर ? खबर नहीं तुझे ? वह अजीवतत्त्व है। अजीव का क्षेत्रान्तर होना, वह अजीव की पर्याय का कार्य है। वह कोई दूसरे आत्मा का कार्य नहीं। किसने कहा ? तुझे क्या होता है ? उसे देखकर राग होता है ? तो तूने अजीवतत्त्व—वह पत्थरवाला जीव है, ऐसा तूने माना। भाई ! यह तो वीतरागमार्ग की बातें हैं न, भाई ! कल कहा नहीं था जरा ? लड़कों ने पूछा था। यह चिल्लाहट मचाते हैं न सब। कहा, देखो, भाई ! यह देखो। देखो, यह खड्डा होता है। देखो, अँगुली बिना खड्डा होता है ? यह तो प्रश्न है।

भगवान ! इस बात में बहुत अलौकिकता है। परमाणु अनन्त हैं। परमाणु अनन्त हैं। एक समय में अनन्त हैं, एक समय में अनन्त परमाणु का उत्पाद भिन्न-भिन्न अनन्त है तो इससे उसमें यह खड्डा पड़ा, यह बात खोटी है। यह खड्डा उसकी पर्याय के उत्पाद से, उस प्रकार से क्षेत्र का ऊँचा-नीचा होने की योग्यता से उसकी पर्याय हुई है। इससे हुई है, यह देखनेवाला परमाणु द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उत्पाद स्वतन्त्र है, ऐसा देखता नहीं। आहाहा ! भाई ! यह तो दुनिया से अलग जाति की बात है। वह लड़के ऐसा दबाते थे कहा, पैर दबाते हो उसमें देखो, इसके कारण से यह दबता है या नहीं ? अरे अरे ! यह बात किस प्रकार करना ? यह हाथ के अनन्त रजकण, उसके अनन्त रजकण। जहाँ दबाये वहाँ अनन्त है न ? यहाँ अनन्त। अब वे अनन्त-अनन्तरूप से पृथक् रहकर, अनन्त-अनन्तरूप से क्षेत्र की पर्याय और भाव की पर्याय स्वयं से होती है या पर से होती है ? भाई ! यह तो अजब-गजब की बातें हैं यह। यह वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। माने, न माने, जीव की स्वतन्त्रता है। अनन्तरूप से वे काम करते हैं। ऐसा हुआ, इसलिए यहाँ खड्डा पड़ा, बिल्कुल बात सच्ची नहीं है। उसे अनन्त द्रव्य की स्वतन्त्रता की स्वीकृति नहीं। अनन्त रजकण हैं, वे अनन्तरूप से रहकर, अनन्तरूप से रहकर एक हुए बिना पृथक् रहकर अपना उत्पाद वह वहाँ क्षेत्र में और काल में स्वयं से कर रहा है। ऐसा न जानकर, उससे यह होता है, यह अनन्त को अनन्तरूप से नहीं रखकर, अजीव अनन्त हैं, ऐसा वह मानता नहीं। समझ में आया ? उसे आत्मा के अनन्त गुण हैं।

यह मान्यता बिल्कुल नहीं आती। समझ में आया? गजब बात! कभी सुनी न हो ऐसी। ऐई! बसन्तीलालजी! कल लड़कों ने कहा था, बोलो देखा यह।

भगवान! एक अनन्त को अनन्तरूप से रखेगा न? यह पहले तो ऐसा कहा कि जीव को जीवद्रव्यरूप से रखेगा न! पर्याय जितना नहीं, विकार जितना नहीं, अजीव का नहीं, अजीव का नहीं, अजीव में नहीं, अजीव के कारण से नहीं। अब अनन्त अजीव जो हैं, वे अनन्त अजीव। जीव की संख्या से अनन्त। प्रत्येक समय में अनादि-अनन्त। अनादि-अनन्त है न? और परिणमन तो सबका एक समय में होता है न? या किसी का परिणमन पहले और किसी का परिणमन बाद में, ऐसा है? लाओ एक दृष्टान्त कि एक परिणमन बाद में और एक परिणमन पहले। किसका हो परन्तु? एक समय धारा वर्तमान, जितने अनन्त द्रव्य हैं, उनका एक समय में सबका परिणमन उत्पादरूप से हो रहा है। अब वह अनन्त को अनन्तरूप से यदि अजीव के तत्त्व में, सात तत्त्व में अजीव की श्रद्धा कब कहलाये? कि अनन्त को अनन्तरूप से रखकर अनन्त में जो पर्याय, उससे होती है, वह दूसरे से नहीं होती, ऐसा जब माने तो अजीव के अनन्त तत्त्व को अनन्तरूप से उसने जाना-माना कहलाता है। वरना अजीव के अनन्तपने का खण्ड करके माने तो अजीवतत्त्व को मानता नहीं। इतने अनन्त अजीव जो हैं, उन अनन्त की पर्याय एक समय में साथ में है भिन्न-भिन्न, उसे जाननेवाला ज्ञान, उन अनन्त के खण्ड कर डाले (तो) अनन्त में अनन्तरूप से नहीं, परन्तु उसमें इकट्ठे होकर काम करता है। तो वह ज्ञान खोटा। यहाँ ज्ञान की अवस्था खोटी होती है। तो उसकी ज्ञान की अवस्था की सच्ची श्रद्धा नहीं। तो वह ज्ञान धरनेवाला पूरा ज्ञान लक्षण गुण, उस गुण की भी उसे श्रद्धा है नहीं। और गुण को धरनेवाले द्रव्य की श्रद्धा नहीं। समझ में आया? देखो! ऐसा गुजराती चला।

मुमुक्षु : नजरों से देखते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : नजरों से दिखता है, परन्तु प्रत्यक्ष दिखता है। और नजर कहना किसे? नजर किसे कहना? एक पण्डित आये थे। पण्डितजी! वह कौन कहलाये? वह पण्डित नहीं? हीरालाल पण्डित हैं न, भाई! प्रोफेसर। यह धवल... वे आये थे। दो दिन

रहे थे। वे थे और एक उपाध्याय, नहीं? कोल्हापुरवाले। फिर उन्होंने प्रश्न किया। प्रश्न किया। देखो, यह है न यह छोटी लकड़ी। यह देखो, सुतार ने काटकर की है या नहीं? प्रत्यक्ष दिखता है न? करवत... वह क्या कहलाती है नीचे वह? टेबल। उसने प्रश्न किया। यहाँ बैठे थे ऐसे। ऐसे नीचे टेबल है। यह प्रश्न किया। यह टेबल सुतार ने। सुतार समझे? बढ़ई। उसने बनायी। सुनो! सुतार ने बनायी तो सुतार चला गया तो क्यों रही ऐसे? सुतार चला गया तो (टेबल) ऐसे क्यों रही? तब कहे, परन्तु प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष... प्रत्यक्ष ज्ञान में होता है या प्रत्यक्ष जड़ को होता है? प्रत्यक्ष ज्ञान को लागू पड़ता है या प्रत्यक्ष जड़ को लागू पड़ता है? यह प्रदेश। वहाँ प्रत्यक्ष है? या यहाँ प्रत्यक्ष है?

यहाँ ज्ञान में प्रत्यक्ष राग बिना का संयोग बिना का ज्ञान हुआ तो सर्व पदार्थ किसी भी संयोग से उसमें पर्याय होती है, यह दृष्टि निकल जाती है। अपनी रागरहित दृष्टि हुई। राग संयोगीभाव है। तो संयोगीभाव बिना की दृष्टि हुई, तो ओहो! राग, तथापि मैं राग से ज्ञान नहीं करता। मैं तो मेरी ज्ञान की पर्याय ज्ञाता से करता हूँ। ऐसा सर्व पदार्थ में संयोग से वहाँ पर्याय होती है, वह संयोगीभाव राग से छूटा नहीं। राग और स्वभाव को एक माननेवाला, संयोगी द्रव्य और संयोगी पर्याय हो, ऐसा माननेवाला पर का भेद कर नहीं सकता। अपना भेद पड़ा... समझ में आया? बहुत बात थोड़ी आयी। कहा, भाई! यह कहाँ? यह हमने तो बात की, वह तो स्थूल स्कन्ध है। स्थूल खण्ड सूक्ष्म करने पर बहुत थोड़े कह दिये। सूक्ष्म स्कन्ध बहुत हैं। सूक्ष्म स्कन्ध में ... अनन्त परमाणु आये-जाये, इकट्ठे होते हैं। कौन है? वह तो स्थूल स्कन्ध की बात की। इतना थोड़ा। यह तो बहुत थोड़े हैं। स्थूल बहुत थोड़े हैं, सूक्ष्म बहुत हैं। और सूक्ष्म में दो से अनन्तगुणे परमाणु, ऐसे बहुत स्कन्ध हैं। ... ये उसमें आये-जाये। ... ऐसा स्थूल में दिखाई दे कि इससे यह हुआ। यह स्थूल दृष्टि में देखते हो तो सूक्ष्म में क्या है? सूक्ष्म में कोई अपने कारण से जरा ... अपनी पर्याय की हीनता से होता है। ... ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष कर सकता है। क्या इन्द्रिय में... प्रत्यक्षपना जड़ में है? उसमें प्रत्यक्षपना है? प्रत्यक्ष तो ज्ञान की पर्याय है। तो ज्ञान की पर्याय प्रत्यक्ष हुई कि रागरहित मेरा स्वरूप है, मैं चैतन्य हूँ। तो प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी पर्याय एक समय में ऐसे अनन्त रहकर करते हैं। उसके कारण से यह (हुई), यह बात छूट जाती है। समझ में आया? ... भाई!

यहाँ तो भाई यह गुजराती आया न, गुजराती। छूट से गुजराती आवे। उस हिन्दी में जरा रुकना पड़े भाषा खोजने। तुम्हारे हिन्दी लोगों को भाई! थोड़ा गुजराती समझ लेना चाहिए। कैलाशचन्दजी ने लिखा था एक बार। थोड़ा गुजराती समझकर अपने जाना। उनकी भाषा वहाँ की चलती है। भाषा तो जड़ की वहाँ चलती है। ऐसी हिन्दी बराबर नहीं चलती।

क्या कहते हैं, देखो! योगीन्द्रदेव ने डाला चारित्र। एक यह आत्मा और तेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र वीतरागपर्याय से लक्षित—ज्ञान से लक्षित, दर्शन से लक्षित, चारित्र से लक्षित। यह वीतरागपर्याय से लक्षित होता है। ऐसे को परिपूर्ण आत्मा कहते हैं। तो ऐसा सब आत्मा है। ऐसा लक्षण से तो नहीं देखते हैं और बाहर के भेद से देखते हैं तो तेरी दृष्टि में विरोध, दृष्टि में विरोध है। तुम सर्व आत्मा को समान देखते नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक ०९-०६-१९६५

गाथा - १०२ - १०३, प्रवचन - १४३

१०२ गाथा, परमात्मप्रकाश। अर्थ, फिर से अर्थ। शब्दार्थ है न? उपोद्घात तो बाँधा है कि आगे जीव ही को जानते हैं, परन्तु उसके लक्षण नहीं जानते,... शीर्षक में ऐसा है। प्रत्येक गाथा में भिन्न-भिन्न बात है। यह जीव है, ऐसी सामान्य (बात) करे, परन्तु उस जीव का लक्षण दर्शन, ज्ञान और चारित्र मिलाकर यहाँ लक्षण करते हैं। भगवान आत्मा वस्तु है, उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र यह लक्षण है। उस लक्षण से आत्मा को लक्षित करना चाहिए। उसे यह ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के भेद से भेद नहीं करना चाहिए। दृष्टि में अपना स्वभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्र, इन वाला यह तत्त्व है, इस लक्षण से भान हो सकता है। उस आत्मा की पहिचान उसके लक्षण से है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि से उसकी पहिचान नहीं। जो शरीरों के भेद से जीवों का नानारूप... जीव के अनेकरूप भेद... अर्थात् भिन्नता करता है। वह उन जीवों का दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण नहीं जानता,... बाहर के भेद से अकेला भेद देखे, वह वस्तु के स्वरूप को (नहीं जानता) भगवान सर्वज्ञ तीर्थकरदेव ने आत्मा को तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र लक्षणवाला कहा है।

मुमुक्षु : एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब जीव नहीं। एकेन्द्रिय जीव नहीं। वह तो आया है न प्रवचनसार में। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, वह तो ज्ञानस्वरूपी जीव है। धर्मचन्दजी! सुना है या नहीं? वह तो व्यवहारनय से, संयोग से, संयोग से उसे समझाया है।

भगवान आत्मा... इसमें चारित्र लक्षण बढ़ाया और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नहीं, ऐसा टीका में स्पष्ट किया। परन्तु इसका अर्थ यह किया, जीव की जाति एक है, यह तो

बात आ गयी थी और जीव का दर्शन, ज्ञान लक्षण, वह भी आ गया था, परन्तु यहाँ चारित्र को विशेष करके वीतराग पर्याय द्वारा आत्मा को जाना जा सकता है। अर्थात् कि पुण्य और पाप के विकल्प से नहीं जाना जा सकता। शरीर के—जातिभेद, वर्णभेद, जातिभेद से आत्मा नहीं पहिचाना जा सकता। क्योंकि वह तो व्यवहारनय का विषय भिन्न है। भगवान आत्मा को अन्तर में ज्ञान, दर्शन और शान्ति, वीतरागता, ऐसे आत्मस्वभाव सन्मुख वीतराग और दर्शन, ज्ञान परिणाम लक्षण द्वारा आत्मा जाना जा सकता है। आत्मा की कीमत, आत्मा की महत्ता, आत्मा की बड़ाई अर्थात् महिमा, वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र से है। जातिभेद, वर्णभेद से उसकी महिमा नहीं। यह बात यहाँ विशेष कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : मोटप का अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता—मोटप—बड़ाई। बड़ाई-बड़ाई। बड़ाई देखे। यहाँ आता है, देखो। भावार्थ है, देखो!

भावार्थ :- देह के ममत्व के मूलकारण... देखो, क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने तो, ज्ञान, दर्शन और शान्ति द्वारा पहिचानो, ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा अन्तर में भाव के ज्ञान, दर्शन और शान्ति अर्थात् अरागी परिणाम द्वारा आत्मा की भावना करनी चाहिए, ऐसा न करके देह के ममत्व के मूलकारण... इस शरीर का मूलकारण ममता का। ख्याति, अपनी बड़ाई। देखो, अन्दर स्वरूप की बड़ाई, महत्ता न मानकर बाहर शरीर आदि की बड़ाई से महत्ता की ममता करता है। देह के ममत्व का मूलकारण है, ऐसा कहते हैं। देह में एकत्वबुद्धि का मूलकारण... स्वभाव में एकत्वबुद्धि का मूलकारण दर्शन, ज्ञान और चारित्र लक्षण से स्वभाव में एकाग्र होता है। वह एकाग्रता छोड़कर देह के ममत्व का मूलकारण बड़ाई। मैं बड़ा, देह से बड़ा, जाति से बड़ा, ब्राह्मण में बड़ा, जाति में बड़ा—ऐसा मानकर। और पूजा... अपनी पूजा... पूज्य प्रभु पूर्ण परमात्मा अपना स्वरूप महापूज्य है, उसकी भावना छोड़कर देह की ममता का मूलकारण बाहर की पूजा। बाहर दुनिया माने, प्रसिद्ध होऊँ, दुनिया कीर्ति करे। वह सब शरीर की ममता का मूलकारण वह पूजा और बड़ाई है। समझ में आया ? और लाभरूप... स्वरूप का लाभ न लेकर शुद्ध चैतन्य प्रभु

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की शान्ति द्वारा उसका लक्ष्य होकर लाभ हो सके—स्वरूप का लाभ, वह लाभ न लेकर देह की ममता का कारण बाह्य पदार्थ का लाभ हो, ऐसा अनादि से अज्ञानी मान रहा है।

मुमुक्षु : निगोद में भी ऐसा मानता होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता यही पड़ी है उल्टी। निगोद में क्या ? निगोद के जीव को अव्यक्तरूप से तो कहा नहीं ? ‘सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा’। कामभोग अर्थात् कर्ता-भोक्ता की वार्ता सर्व जीवों ने सुनी है। सर्व जीव में निगोद भी आये। एक शरीर में अनन्त जीव निगोद काई में पड़े हैं आलू, शक्करकन्द में (पड़े हैं)।

मुमुक्षु : कान नहीं, कहाँ से सुनें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कान की कहाँ बात है ? यह आत्मा के स्वभाव की भावना करता नहीं, इसलिए राग की एकता की भावना एकता में पड़ा है, उसने राग की इच्छा और राग का भोगना, यह ही वार्ता सुनी अर्थात् इसका ही वह वाच्य अनुभव कर रहा है। क्या कहा ? सुनना तो वाचक है कि कामभोग की वार्ता इसने सुनी है। सुनी है, इसका अर्थ ? इसका वह अन्तर में अनुभव करता है निगोद। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि, लक्ष्य से भ्रष्ट अनादि से है और इसलिए वह राग, विकार, विभाव की एकाग्रता में वह पड़ा है तो कामभोग की ही कथा को भाव से वेदता है। वेदता है, इसलिए इसने काम-भोग की ही बात सुनी है। समझ में आया ? दीपचन्दजी ! कौन ? निगोद के जीव। आहाहा !

मुमुक्षु : दुनिया में कौन कान बिना सुने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कान बिना कौन सुनता है ? सुनता है तो भाव में अन्दर। कान तो निमित्त है। श्रवण का ज्ञान होता है, वह ज्ञान की पर्याय में होता है। यहाँ तो ऐसा कहा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कि ‘सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि, सव्वस्स वि... सबने भी कामभोगबंध कहा’ यह सब, एक सम्यग्दृष्टि के अतिरिक्त एकेन्द्रिय निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक का दिगम्बर साधु ‘मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।’

उसने कामभोग की वार्ता सुनी है। आहाहा! वह राग का कर्ता होता है और विकल्प का भोक्ता, वह सुनी है। समझ में आया? देवचन्दजी! यह तो भाव की बात है न। यहाँ द्रव्य का क्या काम है?

भगवान तीर्थकरदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिनकी वाणी में आया कि भाई! तूने तो काम-भोग, काम अर्थात् इच्छा अथवा काम अर्थात् करना—विकल्प का करना, राग का करना, कषाय का करना और भोग अर्थात् उनका भोगना, वह कर्ता-भोक्ता की बात तूने अनन्त बार वेदी है। सुनी, परिचय किया और वेदी—अनुभव की है। एकेन्द्रिय जीव से लेकर नौवें ग्रैवेयक जानेवाला दिगम्बर मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी ने कामभोग ही भोगे हैं। यह काम-भोग बाहर की बात नहीं। भगवान आत्मा की विरुद्ध की इच्छा और उसका वेदन वह काम-भोग की कथा है। समझ में आया? यह करवट बदली नहीं इसने। भगवान! पडखुं समझते हो? करवट-करवट।

यह चैतन्य भगवान एक समय में पूर्ण आनन्द, ज्ञानानन्द... जैसे सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त हो गये, उसी जाति का, नात का आत्मा है। ऐसा आत्मा पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर, उसके लक्षण से नहीं जाना, इसलिए देहवाला लक्षण और रागवाला लक्षण मेरा, ऐसा मानकर देह की ममता का मूलकारण यह पूजा, लाभ आदि का राग, उसमें एकत्व हुआ, उसे भोगा तो उसने राग और द्वेष को भोगा, वही वार्ता सुनी है। परन्तु 'एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।' 'एयत्तस्सुवलंभो' परन्तु भगवान आत्मा पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव के विकल्प से रहित एकत्व और वह एकत्वपना अर्थात् पर से भिन्न, स्वभाव से एकत्व और 'णवरि ण सुलहो विहत्तस्स' वह विकल्प से विभक्त, विकल्प से विभक्त और स्वभाव से एकत्व। आहाहा!

भगवान आत्मा, वह यह कहते हैं, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के लक्षण से लक्षित उस स्वभाव में एकत्वता हुई और पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक्ता हुई। णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।' यह 'एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।' अस्ति-नास्ति करके अनेकान्तस्वरूप कहा। भगवान आत्मा, ओहो! शुद्ध आनन्द की निधि, उसे उसके लक्षण से—स्वभाव के लक्षण से कभी जाना नहीं। इसलिए उसे विभाव जो पुण्य और पाप विकार

आदि, उसमें वेदन और कर्तापना पड़ा है, वह उसने वेदन किया है, जाना है, परिचय किया है, आदतन हो गया है, आदत हो गयी है। इसलिए उसे देखना चाहता है, परन्तु अपने दर्शन-ज्ञान लक्षण से आत्मा को देखना नहीं चाहता। भाई! बातें ऐसी हैं जरा।

यहाँ कहते हैं, यह 'आर्त रौद्रस्वरूप खोटे ध्यान' क्या कहा? भगवान आत्मा की ख्याति, उसकी पूजा और उसका लाभ, वह तो धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्र के लक्षण से लक्षित, ऐसा होने पर तो पर्याय में धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है। उसे छोड़कर यह देह के ममत्व का मूलकारण बड़ाई, पूजा और लाभ परद्रव्य का, शुभभाव का लाभ या परवस्तु का, ऐसे लाभ के अन्दर आर्त और रौद्रध्यान में रुककर खोटे ध्यान... उनसे रहित। अब कहते हैं। ऐसा जो खोटा ध्यान, उससे रहित निज शुद्धात्मा का ध्यान... देखो, भाषा ऐसी गुलौंट मारकर (बात की है)। निज शुद्धात्मा का ज्ञान। जिसमें पर की पूजा, लाभ और बड़ाई, शरीर की ममता का कारण, वह जिसमें नहीं। स्वभाव की एकता का कारण भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्दमूर्ति, उसकी एकाग्रता का कारण ऐसा जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान, उसे छोड़कर। निज शुद्धात्मा का ध्यान, उसके अभाव से... यह तो कर्म कैसे उपार्जित किये? ऐसा कहते हैं। कहीं स्वभाव के आश्रय से कर्म उत्पन्न नहीं होते। स्वभाव के आश्रय से विकार नहीं होता तो कर्म उपार्जन का निमित्त भी कहाँ से हो उसमें? भगवान आत्मा में कर्म के बन्धन में निमित्त होने का स्वभाव ही नहीं। समझ में आया? वस्तु का स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण से लक्षित, उसमें उसे कर्मबन्धन के कारण में निमित्तरूप से होना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? निमित्तरूप से होने का स्वभाव हो तो कायम रहे। वस्तु के स्वभाव में कर्म को निमित्त होना, ऐसा स्वभाव नहीं है। क्योंकि वस्तु है, वह तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण से लक्षित ऐसी चीज़ है। उसमें कर्म को बँधाना और उसमें निमित्त होना, ऐसी आत्मा में दशा है नहीं। वह तो पर्याय अज्ञानभाव से उत्पन्न किया हुआ भाव है। समझ में आया?

पाँचवीं गाथा में आता है न? पाँचवीं नहीं? १०५, समयसार। दो आते हैं। पाँच आयेंगे। यह देखो पाँच। संस्कृत टीका। इस लोक में वास्तव में आत्मा स्वभाव से...

उसका स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा जो स्वभाव, उससे पौद्गलिक कर्म को निमित्तभूत नहीं होने पर भी,... वह तो यह दूसरे प्रकार से योगीन्द्रदेव बात करते हैं। बात तो जिस प्रकार से है, उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से उसका वर्णन करके स्पष्टीकरण करते हैं। यहाँ कहते हैं कि इस जगत के अन्दर भगवान आत्मा वास्तव में स्वभाव से... उसका स्वभाव तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द का स्वभाव। आनन्द अर्थात् यहाँ चारित्र। वह पौद्गलिक कर्म को.... आठ कर्म की पर्याय का परिणमना, वह तो आठों रजकण के कारण से है, परन्तु उसमें निमित्तभूत... निमित्तभूत नहीं होने पर भी... भगवान आत्मा निमित्त नहीं हो सकता। स्वभाव निमित्त क्या हो? विकार ही जहाँ नहीं तो विकार नहीं, वहाँ बन्धन को निमित्त कौन हो? समझ में आया?

ऐसा होने पर भी, अनादि अज्ञान के कारण... यह बात है। अनादि अज्ञान के कारण... सीधी बात की है, हों! ऐसा नहीं। 'कर्म के कारण से ज्ञान' भाषा नहीं ली। अनादि अज्ञान के कारण... भगवान ज्ञान-दर्शन-चारित्र के लक्षण से लक्षित होने का स्वभाव ही उसका है, उसका स्वरूप ही यह है। ऐसे स्वभाव में नये कर्म को निमित्त होना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। तथापि, अनादि अज्ञान के कारण पौद्गलिक कर्म को निमित्तरूप होते.... पौद्गलिक कर्म को बँधने में उपादान तो उसकी एक समय की पर्याय कर्म की, परन्तु उसे निमित्तरूप होते ऐसे अज्ञानभाव से परिणमता होने से... अज्ञानभाव से पर्याय में स्वभाव का अनादर और विकल्प की एकता का आदर, ऐसे अज्ञानभाव से होता, परिणमता, पर्याय में परिणमता है। यह वापस भ्रम नहीं, ऐसा कहते हैं। पर्यायरूप से परिणमता है। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, यह भ्रमणा कोई चीज़ ही नहीं, ऐसा नहीं। पर्याय में अज्ञान का परिणमन, अज्ञान पर्याय में परिणमन है।

अज्ञानभाव से परिणमता... भाषा यह, देखो टीका यह! एक स्वरूप के स्वभाव के अज्ञानभाव से पर्याय में परिणमता होने से निमित्तभूत होने पर,... यह तो निमित्तभूत वह अज्ञानभाव। पौद्गलिक कर्म उत्पन्न होते हैं,... उसके कारण से कर्म। यह तो निमित्तभूत। इसलिए पौद्गलिक कर्म आत्मा ने किया, ऐसा निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभाव से भ्रष्ट,... भगवान आत्मा विज्ञानघन है। निर्विकल्प अर्थात् अभेद है। ऐसे स्वभाव से

भ्रष्ट हुए, विकल्पपरायण... हुए, राग में तत्पर हुए अज्ञानियों का विकल्प है... क्या ? कि यह पौद्गलिक कर्म आत्मा ने किया। वह विकल्प उपचार ही है, परमार्थ नहीं। वस्तुस्वरूप में वह उपचार होने का भी स्वभाव नहीं। परन्तु अज्ञानी विकल्प में एकाकार होता है, इसलिए मैंने कर्म बाँधा, ऐसा विकल्प से भ्रष्ट हुए का उपचार भाव है। समझ में आया ? भाई ! बात सूक्ष्म है। वीतराग का मार्ग लोगों ने बाहर से माना है, वैसा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : क्षणिक भूल है, प्रभु !

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक, हाँ। परन्तु उस क्षणिक भूल का स्वरूप क्या है, वह जानना चाहिए न। क्षणिक तो एक शब्द हुआ। क्षणिक भूल अर्थात् ? त्रिकाली आनन्दकन्द दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभावसम्पन्न प्रभु में नये कर्म को निमित्तरूप होना, ऐसा वस्तु के स्वभाव में भाव नहीं। तथापि अज्ञानभाव से परिणमित, स्वरूप के अभानरूप से हुआ ऐसा जो विकारीभाव, वह नये कर्म को निमित्त होने पर उस अज्ञानी को, निर्विकल्प से भ्रष्ट हुए को, यह मैंने काम किया—ऐसा उपचार अज्ञानी को लागू पड़ता है। ज्ञानी को कर्मबन्धन में उपचार निमित्त है, ऐसा उसे होता नहीं। समझ में आया ? यह 'हरि का मारग है शूरो का, नहीं कायर का काम।' यह तो लोग बोलते हैं वह हरि। वह हरि नहीं। यह 'पापं ओघं हरति इति हरि।' पण्डितजी ! पंचाध्यायी में आता है न ? पंचाध्यायी में हरि की व्याख्या आती है। पंचाध्यायी में। नाम दिये हैं न। हरि की व्याख्या कि हरि कौन ? 'पापं ओघं हरति इति हरि।' पंचाध्यायी में श्लोक पड़ा है।

भगवान आत्मा पूर्ण स्वभावस्वरूप पाप अर्थात् अज्ञानभाव का व्यय करने का उसका स्वभाव है। उसे उत्पन्न करने का स्वभाव नहीं। व्यय करना, वह भी एक व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु उसका अभाव होना, ऐसा उसका स्वभाव है। विकार का उत्पन्न होना, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं। ऐसे मार्ग को 'हरि का मारग है शूरो का, कायर का नहीं काम, प्रथम पहले मस्तक रखकर वळतां लेना नाम।' ऐसा आता है उन लोगों में। अन्यमति में आता है। वह हरि अर्थात् यह। वह कोई हर्ता-फर्ता हरि नहीं कहें। भगवान आत्मा हरि।

अन्दर में पूर्णानन्द अनन्त गुण, अनन्ता-अनन्त गुण का पिण्ड। उसमें मूल लक्षण यहाँ तीन लिये दर्शन, ज्ञान और चारित्र मूल। उसके लक्षणवाला और उनसे लक्षित वीतरागपर्याय से लक्षित हो, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। ज्ञान, दर्शन और वीतरागपर्याय से लक्षित हो भगवान। क्योंकि ऐसा उसका स्वभाव है। उसका अनादर करके विकल्प में एकता करके और अज्ञानभाव से परिणमकर, नये कर्म तो उसके कारण से आते हैं। परन्तु मैं निमित्त हूँ, इसलिए व्यवहार से उनका कर्ता हूँ—ऐसा उपचार निर्विकल्प विज्ञानघन (से भ्रष्ट) अज्ञानी को लागू पड़ता है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। **निज शुद्धात्मा का ध्यान उसके अभाव से...** भगवान आत्मा इस देह के ममत्व का मूलकारण पूजा, बड़ाई और लाभ परवस्तु का। परवस्तु की बड़ाई, परवस्तु की पूज्यता और परवस्तु का लाभ। स्ववस्तु की पूज्यता, स्ववस्तु की महिमा बड़ाई, स्ववस्तु का लाभ चूककर। अपने शुद्धात्मस्वभाव का ध्यान **उसके अभाव से इस जीव ने उपार्जन किये...** ऐसे अभाव से। भगवान स्वभाव के भान से कर्म में निमित्तपना हो, ऐसा तो है नहीं। तब अब कर्म उपार्जित में निमित्त कौन? कि शुद्धात्मा के, निज शुद्धात्मा... भगवान का आत्मा नहीं, उनका आत्मा उनके पास रहा निर्मल, यह निज शुद्धात्मा का ध्यान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् जिनसे वह ध्येय में आवे वह। ऐसा भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लक्षण से, ध्यान से, ध्येय में आवे, उसे छोड़कर **इस जीव ने उपार्जन किये जो शुभ-अशुभ कर्म...** उपार्जन किये अर्थात्? भाव किये। भाव में निमित्त हुआ उसको। अर्थात् उसने उपार्जन किया, ऐसा व्यवहार से कथन किया गया है।

ऐसे कर्म जो उपार्जित किये—बाँधे, **उनके उदय से...** देखो, कर्म बाँधा। स्वरूप के ध्यान के अभाव से कर्म हुआ, उसमें निमित्त हुआ, उसमें कर्म का उदय हुआ, तब शरीर मिला। ऐसी त्रिपुटी बात की है। कुछ आत्मा में शरीर मिले, ऐसा कोई भाव है नहीं। परन्तु स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का ज्ञान, स्वभाव की वीतरागता, भले चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण है न, उतनी वीतरागता है, हों! स्वरूपाचरण। शुभ विकल्प आचरण, वह क्रिया का आचरण, राग आचरण। और स्वरूप आचरण, वह रागरहित

भगवान आत्मा की दृष्टि, ज्ञान होकर आचरण, वह उतना चारित्र है। उतने अंश में अन्दर शान्ति है। समझ में आया ? प्रतीति में पूर्ण आया, साथ में विशेषरूप से शान्ति भी अन्दर अरागीरूप से परिणति हुई। ऐसे स्वरूप आचरण को छोड़कर और शुभाशुभ परिणाम में आया हुआ जीव, उसने नये कर्म निमित्तरूप से उपार्जित किये, ऐसा कहकर, उन कर्म के उदयकाल में जिस वस्तु में राग नहीं, उसे शरीर मिला। समझ में आया ? उसे शरीर का संयोग इस प्रकार से हुआ। विकल्प के ध्यान में उपार्जित कर्म, उनके उदय में प्राप्त शरीर। समझ में आया ?

उसके भेद से भेद मानता है,... उसके भेद से भेद मानता है। उसको दर्शनादि गुणों की गम्य नहीं है। ऐसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्यायवाला भगवान आत्मा, ऐसे गुणवाला गुणी, ऐसे गुणवाला गुणी। गुणी-गुणी करे अकेला। ऊपर ऐसा लिया इन्होंने, भाई ! जीव ही को जानते हैं, परन्तु उसके लक्षण नहीं जानते,... ऐसा शीर्षक बाँधा है। पाठ में ऐसा नहीं परन्तु इन्होंने जरा (शीर्षक बाँधा है)। पाठ में तो इतना है कि 'अथ जीवानां निश्चयनयेन योऽसौ देहभेदेन भेदं करोति स जीवानां दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणं न जानातीत्यभिप्रायं' इसलिए इसमें से निकाला कि जीव को जाने कि जीव है... जीव है... जीव है। परन्तु जीव है, वह ऐसे लक्षणवाला है। समझ में आया ? वैसे तो वर्णन तो आता है कि जाति एक... परन्तु गाथा में अन्तर करते हैं, प्रत्येक गाथा में अन्तर करते हैं। अधिक स्पष्ट भिन्न-भिन्न बात करते हैं, ऐसी। वह की वह गाथा नहीं, वह का वह भाव नहीं। ऐसे जीव-जीव करे, परन्तु जीव के लक्षण ज्ञान-दर्शन-चारित्र को न जाने, इसलिए जगत के शरीर के भेद से अज्ञानी भेद मानता है। वस्तु में भेद कहाँ है ? वह तो वस्तु तो स्वरूप है, वह है।

मुमुक्षु : शरीर कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर नहीं, राग नहीं तो उसके भेद से भेद पड़ा, वह भेद माने तो वस्तु को जानता नहीं। अर्थात् वह वस्तु के गुण को जानता नहीं, ऐसा कहना है, भाई यहाँ तो। वह वस्तु को जानता नहीं... उसे दर्शन-ज्ञान आदि गुणों का गम्य नहीं। भगवान आत्मा, वह जानना-देखना और शान्ति / चारित्र लक्षण से लक्षित वस्तु, ऐसी

पड़ी है। ऐसा नहीं जानता, वह अज्ञानरूप से राग से एकत्व होकर उपार्जित कर्म, उनसे प्राप्त शरीर, उसके—शरीर के भेद से भेद (अनुभव करता है कि) यह ब्राह्मण है और यह क्षत्रिय है और यह कुम्हार है और यह कारीगर है और यह हरिजन है और यह ढेढ है और यह चांडाल है। समझ में आया? उसे दर्शन-ज्ञानादि गुणों की गम्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लक्षण कहा। ऐसे लक्षण से ज्ञात हो ऐसा, पहिचाना जाये, ऐसा आत्मा, उसे शरीर के भेद से पहिचानने लगा, कहते हैं कि तुझे गुण की गम्य नहीं, गुण की गम्यता नहीं। समझ में आया? यह आकार का बाद में लेंगे। १०३ में, भाई! आकार का। आकार बदलेगा सूक्ष्म, बादर। प्रत्येक गाथा में बात को बदलते हैं। समझ में आया? आहाहा! गम्य नहीं।

भगवान आत्मा ऐसे सब अनन्त आत्मा भगवान ने देखे, एकेन्द्रिय से लेकर सब, वे सब ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड आत्मा है। यह विकल्प और विकल्प से निमित्त होकर कर्म और कर्म से प्राप्त शरीर आदि, वह सब उस वस्तुस्वरूप से नहीं है। उसके लक्ष्य से लक्षण जाने, फिर जाने कि इस शरीर में यह ब्राह्मण कहलाता है। वह तो व्यवहार से जाननेयोग्य हुआ। वस्तु आदरनेयोग्य रही नहीं। जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह तो एक ही बात सिद्ध करते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान। बात यही सिद्ध करते हैं। आचार्य भिन्न-भिन्न रीति से निश्चय स्वभाव का ज्ञान और भान होने पर सभी जीव ऐसे ही हैं (कि) ज्ञान, दर्शन गुणों से गम्य हो सकते हैं। फिर उसमें भेद दिखते हैं, उन्हें जानते हैं। जाने इतना, दूसरा कुछ नहीं। ज्ञेयरूप से जाने। उसमें यह आत्मा ऐसा है, ऐसा नहीं। उसके भेदवाली पर्याय ऐसी है, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप समझाते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाषा है न अपने विश्राम की। समझ में आया?—यह तो विश्राम की भाषा है। विश्राम का वाक्य नहीं कहा था? विश्राम का। बीच में—मध्य में। कहा था न। हमारे मामा थे बहुत पुराने वृद्ध। यह ६५ वर्ष पहले की बात है। बहुत

पुराने वृद्ध। फिर बातें करें दूसरों के साथ। साहेब की भली मति होओ... साहेब की भली मति होओ.. करे। हम लड़के, इसलिए कहा, मामा! तुम यह क्या बोलते हो? साबली मध्य बोले। बात करते हुए एक बात हो, वहाँ दूसरी बात से पहले साबली मध्य। मैंने कहा, यह साबली मध्य क्या बोलते हैं यह? यह तो उन्हें भी खबर नहीं, भाई! हाँ, वह बोला जाता था। यह ६५ वर्ष पहले की बात है। हमारे मामा थे, गृहस्थ थे, सुखी (धनाढ्य) थे, सब ऐंई... लहर की, कमाने का कुछ नहीं... साबली मध्य ऐसी बातें करे। साबली मध्य क्या तुम कहते हो? कोई दूसरे बैठे थे प्रायः उन्होंने कहा कि अपने ऐसी पद्धति है अभी कि बात करते हुए एक कुछ थोड़ी बात हुई, फिर विश्राम लेना हो तो साबली मध्य अर्थात् साहेब को भली मति होओ, ऐसा वाक्य था। पण्डितजी! यह तो ६५ वर्ष पहले की बात है। हों! हमारे मामा को मैंने पूछा हुआ सब, हों! एक शब्द कहा तो बोलते हो क्या तुम यह? कुछ हमको समझ में नहीं आता और क्या समझें यह? तुम साबली मध्य... साबली मध्य... किया करते हो। तब दूसरा कोई कहता था कि देखो, ऐसा है। अपनी परम्परा की पद्धति बातें करते हुए दूसरे को बहुमान देकर, साहेब को भली मति होओ, (ऐसा कहा जाता है)। रतिभाई! इसी प्रकार यहाँ वाक्य के विश्राम में 'समझ में आया? समझ में आया?' यह भी साहेब को भली मति होओ, ऐसा है यह। यह पहले से आदत पड़ गयी है न, भाई! समझ में आया? यह शब्द आता है।

एक छोटी उम्र का लड़का कहता था। इतना कोई बैठा था। महाराज कहते हैं कि समझ में आया? पाँच-छह वर्ष का लड़का था कोई। जगजीवनभाई के पुत्र का पुत्र। जगजीवन बावचन्द। दलुभाई का पुत्र इतना छोटा। महाराज कहते हैं कि समझ में आया? कहा, ठीक भाई यह। यह साबली मध्य है। साहेब को मति में समझ में आया? ऐसा पहला बहुमान वाक्य था, बहुमान वाक्य था।

यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं कि अरे आत्मा! यह गुणों के गम्य तुझे नहीं, हों! भगवान ऐसे ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान का महा पिण्ड, दर्शन का महा रसकन्द, चारित्र का पूरा वस्तुस्वभाव, पूरा स्वरूप ऐसा चारित्रमय, वीतरागमय, शान्तिमय—ऐसे स्वभाव के

लक्ष्य से आत्मा जानना चाहिए, ऐसा न जानकर तू दो भेद से आत्मा को जानता है (तो) तुझे गुण की गम्यता नहीं, भाई! गुण का ज्ञान नहीं, हों! यह तुझे अकेला अज्ञान का परप्रकाशक ज्ञान है। स्वप्रकाशक ज्ञान गुण का होने के पश्चात् ऐसा भेद हो, वह परप्रकाश में उसे ज्ञानी जानता है। समझ में आया? परन्तु वह पूरा उसका मूलस्वरूप है, ऐसा ज्ञानी जानता नहीं। कहो, समझ में आया?

यद्यपि... अब गति बताते हैं न जरा? **पाप के उदय से नरक-योनि,...** यह तो कर्म बँधा। वस्तु में नहीं, स्वभाव में नहीं, गुण में नहीं परन्तु गुण के अभान से, गुण के गम्य लक्ष्य होना चाहिए, उसके अभान से गम्य किया राग और विकार। उसके लक्ष्य से बँधा कर्म, उस कर्म के उदयकाल में, पाप के उदय में नरकयोनि, पुण्य के उदय से देवों का शरीर। देव का शरीर। पुण्य के कारण देव का शरीर (मिले)। **शुभाशुभ मिश्र से नर-देह...** मिश्र लिया है न? शुभ और अशुभ फल का अत्यन्त शुभ विशेष नहीं और (अशुभ नहीं)। नरदेह, ऐसा कहा यह। नियमसार में ऐसा लिया। **मायाचार से पशु का शरीर मिलता है,...** कपट-कपट। कुटिलता होती है न? बहुत ही कुटिलता दम्भ कि जिसका आत्मा वक्र हो गया, उसके फल में शरीर वक्र अर्थात् आड़ा-तिरछा हो गया, टेढ़ा शरीर हो गया। समझ में आया? मनुष्य हो, देव हो, नारकी भी ऐसा हो, हों! बहुत पापी है परन्तु है ऐसे (सीधा)। और मायाचारी कपट और दम्भ, वक्रता और आड़ाई, वक्रता। बहुत आड़ी की तो, कहते हैं कि दशा में तो आड़ी हुई, परन्तु फल में (आड़ा शरीर मिला)। वस्तु में वह आड़ापन नहीं, ऐसा बतलाना है यहाँ तो। उस आड़ापन के फल में कर्म हुआ और कर्म के फल में यह वक्र शरीर आड़ा ऐसा मिला है। हाथी, घोड़ा, ऊँट, चूहा ऐसे आड़ा। उसे न देख, कहते हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। वह तो पाप, पुण्य और मायाचार निमित्त हुए और कर्म हुए और कर्म के फलरूप से यह (शरीर मिला), वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं। समझ में आया? भगवान! उसे तू ज्ञान, दर्शन और चारित्र के गुणवाला देख। ऐसे फलवाला न देख, वह तो एक जाननेयोग्य चीज़ हुई पर्यायबुद्धि की। समझ में आया?

मायाचार से पशु का शरीर मिलता है, अर्थात् इन शरीरों के भेद से जीवों की अनेक चेष्टायें देखी जाती हैं,... हाथी का हो तो देखो एक सूँढ़ ऐसी हो। ऐसे-ऐसे हो,

घास ऐसे उठाये। घास ऐसे उठाये न सूँढ़ में लेकर। यह सब चेष्टा। और काबर-काबर है न? काबर नहीं कहते? हिन्दी में क्या कहते हैं? पक्षी नहीं, बहुत आवाज किया करे। काबर कहते हैं बस वह। यह चिड़ा है। वह काबर तो बैठी-बैठी इतनी आवाज करे। ऊँह... ऊँह... ऐसा किया करे यहाँ से। अलग-अलग आवाज निकाला करे। वह निकालता नहीं, वह तो जड़ की पर्याय होती है। कहते हैं कि ऐसी चेष्टा देखकर तू आत्मा ऐसा है, ऐसा न जान और उस आत्मा ने ऐसा किया भी नहीं। उसने किया हुआ विकार अज्ञानभाव। निमित्त होकर हुआ कर्म उपादान, उसके कारण से। यह भी उपादान उसके कारण से, यह शरीर आदि आये, उसमें कर्म निमित्त हुआ। समझ में आया? आहाहा!

इस भेद से जीवों की अनेक चेष्टायें देखी जाती हैं,... समझ में आया? मनुष्य का शरीर। स्त्री के अवयव अलग, पुरुष के अलग, हीजड़ के अलग। किसी के कुछ अवयव अलग। नाक, कान एक-एक मनुष्य देखो। यह कानबुट्टी है न, वह किसी की चिपकी हुई, किसी की लम्बी, किसी की छोटी, किसी की चौड़ी, प्रत्येक में अन्तर है। किसी में एकसमान किसी में नहीं होता। क्योंकि आत्मा की विकृतिभेद से भेद, कर्मभेद से भेद, फलभेद से सब भेद (होता है)। एक-एक में अन्तर। यह नाक में अन्तर, हों! यह नाक की एक अणी में देखोगे तो लाखों मनुष्यों की अणी में अन्तर। यह अणी समझते हो न? किसी की एकसरीखी नहीं होती। इस आँख के यह है न यह? वह किसी के एक समान नहीं होते। यह कोणे में अन्तर, सबमें अन्तर।

मुमुक्षु : भगवान ने कितने साँचा रखे होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : साँचा।

यह यहाँ कहते हैं कि बापू! एकरूप तेरा स्वरूप, उसे भूलकर अनेक विकार में एकत्वता हुई, वह निमित्त पाकर कर्म तो उपादान तो स्वयं से परिणमे और वे निमित्त होकर इस शरीर का आकार पुद्गल का उसरूप से परिणमा है। वास्तव में तो वह पुद्गल का निमित्त है कर्म का। वह कहीं उसके कारण से हुआ नहीं। कर्म का उदय है, वह तो पर परमाणु है, पर परमाणु है, यह दूसरे परमाणु हैं। कहीं इन परमाणुओं के

कारण यह परमाणु, ऐसा है नहीं। यहाँ तो अकेला चक्र सब इकट्ठा गिनकर गिनाना है। बाकी यहाँ जो परिणमती है परमाणु के पुद्गलों की वर्तमान अवस्था, उसकी अपनी योग्यता से परिणमती है। तब उसे असाता या जिस कर्म का उदय हो, उसका निमित्त कहा जाता है। परन्तु पूरा निमित्त, उसका कार्य और उस कर्म में निमित्त हुआ विकार—उन सब भेद से भेद तू देखता है, उसे न देख। भगवान् एकत्व लक्षण से लक्षित अभेद है। समझ में आया? ऐसा सुना भी नहीं होगा। मोरारभाई के पुत्र का नाम क्या? गिरधरभाई! मोरारभाई थे वहाँ ... में, जामनगर। उसकी यह बातें आती हैं कि दया पालो, इसकी यह करो। कुछ लेना-देना माल न हो बात में।

यहाँ तो वीतराग परमात्मा... आहाहा! वीतराग पर्याय से तू लक्षित हो सके, तब तो फिर वह नये कर्म बाँधने में निमित्तपना भी तुझमें नहीं और उसे भूला, उसके लक्ष्य से और यहाँ तेरा लक्ष्य गया, विकल्प में पुण्य-पाप की एकत्वबुद्धि में, बस! वह एकत्व में गया। विभक्त में जाना चाहिए, स्वभाव एकत्व में होना चाहिए, वह विभक्त करना, उसमें एकत्व हुआ। उसके कारण से बन्धन में निमित्त हुआ। बन्धन के कारण से यह सब संयोगों में अन्तर दिखता है। भगवान्! उनके अन्तर से अन्तर न देख। वह तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द के लक्षण से लक्षित ऐसा भगवान् आत्मा है। आहाहा! इसके बिना समभाव प्रगट नहीं होगा।

भगवान् हैं, सब भगवान् हैं। बापू! यह भूला तो भी पर्याय में। वस्तु में भगवान् है। वस्तु में भूला नहीं। यह पर्याय में भूला है। समझ में आया? वह तो एक समय है। भूल एक समय। दो समय नहीं रहती। द्रव्य त्रिकाल, गुण त्रिकाल, भूल एक समय, अनन्त जीवों की। अनन्त जीव कहे। एक समय की भूल उत्पाद, दूसरे समय में उत्पाद रहता ही नहीं। समझ में आया? उस पर्याय के लक्षण में आ गया एकत्व में कर्मबन्धन में निमित्त होकर जो यह भेद होते हैं, ऐसा न देख, कहते हैं। ऐसा देख। एक समय की पर्याय, वह विकृत है। वह कहीं तेरा स्वरूप है? ऐसा देख... ऐसा देख... ज्ञान-दर्शन लक्षण से, कायम पड़े हुए दर्शन-ज्ञान-आनन्द के कायम स्वभाव से स्वभाववान् को देख तो भेद दिखाई नहीं देंगे। समझ में आया? लो, और समझ में आया?

परन्तु दर्शन-ज्ञान लक्षण से सब तुल्य हैं। देखो, सब भगवान् अभव्य या भव्य। पर्याय में किसी को अनन्त संसार हो या एकावतारी हो (या) पर्याय में विकल्प। वस्तु में तो कुछ भव भी नहीं और भव का भाव भी नहीं। वस्तु में, वस्तु के गुण में भव भी नहीं और भव का भाव भी नहीं। भगवान् भव के भावरहित ऐसा गुणवाला अकेला तो गुण में भव का भाव कहाँ था? ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनन्दगुण में भव का भाव है? वह भवरूप होने का उनका स्वभाव है? वह पर्याय में खड़ा करता है। नहीं स्वभाव में और खड़ा करता है उठाईगीर। भगवान् ज्ञान-दर्शन-चारित्र से लक्षित, जिसमें भव और भव के कारण नहीं, इस प्रकार से न देखे तो, इस प्रकार से देखे तो सब समान। क्यों? कि उपयोग लक्षण के बिना कोई जीव नहीं है। सिद्ध किया। 'उवओगलक्खणो जीवो' 'सव्वणहुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।' देखो, है न? समयसार। समझ में आया? समयसार में है न? कितनी २५? २४? उसमें कुछ है अवश्य। २४ (गाथा समयसार)।

सव्वणहुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।

कह सो पोग्गलदव्वी भूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥२४॥

भगवान् सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर जिनकी परम ईश्वरता पर्याय में सब पूरी प्रगट हो गयी है, ऐसे सर्वज्ञ भगवान् ने 'दिट्ठो' जीव को 'उवओगलक्खणो णिच्चं' नित्य त्रिकाल जीव लक्षण से देखा है। और तू राग, पुण्य और पाप तथा देह के भिन्नवाले लक्षण से देखना चाहता है, तुझे आत्मा की खबर नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो। 'कह सो पोग्गलदव्वी भूदो' ऐसा भगवान् रागमय और शरीरमय कैसे होता है? कैसे होता है? भगवान् ने उपयोगमय देखा, ऐसे ज्ञान-दर्शन उपयोगमय। समझ में आया? प्रत्यक्ष भगवान् के ज्ञान में शुद्ध सत्ता जीव की उन्हें भासित हुई है। पुण्य-पाप का आस्रव भगवान् ने तो जीव से भिन्न देखा है। पुण्य-पाप का भाव आस्रव तो भगवान् ने जीवतत्त्व से भिन्न देखा है। और शरीर, कर्म अजीव तो आस्रवतत्त्व से भिन्न देखा है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान् ने पुण्य-पाप के राग और यह अजीव आदि से (भिन्न) उपयोगमय जीव को देखा है। वह रागमय और अजीवमय कैसे हो? वह आस्रवमय और अजीवमय

कैसे होगा ? वह आस्रवमय और अजीवमय कैसे हो ? समझ में आया ? समयसार तो भण्डार है । ४१५ श्लोक और २७८ कलश । और उसमें वापस टीका । ४००० लगभग टीका है । गजब भर दिया है ! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान ने तो उपयोग लक्षण के बिना जीव नहीं है, ऐसा कहा है । इसलिए ज्ञानीजन सबको समान जानते हैं । सबको समान जानते हैं, समभाव । पर्याय में अन्तर है, एक समय की भूल है, एक समय की । एक समय की भूल से समय-समय की नयी भूल । समय-समय की नयी भूल । वह भूल नहीं रहती । वैसी भले हो, वह नहीं रहती । केवलज्ञान एक समय रहे, वह दूसरे समय में वह नहीं रहता । वैसा होता है, वह नहीं रहता । उसी प्रकार यहाँ संसार में एक समय की मिथ्यात्व की पर्याय, उस समय की पर्याय दूसरे समय नहीं रहती । भले एक प्रकार की सदृश कोई हो, वह नहीं रहती, एक समय । एक ओर भगवान त्रिकाली, एक ओर एक समय । देखने की दृष्टि को बताते हैं यहाँ तो ।

ज्ञानीजन सबको समान जानते हैं । निश्चयनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवों के लक्षण हैं,... देखो, संस्कृत टीका में है, हों ! 'निश्चयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणानां जीवानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यचाण्डालादिदेहभेदं दृष्ट्वा रागद्वेषौ न कर्तव्याविति । आहाहा ! ज्ञानीजन—धर्मी अपने स्वभाव को ज्ञानमय, आनन्दमय, शान्तमय देखता हुआ वह लक्षण, ऐसा जानकर ब्राह्मण, क्षत्री,... यहाँ जरा अलग किया भाई ! वे सब कहे न कि लक्षण से लक्षण ज्ञान-दर्शन लक्षण तो आ गया था, एक जातिरूप आ गया था । एक है, ऐसा आ गया था एक बार । संग्रहनय से एक है, जाति से एक है, ऐसा भिन्न-भिन्न प्रकार से आ गया था । इसलिए यहाँ यह डाला इन्होंने । टीकाकार ने कि इसमें आचार्य को ऐसा कहना है । ऐसा जानकर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, चांडालादि देह के भेद देखकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए । पर्यायबुद्धि से देखनेवाला ऐसा उसे देखकर राग-द्वेष करता है । द्रव्यस्वभाव देखनेवाला वह देखकर उसे देखकर राग-द्वेष होता नहीं । कमजोरी के कारण से हो, वह दूसरी चीज़ हुई । समझ में आया ? वह सब अस्थिर हुआ । सब जीवों के मैत्रीभाव करना, यही तात्पर्य है । मैत्री भी इस प्रकार से, हों ! ज्ञान-दर्शन,

आनन्द अर्थात् चारित्र लक्षण से लक्षित होकर, सबको समान जानकर विषमभाव होना नहीं (और) समभाव होना, इसका नाम मैत्री। दोनों एक होते नहीं कहीं मैत्री होने से। यह १०२ हुई। अब आकार का वर्णन कहना चाहते हैं, देखो!

★ ★ ★

गाथा - १०३

आगे सूक्ष्म बादर-शरीर जीवों के कर्म के सम्बन्ध से होते हैं, सो सूक्ष्म बादर,... देखो, स्थावर, जंगम ये सब शरीर के भेद हैं, जीव तो चिद्रूप है, सब भेदों से रहित है, ऐसा दिखलाते हैं—आहाहा! ऐसा कहते हैं, भाई! तुझे सूक्ष्म शरीर और बादर शरीर छोटा-बड़ा आकार से। भगवान तो असंख्य प्रदेशी समान है। उसमें यह आकार भेद से छोटा-बड़ा अथवा शरीर के स्त्री के अवयवों में अन्तर, पुरुष के अवयवों में अन्तर, यह सब आकार के अन्तर से तू भेद जाने, वह वस्तु का स्वरूप नहीं। समझ में आया? शरीर के आकार से स्त्री के शरीर का आकार भेद हो, पुरुष का भेद हो, हींजड़े का भेद हो, पावैया का भेद हो, हाथी का भेद हो, ऊँट का प्रत्येक का आकार भेद है न? आकार की बात है, हों! यहाँ प्रधानता आकार की है। इसलिए सूक्ष्म-बादर उठाया है न? सूक्ष्म, बादर, स्थावर असंख्य प्रदेशी हैं। टीका में लेंगे।

ऐसे देखो तो असंख्य प्रदेश समान हैं। उनका क्षेत्र ऐसे संकोच-विकास हो तो कुछ असंख्य प्रदेश में संकोच-विकास नहीं होता। वह संकोच-विकास तो बाहर के कारण से है। वस्तु तो असंख्य प्रदेशी है। जैसे गुणलक्षण से लक्षित है, वैसे असंख्य प्रदेश से क्षेत्र से वह लक्षित है। असंख्य प्रदेश ऐसे बाहर के आकार से वह लक्षित है नहीं।

मुमुक्षु : बाहर का शरीर ऊँचा हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ क्या सम्बन्ध? वह तो जड़ की पर्याय हुई।

मुमुक्षु : आँखें चढ़ जायें तो तुरन्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : आँखें क्या चढ़ें? एक आया था वहाँ। विलायत में एक रंगरेज है रंगरेज। उसे निसरणी की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे पाँच-छह-सात हाथ ऊँचे

रंगना हो तो खड़े-खड़े रंगे। बड़ा लम्बा है। आया था, समाचार-पत्र में आया था। कोई कहे, तब बात सुनते हैं। अपने को कहाँ... ऐसे ऊपर रंगना हो यहाँ तो नीचे खड़ा रहे। उसे घोड़ी नहीं चाहिए। इतना ऊँचा।

मुमुक्षु : एक भाई बहुत ऊँचा, आठ फीट का ऊँचा।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, वह तो शरीर है। यह तो नाटा। यह तो इतना नाटा। वह वामन। ६०-६५ वर्ष। नाटा। इतना मनुष्य नाटा। कितने वर्ष? कि ६२-६३। वामन। उसे वहाँ नौकरी है। वहाँ नौकरी है। वे हैं न सब पक्षी और जानवर... हम गये थे न वहाँ देखने। वह ऊपर से समाचार आये थे, उन लोगों—ऑफिसर को कि महाराज आते हैं, इसलिए तुम ऑफिसर बताना। ऑफिसर तैयार थे बेचारे हाथ में लेकर। फिर सब बताया। हाथी ऐसा करता है, सब करे। ऑफिसर हुकम करे। बाघ-बाघ था। वह तो तुमने देखा नहीं? वहाँ एक बाघ था। तो उस बाघ को देखकर हम चले आये। बाघ खुल्ला था खुल्ला। मैंने तो देखा। फिर एक अपने दिगम्बर आये। अपने यहाँ फोटो है न। फोटो कहीं है। बताओ। वे वहाँ कहे, महाराज! आप बाघ के ऊपर हाथ फिराओ, हमें फोटो लेना है। ठीक, तब चलो। बाघ ऐसे घूमता था। एकदम खड़ा रह गया ऐसे पैर करके। जहाँ हाथ फिराया, उसने फोटो ले लिया। घुररर... करता था घुररर... परन्तु ऐसे हाथ फिराया। उसका फोटो है मैसूर का। उसका एक व्यक्ति खड़ा है। चन्दुभाई है। दूसरा पीछे कौन है? ड्राईवर है, ठीक। परन्तु वह बाघ ही ऐसा था न, जहाँ ऐसे अन्दर गये तो सीधे ऐसे बैठ गया, ऐसा करके। दो फोटो खींचे हैं। एक दूसरे नम्बर का। दो फोटो। तब घुररररर... करता था, परन्तु ऐसे हाथ फिराया तो सामने नहीं देख सकता था। उसके ऑफिसर साथ में थे न! ऑफिसर चारों ओर। सब बताओ भाई महाराज को। ऊपर... यहाँ भाई कभी आये हैं, यहाँ कहाँ फिर आनेवाले हैं?

यह सब जाति... आहाहा! आत्मा तो आत्मा। वह तो भगवान ज्ञानगुण से... आकृतिभेद से न देख, ऐसा अब यहाँ कहते हैं। अब १०३ में आकृतिभेद से न देख, ऐसा कहते हैं। वह जातिभेद से न देख। नात समझे? वर्ण भेद ब्राह्मण, क्षत्रिय। उस जाति से एक देख, फिर लक्षण से एक देख, फिर तीन लक्षण से एक देख। ज्ञान-दर्शन-चारित्र से। उसमें वर्णभेद से न देख। अब जाति ऐसे आकार में अन्तर दिखाई दे। स्त्री

के अवयव, पुरुष के अवयव, हाथी के अवयव, सिंह के अवयव, बाघ के अवयव, सियाल के, अरे! कोई कंथवा के। तो कहते हैं, ये सब शरीर के भेद हैं, जीव तो चिद्रूप है,... वह भगवान तो ज्ञानरूप है न। उसमें ऐसे बड़े पूंछ हों उस बाघ को। ऐसे... मूँछें बड़ी, उसे बड़ी पूंछ हो। है न? यह सब देखो न! खुल्ला-खुल्ला था, बाँधा हुआ नहीं। खुल्ला। खुल्ला था... बाँधा हुआ नहीं। घूमता था। बड़ा बाघ है। परन्तु आहार साधारण दे न, इसलिए बेचारे नरम हो गये। उसे न देख, ऐसा कहते हैं। ऐसे आकार से उसे न देख। आहाहा! वह चिद्रूप उसका रूप वह है, यह रूप नहीं। यह रूप नहीं, यह आकार नहीं। चिद्रूप असंख्य प्रदेशी लेंगे अभी टीका में, हों!

सब भेदों से रहित है,... सब यह सिर के, नाक के, आँख के भेद, आकार, क्या कहलाते हैं? नख। ऐसा दिखलाते हैं— 'सब भेदों से रहित है,...' वह तो परमाणु की आकृति व्यंजनपर्याय है। व्यंजनपर्याय आकृति जड़ की है। असंख्य प्रदेशी (आत्मा है), वह असंख्य प्रदेश का आकार भी ऐसा न देख पर्याय से। वह असंख्य प्रदेश है, ऐसा देख। उसका आकार जो बदलता है, वह भी पर्याय का आकार है। एक समय की पर्याय व्यंजन। वह नहीं। असंख्य प्रदेश पिण्ड है पूरा। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो। १०३ (गाथा)।

२३०) अंगइँ सुहुमइँ बादरइँ विहि-वसिँ होति जे बाल।

जिय पुणु सयल वि तित्तडा सव्वत्थ वि सय-काल ॥१०३॥

अंग से ही उठाया है इसमें। देखो, पाठ तो कैसा है? 'विहि-वसिँ है। विधि अर्थात् कर्म के वश पर्याय, ऐसी योग्यता जीव में होती है और बाहर में होती है।

सूक्ष्म... जीवो। सूक्ष्म जीव है अन्दर, हों! उन जीव की अपेक्षा से शरीर में अन्तर। कोई सूक्ष्म शरीर भी बाहर से बड़ा होता है, हों! अवगाहना में अन्तर होता है। कोई सूक्ष्म शरीर हो, शरीर बड़ा हो और बादर शरीर हो, उसका शरीर छोटा हो। उसमें भी अन्तर होता है। शास्त्र में आता है धवल में। कहते हैं कि उन सब शरीरों से ऐसा न देख। सूक्ष्म और बादर शरीर तथा जो बाल, वृद्ध, तरुणादि... देखो, यह बालक, यह वृद्ध, यह युवा आदि। उनके यह अवयव, उनके यह अवयव। अरे! चमड़े

के अवयव देखकर तुझे आत्मा देखने का है ? तू आत्मा देखता है ? क्या है तुझे ? समझ में आया ?

अन्यमति में आता है, भाई ! एक मीराबाई का । मीराबाई पुरुषों से नहीं मिलती थीं । एक पुरुष था बाबा, वह स्त्री से नहीं मिलता था । मीराबाई तो मस्त थीं । इसलिए फिर वह बाबा कहे कि परन्तु मुझे मीराबाई से मिलना है । परन्तु आड़ा पर्दा डालो । तुमसे मैं नहीं मिलना चाहती, तू चमड़े का देखनेवाला है अभी ? इस चमड़े को तू देखनेवाला है और मुझसे मिलने आया है ? मीराबाई ने कहा । बात कथा में आती है । यह शरीर स्त्री का है, ऐसी चमड़ी को तुझे देखना है ? आत्मा क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं । उसे ऐसी अव्यक्तरूप से वह भक्ति थी न उस जाति की ईश्वरकर्ता की । वस्तु कहाँ थी ? मिलना नहीं, मुझे ही मिलना नहीं । तुझे यह शरीर के अवयव देखकर यह स्त्री है और मैं पुरुष हूँ, ऐसा तेरी दृष्टि में बैठ गया है । ऐसा भेद ? भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप है । समझ में आया ? ज्ञानमूर्ति है । शास्त्र में व्यवहार की बात आवे, तब आवे, हों ! वह तो रागी को राग न होने के लिये ऐसी बात आती है । तब वेद के कारण से ? इस शरीर के कारण से राग होता नहीं । वह तो उसकी कमजोरी के कारण से उसे निमित्त बनाकर राग करता है । यदि उसके कारण से हो तो केवली को भी होना चाहिए, ज्ञानी को भी होना चाहिए । ऐसा है नहीं । वस्तु वस्तुरूप से ज्ञेय है । उस ज्ञेय के कारण से राग हो, ऐसा है नहीं ।

इसलिए कहते हैं कि सूक्ष्म और बादर शरीर वह सब बाल, तरुण अवस्था **कर्मों से होती हैं, और जीव तो सभी सब जगह...** देखो, सभी एक द्रव्य । सब जगह क्षेत्र । देखो इतना बदला वापस । और सब काल में... सब काल में उतने प्रमाण ही... देखो, यहाँ प्रमाण यह 'तावंतः' यहाँ लेना है न ? उतने प्रमाण ही अर्थात् असंख्यातप्रदेशी ही है । यहाँ सिद्ध यह करना है । इसमें क्षेत्र सिद्ध करना है । उसके असंख्य प्रदेश । उसमें गुणलक्षण से सिद्ध करना था । असंख्य प्रदेश सबके समान... समान... समान... हैं, उसमें आकार में अन्तर या बाहर का अन्तर, वह तो पर्यायदृष्टि का विषय है । यह बात विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक १०-०६-१९६५

गाथा - १०३ से १०५, प्रवचन - १४४

यह परमात्मप्रकाश, इसकी १०३वीं गाथा चलती है। उसका 'भावार्थ।' जीवों के शरीर व बाल, वृद्धादि अवस्थायें कर्मों के उदय से होती हैं। क्या कहते हैं? यह शरीर, यह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं तथा शरीर की बाल, युवा, वृद्धावस्था या निरोग, रोग अवस्था, वह सब कर्म के निमित्त से उपादान उसका स्वयं का, उसमें जड़ की अवस्था से होती है।

मुमुक्षु : किसका उपादान ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीर पुद्गल का।

यहाँ शरीर व बाल वृद्धादि अवस्थायें कर्मों के उदय से होती हैं। ऐसा कहा है। यह कर्म है, वह जड़। यहाँ तो आत्मा को उनसे भिन्न बतलाना है। बाकी इस शरीर की अवस्था-बालपना, वृद्धपना, युवापना, रोगपना, निरोगपना, कुबड़ापना आदि हो, वह सब उस-उस प्रकार से उस शरीर की पर्याय की अवस्था का उसका काल है, इसलिए होती है। उसमें कर्म का उदय निमित्तमात्र है। वह आत्मा की अवस्था नहीं, ऐसा बतलाना है। इसलिए उस अवस्था द्वारा आत्मा को न देख। शरीर की बाल अवस्था, मैं युवक, मैं बाल, मैं वृद्ध, मैं रोगी, मैं निरोगी। वह सब मिथ्याभाव है। वह तो शरीर की अवस्था है।

अर्थात् अंगों से उत्पन्न हुए... वह शरीर के अंग—उसके अवयव, उनके ऊपर लक्ष्य जाने से पंचेन्द्रियों के विषय... क्योंकि पाँच इन्द्रिय का विषय तो पर के ऊपर जाता है। स्वविषय करता नहीं। स्वविषय तो अन्तर दृष्टि और ज्ञान आत्मा का विषय करे। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वविषय करे। वह पर्याय स्वविषय करे, वह भूल गया, इसलिए शरीर, इन्द्रिय के विषय के पर के लक्ष्य से उनकी चाह खड़ी

हुई। स्वभाव की भावना, शुद्ध वस्तु ऐसी अन्तर दृष्टि द्वारा अन्तर का विषय बनाकर अन्तर दृष्टि का अनुभव हुआ हो तो वह अन्तर की भावना की भावना करे। ऐसा नहीं; इसलिए अनादि से पंचेन्द्रियों की चाहना है।

पंचेन्द्रियों के विषय उनकी वांछा जिनका मूलकारण है,... यह वांछा-इच्छा पर की भावना। फिर निमित्त अनुकूल-प्रतिकूल आदि चाहे जो इच्छा होओ, वह इच्छा जिसका मूलकारण है, ऐसे देखे, सुने, भोगे हुए... यह देखा है पर। रागादि पर, सुना है पर, भोगा है राग। ऐसे भोगों की वांछारूप... इच्छारूप हेतु बन्धादि खोटे ध्यान उनसे विमुख... वह निदान बन्धादि खोटा ध्यान। वह निदान आदि बन्धभाव, ऐसा जो खोटा ध्यान। उनसे विमुख जो शुद्धात्मा की भावना... ऐसी जो भावना इच्छा-वांछा पर्यायबुद्धि से शरीर के लक्ष्य से वर्तमान पर्यायबुद्धि में लम्बाने से शरीर और विषय और पर के ऊपर उसकी वांछा जाती है।

मुमुक्षु : कथन लम्बा बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा परन्तु वह तो जब पूरा हो तत्प्रमाण करे न?

क्या कहा? भगवान् आत्मा अपना विषय दृष्टि का तो स्व है। वह विषय छोड़कर पर्याय के अंश में, लक्ष्य में इतने में गया, इसलिए वह पर्याय का विषय गया, फिर शरीर और इन्द्रियों के विषय की ओर। विषय अर्थात्? यह शुभ-अशुभ चाहे जो देखे, वह उसका विषय है, हों! जरा कठिन। वास्तव में तो विषय यह भगवान् को देखना, मूर्ति, वह सब पंचेन्द्रिय का विषय है।

मुमुक्षु : आँख का विषय?

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख का विषय है वह। शब्द भी कान का विषय है।

यहाँ तो भगवान् आत्मा अपने स्वविषय को चूका, ऐसा अनादि से वह परविषय ऐसा जो रागादि, उसके कारण उसकी बुद्धि शरीर और शरीर के सुनने आदि के पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर की वांछा होती है। आहाहा! शुभ-अशुभ दोनों चाहे जो सुने। समझ में आया?

वह पंचेन्द्रियों के विषय... अणीन्द्रिय विषय स्व है, वह तो दृष्टि में लिया नहीं।

इसलिए अनादि का पाँच इन्द्रिय के विषय उनकी वांछा... ऐसी भावना। ऐसी भावना नहीं अर्थात् ऐसी भावना इच्छा (होती है)। जिनका मूलकारण है,... देखो, इच्छा जिसका मूलकारण है। ऐसे देखे,... देखा है। परपदार्थ अनादि के। सुनी है परपदार्थ की बात, भोगा है राग-द्वेष का भाव। ऐसे भोगों की वांछारूप निदान... हेतु-हेतु। यह हेतु हो गया न ऐसे पर की ओर का? ऐसा। ऐसे बंधादि... बन्ध राग-द्वेष आदि का बन्ध आदि खोटा ध्यान, ऐसा जो भाव, उनसे विमुख जो शुद्धात्मा की भावना... देखो, भाषा कैसी है! उससे विमुख शुद्धात्मा की भावना। शुद्धस्वरूप परमानन्द मूर्ति की भावना अर्थात् स्वविषय में एकाग्रता। स्वविषय करके एकाग्रता... उससे रहित। त्रिपुटी बात लेते हैं न।

इस जीव ने... शुद्धात्मा की भावना उससे रहित... पर की इच्छा की भावनासहित जीव को उपार्जन किये... जीव ने उपार्जन किये। शुभाशुभ कर्मों के योग से... किये उसने भाव, परन्तु भाव से उपार्जित किये न। ऐसा सब इकट्ठा इन्होंने डाला। भाव किया, कर्म उपार्जित किये निमित्तरूप से, ऐसा सब एक साथ डाला। ये चतुर्गति के शरीर होते हैं,... लो! उससे तो चार गति के शरीर मिलते हैं। समझ में आया? चार गति का छेदन चाहिए। चार गति के अभावस्वभाव का विषय, वह चार गति का अभाव करनेवाला है। उसके बदले वांछा और परसन्मुख की भावना (करके) उससे उपार्जित कर्म, उससे चार गति के शरीर मिलते हैं। समझ में आया? पंचास्तिकाय में आता है न? नहीं आता? पहले नहीं चार गति का? यह बात दूसरे ढंग से आचार्य कथन करते हैं। दूसरी गाथा है न।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिब्बाणं।

एसो पणमिय सिरसा समयमियं सणह वोच्छामि॥२॥

आचार्य अर्थ करते हैं कि (१) नारकत्व, तिर्यचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के कारण, (१) परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है और (२) स्वतन्त्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है, ऐसे फल से सहित है। वीतराग

की वाणी। वीतराग की वाणी चार गति की परतन्त्रता का अभाव करानेवाली और निर्वाण की स्वतन्त्रता की प्राप्त करने में वह वाणी निमित्त है। उस वाणी में ऐसे भाव आते हैं। समझ में आया ? भगवान की वाणी में यह आया है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : परतन्त्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परतन्त्र जरा भी नहीं। वह मुफ्त के... पड़े हैं। कहो, समझ में आया ? देखो न ! यह सिद्ध को कहते हैं न, पण्डितजी ! सिद्ध को कहते हैं कि धर्मास्तिकाय नहीं तो... सबमें अनेकान्त लगाना। कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र। सिद्ध कथंचित् स्वतन्त्र है। धर्मास्तिकाय आगे नहीं हैं, इसलिए परतन्त्र हैं। अरे भगवान ! ऐसा नहीं। यहाँ तो पाठ क्या है शास्त्र में ? देखो, स्वतन्त्र निर्वाण, वह स्वतन्त्र और चार गति, वह परतन्त्र। पाठ ही दूसरी गाथा का भगवान की वाणी में यह आया है। समझ में आया ? अमृतचन्द्राचार्य ने टीका ही ऐसी की। सफलपना इसके लिये है समय का, शास्त्र का कि जिससे वह समय... नारकत्व, तिर्यचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप निर्वाण... शुद्ध तत्त्व की पूर्ण पर्याय में प्राप्तिरूप निर्वाण का परम्परा से कारण। परम्परा से कारण अर्थात् ? शुद्ध चैतन्य का मोक्षमार्ग वह कारण, परन्तु उसमें वह वाणी निमित्त होती है, इसलिए परम्परा कारण कहा जाता है।

‘कारण’ होने से (१) परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है... यह भगवान की वाणी में भाव परतन्त्रता और निवृत्ति के लक्षणवाले भाव आये, सफलपना है। चार गति की परतन्त्रता के अभाव का सफलपना बताते हैं। सिद्ध की गति मिलना या यह मिलना, ऐसा उस वाणी में आता नहीं। वह तो फिर राग रह गया, उसका फल आता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण है, ऐसे फल से सहित है। देखो, समझ में आया ? चार गति का निवारण परतन्त्रता की निवृत्ति और निर्वाण की उत्पत्ति अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति, उस समय का फल है—यह सिद्धान्त का फल है। समझ में आया ? यह तो भगवान ने कहा कि आत्मा का स्वरूप, उसका तू अनुभव कर। उसकी दृष्टि की तो चार गति की परतन्त्रता की निवृत्ति होगी और पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्तिरूप पर्याय निर्वाण,

वह स्वतन्त्रता की प्राप्ति है। कहो, उत्पाद और व्यय, उत्पाद और व्यय। निर्वाण का उत्पाद, चार गति का व्यय, ध्रुवपना तो है। अर्थात् भगवान की वाणी समय की वह सफलता है। गति मिलना, वह सफलता वीतराग की वाणी की नहीं।

मुमुक्षु : उसका असर तो होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : असर-पुसर की कहाँ बात है ? यह तो एक निमित्त की बात है। उसका विकल्प होता है, तब वह सुनता है, तब वह बाद में सुना हुआ अन्तर्मुख के लक्ष्य में जाता है, तब उस वाणी आदि को निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है, भाई ! वस्तु तो ऐसी है। उसके सन्मुख देखकर अन्तर में जाया जाता होगा ? भगवान की वाणी ऐसे देखना और जाना अन्दर में। बहिर्मुख वृत्ति से ऐसे सुने। उस द्वारा अन्तर में जाया जाता है ? पूरी बात दिशाफेर बात है। भगवान कहते हों वाणी में तो ऐसा लक्ष्य जाये पर के ऊपर, तब तो विकल्प है और पर दिशा की ओर लक्ष्य है। अब अन्तर में जाना, उसका वह विकल्प और परदिशा बदले, अन्तर में जाये तब वह दिशा बदल जाती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रश्न ही क्या परन्तु ? वह जाता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। मगनलाल ! कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : सब स्वतन्त्र हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में स्वतन्त्र हुए नहीं। यह १५वीं अगस्त में स्वतन्त्र हुए थे न। ऐई ! धर्मचन्दजी ! यह हिन्दुस्तान। धूल में भी स्वतन्त्र हुए नहीं। धूल में अर्थात् ? लोकोत्तर पुण्य भी नहीं वहाँ, ऐसा। लोकोत्तर पुण्य धूल भी सम्यग्दृष्टि को ही बँधती है। अज्ञान की भूमिका में ऐसे लोकोत्तर पुण्य जो तीर्थकरगोत्र आदि के, उस पुण्य का उपार्जन सम्यग्दृष्टि के अतिरिक्त हो नहीं सकता। परतन्त्र सब कब था ? सब हैरान-हैरान हो गये, बेचारे चिल्लाहट मचाते हैं। वे राज थे, तब इतनी हिंसा नहीं थी, सरकार थी, तब इतने कारखाने नहीं थे। चिल्लाहट बहुत मचाते हैं समाचार-पत्र में आते हैं अपने जैन में। एक तो अभी आगरा में बोलनेवाले हैं एक बड़ा... कितना एक दिन में

कितने हजार कुछ लिखा है। तीन हजार, चार हजार बकरे काटनेवाले हैं। आगरा के आसपास कारखाना करनेवाले हैं।

मुमुक्षु : वह तो अनुकम्पा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकम्पा इसका नाम होगा ? आहाहा ! कुकर्म की बात है न ! ऐसी तो बात कहाँ सरकार के उसमें नहीं थी न पहले, राजा में भी ऐसी नहीं थी। यह अब प्रजासत्तक (प्रजातन्त्र) राज हुआ। कहाँ धूल में भी नहीं अब।

यहाँ तो कहते हैं, चार गति का अभाव हो, वह स्वतन्त्रता और मुक्ति की प्राप्ति हो, वह (स्वतन्त्रता)। यह क्या कहते हैं अमृतचन्द्राचार्य ? पाठ है टीका संस्कृत। पंचास्तिकाय की दूसरी गाथा की संस्कृत टीका। भगवान की वाणी अथवा समय अर्थात् सिद्धान्त, उसकी सफलता यह है कि चार गति की परतन्त्रता की निवृत्ति और शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निर्वाण की प्राप्ति। स्वतन्त्रता, उसका नाम स्वतन्त्रता है। आहाहा ! भाई ! दुनिया से दूसरी बात है यह सब लोकोत्तर (बात है)। यह तो भगवान सर्वज्ञ होने की बात है, बापू ! जन्म-मरण रहित। जन्म-मरण ही नहीं। कलंक है न ? योगसार में लिखा है। अरे ! जन्म होना, वह कलंक है, भगवान ! यह चैतन्यमूर्ति के साथ... ऐसे छठवीं अँगुली हो, ऐसे अँगुली छठवीं, वह लबड़ती हो न छठवीं ? उसी प्रकार भगवान अरूपी के साथ इस शरीर का कलंक लटकता है। योगसार में कहा है, हों ! नहीं आता ? क्या कहलाता है ? शरमजनक जन्मो टले, ऐसा पाठ है। 'शरमजनक जन्मो टले, पीये न जननी क्षीर।' पीये न जननी क्षीर। माता का दूध पीना मिट जाये, भाई ! समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! परन्तु उसका इसे माहात्म्य... यहाँ तो कहते हैं कि तेरा माहात्म्य यह पर में गया। यह महिमा राग में, पुण्य में, निमित्त में तो उसके कारण बँधे हुए कर्म तो उसके कारण यह शरीरादि मिला। यह रोग, निरोग अवस्था सब कर्मजन्य आठ प्रकार की उत्पन्न हुई है, वह कहीं आत्मजन्य अवस्था नहीं। समझ में आया ?

जीव ने उपार्जन किये शुभाशुभकर्मों के योग से ये चतुर्गति के शरीर होते हैं,... यहाँ तो अपने चतुर्गति का आया न ? अशरीरी होने की बात तो स्वविषय बनाकर स्व में स्थिर होना। स्वविषय बनाकर स्व में स्थिर होना अर्थात् दर्शन और चारित्र दो कहे।

बस, वह चार गति के अभाव का करण है। बाकी पर का विषय बनकर ठहरे, उसमें स्थिर होना, वह चार गति को उत्पन्न करने का कारण है। समझ में आया ? और बाल-वृद्धादि अवस्थाएँ होती हैं। शरीर होता है। दो बातें की। एक तो शरीर होते हैं चार गति के और उसमें जो अवस्थाएँ बाल, वृद्ध, रोग, निरोग, ये अवस्थाएँ कर्मजनित हैं,... कहो, जेचन्दभाई ! समझ में आया ? यह कर्मजनित अवस्था है, यह आत्मा उपार्जित नहीं। उसे कहते हैं कि मुझे हुई, ऐसा मानना भ्रमणा, अज्ञान है। ऐसा कहते हैं। पाप-फाफ की बात अभी नहीं। यह भाव किये हुए और भाव का निमित्त पाकर रजकण, उसके कारण से परिणमे, उसका निमित्त पाकर यह शरीर भी उसके कारण से हुआ और परिणमा। अब इसमें किसका करना है अबरखा ? यह अबरखा को क्या कहते होंगे ? अरमान। अपनी काठियावाड़ी भाषा है न।

ये अवस्थाएँ कर्मजनित हैं, जीव को नहीं हैं। आहाहा ! देखो, दो अर्थ किये न भाई इसमें ? वह बाल शब्द पड़ा है न ? बाल शब्द पड़ा है न। अर्थात् बाला अवस्था भी कही और बाल सम्बोधन भी किया। दो अर्थ किये एक बाल शब्द के। १०३, पहली लाईन का अन्तिम बाल शब्द है न ? इसलिए संस्कृत में बाला अर्थात् अवस्था की बालादि। और वापस टीका में उसका एक सम्बोधन भी निकाला। हे अज्ञानी जीव, हे बाल ! ऐसा। यह बात तू निःसन्देह जान। ऐसा। निःसन्देह जान, भगवान ! तेरे भगवान को तूने विषय नहीं बनाया। ध्येय नहीं बनाया कहो, विषय नहीं बनाया कहो, स्वज्ञेय नहीं किया कहो। इसलिए तूने परध्येय बनाया, परज्ञेय बनाया, परविषय बनाया। राग से लेकर सभी। उसके कारण से बन्धन हुआ और बन्धन के कारण से शरीर की यह सब अवस्था मिली। हे बाल ! हे अज्ञानी जीव, यह बात तू निःसन्देह जान। आहाहा ! यह सब दशाएँ कर्मजन्य की अवस्था, उसे मेरी मानना, वह अजीव को जीव मानने जैसा है। अजीव को जीव माने। ऐसे सीधा कौन माने ? परन्तु यह... यह मुझे... यह मुझे... वह अजीव को जीव माना है। समझ में आया ?

छहढाला में आता है न ? क्या ली वह भाषा ? याद है ? 'तन जन्मे, जन्मे' ऐसा आता है न कुछ। 'तन उपजत अपनी उपजत मानत।' हाँ ऐसा। यह उपजे तो मैं उपजा, यह जाये तो मैं मरा। यह सब भूल। सात भूलें बतायी हैं न ? सात तत्त्व की सात भूल

छहढाला में। बहुत सरस किया है छहढाला में। समझ में आया ? हे अज्ञानी जीव! यह बात तू निःसन्देह जान। हे बाल! ऐसा कहा है न टीका में ? 'विदिवशेनैव। अथवा संबोधनं हे बाल अज्ञान।' ऐसा संस्कृत टीका में है। ये सभी जीव द्रव्य-प्रमाण से अनन्त हैं,... एक तो यह बात। संख्या से अनन्त है, एक जीव नहीं।

क्षेत्र की अपेक्षा... दो प्रकार लेते हैं, ध्यान रखना। एक-एक जीव यद्यपि व्यवहारनयकर अपने मिले हुए देह के प्रमाण हैं,... क्या कहा है ? कि भगवान आत्मा... शरीर मिला, उसका शरीर का आकार भिन्न और आत्मा का आकार भिन्न, परन्तु यह आत्मा का आकार जो पर्याय में मिला, वह व्यवहारनय से है। वह त्रिकाल वस्तु से नहीं। यद्यपि शरीर की अवस्था के कारण से वह आकार है, ऐसा नहीं। जीव का जो आकार है न वर्तमान व्यंजनपर्याय, वह कहीं शरीर के आकार के कारण नहीं। शरीर के आकार का अस्तित्व भिन्न और उसके असंख्य प्रदेश के संकोच-विकास का अस्तित्व भिन्न। परन्तु वह अस्तित्व क्षणिक ऐसे आकार को व्यवहारनय का विषय कहा। वह त्रिकाली विषय नहीं। क्या कहा, समझ में आया ?

व्यवहारनयकर अपने मिले हुए देह के प्रमाण हैं,... इस देह के प्रमाण वह आकार, उसकी बात है व्यवहार की, हों! देह की अवस्था व्यवहार की, ऐसा यहाँ नहीं कहना। भाई! समझ में आया इसमें ? उसका आकार। असंख्य प्रदेशी वस्तु है न, उसकी विभावव्यंजनपर्याय का आकार शरीरप्रमाण स्वयं का स्वयं में स्वयं के कारण से। परन्तु वह अशुद्ध उपादान का आकार है, इसलिए वह व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया ? क्षेत्र की अपेक्षा एक-एक जीव यद्यपि... जहाँ-जहाँ हो वहाँ। निगोद से लेकर व्यवहारनयकर अपने मिले हुए देह के प्रमाण हैं,... आकार हों आकार। तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं। एकरूप असंख्य प्रदेश, वह उसका स्वरूप। वह क्षण-क्षण में विकृतभाव जो व्यंजन आकृति होती है, वह व्यवहारनय का क्षणिक विषय, वह कहीं तेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं। कहो, समझ में आया ? क्या कहा ? कि बाल, युवा, वृद्धावस्था देह की होने में आत्मा के प्रदेशों का भी जो आकार शरीरप्रमाण, स्वयं के कारण से आकृति का उस क्षण का परिणमन (हो), उसे व्यवहारनय का विषय कहकर हेय कहना चाहते हैं। शरीर की पर्याय तो शरीर में रही। देवचन्दजी !

समझ में आया ? सूक्ष्म-बादर का अब यहाँ चलता है न ? सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय... उसका असंख्य प्रदेश का वर्तमान शरीरप्रमाण का उसका आकार, वह व्यवहारनय से है, पर्यायदृष्टि से है। वस्तु देखो तो असंख्य प्रदेशी एकरूप है, उसे देख। उसे आकृति के आकार के पर्यायबुद्धि से न देख। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अशुद्ध उपादान पर्याय।

मुमुक्षु : मानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है अर्थात् स्वयं विकाररूप परिणमा है वह।

मुमुक्षु : शुद्ध उपादान.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुद्ध उपादान, उससे रहित निर्मल अवस्था होना। निमित्त बिना की, विभाव बिना की निर्मल अवस्था, वह शुद्ध उपादान की पर्याय। मलिन पर्याय अशुद्ध उपादान की पर्याय। परन्तु वे दोनों पर्याय। यहाँ यह बात नहीं करना। सिद्ध की पर्याय है, वह शुद्ध उपादान से निर्मल पर्याय परिणमी है। आकृति हों आकृति। वह विभाव नहीं, परन्तु वह पर्याय का विषय है। असंख्य प्रदेशी त्रिकाल वह वस्तु, ऐसा कहना है।

फिर से। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय की समय-समय की असंख्य प्रदेश की व्यंजन—आकृति पर्याय विभाव, वह व्यवहारनय का विषय है। यहाँ तो यह चार गति की बात करनी है न ! और सिद्ध की पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है वास्तव में। आकृति उनकी उस समय की। ऐसे शुद्ध भले शुद्ध हो, परन्तु वस्तुरूप से उसका त्रिकालपना असंख्य प्रदेश, बस। असंख्य प्रदेश का एकरूपपना, वह त्रिकाल विषय है। वह तो आता है ४७ शक्ति में।

मुमुक्षु : अशुद्ध उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सम्बन्ध दो द्रव्य का नहीं। वह तो निमित्तरूप है, इतनी बात। अपनी पर्याय से परिणमन है। आकृति। सम्बन्ध भले हो निमित्त, परन्तु उसके कारण से नहीं। उसके अस्तित्व के कारण से यहाँ अस्तित्व नहीं। अपने पणाम के कारण से असंख्य प्रदेश की विभाविक पर्याय, उस समय की परिणमी है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

एक-एक जीव यद्यपि व्यवहारनयकर अपने मिले हुए देह के प्रमाण हैं,... देह के प्रमाण आकार। यह व्यवहार से है, उसकी पर्याय स्वयं की है इसलिए। पर के कारण से नहीं। पर का तो निमित्त। पर का निमित्त। अपनी पर्याय की योग्यता उस काल में। जैसे कर्म का निमित्त, परन्तु शरीर की अवस्था, वह उपादान स्वयं के कारण से है, ऐसा। अपने कारण से बाल, वृद्ध अवस्था है। कर्म से कहना, वह तो निमित्त से बात है। ऐसे कर्म का निमित्त, परन्तु व्यंजनपर्याय का उस समय का उसकी योग्यता का काल, उसके कारण से व्यवहार से विभावरूप परिणमन (हो), वह व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि खण्ड-खण्ड एक-एक समय की आकृति भिन्न-भिन्न है। एकरूप नहीं रहती और सिद्ध की पर्याय भी एकरूप नहीं, वास्तव में तो ऐसा त्रिकाल लें, तब तो असंख्य प्रदेश ही निश्चय है।

यह कहते हैं, देखो! ऐसा होने पर भी, व्यवहार से विकार की अवस्था की आकृति देहप्रमाण अपने में होने पर भी तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं। लोक के जो प्रदेश हैं, इतने अपने प्रदेश हैं, यह निश्चय है। उसे तू एकरूप देख, ऐसा कहते हैं। असंख्य प्रदेशरूप एकरूप क्षेत्र है, उसे देख। उसकी आकृति की भिन्नता, उसे न देख। पर्यायबुद्धि छुड़ानी है न यहाँ तो। समझ में आया?

मुमुक्षु : असंख्यात प्रदेश देखने जायें, वहाँ कोई आकृति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह देखना, इसका अर्थ कि अभेद एक के ऊपर दृष्टि दे, ऐसा। अभेद यह अभेद भाषा तो ऐसी ही बोली जाये न! असंख्यप्रदेश। असंख्य है, ऐसा लक्ष्य करे तो भेद उपजता है। परन्तु यहाँ तो समझाते हैं कि असंख्यप्रदेश एकरूप रहते हैं, इसलिए वह निश्चय का विषय है। और वह आकृति एकरूप रहती नहीं, इसलिए व्यवहारनय का विषय है। बस, इतना सिद्ध करना है। बाकी असंख्य प्रदेश हैं यह—ऐसा कहाँ है? वह तो भेद करे तो विकल्प उठता है। उसके ज्ञान में रहता है कि असंख्य प्रदेश हैं ऐसा, परन्तु असंख्य के भेद के ऊपर लक्ष्य करने जाये, वहाँ तब तो विकल्प उठता है। उपयोग वहाँ जाये असंख्य भेद के ऊपर तो विकल्प उठता है। उपयोग एकरूप जमता है, वहाँ विकल्प रहता नहीं। उसके ज्ञान में जैसा है, वैसा रह जाये लब्ध

में। लब्ध में तो है ऐसा रह जाये। वह कहीं लब्ध और उपयोग एक साथ काम कर सकते हैं ? छद्मस्थ है न !

दोपहर में चलता नहीं ? द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक का ज्ञान उसमें जो हुआ, वह तो ज्ञान रहता है लब्ध में। वह ज्ञान ही चला जाता है और द्रव्य और पर्याय कुछ नहीं ही हो, ऐसा है, ऐसा नहीं। वस्तु तो ऐसी है, परन्तु वह उपयोग स्थूल है, इसलिए जहाँ भेद करता है, वहाँ विकल्प उठता है। इसलिए अन्दर निर्विकल्प उपयोग में जाने के लिये यह और यह, वह भेद छोड़ दे। बाकी गुण, द्रव्य, पर्याय जैसा है, द्रव्यार्थिक वह द्रव्य, पर्यायार्थिक वह पर्याय, ऐसा ज्ञान में रहता है। किस ज्ञान में ? लब्ध ज्ञान में। लब्ध ज्ञान में न रहे तो वस्तु क्या रहे ? उपयोग यहाँ जमा है, इसलिए वह विकल्प रहता नहीं। उसके उपयोग में दो भेद पड़ते नहीं। आहाहा ! यह तो भाई जैनशासन है ! ऐसा वे कहते हैं कि भाई देखो, यहाँ तो तुमने कहा कि बद्ध-अबद्ध नहीं। कुछ नहीं अर्थात् पहले कुछ माना था कि व्यवहार से बद्ध नहीं, वह नहीं। ऐसा नहीं। अबद्धस्वरूप वस्तु है, ऐसा ज्ञान तो हुआ। बद्धरूप से पर्याय मलिन है, ऐसा ज्ञान तो रहा, परन्तु दो प्रकार के उपयोग में जाता था वह विकल्प था। वह उपयोग वहाँ से हटकर एकाकार में गया, तो दो प्रकार का उपयोग रहता नहीं। ज्ञान में से चला जाये ? लब्धज्ञान में से जाये तो क्या रहा फिर ? समझ में आया ?

यह तो भाई जैनदर्शन है। वस्तु अनेकान्त स्वरूप है। उपयोग में एकाकार होने पर भी उसके ज्ञान में स्व-परप्रकाश का सामर्थ्य है। वह ध्यान में हो, तब ऐसे नगाड़े बजे तो भी खबर न हो साथ में। ध्यान में हो तो साथ में नगाड़े बजे (तो खबर नहीं पड़ती)। क्योंकि उस ज्ञेय के ऊपर उपयोग चिपटा है, तथापि उसके ज्ञान के लब्ध में जितना स्व-परप्रकाशक ज्ञान है, वह चला नहीं गया। उपयोग उस ओर जम गया है। ध्यान में खबर नहीं होती, क्या है वह। मुनियों को ध्यान में उपयोग—निर्विकल्प उपयोग, तब खबर भी नहीं। कहाँ उपसर्ग है और कहाँ विकल्प है। ख्याल ऐसे आ जाये। विकल्प उठे, तब ख्याल आ जाये, हों ! कि यह शरीर में कुछ होता है। यह सिंहनी है इतना। पश्चात् ज्ञान हो, परन्तु तब उपयोग बाहर में गया, अन्दर में नहीं रहा हो।

और भाई ! मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा न ! ऐसा कि परीषहवाले को उसका ज्ञान ही नहीं होता, ऐसा नहीं। टोडरमलजी ने एक न्याय से लिया है। उपयोग जब अन्दर में गया है, तब ख्याल नहीं, परन्तु ऐसे उपयोग जहाँ बाहर आ गया... क्योंकि वहाँ तो अधिक टिकता नहीं। बाहर में आया, तब ख्याल तो आ जाता है कि इस शरीर में ऐसा होता है, फलानी अवस्था, उपसर्ग, परीषह का ख्याल है, परन्तु उसके दुःख का वेदन नहीं। विकल्प उठा है न ! उपयोग जरा सा इस ओर से हटा, इसलिए उपयोग आया ऐसा जरा। विकल्प उठा इतना। जानने का, हों ! उतना जाना। परज्ञेय को जाना, ऐसा विकल्प उठा। परन्तु इससे वहाँ उसके वेदन में वह विकल्प उठा उतना वेदन में अन्तर पड़ा, परन्तु अन्दर जो इस कारण से वेदन है, ऐसा नहीं। आहाहा ! वस्तु तो भाई ! ऐसी अलौकिक चीज़ है। वह कहीं इसे वह स्पर्शता भी नहीं। उसे तो यह खबर नहीं, ऐसा नहीं। एक जगह है न कहीं भाई ! किस अध्ययन में है ? परीषह को न जाने, ऐसा नहीं। ज्ञान उपयोग यहाँ से हटा और ऐसा जाने। जाने तो सही कि यह है। एक अध्याय में है। सातवें में है।

मुमुक्षु : सातवें में पहले में निश्चय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चय में है। ख्याल है न। बहुत सरस रचा है। टोडरमलजी ने तो... उसका बराबर स्पष्टीकरण समझे तो उसमें इतना भरा है। बहुत सरस। और एक जगह तो ऐसा भी कहा है न ? कि निर्विकल्प हो जाये तो वह विचाररहित हो जाये ? तो कहीं जड़ हो जाये ?

मुमुक्षु : ज्ञानरहित हो जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी एक रखा है। विचारधारा मति-श्रुत की तो रहती है। विचार बिना का हो जाये, तू ऐसा कहे कि विचार बिना का हो जाये तो मति और श्रुत का जो भाग है, उससे रहित हो जाये। केवल (ज्ञान) नहीं, तब क्या रहा फिर ? पण्डितजी ! ऐसा लिखा है। विचार तो चलते हैं, वह विकल्प नहीं-राग नहीं। विचार की धारा पर्याय में विचार न हो तो मति-श्रुत का ज्ञान है पर्याय में। अवधि, मनःपर्यय का उपयोग अन्दर हो नहीं, केवलज्ञान है नहीं। तो मति के, श्रुत के उपयोग का काम न

करे उपयोग में और कुछ विचार ही कुछ नहीं तो जड़ है, ऐसा है ? उसे भेद का ख्याल नहीं रहता। उपयोग एक ओर जमा है न। बहुत सरस बात ली है वहाँ। फिर तो बाद में स्पष्टीकरण किया कि भाई ! देखो, अनुभव काल में यह बात रहती नहीं। है न पीछे दृष्टान्त दिया है न। पीछे नहीं ? युक्ति के काल में। आता है न चिट्ठी में (रहस्यपूर्ण चिट्ठी में)।

मुमुक्षु : अनुभव के काल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनुभवकाल में नहीं रहता। ऐसा कि ... काल में है।

मुमुक्षु : अन्वेषण काल में होता है, अनुभवकाल में नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, नहीं होता। लिखा है यह। प्रत्यक्ष नहीं कहीं ? देखो 'नयचक्र' में कहा है कि तत्त्व के अवलोकन काल के समय में शुद्धात्मा को युक्ति मार्ग से नय प्रमाण द्वारा पहले जाने। तत्पश्चात् आराधन समय में अर्थात् अनुभव काल है, उसमें नय प्रमाण है नहीं।' क्योंकि वहाँ तो प्रत्यक्ष अनुभव है। 'जैसे रत्न की खरीद के समय तो अनेक विकल्प करता है।' है न ?

तच्चाणेसणकाले समयं बुद्धेहि जुत्तिमगेण ।

णो आराहणसमये पच्चक्खोअणुहवो जह्मा ॥

चारों ओर से बात को ऐसी रची है। यह तो वस्तु की स्थिति है। जब वह रत्न प्रत्यक्ष पहना जाता है, तब विकल्प होता नहीं, रत्न पहनने का सुख ही वर्तता है। भेद वर्तता नहीं कि यह है और यह है। ऐसा कहाँ है ? भले अनन्त पर्याय हो, परन्तु वेदन में आनन्द ही है। 'सविकल्प द्वारा निर्विकल्प अनुभव होता है।' बहुत अधिक लिखा है। चिट्ठी—रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न ! टोडरमलजी (कृत) रहस्यपूर्ण चिट्ठी, रहस्यपूर्ण चिट्ठी। उसका नाम रहस्यपूर्ण चिट्ठी। पीछे डाली है उसमें। मोक्षमार्गप्रकाशक में है नहीं, परन्तु हमने तीन चिट्ठियाँ उसमें डाली हैं। मोक्षमार्ग(प्रकाशक) पूरा होने के पश्चात् रहस्यपूर्ण चिट्ठी डाली है, एक परमार्थ वचनिका बनारसीदास की है, वह भी उसमें डाली है। बहुत सरस है न। बहुत वर्ष पहले देखी थी। वह गुप्त रह गयी थी तो उसमें डाली और एक उपादान-निमित्त की चिट्ठी है। वह भी बनारसीदास की है, सात

दोहों की। नहीं, सात दोहों की नहीं, दूसरी। दूसरी है। दूसरी डाली है अन्दर। वे सात दोहे उपादान-निमित्त के अलग बनारसीदास के। और यह उपादान-निमित्त तो वहाँ एकेन्द्रिय में सिद्ध किया है। एकेन्द्रिय में से बाहर निकलता है। वह किससे? ज्ञान तो गहल है। गहल अर्थात् पागल है। परन्तु उसे वहाँ शुभभाव होता है। शुभभाव से ऊँचा आता है। यह बात सिद्ध की है उपादान-निमित्त में। ये तीन चिट्ठियाँ उसमें डाली हैं। अपने में, हों! पहले उसमें नहीं।

मुमुक्षु : हिन्दी में अब एक प्रकाशित हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में आयी है न। रहस्यपूर्ण चिट्ठी बहुत सरस है। यह पुस्तक थी पहले पण्डितजी! इससे पहले पुस्तक थी। पीछे... पहले हमको (संवत्) १९८४ में प्राप्त हुई थी। फिर हमने उसमें डाल दी।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी है। परमार्थवचनिका। पृथक् नहीं, पृथक् नहीं। उसमें डाली है।

मुमुक्षु : बनारसीविलास में।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनारसीविलास में है।

क्या कहते हैं, देखो! निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी (सब जीव) हैं। सब लोक में... क्षेत्र लिया। सब काल में... काल लिया और सर्व द्रव्य जीवों का यही स्वरूप जानना। सब ले लिया। द्रव्य अनन्त, सर्व लोक, सर्व काल, उसके जीव के असंख्य प्रदेश, उसके अनन्त गुण... भाव असंख्य प्रदेशी वही भाव है। एकरूप त्रिकाल। बादर सूक्ष्मादि भेद कर्मजनित होना समझकर जीवों में भेद मत जानो। जीवों में इस प्रकार से भेद न देख, भगवान! यह वस्तु अभेद, असंख्य प्रदेश अनन्तगुण का एकरूप ऐसी वस्तु को देख। तुझे इस प्रकार से देख तो दूसरे को भी इस प्रकार से देख।

विशुद्ध ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा... यह त्रिकाली की बात है विशुद्ध। पर्याय की बात नहीं। **विशुद्ध ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा...** भाव लिया भाई अन्तिम। भाव बाकी था

न। सब लोक में सब काल में जीवों का... वह द्रव्य लिया था। अब भाव लेते हैं। विशुद्ध ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा... विशुद्ध शब्द से त्रिकाल की बात है यहाँ, हों! पर्याय केवलज्ञान की बात नहीं। त्रिकाल ज्ञान और त्रिकाल दर्शन सामान्य, उस विशुद्ध ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा सब ही जीव समान हैं, कोई भी जीव दर्शन, ज्ञान रहित नहीं है,... ओहो! अनन्त द्रव्य, एक-एक के असंख्य प्रदेश, एक-एक में विशुद्ध दर्शन-ज्ञान, सर्व काल में समान। आहाहा! ऐसी अन्दर में दृष्टि हुई। वीतराग समभाव हुआ। वह दृष्टि ही वीतराग है। सम्यग्दर्शन, यह वीतराग दृष्टि है। राग-फाग दृष्टि नहीं। वीतराग दृष्टि है। सम्यग्दर्शन वीतराग दृष्टि, सम्यग्ज्ञान वीतरागी ज्ञान, स्वरूप स्थिरता वीतरागी चारित्र, वही मोक्ष का मार्ग है। राग-बाग साथ में आवे। मोक्षमार्ग नहीं। बन्ध को मोक्षमार्ग कहना। १०३ (गाथा हुई)।

★ ★ ★

गाथा - १०४

अब १०४। अब दूसरी बात उठायी। भिन्न-भिन्न गाथा में अलग बात अब। आगे जो जीवों के शत्रु-मित्रादि भेद नहीं करता है, वह निश्चयकर जीव का लक्षण जानता है,... यह जाना। शत्रु-मित्र का भेद, वह तो पर्यायबुद्धि हुई, वह तो पर्याय में रहा। वस्तु वस्तुरूप से ज्ञानानन्द लक्षण से लक्षित सभी भगवान हैं। शत्रु-मित्रादि भेद नहीं करता है,... ऐसा कहते हैं— १०४।

२३१) सत्तु वि मित्तु वि अप्पु परु जीव असेसु विण्णु।

एक्कु करेविणु जो मुण्ड सो अप्पा जाणेइ ॥१०४॥

ये सभी जीव हैं, उनमें से कोई एक किसी का शत्रु भी है, मित्र भी है, अपना है और दूसरा है। ऐसा व्यवहार से जानकर जो ज्ञानी निश्चय से एकपना करके... पर्याय का ज्ञान करना। ऐसा है, कोई विकल्प विरुद्ध है, उसका मित्र है। ऐसा पर्याय का जानपना। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान। जाना हुआ विषय है। व्यवहारनय का विषय नहीं, ऐसा नहीं, वह आदरणीय नहीं। समझ में आया? जो ज्ञानी निश्चय से एकपना

करके अर्थात् सबमें समदृष्टि रखकर... भगवान सब आत्मा ज्ञानानन्द से शुद्धस्वभाव से परिपूर्ण है। वस्तु में कहाँ न्यूनता, हीनाधिकता वस्तु में कहाँ है? वह तो पर्याय में हीनाधिकता, वह तो पर्यायबुद्धि का विषय है, उसे जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं।

एकपना करके अर्थात् सबमें समदृष्टि रखकर समान मानता है, वही आत्मा के स्वरूप को जानता है। लो! आहाहा! इसमें वाद-विवाद का धन्धा, रास्ता कहाँ है इसमें? वस्तु जहाँ ऐसी स्वतन्त्र पर्याय से। सामने स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र, द्रव्य स्वतन्त्र। गुण भी स्वतन्त्र वापस। एक गुण के कारण दूसरा गुण नहीं। आहाहा! सव्वे असहाय गुणा। यह निमित्त-उपादान में आया है। यह भाई बनारसीदास की अन्तिम चिट्ठी में यह आया है। सर्वे गुण असहाय। यह डाला है अपने, हों! वह दूसरी चिट्ठी, हों! वह सात दोहे की चिट्ठी अलग, यह अलग। देखो, सर्वे असहाय। 'कोई कहे कि ज्ञान की शुद्धता द्वारा क्रिया शुद्ध हुई; परन्तु ऐसा नहीं। कोई गुण अन्य गुण के आधार से नहीं, सर्व असहायरूप है। सर्व गुण असहायरूप है। स्वतन्त्र अस्ति गुण की स्वतन्त्र अस्ति है। भले प्रदेशभेद नहीं, परन्तु भावभेद से स्वतन्त्र है। भावभेद से स्वतन्त्र है। ऐसी वस्तु अलग है। समझ में आया? सर्व असहायरूप है। यह पंचाध्यायी में भी आता है, भाई! पंचाध्यायी में श्लोक आता है। सभी गुण असहाय हैं। असहाय न हो तो एक गुण का अस्तित्व स्वतन्त्र सिद्ध नहीं होता। एक गुण स्वयं... स्वयं... स्वयं... सत्... सत्... सत्। उसे दूसरे गुण के सत् की सहायता नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश एक है, भाव भिन्न है। प्रदेश स्वतन्त्र। यह तो अपनी बात अपने में है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, सत्ता अलग, प्रदेश अलग नहीं। भाव अलग है, ऐसा। भेद-अभेद दो। प्रदेश से अभेद, भाव से भेद। वरना भाव सिद्ध होते नहीं। अनन्त-अनन्त पृथक् सिद्ध करने में किसी की अपेक्षा रहे तो स्वयं सिद्ध नहीं होता। आया है न? आत्ममीमांसा में है। धर्मी-धर्म निरपेक्ष सिद्ध हुए बिना दो सिद्ध नहीं होते। धर्मी

निरपेक्ष, धर्म निरपेक्ष। पीछे उसका धर्म और यह धर्मी। दोनों निरपेक्ष। धर्मी निरपेक्ष, धर्म निरपेक्ष। यहाँ तो एक-एक धर्म भी निरपेक्ष। पर की अपेक्षा लें तो वह वस्तु-स्वतन्त्र वस्तु की सिद्धि स्वतन्त्र निरपेक्ष सिद्धि होती नहीं। यह बहुत सरस लिया है इसमें। व्याख्यान आ गये हैं। अभी बाहर प्रकाशित होंगे। दो हजार प्रकाशित होंगे। चौबीस व्याख्यान हो गये हैं, इन तीन चिट्ठियों के। दो हजार प्रकाशित होंगे मोहनलाल कानजी घीया की ओर से। आनेवाले थे अभी परन्तु अब देरी लगी। समझ में आया ?

गुण से गुण, गुण कहना गुण... गुण... गुण—भाव। एक गुणी के कारण गुण नहीं, गुण के कारण गुण नहीं, पर्याय के कारण गुण नहीं। यह कहा न पहले। द्रव्य, गुण के कारण से नहीं। वह वस्तु ऐसी है जरा। वस्तु ऐसी है कोई। अपूर्व सत् महा जिसकी चीज़ है। एक-एक सत् रूप से विराजमान गुण है। जिसका गुण का एक समय में अनन्त सामर्थ्य है। अनन्त पर्याय हो, वह और भिन्न। परन्तु एक-एक गुण का अनन्त स्व-स्व सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त गुण स्वतन्त्र हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गुण स्वरूप। वह गुण में सामर्थ्य है, उस गुण में सामर्थ्य है।

मुमुक्षु : सामर्थ्य द्रव्य हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। यह तो गुण का सामर्थ्य है।

मुमुक्षु : वस्तु हो, वह सामर्थ्य बिना की हो ? गुण हो वह सामर्थ्य बिना का....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक-प्रत्येक पर्याय में सामर्थ्य है। एक पर्याय में अनन्त सामर्थ्य है। एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद का सामर्थ्य है।

मुमुक्षु : उस गुण को गुण नहीं, यह साबित करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। वह तो निराश्रया गुणा गुणा, वह अलग बात। वह बाद में।

कहो, आत्मा के स्वरूप को जानता है।

भावार्थ :- इन संसारी जीवों में शत्रु आदि अनेक भेद दिखते हैं,... ऐसा कहा

सही पर्याय में, लक्ष्य में ख्याल आवे। ख्याल पर्याय है न? विषय तो है न? परन्तु एक क्षणिक विषय, क्षणिक व्यवहारनय के वर्तमान नय का क्षणिक विषय है। त्रिकाल ज्ञान को जाननेवाला, त्रिकाल वस्तु को जाननेवाला ज्ञान, उसके विषय की अपेक्षा से यह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। परन्तु जो ज्ञानी सबको एक दृष्टि से देखता है... वस्तुदृष्टि से, हों! उसकी यह बात नहीं। यहाँ त्रिकाल स्वभाव का माहात्म्य हुआ, सबके आत्मा ऐसे ही हैं। जैसा मेरा, वैसा सबका। पर्याय में गौण स्वयं पर्याय को गौण की है। व्यवहार को गौण, निश्चय को मुख्य। यहाँ मुख्यता की बात चलती है अभी। समझ में आया?

एक दृष्टि से देखता है—समान जानता है। शत्रु, मित्र, जीवित, मरण, लाभ, अलाभ आदि सबों में समभावरूप... समभावरूप अर्थात् स्वभाव के निश्चय के ध्येय से ज्ञाता-दृष्टापने के समभावरूप भाव से वीतराग परमसामायिकचारित्र उसके प्रभाव से... रागरहित वस्तु के ध्येय से प्रगट हुई निर्मल अरागी पर्याय, ऐसी परमसामायिक चारित्र, शान्ति, उसके प्रभाव से जो जीवों को... ऐसे प्रभाव से, हों! स्वभाव के शुद्ध पूर्णानन्द के सन्मुख परिणाम से ऐसे वीतरागचारित्र के भाव द्वारा। वह आंशिक वीतराग है चौथे में, पाँचवें में भी। शुद्ध संग्रहनयकर एक जानता है... 'एक' शब्द चाहिए भाई! 'एक' शब्द रह गया है। शुद्ध संग्रहनयकर... नये में प्रकाशित है? एक चाहिए, एक चाहिए। 'शुद्धसंग्रहनयेनैकत्वं मन्यते' ऐसा पाठ है संस्कृत। यहाँ एकपने को सिद्ध करना है न?

भगवान आत्मा अपने शाश्वत् एक असली स्वभाव के अवलम्बन के कारण से। प्रगट हुई रागरहित दृष्टि, ज्ञान और समता। प्रगट हुई रागरहित की, भेद-विकल्परहित की दृष्टि, ज्ञान और समता। उसके प्रभाव से जो जीवों को शुद्ध संग्रहनयकर... ऐसे एक पिण्ड सब भगवान वीतरागस्वरूप सब है। सब शान्तरस के पोटला है। पोटला समझते हो? यह गाँठ नहीं बाँधते गाँठ? गठरी। शान्तरस की गठरी-गठरी। अकेला शान्तरस। अविकारी स्वभाव है न। इस प्रकार देखना है न। अपने राग को जहाँ अधिक नहीं किया, अपने स्वभाव को अधिक किया तो सबके स्वभाव को ही राग और पर्याय से अधिक जानता है (अर्थात्) भिन्न जानता है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

सबको समान मानता है,... 'शुद्धसंग्रनयेनैकत्वं मन्यते' एक इस प्रकार से, हों! वस्तुरूप से एक, ऐसा नहीं। जाति एक, वस्तु एक अनन्त गुण की गठरी चैतन्य रत्नाकर। जिसमें विकल्प की विषमता का परलक्ष्यी भाव टला है, निर्विकल्पस्वभाव के आश्रय की दृष्टि से अरागी दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तीनों ही पर्यायें प्रगट हुई हैं। उसके द्वारा यही आत्मा स्वयं अपने को देखता है, ऐसे सबको समान जानता है। समझ में आया? वही अपने निज स्वरूप को जानता है। उपयोग यदि वहाँ जाये कि यह... यह... अकेला खण्ड-खण्ड हो जाये, तो यहाँ खण्ड-खण्ड माना उसने अपने को। अखण्ड ज्ञायक, अखण्ड ज्ञायक एकरूप स्वभाव ऐसा ही सब अखण्ड ज्ञायकस्वभाव समानरूप से जानता है। वही अपने निज स्वरूप को जानता है। अपने स्वरूप में स्थिर हो सकता है। उसको विषमता होगी, अरे! यह शत्रु, अरे! यह मित्र। कुछ करता नहीं, सुन न! विरोध कोई करता नहीं। शत्रु-मित्र कोई है नहीं। उसमें यह विकल्प उठा, वह उसका नहीं। तुझे खतौनी करना है उसकी? तो आत्मा वैसा है? उसमें जो विकल्प उठा आस्रव का शुभ या अशुभ भले हो, वह अशुभ आस्रव जीव में है? वह जीव में एक जीव को ऐसा कैसे देखता है अशुभ आस्रववाला? वह तो आस्रव भिन्न है, तत्त्व भिन्न है। मोहनभाई! यह समभाव, इसका नाम समभाव। ऐसा समभाव रखे कि समान... कषाय नहीं करते, कषाय नहीं करते। ऐसा होगा? वह तो विकल्प उठा वापस कि कषाय नहीं करते। चैतन्य के महारस में स्वाद की दृष्टि में जो समभाव से परिणति खड़ी हुई, उसी प्रकार से जिस समभाव से अपने को देखता है, रागादि होने पर भी जिसने गौण कर दिया है, अधिकपना तो इसका है—ऐसे सबको आस्रव आदि निमित्त को गौण करके उसका स्वभाव परिपूर्ण, ऐसा समान भाव से देखता है, उसे समता रह सकती है। समझ में आया?

जो निजस्वरूप, वीतराग सहजानन्द एक स्वभाव... देखो, अब कैसा है, ऐसा कहते हैं। अपना स्वरूप कैसा है? जो निजस्वरूप, वीतराग सहजानन्द... रागरहित और सहज आनन्दवाला, वह भी एक स्वभाव। एक स्वभाव लेना है न यहाँ तो पूर्ण। वह वस्तु शत्रु-मित्र आदि विकल्प-जाल से रहित है,... शत्रु-मित्र का विकल्प, हों! शत्रु-मित्र से तो रहित है, परन्तु शत्रु-मित्र यह... यह... उसका जो विकल्प, उससे रहित है।

समझ में आया ? वह तो परपदार्थ है। उससे तो रहित है। उसके लक्ष्य से अपने में विकल्प उठता है, उस जाल से भी रहित है, ऐसे निजस्वरूप को... ऐसे निजस्वरूप, ऐसा वापस। यहाँ परमात्मप्रकाश है न। अपना परमात्मस्वरूप प्रकाशमय है विकाररहित। ऐसे निजस्वरूप को समताभाव के बिना नहीं जान सकता। कितनी धीरज चाहिए ! वह समताभाव अर्थात् ? अत्यन्त विषमता पर्याय की, पर की ऐसी विषमता का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव में एकाग्रता जो वीतराग-विज्ञान निजस्वरूप घन है, उसके अवलम्बन में होता समताभाव, उसके बिना निजस्वरूप को जान सकता नहीं।

मुमुक्षु : निजानन्द स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निजानन्द स्वभाव। त्रिकाल निजानन्द है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान तो ज्ञान ही है। ज्ञान में तो सब आ गया। उपयोग वर्तमान आनन्द में है उतना। ज्ञान में तो सब है। वह अकेला आनन्द नहीं। वह तो आनन्द की प्रधानता से कहा। निजानन्द अर्थात् अकेला आनन्द नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भले, परन्तु वह तो अकेला आनन्द नहीं। सब है, दोनों साथ में हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान देखता है। प्रतिबिम्ब तो होता नहीं। ... अपना ज्ञान जो परिणमता है। ऐसे पर आकार तो है नहीं। अपना ज्ञान ज्ञानरूप, आनन्दरूप आदि परिणमता है, उसे निजानन्द स्वभाव कहा गया है। बस ! यहाँ पर का आकार आता नहीं। पर का जो स्वभाव है, उस ओर अपने परिणमन की योग्यता से स्व-पर का ज्ञेयकार परिणमता है। अपनी पर्याय में, हों ! उसकी विशेषता देखो, उसके भाव की और अपना भाव, उसरूप से आत्मा अपने में परिणमता है, वही ज्ञान में स्व-परप्रकाशकपना आया। उसमें आनन्द आदि आये, आदि सबमें आया। परन्तु यहाँ आनन्द की मुख्यता बतलानी है।

मुमुक्षु : सुखी बतलाना ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी बतलाना है । वह विकल्प है, वह दुःख है, इतना बतलाना है । और यहाँ विकल्प है, वह दुःख है; इसलिए विकल्प जहाँ छूटा, तो आनन्द आया, इतना बतलाना है । लब्ध में तो सब ज्ञान है, सब प्रकार का है । उपयोग एक ओर जमा है, इसलिए उसे कहा कि निजानन्द स्वरूप आत्मा है । ऐसा कहा है । बाकी है तो अनन्त गुण । गुण का भेद करता नहीं उपयोग में । उपयोग एकरूप हो, उसमें भेद कैसे करे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सब है । हो, सबरूप है । नहीं, विश्वरूप नहीं, विश्वरूप है नहीं । विश्व का ज्ञानरूप है । अपना ज्ञानरूप है, विश्वरूप नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ज्ञेयाकार नहीं । वह तो अपना आकार है । वह तो अपना आकाररूप है । वह आत्मज्ञान । देखो न, यह ४७ शक्ति में लिया न ? लो, यही आया । पृष्ठ यह आया, देखो । कहा, कहाँ होगा ? देखो, **समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप परिणमित...** परिणमित । 'ऐसा आत्मदर्शनमय ।' पर की यहाँ बात नहीं । पर सम्बन्धी का अपना ज्ञान, वह आत्मदर्शन, वह अपने में है । अपना है । 'आत्मदर्शनमय सर्वदर्शीशक्ति ।' आत्मदर्शन, वह पर्याय ही आत्मदर्शी है । सर्व विश्व को जाननेरूप वह ज्ञान का । सर्व विषयों के विशेषों को जाननेरूप परिणमित । ऐसा कौन ? आत्मज्ञानमय सर्वज्ञशक्ति । पर्याय तो अपनी है । एकरूप शक्ति है । उसमें पर का कुछ आया नहीं । पर और स्वसम्बन्धी की आत्मज्ञानमय दशा हुई । उसे सर्वज्ञशक्ति कही गयी है । आत्मज्ञानमय हुई है वह, परमय नहीं । यह पूरी बात व्यवहार है । पर तो व्यवहार है । वह पर का आकार... यहाँ तो स्वरूप का सर्वज्ञपना आत्मज्ञानमय सर्वज्ञशक्ति । आत्मज्ञानमय सर्वज्ञशक्ति । सर्वपने के ज्ञानमय नहीं । यह सर्व का ज्ञान (और) अपना ज्ञान, ऐसा अपने ज्ञान में अपना ज्ञान परिणमा अपने कारण से । ऐसी आत्मज्ञानमय सर्वज्ञशक्ति । उसमें दूसरा भेद नहीं । बहुत सूक्ष्म बात है । यह बात....

मुमुक्षु : वह आत्मज्ञानरूप है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मज्ञान है, वह पर का ज्ञान नहीं । सर्व विश्व का अर्थात् विश्व का वह ज्ञान नहीं । यह तो बात है । वह ज्ञान अपना है ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, उसका ज्ञान कहाँ है ? लोक का ज्ञान ही नहीं । वह अपनी पर्याय । पर की नहीं, पर के कारण से नहीं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह अपना भाव । वह अपना एक ही भाव । सब एक ही भाव है ।

निजस्वरूप को समताभाव के बिना नहीं जान सकता । वह अपना स्वरूप ही है । वह तो आता है न उस सप्तभंगी में आता है । वह ज्ञेयाकाररूप और वह ज्ञानाकार, यह आता है । परन्तु वह तो यहाँ तो निश्चय एक ही है, दो भेद ही नहीं । बाकी उसमें... वह अपने में स्व-पर का अपना स्व । स्व-पर का ज्ञान अपना स्व, उसरूप से आत्मज्ञान है । कहो, १०४ गाथा हुई ।

★ ★ ★

गाथा - १०५

आगे जो सब जीवों को समान नहीं मानता, उसके समभाव नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं—मानता लेना है ।

२३२) जो णवि मण्णइ जीव जिय सयल वि एक्क-सहाव ।

तासु ण थक्कइ भाउ समु भव-सायरि जो णाव ॥ १०५ ॥

देखो 'एक्क-सहाव ।'

हे जीव, जो सभी जीवों को एक स्वभाववाले... एक स्वभाव नहीं मानता (अर्थात्) नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता,... समभाव नहीं रहता । यह

आता है न भाई उसमें ? पीछे नहीं ? ज्ञान का ज्ञान नहीं । ... नहीं नहीं ? अन्तिम । कषाय कलिते....

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र नहीं जानना । ज्ञेयों के ज्ञानमात्र नहीं जानना । ज्ञेयों के आकार से होनेवाले... अपने ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ... यह २७१ । भगवान ज्ञानस्वरूप... वह ज्ञेयाकार का ज्ञान नहीं जानना, ज्ञेय का ज्ञान नहीं जानना । अपने ज्ञान का वह ज्ञान है । ऐसा है देखो !

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।

ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए; ज्ञेयों के आकार से होनेवाले... अपना स्वभाव अपने आकार से शब्द प्रयोग किया है, इस अपेक्षा से । जानने की अपेक्षा से । ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह, ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिए (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता—इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए ।) यह ज्ञेय और मैं ज्ञान, ऐसा नहीं । यह तो भाई अभेद की बात है न । अकेला आत्मा । स्वयं ज्ञेय-ज्ञाता, उसके भी भेद नहीं होते । वह तो समझाने की बात है । अकेले स्वज्ञेय में सब आ जाता है । विशेष कहेंगे, लो !

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक ११-०६-१९६५

गाथा - १०५ - १०६, प्रवचन - १४५

यह परमात्मप्रकाश का दूसरा अध्याय है। इसकी १०५वीं गाथा है। आगे जो सब जीवों को समान नहीं मानता, उसके समभाव नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं—

२३२) जो णवि मण्णइ जीव जिय सयल वि एक्क-सहाव ।

तासु ण थक्कइ भाउ समु भव-सायरि जो णाव ॥ १०५ ॥

इसका शब्दार्थ। हे जीव! जो... 'सकलानपि' सभी... सभी कहने से अनन्त जीव। इस जगत में द्रव्य-वस्तु संख्यारूप से अनन्त जीव है। वे 'सकलानपि' शब्द में कहा। और उन जीवों को एक स्वभाववाले... देखो, अनन्त जीवों की वर्तमान पर्याय में राग-द्वेष अल्पज्ञता आदि भले अंशबुद्धि में, अंशकाल में हो, परन्तु उसके शाश्वत् स्वभाव में प्रत्येक जीव एक स्वभावी पूर्ण स्वरूप से है। समझ में आया? जैसे पीपर का दाना, यह पीपर छोटीपीपर। लाख, करोड़ गुनी हो। एक पीपर के दाने की वर्तमान अवस्था में काली और कम चरपरी—चरपराई, उस हरे रंग का अभाव अंश में भले हो, परन्तु उसके अन्तर स्वभाव में प्रत्येक पीपर चौंसठ पहरी चरपराई और पूरा हरा रंग-हरा रंग, उससे पीपर पूरी भरी है। उस पीपर का दाना इतना। छोटी पीपर—लींड़ीपीपर। अन्तर में चौंसठ पहरी... चौंसठ पहर कहते हैं न? अब यह सौ पैसे का रुपया हो गया। अभी तक चौंसठ पैसे का रुपया था न? तो सौ पैसे का रुपया कहो, सोलह आना कहो, पूर्ण कहो, चौंसठ पैसा कहो। ऐसे एक पीपर के अन्दर में चौंसठ पहरा चरपरा रस अर्थात् पूरा रस अर्थात् कि पूरा स्वभाव (भरा हुआ है)। ऐसी चौंसठ पहरी चरपरी, ऐसा हरा, ऐसे अनेक उसके स्वभाव वे अन्दर पूर्ण हैं। यदि पूर्ण स्वभाव न हो तो प्रगटकाल में पूर्णता कहाँ से आयेगी? क्या कहा, समझ में आया?

पीपर में पर्याय में—अवस्था में पूरी चरपराई चौंसठ पहरी, हरा रंग पूरा, कोमल

पूरी। कोमल। सुंवाळी कहते हैं? कोमलता। नरम नहीं। मुलायम। मुलायम—कोमल पूरी वह चौंसठ पहरी प्रगट होती है। पर्याय में—अवस्था में—हालत में प्रगट होती है। वह पूर्णपना यदि अन्दर में न हो तो बाहर से कोई आ सकता नहीं। प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें है, उसमें से आता है। तो उस प्रत्येक पीपर को चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण ही देखनी चाहिए वस्तुरूप से, स्वभावरूप से। करोड़ थैलियाँ हों उसकी। गुणी-गुणी कहते हैं न? थैला। उसमें प्रत्येक दाने में चौंसठ अर्थात् पूरा रस है, पूरा हरा रंग है। ऐसा देखनेवाले ने पीपर का सच्चा, वास्तविक स्वरूप देखा कहलाता है। इसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार अनन्त जीव, चौदह ब्रह्माण्ड में—चौदह राजुलोक में अनन्त जीव के थैले पड़े हैं बड़े। अनन्त जीव। उस प्रत्येक जीव को वर्तमान अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्प वीर्य और विकार तथा शरीर के भेद, ऐसे वर्तमानरूप से भेद न देखो, त्रिकालीरूप से उसका स्वरूप देखो तो वह चौंसठ पहरा अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण दर्शन, पूर्ण शान्ति से पूर्ण प्रत्येक आत्मा एक स्वभावरूप पूर्णरूप से अनन्त पड़े हैं, भरे हैं। समझ में आया इसमें? पूनमचन्दभाई! तुम्हारा नाम भी पूनमचन्द है। पूनम पूरा है। देखो! यहाँ अधिकार यह आता है। पूर्ण-पूर्ण। क्या?

प्रत्येक आत्मा, अनन्त आत्मा उनकी वर्तमान दशा में फेरफार दिखता है अंश में। कोई स्त्री, कोई पुरुष, कोई नपुंसक, कोई एकेन्द्रिय, कोई दो इन्द्रिय, कोई त्रीन्द्रिय, कोई अल्पज्ञ, कोई विशेष ज्ञान, विशेष न्यूनाधिक पर्याय में, अवस्था में। परन्तु उसे देखने से तो उसका पूर्ण रूप दृष्टि में आता नहीं। और पूर्ण दृष्टि में आये बिना उस वस्तु को माना, पूर्ण रीति से माना नहीं कहा जाता। समझ में आया?

तो कहते हैं हे जीव! सभी जीवों को एक स्वभाववाले... परिपूर्ण स्वभाव। आहाहा! मेरा स्वभाव वस्तुरूप से, शक्तिरूप से, गुणरूप से वह गुण और शक्ति में अल्प—अधिकपना हो नहीं सकता। वह तो एक समय की दशा में अल्प-हीनाधिकता दिखती है। वस्तु स्वरूप में एकरूप में हीनाधिकता नहीं होती। तो ऐसा एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, एकरूप आनन्द, एकरूप वीर्य, एकरूप स्वच्छता, एकरूप परमेश्वरता—

ऐसा एकरूप स्वभाव सब अनन्त जीवों का जो जीव जानता नहीं, उसे दृष्टि में समभाव आता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! देखो ! **हे जीव ! सभी जीवों को...** इसीलिए सभी पीपर के दाने को। उसका वह दाने का रूप, रूप मानना हो तो उसका पूर्ण स्वरूप है, एक समय के अतिरिक्त का उसका-उसका स्वरूप-स्वरूप एकरूप, स्वभावरूप, भावरूप, पूर्णरूप, तो उस पीपर को उसने पूर्ण रीति से माना कहलाता है। इसी प्रकार भगवान् अनन्त आत्मायें, उसे एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान पर्याय में हीनाधिकपना न देखकर, उसका स्वभाव शुद्धता, समभावता, वीतरागता, अकषायता, ज्ञान-दर्शन आनन्दता, ऐसा उसका स्वभाव एकरूप अनन्त जीवों का है। आहाहा ! कहो, बसन्तीलालजी ! समझ में आया ?

विषमता उत्पन्न होने का... स्वरूप पूर्ण है अनन्त आत्मायें, ऐसा जहाँ दृष्टि में, प्रतीति में है, ऐसी पूर्ण वस्तु है, वस्तु है एक अखण्ड तो उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द एक स्वभावी, एकरूप, अखण्डरूप, अभेदरूप ऐसा एक स्वभाव अनन्त गुण का है, उसे आत्मा कहते हैं। और ऐसे आत्मा को इस प्रकार से देखने पर सभी जीव भी ऐसो ही परिपूर्ण हैं तो उसे दृष्टि में समभाव अथवा अपने पूर्ण स्वरूप की सम्यक् सत्यता की श्रद्धा होने से दूसरे सब स्वभाव से ऐसे हैं। इसलिए उनकी हीनाधिकता देखकर हीनाधिक देखकर राग-द्वेष होने का प्रसंग ज्ञानी को स्वभाव की परिपूर्णता देखने में रहता नहीं। आहाहा ! बात तो अलौकिक है न, बापू !

यहाँ तो कहते हैं, अनन्त आत्मा को... एक परमस्वरूप परमात्मस्वरूप। परमात्मप्रकाश है न ! उसका स्वरूप ही परमात्मा है। वस्तु ही परमात्मा है। अनन्त आत्मायें परमात्मा है शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, स्वरूपरूप से, सत्त्वरूप से, गुणरूप से। जिसका गुण और सत्त्व हो, वह अपूर्ण हो सकता नहीं। वह अपूर्ण और हीनाधिकता के भंग उसकी दशा में होते हैं, हालत में। एक-एक समय की दशा में फेरफार है। वस्तु तो वस्तुरूप से (पूर्ण है)। चौंसठ पहर की पीपर में से कोई दो पहर चरपराई निकली, तो भी वह अन्दर तो चौंसठ पहर की ही पूरी है। तीन पहर निकली प्रगट, तो भी चौंसठ पहर की ही है। चौंसठ पहर निकली तो भी वह चौंसठ पहर की ही है अन्दर तो। नवनीतभाई ! समझ में आया ? यह लॉजिक से तो कहा जाता है जरा, हों !

यह पीपर है, वह चौंसठ पहरी प्रगट होती है न बाहर ? यह चरपराई । बहुत सर्दी के ऊपर जरा दे । वह प्रगट हुई कहाँ से ? वह आयी कहाँ से ? उसकी पूर्व अवस्था अल्प थी दो-पाँच-दस पहरी प्रगट । वह दो-पाँच पहरी, अरे ! त्रेसठ पहरी अन्तिम । तो त्रेसठ पहरी की प्रगटता में से चौंसठ आयी ? त्रेसठ का अभाव हो गया । अभाव में से भाव आवे ? वह चौंसठ पहरी जो शक्तिरूप से थी, वह व्यक्तरूप से, प्रगटरूप से आती है । शक्तिरूप से थी, वह व्यक्तरूप से आती है । पूर्व की अवस्था यहाँ एक पहरी, दो पहरी, तीन पहरी घोंटने से चौंसठ (होती है) । त्रेसठ पहरी (तक) वह तो एक-एक का व्यय होता है । एक का व्यय होकर दो, दो का व्यय होकर तीन, तीन का व्यय होकर चार । वह सब अन्तर (में) से आती है । ऐसे त्रेसठ का व्यय होकर चौंसठ, वह अन्दर से आती है । तो उसका अन्दर स्वरूप तो चौंसठ पहर अर्थात् पूरा ही है । प्रतिसमय पूरा है । एक पहरी हो तो भी पूर्ण है और एक पहरी न हो और काली यों ही दिखती हो तो अन्तर वस्तु तो पूरी ही है । तो उसे आत्मरूप और आत्मसत् का सत्त्व ऐसा जाने, उसने आत्मा माना, जाना कहा जाता है । समझ में आया ?

कोई मनुष्य पाँच-पच्चीस करोड़ का आसामी हो या अरब का, वह जेब में पाँच या दस रुपये लेकर सब्जी लेने निकला । उसे उतना आसामी मानना, वह उसके पूरे रूप का रूप माना है उसने ? यह शाक-शाक समझते हो न ? शाकभाजी लेने निकला । पाँच-पच्चीस रुपये लेकर कपड़ा लेने निकला पच्चीस, पचास, सौ, दो सौ, पाँच सौ रुपये । परन्तु अरब रुपये तो घर में हैं, विद्यमान पड़े हैं । अब इतने रुपये लेकर निकला, इसलिए उसे इतने रुपयेवाला मानना, उसका पूर्ण रूप है, उसकी सम्पदा को ऋद्धि को उसने माना नहीं ।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में पर्याय में, पर्याय में—अवस्था में कोई अल्पज्ञान, अल्पदर्शन आदि बाहर निकली हुई अवस्था, उतना ही आत्मा को मानना, उसने आत्मा को माना ही नहीं । आहाहा ! घर में अरब पड़े हैं । यहाँ निकला तो पाँच, पचास, सौ, दो सौ रुपये लेकर निकला कि कपड़े लेने जाना है, आम लेने जाना है । परन्तु अरब कहीं साथ में लेकर निकला जाता है ? क्यों पूनमचन्द्रभाई ! बराबर है ? इसी प्रकार, यह तो

दृष्टान्त का सिद्धान्त कि प्रगटरूप से पाँच, पचास, सौ, दो सौ रुपये लेकर निकला है, परन्तु अन्दर में उसके घर में तो अरब रुपये पड़े हैं। तो वह अरब रुपये की पूर्ण स्थितिवाला जानना, उसका नाम वास्तविक तत्त्व जाना कहलाये। इसी प्रकार भगवान् आत्मा की बाहर में प्रगट अवस्था में कोई अल्पज्ञान, अल्पदर्शन, राग-द्वेष विविधता इतना ही आत्मा को मानना, उसकी सम्पदा में तो पूर्ण ज्ञान, दर्शन आदि पूर्ण स्वभाव पड़ा है, उसे न मानना, उसने आत्मा को माना नहीं। आहाहा! कहो, धर्मचन्दजी! समझ में आया?

कहते हैं... पाठ में क्या शब्द पड़ा है? देखा! 'सयल वि एक्क-सहाव' आहाहा! एक स्वभाव। अनन्त आत्मायें, उनकी वर्तमान दशा के विविधपने के भंग को जाननेयोग्य भले हो ज्ञेयरूप से, वह आदरणीय नहीं। आदरणीय तो... एक आत्मा में भी अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता, पुण्य-पाप का विकल्प राग वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। अंगीकार करनेयोग्य तो वस्तु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता से पूर्ण वस्तु एक स्वरूप है। एक स्वरूप पूर्ण रूप, उसे आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा को जो अन्दर में श्रद्धा करे और अनुभव करे, मानता है, उसे सब जीवों के प्रति समभाव हो जाता है। सब जीव परिपूर्ण स्वभाव से भरे हैं। किसे मुझे न्यूनाधिक देखना? और जब अपने को ही पूर्णरूप से देखता है, तब दूसरे को भी पर्यायरूप से न देखकर, उसकी वर्तमान प्रगट अवस्थापने की सम्पदा से पूर्ण न देखकर, उसके पूर्ण स्वभाव को देखकर यह मुझसे हीन या यह मुझसे अधिक, यह प्रसंग उसे खड़ा नहीं होता। आहाहा! परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव कहते हैं। देखो तो सही! भगवान्!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा। भाग्यवान नहीं, परमात्मा। और भाग्यवान की यहाँ कहाँ बात है? देखो, परन्तु कहा न! दाने का दृष्टान्त तो तुमको सीधा दिया पीपर का। सब दाने। पूरी थैलियों की थैलियाँ भरी हो। मुम्बई में तो बड़े गोदाम भरे होते हैं। एक-एक धन्धा एक को, हों! मुम्बई में एक-एक धन्धा होता है कितनों को। बस, केसर का धन्धा हो तो केसर का। इलायची का तो इलायची का। वह क्या कहलाता है? पीपर का

हो तो पीपर का एक ही धन्धा बड़ा। वह बोरियाँ भरी होती हैं। पहले दुकान का माल लेने जाते थे न वहाँ, तो हम देखते थे। तो सब गोदाम भरे एक ही प्रकार के। कितने परन्तु! बादाम का हो तो बादाम का ही एक पूरा गोदाम। बादाम आती है न। गोदाम के गोदाम भरे हों।

इसी प्रकार यह चौदह ब्रह्माण्ड में... जैसे वे पीपर के दाने के गोदाम भरे, तो भी प्रगट में अल्प कालापन और हरेपने का अभाव होने पर भी, जिसके अन्तर स्वभाव में लीलो—हरा रंग और चरपरा पूरा रस, ऐसे अनन्त स्वभाव से वह पीपर एक समय में पूर्ण है। इसलिए वह पर्याय में प्रगट के काल में प्राप्त की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान में-वर्तमान में, अनन्त जीवों की वर्तमान अवस्था में भिन्नता प्रत्येक की वर्तमान में दिखने पर भी उसका अन्तररूप देखो, वह स्वयं अपना अन्दर रूप पूर्ण देखे तो पूर्ण है, अल्पज्ञ और वीर्य अल्पता, वह मेरे स्वभाव में है नहीं। एक स्वभाव को देखनेवाला सत्यदृष्टिवन्त है। और वह सत्यदृष्टिवन्त सब जीवों को पूर्ण स्वभाववाला देखे, वह सत्यदृष्टिवन्त है। समझ में आया? आहाहा!

यह सब उसके प्रतीक हैं, उसके सब दिखाव के लिये यह समवसरण। भाई ने प्रश्न किया था न रात्रि में? कि यह क्या पाँच-दस लाख...? भाई! जरा शान्ति से देखो कि यह समवसरण और यह परमात्मा, वे पर्याय से पूर्ण थे, स्वभाव से पूर्ण, पर्याय से पूर्ण। ऐसे अनन्त परमात्मा, उनका यह स्थान, उनका ऐसा पुण्य, उनका पूर्व का विकल्प का पुण्य ऐसी स्थिति। उन सबके अस्तित्व के स्मरण के लिये यह निमित्त हैं। और उन निमित्तों में ऐसे अस्तित्व का स्मरण आने पर उसकी वर्तमान बुद्धि (पर्यायबुद्धि) का नाश होकर त्रिकाल बुद्धि हो जाती है। उसके लिये यह प्रतीक हैं। समझ में आया? ऐसे त्रिकाल परमात्मदशा थी। अनन्त परमात्मा प्रगट अवस्थावाले थे। अनन्त परमात्मा को कोई पूर्व का विकल्प था और पुण्य हुआ, उनके स्वरूपरूप से यह समवसरण थे। यह सब अस्तित्व स्वीकारने पर, ऐसा अस्तित्व स्वीकारने पर, वर्तमान बुद्धि का विकल्प और अल्पज्ञता का स्वीकार उड़कर त्रिकाल स्वभाव क्या, ऐसा स्वीकार होने पर उसे संयोगों के साधन की आवश्यकता नहीं रहती। उसे विकल्प के साधन की आवश्यकता नहीं रहती तो शरीर अच्छा हो, ऐसी आवश्यकता रहती नहीं।

परन्तु अब यह दीर्घ विचार... कहा था एक बार। जोरावरनगर में आँख के ऑपरेशन का यज्ञ करते हैं न? नेत्रयज्ञ। अपने नारणभाई थे। पूनमचन्दभाई! तुम नहीं हो। वढ़वाण नहीं था तब वढ़वाण नहीं था तोतला बोलते? पहिचानते थे न तुम? पाँच वर्ष पहले गुजर गये। पश्चात् वहाँ आगे बड़े डॉक्टर मथुरादास आये थे। मथुरादास बड़ा डॉक्टर। बहुतों का यज्ञ किया आँख का यहाँ जोरावर (नगर) में। मनसुखभाई साथ में थे, अपने मनसुखलाल ताराचन्द। लोग बहुत महिमा करने लगे मथुरादास की। ओहोहो! बहुत काम किये, बहुत काम किये, बहुत काम किये। फिर नारणभाई कहते हैं, सुन-सुन। हमारे साथ एक नारणभाई थे। हम उसमें थे न तब दीक्षित हुए थे। फिर जरा फेरफार हुआ और छूट गये थे और गुजर गये। परन्तु उस समय बहुत तर्कबाजी थी। फिर उसे कहे, यह शरीर तुझे मिला, यह इन्द्रियाँ फूटी या पोला-फोल्ला पड़े और मोतिया आया। उस मथुरादास को खोजना पड़े। उसकी अपेक्षा ऐसा एक पुरुष तुझे बताऊँ कि तुझे शरीर न मिले, इन्द्रियाँ न मिले और ऐसे डॉक्टर की आवश्यकता न पड़े। पण्डितजी! यह तू किसकी महिमा करता है? परन्तु तुझे कितने करने हैं? बसनतीलालजी! ओहोहो! हजारों-लाखों को आँखें दी। परन्तु सुन तो सही! शरीर तो रखना है न उसे? और शरीर जितने यहाँ से फूटेंगे, वे पोले होंगे और मोतिया होगा। मथुरादास को सर्वत्र खोजना है न इसे? परन्तु एक आत्मा ऐसा तुझे वीतराग परमेश्वर बता दूँ कि जिसकी पहिचान होने से, जिसकी महत्ता भासित होने से तुझे यह शरीर मिले नहीं, रोग हो नहीं और डॉक्टर खोजना पड़े नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी तो बात चलती है। उसके ऊपर तो यह दृष्टान्त दिया। समझ में आया? कितनी महिमा करे लौकिक के उपचार में। इतने-इतने। ओहोहो! क्या है? अभी तो शरीर रखना है और शरीर मिलेगा तो शरीर में रोग और प्रतिकूलता आये बिना रहेगी नहीं। बारम्बार पैसा हो नहीं, निर्धनता हो, डॉक्टर को खोजना, हैरान होना, भिखारीरूप से उसका उपकार उसका इतना, उसका तू बहुमान करता है?

एक त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा जगत के महान वैद्य हैं, महान वैद्य हैं परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर। कि जो जगत को ऐसा कहते हैं कि तुझे शरीर ही नहीं मिले। स्वभाव का मान कर, स्वभाव का माहात्म्य कर, अल्पज्ञ का माहात्म्य छोड़ दे। संयोग का छोड़ दे। ऐसे स्वभाव के माहात्म्य का मैं एक वैद्य हूँ। उसका माहात्म्य करने से तुझे शरीर रहेगा नहीं, कर्म रहेंगे नहीं, रोग होगा नहीं, डॉक्टर खोजना पड़ेगा नहीं। खाने-पीने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उसकी प्रशंसा! इतनी प्रशंसा लौकिक में? इसने पाँच करोड़ दिये, इसने ऐसा किया। अब सुन न! बसन्तीलालजी!

इसी प्रकार यहाँ भगवान योगीन्द्रदेव कहते हैं, भाई! तेरी अल्पज्ञदशा और रागादि में और शरीरादि में कोई अच्छे निमित्त मिलें और तू उनकी प्रशंसा करता है, तो तुझे अल्पज्ञता रखने का ही तुझे भाव है। अल्पज्ञता रखनी है, उसे राग हुए बिना रहेगा नहीं और शरीर मिले बिना रहेगा नहीं। परन्तु तेरा पूर्ण स्वरूप अल्पज्ञता के काल में भी पूर्ण आनन्द और ज्ञान एक स्वभावी भगवान, एक स्वरूप भगवान, एक भाव से भगवान, एक भाव से भगवान है। एक भाव अर्थात्? एक गुण, ऐसा नहीं। एकरूप। ज्ञान का एकरूप, दर्शन का एकरूप, आनन्द का एकरूप, स्वच्छता का एकरूप, शान्ति, चारित्र्य का एकरूप। ऐसा त्रिकाली स्वभाव भगवान अनन्त आत्माओं का, जिसकी वर्तमान दृष्टि छोड़कर, त्रिकाल दृष्टि करने से ऐसी परिपूर्णता भासित हो, उन सब जीवों की वर्तमान दृष्टि छोड़कर उनके त्रिकाल स्वरूप की प्रतीति करता है। उसे जन्म-मरण रहते नहीं। उसकी दृष्टि में सत्पने का आदर, पूर्ण स्वभाव के सत् का आदर हुआ। अल्पज्ञ की पर्याय में चार ज्ञान होने पर भी आदर रहा नहीं। वह टलकर पूर्णानन्द की प्राप्ति हो जायेगी। इस बात को मान और अनुभव और जान। इसके बिना सब बातें थोथेथोथा है।

यह तो रुपया खोजे, उससे रोग हो, वह भक्तामर गिनते हैं न? भक्तामर प्रणत... क्या होगा? भक्तामर गिने और फिर नंगे भूखे नहीं रहेंगे। शरीर तो रखना है न तुझे? नंगे-भूखे नहीं रहेंगे। अर्थात् क्या? शरीर रहे, वस्त्र मिले, रोटियाँ मिले। इसलिए भक्तामर गिनते हैं न? यह भक्तामर प्रणत... मूर्ख है। भक्तामर इसके लिये है? वह

आदीश्वर भगवान की स्तुति के गुणगान हैं। उनके जो गुण पर्याय में प्रगट हुए, ऐसे उनके स्वभाव में परिपूर्ण पड़े हैं, ऐसे ही तेरे स्वभाव में परिपूर्ण हैं, यह दृष्टि करने के लिये भक्तामर की स्तुति का प्रयोजन है। आहाहा! प्रयोजन भी समझे नहीं और ऐसे के ऐसे हाँका करे। भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणाम। परन्तु क्या है उसमें अब? इसलिए अपने को पैसा-बैसा मिले, रोग न रहे। सवेरे उठाकर यह भक्तामर (बोले)। निरोगता रहे।

वह वहाँ एक भाई बहुत बोलता था। वह वहाँ है न, नहीं बोलता था अपने? ... वजुभाई। बाहर बोलता था भक्तामर। वहाँ ... है न बाह्य? वजुभाई है न एक क्या कहा उसमें आशा-बाशा तो नहीं न कुछ भक्तामर में? अरे! जिन्हें चौंसठ इन्द्र अथवा सौ इन्द्र मुकुट से नमते थे, ऐसी जिनकी पर्याय प्रगट हो गयी। उन्हें सौ इन्द्र उनके (इन्द्र के) वैभव को तुच्छ गिनकर, वे इन्द्र स्वयं को प्राप्त ऐसे वैभव की सम्पदा इन्द्रपद को तुच्छ गिनकर, उनको (भगवान की) प्रगट हुई पर्याय का बहुमान करते हैं। हमको प्रगट हुई अल्पज्ञता है, उनकी प्रगट हुई बहुत है। प्राप्त वैभव की तुच्छता गिनकर पूर्णता का आदर करते हैं, वे द्रव्यस्वभाव के ऊपर दृष्टिवाले उनका वास्तविक आदर कर सकते हैं। समझ में आया? प्राप्त इन्द्र के वैभव। कहे, नहीं, नहीं। यह नहीं, हों! यह नहीं।

एक मुनि जंगल में बबूल के नीचे... बावळ समझे न? बबूल, कांटे। ऐसे ध्यान लगा दिया था अन्दर में। वह चक्रवर्ती हाथी के हौदे चला जाता हो छियानवें करोड़ सैनिक साथ में। छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ। नीचे उतर जाये, नीचे उतर जाये। हाथी को बैठावे। एक मुनि ध्यान में बैठे हैं। आहाहा! उनकी मुद्रा देखकर ऐसा हो जाये कि यह वे कोई सिद्ध के साथ बातें करते हैं। शान्त पिण्ड। शान्त... शान्त... शान्त... समरस में सराबोर दिखाई देते हैं। नीचे उतरकर, जय प्रभु! अरे! परन्तु इतनी ऋद्धि! यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... ये जो ऋद्धि साधते हैं, वह हमें चाहिए है। आहाहा! छियानवें करोड़ सैनिक चमत्कार पाते हैं। यह वह क्या! यह (चक्रवर्ती) सुन्दर हीरा जैसा शरीर, यह (मुनि का) काला-कुबड़ा शरीर, (चक्रवर्ती) को इतनी सम्पदा का पार नहीं, उनको वस्त्र का टुकड़ा नहीं, बबूल सिर पर और इसको बड़े महल हैं देवों के बनाये हुए चक्रवर्ती के। नहीं भाई, नहीं हों! यह नहीं, यह नहीं और

हमारी अल्पज्ञ अवस्था प्रगट है, वह भी नहीं, हों! वे पूर्ण साध रहे हैं मुझसे अधिक। आहाहा! उन्हें वन्दन करते हैं और उनको सामने देखना नहीं। ... नहीं। ध्यान में स्थित हैं। आहाहा! ऐसे चक्रवर्ती वन्दन करे इसलिए बड़ा... मैं तो बड़ा मेरे पास हूँ। बड़ा भगवान मैं हूँ। मेरी महत्ता इस पर्याय में प्रगटे, उसे खबर पड़े, दूसरे को खबर पड़े नहीं। ऐसे आत्मा का जहाँ स्वभाव, एकरूप का विश्वास (आया), अल्पज्ञता का और संयोग का विश्वास उठ गया। अल्पज्ञ पर्याय, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य और राग-द्वेष तथा संयोग एक कतार ऐसे एक समय के, वह विश्वास उठ गया। पूर्ण एक समय में आनन्द और ज्ञानस्वभाव से द्रव्यस्वभाव, उस विश्वास से आत्मा को झेला, (उसे) समभाव समदृष्टि हुई। समझ में आया? ऐसा कहते हैं यहाँ।

सभी जीवों को एक स्वभाववाले नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता,... वह तो पर्याय वर्तमान देखकर कि यह मुझसे अधिक हो गया, यह मुझसे कम रहा। कम रहा उसे दीनता हुई। दीन देखे, अधिक, उसे ऊपर देखे। वह पर्याय में हीनाधिकता, उसे अज्ञानी देखकर समभाव नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! क्या कहते हैं आचार्य? कहते हैं 'सकलानपि जीवान् एकस्वभावान्'। कैसा है स्वभाव एक? वह वस्तु है एक, पदार्थ है, अखण्ड है, पर्याय का एक समय का, एक समय का संसार है। एक समय का ही उत्पाद का भाग अल्प-हीनाधिकरूप से परिणम रहा है प्रत्येक जीव का। उस एक समय का लक्ष्य छोड़ दे। तेरा एक समय का लक्ष्य छोड़ दे तो पूर्ण स्वभाव की दृष्टि में जैसे समभाव सम्यक् आया, वैसे सब भगवान पूर्ण स्वभाव से हैं। विषमता होने का प्रसंग रहता नहीं। किसी कमजोरी के कारण रागादि आवे, वह पर्याय को देखकर आया नहीं, स्वभाव के कारण से नहीं, कमजोरी के कारण से आया, वह ज्ञाता-दृष्टा रहता है। वह राग को जाननेवाला-देखनेवाला रहता है, उसका नाम ज्ञानी और समकिती कहा जाता है। समझ में आया?

नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता, जो समभाव... देखो, पूर्ण स्वरूप और विद्यमान वापस। है ऐसा, हों! सत् है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' तो एक समय का उत्पाद, उसका लक्ष्य छोड़कर ध्रुव पूर्ण स्वभाव, ऐसा पूर्ण सत्, ऐसे स्वभाव

को देखनेवाले को समभाव होता है। और समभाव इस प्रकार से न रखे, वह अज्ञानी है। वह समभाव कैसा है ? संसार-समुद्र के तैरने का नाव के समान है। जहाँ-जहाँ क्षण में, किसी क्षेत्र में, किसी क्षण में उसकी वर्तमान अवस्था में हीनाधिक के ऊपर उसका लक्ष्य नहीं, दृष्टि का जोर नहीं, दृष्टि का जोर नहीं। जोर स्वभाव के ऊपर है। इसलिए स्वभाव के ऊपर दृष्टि के जोर से समभाव होता है। वह समभाव संसार को तारने की नाव है। वह संसार के उदयभाव... संसार अर्थात् उदयभाव, उस उदयभाव को यह पूर्ण स्वभाव मेरा और सबके पूर्ण एकरूप स्वभाव, ऐसी दृष्टि का समभाव, उस उदयभाव का अभाव करने का वह उपाय है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो वीतराग भगवान के घर की कथा है। त्रिलोकनाथ परमेश्वर उस सभा में जब धर्मकथा—दिव्यध्वनि (खिरती हो)... ओहोहो! उसे लेनेवाले श्रोता भी कैसे होंगे! वे देनेवाले, उनकी वाणी का अखण्ड ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई की ध्वनि...! समझ में आया ?

इसी प्रकार यहाँ भगवान पूरा भरपूर प्रभु हैं न, कहते हैं। ...! विश्वास तो ला... विश्वास तो ला। तुझे विश्वास यहाँ का आता है कि इतना मैं... इतना मैं... इतना मैं... ऐसेवाला, ऐसे संयोगवाला और इतना। अल्पज्ञवाला, अल्पदर्शीवाला, अल्पवीर्यवाला, पुण्यवाला, पापवाला, ऐसे संयोगवाला। परन्तु वह तो क्षणिक संयोग के गीत है। एक समय के सम्बन्धवाला है इतना तो। त्रिकाल स्वभाव के सम्बन्धवाला द्रव्य, शाश्वत् स्वभाववाला स्वभाववान, वह तो एकरूप त्रिकाल है। समझ में आया ? ऐसी परम स्वभाव की दृष्टि सत्य श्रद्धा में आने पर वह समभाव हो गया। वह अनन्तानुबन्धी का अभाव हो गया। वह समभाव संसारसागर को तिरने का उपाय है। बाकी विकल्प-फिकल्प आवे, उसका जाननेवाला रहता है। समझ में आया ?

देखो, पाठ में है न ? 'भव-सायरि जो णाव' नाव अर्थात् ? कि जो उदयभाव हो, पुण्य-पाप विकल्प आदि का, उससे तिरने का पूर्ण स्वभाव, एक समय में पूर्ण एकरूप स्वभाव, ऐसी दृष्टि, उस ओर का झुकाव, वह उदयभाव के अभाव को करने के लिये नाव समान है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह आचार्य महाराज क्या कहते हैं, देखो न! आहाहा! सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। महामुनि दिगम्बर मुनि, धर्म के धुरन्धर स्तम्भ, केवलज्ञान के वजीर, केवलज्ञान के गणधर, दीवान। ऐसे केवलज्ञान ऐसा तैरता है। उनकी मति-श्रुत पर्याय में केवलज्ञान की पर्याय प्रतीति में, अवयवी के अवयव में पूरा केवलज्ञान वर्तता है और ऐसे दृष्टि में पूर्ण ऐसा वर्तता है। समझ में आया? उस दृष्टि में पूर्ण स्वभाव वर्तता है। प्रगट ज्ञान का अंश—वह पूर्ण ज्ञान का साध्यपना प्रगटना है, ऐसा अवयवी का अंश, वह अवयवी का ऐसा मोक्ष हो, उसका केवल (ज्ञान) ऐसा (होता है), उसका ज्ञान वर्तता है। वह दोनों को इकट्ठा कर देगा। बीच में अन्तराल जो है, वह स्वभाव की एकाग्रता द्वारा दोनों इकट्ठा होकर केवलज्ञान पा जायेगा। राग-फाग रहेगा नहीं। उदय को टालने का उपाय—नाव ऐसा समभाव है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो अज्ञानी सब जीवों को समान नहीं मानता,... इसका अर्थ ही कि उसे वस्तु पूर्ण है, उसकी अपनी प्रतीति नहीं। यह अल्पज्ञ बाहर ज्ञात हो इतना मैं और संयोग मैं और स्त्री मैं और पुत्र हूँ। ... ऐसा हूँ, राग हो गया। राग आया। बस, राग हो गया। राग हो गया? तेरे स्वरूप में रागरूप हो गया? ऐसा जो देखता है, वह अपना पूर्ण स्वरूप विद्यमान पड़ा है, भगवान मौजूद-विद्यमान प्रगट चैतन्य का सत्ता का सत्त्व है, उसे वह मानता नहीं। उसे जिसने माना, वह **वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर...** देखो! वीतराग का अर्थ? वह राग वर्तमान होने पर भी, उस राग जितना नहीं माना, इसलिए वहाँ से दृष्टि हट गयी; अल्पज्ञ जितना नहीं माना, इसलिए वहाँ से दृष्टि हट गयी और वह दृष्टि स्वभाव के ऊपर आयी, इसलिए उसका नाम वीतराग निर्विकल्प शान्ति। समझ में आया? भगवान चैतन्य का महाधाम।

जहाँ चेतन वहाँ अनन्तगुण, केवली बोले ऐम,

यह प्रगट अनुभव आपका, निर्मल करो प्रेम रे चेतन प्रभु।

प्रभुता तेरी रे चेतन धाम में, वह प्रभुता तेरी रे ध्रुव के धाम में॥

उस ध्रुवधाम की—पूर्ण की दृष्टि हुई, कहते हैं कि वह रागरहित, अल्पज्ञ बुद्धि

टलकर, रागबुद्धि टलकर, पूर्ण स्वभाव पर दृष्टि हुई, उसका नाम वीतराग, उसका नाम अभेद शान्ति । आहाहा ! समझ में आया ? राग ऐसा विकल्प होने पर भी उतना मैं नहीं, अल्पज्ञ होने पर भी उतना मैं नहीं । वह दृष्टि से पर का माहात्म्य छोड़ा, वह दृष्टि से स्वभाव का माहात्म्य किया अर्थात् राग की एकता टूटी, अल्पज्ञान की महत्ता गयी और सर्वज्ञस्वभाव पूर्ण की महत्ता हुई । आहाहा ! उसे यहाँ वीतराग निर्विकल्प समाधि कहा जाता है ।

उसमें स्थित होकर सबको समान दृष्टि से नहीं देखता,... सबको ऐसे पूर्ण स्वरूप, वस्तु का जो पूर्ण स्वरूप है, ऐसी सम्पदावाले चैतन्यतत्त्व को नहीं मानता, नहीं श्रद्धता, नहीं उसके आचरण में ऐसा समभाव प्रगट करता । वह **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एकसे हैं**,... देखो, कैसे जीव हैं सब ? नहीं देखते, फिर कहेंगे । नहीं श्रद्धते, ऐसा करके उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता । ऐसा अन्तिम योगफल करेंगे । इस प्रकार से जो भगवान् आत्मा ऐसे पूर्ण-पूर्ण स्वभाव प्रगट... प्रगट... प्रगट... प्रगट विद्यमान है, पूर्ण वस्तु है, उसे उस प्रकार से राग के अवलम्बन बिना, वस्तु के स्वरूप में झुकी हुई दृष्टिवाली रागरहित दृष्टि और शान्ति की दृष्टि में स्थिर होकर इस प्रकार से आत्मा को अन्तर में देखता, मानता नहीं ।

और **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव...** सब जीव सकल परम निर्मल केवलज्ञानादि । केवलज्ञान अर्थात् पर्याय की बात नहीं । अन्दर गुण । केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य । केवलवीर्य भी आता है, हों तत्त्वार्थसूत्र में । केवलवीर्य । केवल अर्थात् अकेला वीर्य, अकेला ज्ञान । वह प्रगट हुआ ... **गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एक से हैं, ऐसी जिसके श्रद्धा नहीं है**,... अरे ! पूर्ण सम्पदा का भरपूर पदार्थ, उसका जिसे विश्वास नहीं और एक अल्पज्ञ और राग तथा संयोग का जिसे विश्वास है, वह बुद्धि मिथ्या है । महान् प्रभु का जिसे विश्वास नहीं । एक समय में भगवान् पूरा केवलज्ञान से अनन्त गुण सम्पन्न **एक से हैं, ऐसी जिसके श्रद्धा नहीं है**, उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता । उसे सम्यग्दर्शनरूपी और अनन्तानुबन्धी के अभावरूपी समभाव उसे प्रगट नहीं हो सकता । आहाहा ! यह वह कथनी, वह कथनी है न सन्तों की ! सन्त अन्तर में...

मुमुक्षु : स्पष्टता बहुत की।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत स्पष्ट। उसमें स्पष्ट रहा है। एक स्वभाव कहा, वहाँ क्या कहा? आहाहा!

वस्तु अनन्त, स्वभाव सबका एक। यह जो ज्ञान झेले, यह जो ज्ञान की पर्याय झेले, वह पर्याय वर्तमान पर में लक्ष्यवाली थी, वह स्व में चली जाये। समझ में आया? अनन्त आत्मायें ऐसे। परिपूर्ण केवल पर्याय नहीं। केवलज्ञान की अनन्त पर्यायों का एक समुदायरूप एक गुण, ऐसी प्रगट परिपूर्ण पर्यायें, अनन्त पर्यायों का एक गुण, ऐसे अनन्त गुणों का भरपूर एकरूप स्वरूप। ऐसा जिसे स्वभाव दृष्टि और ज्ञान में आया, वह ज्ञान और दृष्टि पर्याय और विकल्प की ओर के लक्ष्य को छोड़ देता है। वह दृष्टि स्वभाव की ओर झुक जाती है, तब उसे समभाव होता है। वह समभाव अनन्तानुबन्धी के अभाव का और मिथ्याभ्रान्ति के नाश का समभाव। वह समभाव क्रम-क्रम से केवलज्ञान को लाता है। समझ में आया?

उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता। देखो, समभाव है तो सही। स्वभाव में समभाव ही है, पूर्ण भाव ही है, परन्तु जो इस प्रकार से पूर्ण को नहीं मानते, स्व और पर की पूर्णता की अस्ति-सत्ता, सत् पूर्ण है, अनन्त-अनन्त है, ऐसा जो मानते नहीं, उन्हें समभाव नहीं होता। आहाहा! अनन्तानुबन्धी को मिथ्यात्व के साथ अनन्त सम्बन्ध था, वह टूट गया। महान प्रभु ऐसी दृष्टि से महान अनन्त आत्माओं का विश्वास-विश्वास। **ऐसा निःसन्देह जानो।** है न? आहाहा! दूसरे प्रकार से कहते हैं पूर्ण स्वभाव जिसकी दृष्टि में, विश्वास में नहीं आता, उसे वर्तमान पर्याय में समभाव प्रगट नहीं होता। पूर्ण स्वभाव-पूर्ण स्वभाव, वस्तु स्वभाव, अखण्ड स्वभाव, एकरूप स्वभाव, उसे जो श्रद्धा में लेता नहीं, उसको पर्याय में समभाव प्रगट नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तो ज्ञानी को ही समभाव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही हो न, इसके लिये तो बात करते हैं। ज्ञानी भी इस प्रकार से ज्ञान। ऐसे ज्ञानी-ज्ञानी ऐसा नहीं। उस ज्ञान की पर्याय में यह पूर्ण स्वभाव, अल्पज्ञ विद्यमान प्रगटरूप से होने पर भी, राग और विकल्परूप से वर्तमान विभावरूप

से होने पर भी, संयोग के निमित्तपने के सम्बन्ध में ऐसा एकरूप दिखने पर भी, जो ज्ञान पूर्ण स्वभाव को झेलता है और ऐसे पूर्ण स्वभाववाले सब भगवान हैं, उसकी दृष्टि अन्तर में जाकर समभाव प्रगट हुए बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसा निःसन्देह जानो। देखो, आचार्य क्या कहते हैं ? निःसन्देह जाना, निःशंक हो जाओ। यह तो समकित में निःशंकित अंग है न पहला, भाई ! निर्भय और निःशंक। ऐसा निःशंकभाव हो गया है। वस्तु पूर्ण है। सब भगवान आत्मायें पूर्ण हैं। एक समय की पर्याय अर्थात् एक समय के सम्यग्दर्शन और ज्ञान द्वारा उसे टाल सकेगा। किसी समय पूर्ण होगा, ऐसी मान्यता उसकी होती है। यह कहेंगे नीचे। ... होता है, परन्तु वीतराग परमात्मा की अनुभूति के सहकारी कारणरूप जो सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय, उसको पाकर कर्मों से भिन्न हो सकेंगे, कहते हैं। आहाहा ! कहेंगे। यह बाद में कहेंगे १०६ में।

कैसा है समभाव, जो संसार समुद्र से तारने के लिये जहाज के समान है। यह उदयभाव, विकृतभाव, असिद्धभाव। उदयभाव कहो या असिद्धभाव कहो। ठेठ तक असिद्ध है न चौदहवें (गुणस्थान) तक। यह असिद्धभाव, ऐसा उदयभाव, उसे इस स्वभाव की परिपूर्णता की अनन्त दृष्टि और ज्ञान ऐसा जो समभाव, उस असिद्धभाव का अभाव करने का और सिद्धभाव की प्राप्ति करने का यह एक ही उपाय है। इसलिए दूसरे प्रकार से कहें कि असिद्ध का व्यय हुआ और सिद्ध पर्याय का उत्पाद (हुआ)। असिद्ध ऐसा संसारभाव, असिद्ध ऐसा उदयभाव, संसारभाव को तिरने का यह एक ही उपाय है। समझ में आया ? यह तो ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसा है। ... भाई ! वार्ता-बार्ता नहीं यह। दृष्टान्त एकाध थोड़ा-बहुत पीपर का आया। कल तो दृष्टान्त आये थे एक-दो उस हीरा के और फलाना के। आवे तो आ जाये।

वह दृष्टान्त दिया है एक जगह। अनुभवप्रकाश में। एक सेठिया था बाहर गया। बाहर सब्जी लेने। घर में पाँच लड़के हैं। फिर साथ में नहीं। इसलिए साथ में नहीं, ऐसा कहेगा कि लड़के हमारे नहीं, ऐसा कहेगा ? दृष्टान्त आता है न ! तुम्हारे कितने पुत्र हैं ? मुझे पाँच हैं। परन्तु एक भी नहीं न यहाँ। इकट्ठे नहीं तो भी क्या ? दृष्टान्त दिया है, हों !

दीपचन्दजी ने अनुभवप्रकाश में। सेठिया बाहर गया। अकेला है, सादे वस्त्र और पाँच रुपया लेकर सब्जी लेने गया। लड़के कितने हैं? पाँच। नहीं न यहाँ? वह विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? समझ में आया? है, उसे नहीं कहूँ? साथ में नहीं तो क्या? इसी प्रकार प्रगट पर्याय में अल्पता है, (परन्तु) पूरी सम्पदा पड़ी है, उस विद्यमान को अविद्यमान कहूँ? देवचन्दजी! यह दृष्टान्त दिया है, हों! आचार्यों ने, गृहस्थ पण्डितों ने दिये हैं। ऐ... समझ में आया? समझ में आया या नहीं? तुम्हारे दस लड़के यहाँ साथ में हैं? नहीं। एक धन्यकुमार है। वहाँ ऐसा कहे कि नहीं, हमारे दस पुत्र नहीं है? विद्यमान को अविद्यमान कौन कहे? विद्यमान को अविद्यमान कौन कहे?

इसी प्रकार भगवान आत्मा पर्याय में अल्पज्ञता होने से उतना ही मैं बाहर में आया, इसलिए उतना ही हूँ, ऐसा है नहीं। अरे! मौजूद विद्यमान भगवान आत्मा ऐसे विद्यमान सत् को असत् कैसे कहा जाये? ऐसे विद्यमान महान प्रभु, ऐसे विद्यमान का निषेध कैसे हो? कहो, धर्मचन्दजी! यह भगवान की कथा है धर्मकथा। समझ में आया? जिसमें पूर्ण स्वभाव के ऊपर दृष्टि ले जाये और स्थिरता वहाँ हो, वह वीतराग को कहना है सब कर-करके। लाख बात की हो तो सब यह कहना है। यह यदि न समझे... यह राग करनेयोग्य है, ऐसा कहना है उन्हें? उसकी तो ऐसी उपेक्षा कराकर यहाँ अपेक्षा करायी है। एक ही बात। पूर्णानन्द प्रभु में जा। अल्पज्ञता, राग और निमित्त की उपेक्षा कर। यह उपेक्षा किये बिना तुझे अन्तर स्वभाव की दृष्टि प्रगट नहीं होगी। नहीं प्रगटे तो समभाव होगा नहीं। कहो, समझ में आया? कहो, समझ में आया इसमें? नटुभाई! यह वकालत में समझ में आता है या नहीं यह? यह भगवान की वकालत है। आहाहा!

कैसा है समभाव... एकरूप को माना उसे एकरूप समभाव होता है। विषमरूप माने, उसे विषमता टलती नहीं। आहाहा! कौन दुश्मन है? कहाँ सज्जन है? समझ में आया? कौन निन्दा करनेवाला है? कौन प्रशंसा करनेवाला है? है कहाँ? वह तो वर्तमान विकल्पवाला तुझे मानना है आत्मा को? आस्रववाला मानना है? उसको

शरीर... वाणी बोला तो वाणीवाला मानना है ? वह तो अजीब है । भगवान आत्मा... उसकी बुद्धि कम है । बुद्धि कमवाला एक द्रव्य को मानना है ? अपनी अल्पबुद्धि में भी पूरा स्वीकार जहाँ विद्यमान में है, सब भगवान ऐसे हैं । ऐसा समभाव कैसा है ?

★ ★ ★

गाथा - १०६

यहाँ ऐसा व्याख्यान जानकर राग-द्वेष-मोह को तजकर,... अर्थात् कि अपूर्णता और संयोग का आश्रय का विश्वास छोड़कर परमशान्तभावरूप शुद्धात्मा में लीन होना योग्य है । भगवान पूर्ण स्वभाव की अन्तर विश्वास की दृष्टि से परिणमना और शान्ति की दृष्टि से स्थिर होना, वह यह व्याख्यान का सार है, तात्पर्य है । कहो, समझ में आया इसमें ? १०६ (गाथा) ।

२३३) जीवहँ भेउ जि कम्मकिउ कम्मु वि जीउ ण होइ ।

जेण विभिण्णउ होइ तहँ कालु लहेविणु कोइ ॥ १०६ ॥

आगे जीवों में जो भेद हैं, वह सब कर्मजनित हैं,... अर्थात् यह विकार, यह निमित्त सब एक प्रकार का ऐसा है भेदवाला । वह स्वरूप में नहीं ।

मुमुक्षु : कर्म ने एकत्र किया न ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म ने किया, उत्पन्न का अर्थ यह । स्वभाव से उत्पन्न हुआ विकार नहीं और विकार से उत्पन्न हुआ यह स्वभाव अन्दर में है, वह नहीं । विकार और कर्म, यह सब निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से उत्पन्न हुए भेद दिखायी देते हैं, वस्तु में ये भेद हैं नहीं, ऐसा बतलाना है यहाँ । स्वभाव से हुआ वह सब अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, विकारता नहीं । इसलिए कर्म के लक्ष्य से हुई अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता तेरे कारण से हुई, वह सब भाव कर्मजन्य कहा जाता है ।

जीवों में... 'जीवानां' जीवों में नर-नारकादि भेद... यह मनुष्य दिखता है, यह नारकी दिखता है, यह पशु दिखता है, छोटी जीवांत दिखती है, कंथवा दिखता है, कीड़ी दिखती है, ऐसे हाथी दिखता है, शरीर की वर्तमान योग्यता पर्याय की—वह

कर्मों से ही किया गया है,... वह कर्मकृत है, स्वभावकृत नहीं। स्वभावकृत नहीं, इसलिए कर्मकृत है।

मुमुक्षु : उसके आश्रय से हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके आश्रय से अर्थात् उसका ही है, ऐसा। एक ही कतार सब उसके घर की। आत्मा के घर का नहीं।

और कर्म भी जीव नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त कहना है। कर्म के संग में पड़े हुए भेद, वह अजीव के संग से जीव में भेद पड़ा हुआ, वह कर्म जीव नहीं हो सकता, इसलिए उसके भेद जीव का स्वरूप नहीं हो सकता। समझ में आया ? **नर-नारकादि भेद...** 'कर्मकृत एव' वह स्वभाव जीवकृत नहीं, ऐसा लेना है। स्वभाव जीवकृत नहीं। इसलिए वह विभाव सब भेद कर्मकृत है। यह तो समयसार में भी आता है। सब पुद्गल के ही परिणाम हैं। वहाँ तो दृष्टान्त यहाँ तक दिया है (समयसार गाथा) ७५ में कि जैसे घड़ा मिट्टी से हुआ है, उस घड़े का व्याप्य घड़ा और मिट्टी व्यापक। इसी प्रकार भगवान् आत्मा स्वभाव व्यापक और उसकी निर्मल पर्याय व्याप्य। परन्तु विकारी पर्याय और कर्म, वह कर्म व्यापक और विकारी पर्याय व्याप्य है। दो भाग कर दिये कर्ता-कर्म (अधिकार गाथा) ७५ में। मिट्टी से उत्पन्न हुआ घड़ा है, कुम्हार से नहीं। उसी प्रकार विकृतभाव जीवस्वभाव से नहीं। वह विकृतभाव कर्म के कारण से उत्पन्न हुआ है, ऐसा करके दो भाग कर दिये हैं। आस्रव, बन्ध और अजीव एक ओर डालकर जीवस्वभाव में प्रगट हुआ संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह स्वभाव का कार्य है। स्वभाव की दृष्टि में स्वभाव के ध्येय से स्वभाव में से तो यह कार्य आता है। ऐसा कहकर संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय का कर्म वह जीव का है, आस्रव-बन्ध का कर्म, वह अजीव का कार्य है। ऐसे दो भाग करके सात में से दो का भेदज्ञान कराया है। समझ में आया ? यह ७५ गाथा में दृष्टान्त दिया।

क्यों ? **कर्म भी जीव नहीं हो सकता।** भगवान् ! कर्म अजीव है और भावकर्म भी अजीव है। भावकर्म अजीव है। अजीव का अर्थ अचेतन है। अचेतन का अर्थ ? वह चैतन्य के प्रकाश का तेज उसमें आया नहीं। भगवान् नूर चैतन्य सर्वज्ञप्रकाश की

किरण, उसकी एक किरण का अंश नहीं आया। अनन्त किरण का पिण्ड प्रभु वह दया, दान, व्रत, भक्ति और काम-क्रोध के विकल्प में उस चैतन्य के प्रकाश का अंश नहीं, इसलिए उसे अचेतन कहते हैं। वह अचेतन, जड़ अचेतन, कर्म अचेतन। वह सब एक प्रकार का है। वह कर्म भगवान वह अजीव कर्म और भावकर्म वह कहीं जीव हो सकता है ? आहाहा ! आस्रव, वह जीव हो सकता है ? अजीव, वह जीव हो सकता है ? भावबन्ध, वह अबन्धस्वरूप चैतन्य भगवान हो सकता है ? समझ में आया ? एक समय का अटका हुआ भावबन्ध, भगवान ! वह अबन्धस्वरूपी द्रव्य हो सकता है ? अजीवकर्म, वह जीव कैसे हो ? भगवान ! आहाहा !

क्योंकि वह जीव किसी समय को पाकर... क्या कहते हैं ? वही जीव लब्धकाल, धर्म के लब्धकाल को पाकर, धर्मलब्धिकाल। जयसेनाचार्य में पाठ है। धर्मलब्धिकाल। जयसेनाचार्य की टीका में समयसार में है। धर्मलब्धिकाल। धर्मलब्धि अर्थात् कि वस्तु है, उसकी लब्धिकाल में वह परमात्मा हूँ, ऐसी प्रतीति करके परमात्मा हो जायेगा। इसलिए अजीवपना देखकर अजीव जीव हो गया है, ऐसा नहीं देख। हुआ हो तो जीव पर्यायकाल में जहाँ परमात्मा होगा, वह कहाँ से आयेगा ? आस्रवरूप से और अजीवरूप से जीव हुआ हो तो जीव के स्वभाव का धर्मकाल की दृष्टि पाकर पूर्ण परमात्मा हो, वह परमात्मापना, यह विकार और अजीव जीव हो गया हो तो जीवपने की पूर्णता की पर्याय आयी कहाँ से ? जीव के स्वभाव में से आती है यह। आहाहा ! समझ में आया ? **जीव नहीं हो सकता।** क्योंकि स्थिति समय को... समझे न ? यह कहेंगे। सहकारी कारण है न। काल है, वह सहकारी निमित्त है। उपादान अपना है शुद्ध कर्ता, कर्म आदि करण और काल तो निमित्त है। इसलिए कहेंगे। वह काल—समय को पाकर **उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** क्योंकि वह जीवस्वभाव उसरूप हुआ नहीं। विकार और अल्पज्ञरूप से और उन संयोगरूप से जीवस्वभाव हुआ नहीं तो जीवस्वभाव काल में पूर्ण हो जायेगा। यदि उनरूप हुआ हो तो उसका अभाव कर सकेगा नहीं। समझ में आया ? **उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** इसका भावार्थ लेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक १२-०६-१९६५

गाथा - १०६ - १०७, प्रवचन - १४६

परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरे की गाथा १०६। यह शास्त्र परमात्मप्रकाश है। तो यह आत्मा, उसका स्वभाव ही परमात्मस्वरूप है। अप्पा सो परम्प्रा। यह आत्मा स्वयं ही पर्याय में, प्रगट दशा में परमात्मा होता है। वह परमात्मपना उसकी शक्ति के गर्भ में पड़ा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : शक्ति के गर्भ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति अर्थात् सत्त्व, उसका सत्त्व। उसके गर्भ अर्थात् उसके अन्दर में रहा हुआ है परमात्मा। पर्याय में एन्लार्ज करने का है। वह असंख्य प्रदेश है, वह पूरा स्वरूप ही परमात्मा का है। उसका देश ही वह है। आत्मा असंख्य प्रदेश है, वह असंख्य प्रदेश, वह उसका देश है।

मुमुक्षु : भारतदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं भारतदेश उसका। कर्म का देश भी उसका नहीं। असंख्य प्रदेश। एक पॉइन्ट परमाणु है, उसे जितनी जगह में रखे, रोके, उतने भाग के प्र-देश। पूरी चीज़ का... एक भाग। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। उसकी सत्ता में असंख्य प्रदेश का धाम देश—स्वदेश, उसके अन्दर में अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुणस्वरूप-शक्तिस्वरूप सत्त्व विराजता है, वही परमात्मस्वरूप है। पर्याय में प्रगट करना, वह उसका प्रयत्न है। वस्तु तो है अन्दर। प्राप्त की प्राप्ति होती है। यह तो कहा था। तो यहाँ तो यह कहते हैं कि भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश वस्तु प्रभु...

भावार्थ :- यह कर्म शुद्धात्मा से जुड़े हैं,... देखो, ये कर्म के रजकण जो जड़-मिट्टी आठ कर्म, उनका अस्तित्व, उनका अस्तित्वपना, वह आत्मा से भिन्न है, उनका अस्तित्व। गजब बात, भाई! समझ में आया ?

पहला शब्द है न भावार्थ में ? कर्म जड़ आठ कर्म मिट्टी, रजकण बारीक धूल है। उसका अस्तित्व, उसका द्रव्य, उसकी शक्ति और उसकी अवस्था, यह उसका अस्तित्व, वह आत्मा से पृथक्पने अस्तिरूप है। **शुद्धात्मा भेद-कल्पना से रहित है।** भगवान आत्मा में भेदकल्पना नहीं। एक तो पहले ऐसा कहा कि कर्म जो जड़ है अन्दर, यह शरीर तो भिन्न है, यह तो स्थूल मिट्टी है, परन्तु अन्दर आठ कर्म के सूक्ष्म रजकण हैं, अस्तिरूप पदार्थ है, वह भगवान आत्मा से तो भिन्न अस्तित्व धराते हैं जड़, वे कहीं तुझमें नहीं। तेरे स्वरूप में वे रजकण नहीं। रजकण के स्वरूप में आत्मा नहीं और आत्मा के स्वरूप में वे रजकण नहीं। भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। **शुद्धात्मा...** भगवान आत्मा **भेद-कल्पना से रहित है।** उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भेदता, अनेकता, उसकी कल्पना भी जिसमें नहीं, ऐसा एकरूप स्वरूप आत्मा है। कभी... निजस्वरूप महा असंख्य प्रदेश।

वर्णन किया है न उसमें भाई! परमात्मपुराण (में) दीपचन्दजी ने वर्णन किया है। परमात्मपुराण। आत्मा के असंख्य प्रदेश उसका देश है। उसमें अनन्तगुण की उसकी प्रजा है। बड़ा परमात्मपुराण वर्णन किया है। समकित उसका फौजदार है, दर्शन-ज्ञान उसके मन्त्री हैं। समझे न ? यह बड़ा वर्णन किया है। भगवान आत्मा... परन्तु उसे खबर नहीं होती कि मैं कहाँ और कैसा हूँ और क्यों हूँ ? उसका अस्तित्व देखने को कभी नजरें की नहीं और यह बाहर अस्तित्व में यह शरीर, धूल, मिट्टी, पैसा कर्म-फर्म यह अस्तिरूप से है, ऐसा इसने मान्यता में उसमें मैं हूँ, ऐसा माना है। जिसमें इसमें कुछ सम्बन्ध कोई नहीं। इसके अस्तित्व में वह किंचित् भी आत्मा की पर्याय, अवस्था, द्रव्य-गुण तो नहीं, परन्तु उसकी अवस्था है वर्तमान हालत, वह दूसरे तत्त्व के तत्त्व में अवस्था में इसका अवस्था तत्त्व नहीं। समझ में आया ?

ऐसा इसका स्वरूप है, ऐसी जब तक स्वसत्ता के स्वभाव के सामर्थ्य की प्रतीति और अनुभव न करे, तब तक वह सुखी, शान्ति और स्वतन्त्रता नहीं होती। वहाँ तक वह दुःखी है। यह सब दिखते हो न सब, खाना, पीना, लड्डू, रोटी क्या कहलाते हैं ? रस। दस्त हो जाये चार-पाँच बार। परन्तु वह धूल में भी नहीं वहाँ रस। रस तो जड़ मिट्टी है,

धूल है। अरबी के पत्ते हों इकट्ठे अन्दर। घी में तले हुए ऐसे होते हैं वे क्या कहलाते हैं? लम्बे पत्ते। पतरवेलिया कहते हैं न? क्या कहते हैं? अरबी के पान नहीं होते? पत्ते लम्बे नहीं होते? उसमें चने का आटा डालकर बनाते हैं। फिर टुकड़े करके बनाते हैं। बनाते तो होंगे, तुम्हारे नाम में अन्तर होगा। बनाते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बड़ा पत्ता होता है। अरबी का पत्ता। उसमें चने का आटा लगाकर (घी में तले)। हमने कुछ किया नहीं, परन्तु यह लोग करते हैं, ऐसी खबर तो हो या नहीं? फिर गोल करके टुकड़े करे और फिर तले। उसे अरबी के भुजिया कहते हैं। धूल है वह तो, अजीवतत्त्व का अस्तित्व है। वह तो अजीवतत्त्व का अस्तित्व—होनापना है। उसमें अस्तित्व तो अजीवपना अस्तित्व है। उसके द्रव्य में अर्थात् वस्तु में, उसकी शक्ति में अर्थात् गुण में, उसकी दशा में अर्थात् पर्याय में वह सब अस्तित्व तो अजीवरूप से है। उसमें आत्मा को कोई स्पर्शता भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी स्वाद नहीं। मुफ्त का (मानता है)। वह स्वाद उसका लगता है? यह रस लो आम। तो आम तो अजीवतत्त्व है रजकण उसके। उस अजीवतत्त्व की पर्याय यहाँ आत्मा को, आत्मा को जानने में आवे, परन्तु वह पर्याय आत्मा को स्पर्श और उस पर्याय का स्वाद आवे आत्मा में? स्वाद अर्थात् कि मीठी। यह गळी कहते हैं न? मीठी क्या कहते हैं? वह मीठी पर्याय तो जड़ है। तो मीठी पर्याय आत्मा की पर्याय में आवे? तो आत्मा की पर्याय जड़ हो जाये। वस्तु आत्मा है त्रिकाली, उसकी गुण शक्ति त्रिकाली, उसकी अवस्था-वर्तमान पर्याय एक क्षण की पलटती दशा। अब उस पलटती अवस्था में वह जड़ की अवस्था जो है, वह यहाँ आवे तो यह जड़ हो जाये। वह मात्र ज्ञान में जानता है कि यह है। ऐसा है, ऐसा जानते हुए यह मुझे मिठास होती है, ऐसी जो कल्पना करता है। वह तो कहता भी नहीं, छूता भी नहीं। वह तो उसकी पर्यायरूप से परिणमित हुआ परिणमता चला जाता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा वह कर्म के अस्तित्व से भिन्न, तो और उसके— अरबी के रस से तो कहीं भिन्न। आहाहा! अरे! निजनिधान, निज दरबार में सम्पदा क्या है, वह कभी इसने मानी नहीं। बाहर की मानकर हैरान होकर मर गया चौरासी के अवतार में। किसकी आँख से देखे? किसकी आँख से दिखाई दे? दूसरे की आँख से दिखाई दे वह? कहो, ऐई! जेचन्दभाई! ऐसा है। कहाँ गया तुम्हारा दिलीप? यहाँ है? होशियार है। हाथ फिरावे तो कहे हाथ तो जड़ है। क्या फिरावे हाथ? वह तुम्हारा भानेज कहता है। हाथ तो जड़ है। आहाहा! यह तो अगम्य बातें हैं, बापू! यह परमेश्वर के अन्तर घर की अगम्य बात है, भाई! आहाहा!

एक-एक परमाणु, उसमें उसके कर्ता, कर्म, करण षट्कारक से एक परमाणु समय-समय में उन गुणों से परिणम रहा है। उसकी पर्याय में आत्मा की पर्याय अर्थात् अवस्था नहीं। और आत्मा षट्कारकरूप से कर्ता, कर्म, कार्य, साधन, अपादान, उससे होना, रखना और आधार, इन सब कारकों से वह आत्मा अपनी पर्याय में भी उन षट्कारकरूप परिणम रहा है। उसकी अवस्था में पर की अवस्था आती नहीं और इसकी अवस्था पर में जाती नहीं। आहाहा! यह तो और पहले कहा। **कर्म शुद्धात्मा से जुदे हैं,...** दूसरे में तो ऐसा कहा कि **शुद्धात्मा भेद-कल्पना से रहित है**। उसमें तो यह पर्याय—अवस्था और यह गुण है और यह द्रव्य है, एकरूप वस्तु में ये तीन भेद भी कल्पना है। वस्तु में ऐसे भेद हैं नहीं।

ये शुभाशुभकर्म जीव का स्वरूप नहीं है,... धूल जो कर्म है शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप के रजकण, वे जीव के अस्तित्व में, जीव के स्वरूप में, स्वक्षेत्र में वह परक्षेत्र आया नहीं। कर्म का क्षेत्र भिन्न है, आत्मा का क्षेत्र भिन्न है। क्षेत्र अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। यह शुभाशुभ कर्म मिट्टी, जड़ कर्म है, वह **जीव का स्वरूप नहीं है, जीव का स्वरूप तो निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव है**। आहाहा! अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु और दर्शन का देदार अकेला दर्शनस्वरूप। जानने और देखने के चैतन्य के स्वभावमय भगवान आत्मा है। उसे भी कहाँ पड़ी है? उसकी अन्तर में नजर किये बिना, उसे वर्तमान में शान्ति और सम्यग्दर्शन और सुख होता नहीं। समझ में आया?

वह निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव है। पाठ में—संस्कृत में विशुद्ध है। 'विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावं' संस्कृत में यह कहना है। विशुद्ध अर्थात् ... निर्मल लिया। भगवान आत्मा... कैसे होगा मलूकचन्दभाई? यह सब रसोई का काम करता होगा न आत्मा? कल कहा था। कर्ताहर्ता (है)। कौन करे? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लावे? परद्रव्य को उठाये कौन? लावे कौन? उसके अस्तित्व से उसके परिणमन के कारकों के काल में, क्षेत्रान्तर होने की क्रियावतीशक्ति के कारण से, उन द्रव्यों का क्षेत्रान्तर होकर आता है। भगवान! कुछ अलग बात है। पूनमचन्दभाई! यह तो सब फेरफार बहुत है। यह २२ मंजिल का मकान बनावे। धूल में भी बनाता नहीं कोई। आज तो और थोड़ी बात की थी। पहले एक बार की थी। मैंने कहा, यह किसे बैठे? सवेरे हिम्मतभाई साथ में थे न। कहा, ये पैर चलते हैं, वे जमीन को स्पर्श बिना चलते हैं। अररर! कौन मानेगा? भगवान! भगवान! अरेरे! आहाहा! यह (बात) किसे बैठे? किसे कहे? यह चलते हैं न। वास्तव में पैर का एक-एक रजकण निचली जमीन को स्पर्शा ही नहीं। बापू! एक-दूसरे में अभाव है। यह बातें निरालम्बी द्रव्यस्वभाव, वह वस्तु का रजकण एक-एक पॉइन्ट अस्ति सत् है सत्। और उस वस्तु में अनन्त गुण हैं शक्ति सत्त्वरूप से। उसकी वर्तमान दशा / हालत होती है। वह हालत दूसरे तत्त्व की हालत को स्पर्शती नहीं। बातें बहुत (सूक्ष्म है)। समझ में आया?

निरालम्बी प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से स्वयं से परिणम रहे हैं। दूसरी चीज़ को निमित्त, वह तो दूसरा ज्ञान करने के लिये है। समझ में आया? यह कौन माने? परन्तु यह जमीन को स्पर्श बिना पैर चले। ऐई! बसन्तीलालजी! भगवान! यह बात किसे बैठे? कहा। रास्ते में कहा था। भाई! आहाहा! यह जहाँ-जहाँ परमाणु ऐसे हों न यहाँ, तो भी उनके उस क्षेत्र में रहने की योग्यतावाली पर्याय से स्वयं से वहाँ रहे हुए हैं। किसी के दूसरे कारण से नहीं।

मुमुक्षु : आकाश का तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल आकाश का काम नहीं वहाँ। भगवान आत्मा भी ऐसे जैसे भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थकर समवसरण में निरालम्बरूप से विराजते हैं, वे सिंहासन के ऊपर नहीं विराजते। समवसरण में सिंहासन हो भले, कमल हो, सिंहासन हो (परन्तु) निरालम्बन अद्धर विराजते हैं। बड़ा पाँच सौ धनुष का देह हो। कितना लम्बा बड़ा! उसके प्रमाण में चौड़ा। उसे नीचे बैठने का स्थान नहीं। देवचन्दजी! सुना है? अन्तरिक्ष है। इसका अर्थ क्या? वह अन्दर में परमाणु की पर्याय ही ऐसी वहाँ है और आत्मा की पर्याय, ऐसे निरालम्बन ऊपर ऐसे रहते हैं।

मुमुक्षु : प्रत्येक अपने-अपने कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके कारण से सब। ऐसे नीचे सिंहासन नहीं, हों! स्पर्शता नहीं सिंहासन। चार अंगुल ऊँचे सिंहासन से। यह क्या बताता है? निरालम्ब आता है न क्या तुम्हारे? 'ऐसा निरालम्बन आत्म द्रव्य, ऐसा निरालम्बन जिन देह' यह भाई ने बनाया है न अपने? आदिपुराण में से। आदिपुराण में से समवसरण की स्तुति है न। अपने स्तुति है। भाई ने बनायी है। समवसरण स्तुति कविता बनायी है। आदिपुराण में से सब (लिया है)। यह समवसरण जब बनाया तो आदिपुराण में देखकर किया यह सब। शास्त्र आधार से सब बात है। उसमें से और समवसरण की स्तुति है अपने। समवसरण की स्तुति। मलूकचन्दभाई है या नहीं? है। पूनमचन्दभाई को खबर नहीं होगी। यह समवसरण की स्तुति है। हमारे कवि हैं सब प्रकार से हैं। कवि हैं, लेखक हैं, वक्ता हैं, वैरागी हैं, कषाय मन्द है, होशियार है, ... है। सब है। ... है... यह है... यह है...

मुमुक्षु : दरबार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरबार है। इन्होंने बनायी है समवसरण की स्तुति। है यहाँ समवसरण की स्तुति? लाओ न जरा। तुरन्त लानी चाहिए न। यहाँ तो हाजराहुजूर। 'जैसा निरालम्बन आत्मद्रव्य, वैसा निरालम्बन जिन देह।' यह आदिपुराण में है, उसमें है न, उसमें से बनायी है। देखो, यह समवसरण की स्तुति है। पृष्ठ भी वही आया। इतने सब पृष्ठ और पृष्ठ वह आया। देखो! यह शब्द।

ऊँचे चतुरांगुल जिन राजे, इन्द्र नरेन्द्र मुनिराज पूजे,
जैसा निरालम्बन आत्मद्रव्य, ऐसा निरालम्बन जिन देह।

यह हमारे समवसरण बनाया यह और पृष्ठ यह निकला। यह सब पृष्ठ एक ओर रखे रहे और यह पृष्ठ सामने आया। पूनमचन्द्रभाई! पढ़ो तो सही, उन पुस्तकों की अपेक्षा दूसरे प्रकार के हैं यहाँ। लो, यह पढ़ो जरा पढ़ो यह। वह पुस्तकें पैसे की धूल की, उसकी अपेक्षा... है वही लाईन है न? लाल लाईन की हुई है। देखो लाईन की हुई है। 'जैसा निरालम्बन आत्मद्रव्य, ऐसा निरालम्बन जिन देह।' उस समवसरण में भगवान पाँच सौ धनुष का देह सीमन्धर परमात्मा का, अद्धर ऐसे विराजते हैं। यह वह कोई बात है! क्या है यह? समझ में आया? नीचे स्पर्श बिना, हों! सिंहासन को स्पर्श बिना।

मुमुक्षु : वे तो स्पर्शते नहीं, परन्तु दूसरे तो स्पर्श न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन स्पर्श करता था? इसके लिये तो यह बाहर का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? भगवान परमात्मा समवसरण में आत्मा पाँच सौ धनुष के देह आकार में स्वतन्त्र अपना आकार व्यंजनपर्याय और स्वतन्त्र अर्थपर्याय केवलज्ञानादि पर्याय उसरूप से भगवान विराजमान है। साथ में शरीर के रजकण भी उस आत्मा के कारण से नहीं, नीचे सिंहासन से ऐसे अद्धर (रहते हैं)। इसलिए कहा, देखो, 'ऊँचे चतुरांगुल जिन राजे' चार अंगुल ऊँचे विराजते हैं। क्या स्वभाव! 'इन्द्र नरेन्द्र मुनिराज पूजे, ऐसा निरालम्बन आत्मद्रव्य।' भगवान निरालम्बन अन्दर विराजते हैं। जहाँ-जहाँ क्षेत्र में किसी काल में... यह किसी का आलम्बन उन्हें है ही नहीं। अपने स्वरूप के द्रव्य-गुण-पर्याय में ही अपने अस्तित्व से विराजमान हैं।

'ऐसा निरालम्बन...' ऐसा जिनदेह पाँच सौ धनुष का। कोई सहारा नहीं होता। यह चन्द्र-सूर्य को किसका सहारा है? यह चन्द्र-सूर्य रहते हैं, वे बड़े-बड़े हैं। एक चन्द्र एक योजन (दो) हजार कोस का। दो हजार कोस का एक योजन, दो हजार कोस का एक योजन। उसके ६१ भाग। उसके ५६ भाग का चन्द्र और ४८ भाग का सूर्य है। कितना बड़ा? है सहारा? भाई! वस्तु तो देखो स्वभाव। क्या कहा? एक योजन दो हजार कोस का। दो हजार कोस का एक योजन। उसके ६१ भाग करना, ६१। उसके

५६ भाग लेना। वह ५६ भाग का चौड़ा चन्द्र है और ४८ भाग का चौड़ा सूर्य है। कोई सहारा नहीं होता। आहाहा! वस्तु तो देखो! इतना बड़ा! कितना बड़ा? देश कितना लम्बा है? यह बादल साधारण लगे। और वह बड़ा... ओहोहो! है सहारा नीचे? ऐसा कहा, बहुत सूक्ष्म आता है, इसकी अपेक्षा ऐसे दृष्टान्त आवे तो ठीक (रहे), ऐसा कहते हैं। यह तो निरालम्बनपना बतलाने के लिये वह और मस्तिष्क में आ गया। कहो, समझ में आया? आहाहा! पुण्य का योग ऐसा हो कि उसे खोजने जाना न पड़े, यदि पुण्य का योग हो तो। न हो तो उसे खोजने जाना पड़े, यह कहाँ होगा? कहाँ होगा? कहाँ होगा? वह प्राकृतिक चीज़ है। जैसे यह पैसा-बैसा पुण्य से आता है, वैसे यह संयोग जो आते हैं, वे भी पूर्व के पुण्य के कारण संयोग, निमित्तरूप से पुण्य है और संयोग उस प्रकार से आते हैं अन्दर। स्वतन्त्र, किसी के कारण से नहीं, किसी के अवलम्बन से नहीं, ऐसी स्वतन्त्र वस्तु है। कहते हैं, भगवान आत्मा का...

मुमुक्षु : पुरुषार्थ करने से नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पुरुषार्थ से ? धूल आती होगी ? यह तो सब खबर है अब हमारे पूनमभाई की। पुरुषार्थ करे, क्या धूल आवे ? क्यों नवनीतभाई ! उसकी अपेक्षा दूसरे बहुत होशियार नहीं ?

मुमुक्षु : परन्तु इसके रखे काम करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम करे, इसलिए आता है ? परन्तु इनका लड़का लो, यह पैसेवाले अरबोंपति, करोड़पति। इनके लड़के को कहाँ से आया ? अभी कमाता नहीं, मेहनत करता नहीं और सीधे उसे मोटरें और घोड़ागाड़ियाँ और लड्डू कहाँ से आया उसे ? कुछ करता नहीं।

मुमुक्षु : यह उसके पिता ने दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पिता ने, यही कहता हूँ कि उसे कुछ नहीं। उसके पुण्य के कारण ऐसा संयोग उपस्थित होता है। कमाता नहीं और कुछ नहीं। बात ही ऐसी कोई समझने जैसी।

मुमुक्षु : बाप का उपकार....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप का उपकार... बाप कहाँ था परन्तु ? आत्मा को बाप कैसा और आत्मा को पुत्र कैसा ? आत्मा की प्रजा तो आत्मा की पर्याय है। भगवान् आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी पर्याय, वह उसकी प्रजा है और उस प्रजा का पिता, वह द्रव्य है। समझ में आया ? पर्याय कहलाती है न पर्याय ? अर्थात् प्रजा। उत्पन्न हो, उत्पन्न हो, सृष्टि से उत्पन्न होना। भगवान् आत्मा द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके अनन्त गुण, उसमें से समय-समय में सृष्टि होती है, अर्थात् गुण की पर्यायरूप से परिणति होती है, वह प्रजा है। विकार की प्रजा उत्पन्न करे, वह कुलंगर है, निर्मल पर्याय उत्पन्न करे, वह आत्मा के स्वभाव का उत्तराधिकार रखनेवाली है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, ये शुभाशुभकर्म जीव का स्वरूप नहीं हैं,... यह बाँधे हुए शुभाशुभ, हों ! और उनका बाहर फल (आवे), वह आत्मा का स्वरूप नहीं। जीव का स्वरूप तो निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। अनादि काल से यह जीव अपने स्वरूप को भूल रहा है,... भगवान् की निज सम्पदा, वह ज्ञानप्रकाश पुंज प्रभु, दर्शन स्वभाव के सत्त्वरूप ऐसा चैतन्य का स्वरूप, उसे अनादि काल से यह जीव अपने स्वरूप को भूल रहा है,... उस भूलने का कारण स्वयं अपना। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' दूसरी चीज़ तो निमित्तमात्र है। अनादिकाल से... है ? शब्द देखो ! यह जीव अपने स्वरूप को भूल रहा है,... अपनी पर्याय में, स्वयं कौन है वस्तु त्रिकाल, उसकी इसने कभी श्रद्धा-ज्ञान के भरोसे सम्पदा ली नहीं। मेरी सम्पदा पूर्णानन्द से भरपूर है, ऐसा इसने प्रतीति में अनन्त काल में किया नहीं। इसलिए निगोद और नरक के भव में भटक रहा है। आहाहा !

इसलिए रागादि अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है। देखो ! भगवान् अपने स्वरूप को... दर्शन-ज्ञान-आनन्दस्वरूप है जिसका। वास्तविक स्वतः स्वभाव में विकार और अपूर्णता कहाँ से हो ? इसलिए पूर्णता और अविकारता से भरपूर भगवान्, ऐसा चैतन्य पदार्थ-वस्तु, उसका स्वभाव दर्शन-ज्ञान-आनन्द कि जो स्वभाव पूर्ण और विकार रहित है, उसे भूलकर रागादि अशुद्धोपयोग... लो ! पुण्य और पाप के मलिन परिणाम और स्वरूप शुद्ध है, उसे भूलकर यह रागादि मैं, ऐसी मिथ्याभ्रान्ति, ऐसे

अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है। ऐसे मलिन परिणाम के व्यापार द्वारा नये कर्म बँधते हैं, उन्हें बाँधता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

दूसरे सभी पदार्थ सूक्ष्म देखने के लिये तो बहुत... क्या कहलाता है वह ? दूरबीन देखे, यह देखे, अन्तर से देखे, ऐसे देखे। हीरा-माणिक्य को इतने देखते थे सूरत में। फावाभाई के मकान के साथ रहता था। कोई काम करता था हीरा-माणिक्य का, हों ! सामने दिखता। ऐसे-ऐसे जाँचे हीरा-माणिक्य को। ! कहा, इतनी-इतनी इस धूल को जाँचता है ऐसे-ऐसे। यह कुछ काम करता था। फावाभाई का मकान है न, उसके साथ में खाली मकान था। फिर उसके सामने... हम उतरे ऊपर तीसरी मंजिल में। वहाँ सामने काम करता था कोई सोनी होगा कोई। ऐसे देखता था, ऐसे देखता था।

मुमुक्षु : पहल पाड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहल (हीरा पासा आदि की) पाड़ते थे। फिर ऐसे... ऐसे... देखे। यह आत्मा के पहल कैसे पड़े, यह देखे किसी दिन इसने ? कौन है परन्तु यह ? कितना है ? किस भाव से है ? क्या भाव से हो रहा है ? और कैसे उसे यथार्थ होना चाहिए, उसका इसने मनन और विचार भी अन्तर्मुख से किया नहीं।

मुमुक्षु : सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं। आहाहा ! कहो, नटुभाई ! यह वकालत की बातों में फँस गया है। वे पिता भी सहायता कर-करके चले गये। यह कभी सुना नहीं और उसने विचार किया नहीं। आहाहा !

चैतन्य बादशाह भगवान आत्मा अनादि काल से अपने निज स्वरूप को, पूर्णानन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप अनाकुल आनन्द रसकन्दस्वरूप को भूलकर रागादि अशुद्ध मलिन परिणाम परलक्ष्य से (हुए), स्वलक्ष्य का साधन तो रहा नहीं, स्वभाव क्या, उसका लक्ष्य किया नहीं तो उसका साधन रहा नहीं, तो पर के लक्ष्य से पुण्य और पाप के विकल्प उठाकर, वे मेरे, ऐसा मानकर अशुद्ध परिणामरूपी उपयोग का आचरण कर रहा है। उस आचरण से उसे नये कर्म बँधते हैं। समझ में आया ? यह मुनि हुआ मुनि द्रव्यलिंगी साधु दिगम्बर, हजारों रानियों का त्याग, परन्तु अन्तर में शुद्ध परमात्मा स्वयं

निजानन्द अनुभव भोगनेवाला आत्मा है आनन्द का (भोगनेवाला), उसे भूलकर यह दया, दान, व्रत के परिणाम को करके, वह अशुद्ध उपयोग है, वह अशुद्ध आचरण है। उस अशुद्ध आचरण से इसने नये कर्म बाँधे हैं, द्रव्यलिङ्गी दिगम्बर मुनि हुआ तो भी। समझ में आया ? अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है। सो कर्म का बन्ध अनादिकाल का है। वह बन्धन अनादिकाल का है, नया नहीं।

इस कर्मबन्धन से... इस कर्म के बन्धन से कोई एक जीव वीतराग परमात्मा की अनुभूति के... आत्मा का स्वभाव जो पुण्य और पाप के रागरहित ऐसे स्वभाव का वीतरागपना ऐसा जो परमात्मा अपना निज स्वभाव, उसका अनुभव, उसका अनुभव अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उसका सहकारी कारणरूप जो समयक्त्व की उत्पत्ति का समय... काल-काल। उस अनुभूति का सहकारी कारण, निमित्त कारण जो समयक्त्व की उत्पत्ति का समय उसको पाकर... काललब्धि सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? पाठ में है न ? 'वीतरागपरमात्मानुभूतिसहकारिकारणभूतं कमपि कालं लब्ध्वेति' 'कालं लब्ध्वेति' एक समय का... है न पाठ ? 'कालु लहेविणु कोइ' कौन काल ? कि अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द और ज्ञान पूर्णानन्द द्रव्य-वस्तु-पदार्थ, महान पदार्थ, उसे भूलकर शुभ-अशुभ के परिणाम पुण्य-पाप के आचरण करके इसने नये कर्म बाँधे। उसमें से कोई जीव वीतराग परमात्मा की अनुभूति अर्थात् अपना वीतरागस्वभाव, शाश्वत् विकाररहित स्वभाव ऐसा परम आत्मा अर्थात् परमात्मा अपना निज स्वरूप शाश्वत्, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप, उसकी अनुभूति (अर्थात्) उसे अनुसरकर अनुभव करना। शुद्धस्वभाव को अनुसरकर, उसे अनुसरकर। निमित्त को अनुसरकर जो पुण्य-पाप का अशुद्ध उपयोग करता था, वह अनादि दुःखरूप दशा थी। उसमें कोई प्राणी वस्तु के स्वरूप की अनुभूति, उसका निमित्त कारण अर्थात् कि समकित की उत्पत्ति का समय। सम्यग्दर्शन शुद्ध परमात्मा मैं निजानन्दस्वरूप अनादि ऐसा का ऐसा ज्ञायकभाव से रहा हूँ। कभी अपूर्ण और विकारमय कभी हुआ नहीं। ऐसी अन्तर्मुख में पदार्थ के मूल शुद्ध स्वभाव की अनुभूति की प्रतीति। अनुभव करके उसमें प्रतीति, उसका समय काललब्धि है। ऐसे सहकारी कारण काल को पाकर कर्मों से जुदा हो जाता है। कर्म का बन्ध करता है, ऐसा कहा पहले। अब इस कारण से... रागादि अशुद्धोपयोग से

कर्म को बाँधता है, ऐसा कहा। वह आत्मा के अन्तर दृष्टि के अनुभव द्वारा कर्म को छोड़ता है।

भगवान आत्मा अपना शाश्वत् स्वभाव अन्तर, उसके पूर्णानन्द के स्वभाव को भूलकर अशुद्ध पुण्य-पाप के परिणाम को, अशुद्ध व्यापार को, आचरण को, भाव को करके नये कर्म बाँधता था, वही जीव कोई आत्मा के पूर्ण स्वभाव की अनुभूति अर्थात् उसका अनुभव करके, रागरहित उसकी प्रतीति करके। वह प्रतीति करने में एक सहकारी कारण काल को कहा जाता है। वह जीव **कर्मों से जुदा हो जाता है**। जैसे सोना और पत्थर खान में इकट्ठे हों। अग्नि लगाने से सोना और पत्थर दोनों पृथक् पड़ जाते हैं। बड़ी खान है न? हमारे जेठालाल संघवी को उसका धन्धा था न मुम्बई में। बोटादवाले। सोना के व्यापारी जेठालाल संघी। बड़े पत्थर लाते थे। पत्थर के पत्थर। बहुत सोना संग्रह किया है। परन्तु चले गये, हों! कोई रख नहीं सका। सोना रखा नहीं और वे भी रहे नहीं। सोना के (व्यापारी) थे। बहुत लाखोंपति कहलाते थे। ऐसा है न। उन्होंने ऐसे बड़े पत्थर लाकर और यहाँ निकालते थे। सोना निकाले। उसी प्रकार भगवान शुद्ध चैतन्यरूपी सोना, उसे यह पुण्य-पाप के विकल्परूपी मैल के साथ जुड़ान हुआ है अनादि से। समझ में आया? यह पुण्य-पाप के मैल के भाव से रहित मेरा स्वरूप है, ऐसी अन्तरदृष्टि करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने पर, स्वरूप का अनुभव होने पर, उस अनुभूति द्वारा कर्म का नाश करते हैं। देखो, दूसरे से कर्म का नाश होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। यह क्रियाकाण्ड या दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, फलाना-फलाना उससे कर्म का नाश हो, ऐसा है नहीं।

कर्मों से छूटने का यही उपाय है,... इस बन्धन से छूटने का यही एक उपाय है। वस्तु-पदार्थ का त्रिकाली परमानन्द शुद्धस्वभाव, उसकी सन्मुख की अनुभूति और दृष्टि करना, वह एक बन्धन से छूटने का, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, स्वभाव सन्मुख के परिणाम, वे ही बन्धन से छूटने का उपाय है। कहो, समझ में आया इसमें? **जो जीव के...** इन्होंने डाला स्वयं। **भवस्थिति समीप (थोड़ी) रही हो,...** काल कहा है न? काल शब्द पड़ा है न! **‘कालु लहेविणु कोइ’** भवस्थिति थोड़े भव बाकी रहे हों। तभी

सम्यक्त्व उत्पन्न होता है,... समझ में आया ? हो, समकित उत्पन्न होने का काल निश्चय है, केवलज्ञान उत्पन्न होने का काल निश्चय है। केवलज्ञान में नोंध है। केवलज्ञान की बही में वही पुरुषार्थ है। केवलज्ञान जगत में एक गुण की एक समय की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने राग बिना, ऐसी सत्ता का—अस्तित्व का स्वीकार, वह स्वीकार, वह स्वीकार राग के अवलम्बन से नहीं होता, अल्प ज्ञान के अवलम्बन से नहीं होता। उसका स्वीकार महासत्ता सर्वज्ञस्वभाव के अवलम्बन से होता है। आहाहा!

अन्दर सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है। सर्वज्ञ कहो या ज्ञ-स्वभाव कहो। ज्ञ-स्वभाव अर्थात् कि ज्ञ-स्वभाव। ज्ञ अर्थात् जानना... जानना... जानना... किसे नहीं जानना उसमें होता ही नहीं। ज्ञ-सबको। ऐसा जो ज्ञ-स्वभाव वस्तु, उसके अवलम्बन से सर्वज्ञ की एक पर्याय इतनी महासत्ता और महा अनन्त केवली को तीन काल-तीन लोक को जानने को राग बिना इतनी एक समय की पर्याय सामर्थ्य रखती है। ऐसी सत्ता के स्वभाव के सामर्थ्य की प्रतीति, 'वह है'—ऐसी प्रतीति, वह अपना अन्तर स्वभाव सर्वज्ञ है, उसके अवलम्बन बिना उसकी प्रतीति होती नहीं। निमित्त के अवलम्बन से नहीं, राग के अवलम्बन से नहीं और पर्याय के अवलम्बन से नहीं।

यह तो कहा नहीं था ? 'जो जाणदि अरहंतं दब्बत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।' भगवान की पर्याय जाने केवली की। आहाहा! ऐसी सत्तावाला तत्त्व! तो मैं भी आत्मा उस प्रकार का और उस नात का नातीला। नहीं गाया ? किसने गाया था ? एक लड़के ने गाया था। सिद्ध का नातीला। हिन्दी-हिन्दी। किसी ने गाया था। सिद्ध का नातीला मैं हूँ। उन सिद्ध की नात का। सिद्ध की पंक्ति-पाट पर बैठे ऐसा मैं। दशाश्रीमाली बनिया, फिर कोई गरीब हो और कोई पाँच, दस, पचास करोड़वाला हो, परन्तु जीमने का कहा हो तो सब एक साथ बैठते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बड़े में बैठाये मान के लिये, वह अलग बात है। परन्तु वह दशाश्रीमाली अन्दर घुसकर बैठे और बाघरी की लड़का आया हो, लाख-दो

लाख की पूँजी हो, परन्तु अन्दर घुसने नहीं दे उसे। दशाश्रीमाली का लड़का हो तो नात दशाश्रीमाली की हो तो अन्दर आओ। नात है न। अपने यह विवाह नहीं होते? विवाह होते हैं न! तब खारेक बाँटते हैं न खारेक कहलाती है? क्या कहलाती है? खारेक नहीं? खारेक बाँटते हैं। वह खारेक बाँटे तो बनिया का लड़का हो और बनिया के विवाह हो तो वह लड़का वह मण्डप हो वहाँ घुस जाये। अन्दर जाकर मण्डप में घुस जाये। मण्डप बाँधा हो वहाँ। बाघरी का पुत्र हो, वह बाहर खड़ा रहे दरवाजे के पास। ऐ माँ-बापू! कुछ दे न। वहाँ खड़ा रहे। ऐ माँ-बाप! कुछ देना। हो होशियार, हों! कदाचित् परन्तु वहाँ खड़ा रहे वह। और वह (बनिया का पुत्र) वहाँ घुस जाये। समझ में आया? इसी प्रकार अभव्य भगवान के उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। वह बाहर खड़ा रहता है। और योग्य प्राणी जो है, एकदम घुस जाये समवसरण में। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा के स्वभाव में जिसकी प्रतीति और योग्यता अन्दर स्वभाव को जानने की हुई (वह) एकदम अन्दर में प्रविष्ट हो जाये। ओहो! सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा है। जैसे सर्वज्ञ सबको जानते-देखते हैं, मैं भी मेरी यथायोग्य शक्ति में जितना विकास हुआ, उतना राग को जानूँ, दूसरे को जानूँ, सब है—ऐसा मैं जानूँ, वही मेरा स्वरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह तो उसमें लौकिक। नात यहाँ कही।

यहाँ तो कहते हैं, **जीव के भवस्थिति समीप (थोड़ी) रही हो,...** अर्थात् कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का, उसे केवलज्ञान की प्रतीति का काल हो, **तभी सम्यक्त्व उत्पन्न होता है,...** महापुरुषार्थ है। आहाहा! अनन्त केवली हैं, अनन्त आत्मायें हैं, उनमें अनन्त गुण से भरपूर सब हैं और अनन्त आत्मायें हैं कि जिन्हें प्रगट परमात्मदशा वर्तती है। और एक-एक परमात्मदशा में अनन्त परमात्मा का ज्ञान वर्तता है। ऐसी पर्याय के साथ... यह वह क्या बात है! एक समय की अवस्था! आँख मींचकर उघाड़े, उसमें असंख्य समय जाते हैं, उसके एक समय में इतनी सामर्थ्य एक गुण की एक समय की पर्याय की। बापू! उसकी सामर्थ्य की प्रतीति करने जाने पर भगवान सर्वज्ञस्वभावी की

प्रतीति हो जाती है। उसका नाम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ क्या कूदना है कहीं? ऐसे पुरुषार्थ है तो ऐसे गुलाँट खाता है अन्दर में। समझ में आया? आहाहा!

तभी कर्म-कलंक से छूट जाता है। लो! यह कर्म का कलंक है, कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक शुद्ध स्वभाव... ज्ञायक त्रिकाल स्वभाव एकरूप उससे विलक्षण जो स्त्री, पुरुषादि शरीर के भेद, उनको देखकर रागादि खोटे ध्यान नहीं करने चाहिए। ऐसा स्वभाव अपना पूर्ण है, उसे दृष्टि में देखनेवाला उसे स्त्री, पुरुष के शरीर के भेद से राग-द्वेष होने का प्रसंग उसे रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। यह शरीर दिखता है, वह तो परमाणु की भिन्न-भिन्न पर्याय है और अन्दर आत्मा है, वह तो भिन्न है। उस भिन्नता से आत्मा भिन्न हो जाता है अन्दर में, ऐसा है नहीं। वह आत्मा को पूर्णानन्द से अपने को जैसे देखता है, वैसे दूसरे को भिन्नपने नहीं देखने से, अभिन्नपने देखने से भिन्नपने के कारण राग-द्वेष होते नहीं। कहो, समझ में आया?

खोटे ध्यान नहीं करने चाहिए। यह अंग ऐसा है, परन्तु वह अंग तो जड़ की पर्याय है। वह भी स्कन्ध की विभाव पर्याय है, यह जितने दिखते हैं वे। पैसा-बैसा जितना। वह पुद्गल की, व्यवहार पुद्गल की विकारी पर्याय है। एक परमाणु जो है, वह तो निश्चय पुद्गल है, जिसके दो भाग नहीं होते कि जिसमें खण्ड न पड़े कि जिससे कोई छोटा न हो। ऐसे रजकण सब इकट्ठे दिखते हैं, वह व्यवहार पुद्गल है। उसकी विभाविक पर्याय दिखती है।

यह प्रश्न (संवत्) १९७८ में नागनेश के श्मशान में उठा था। है न वह... वह जलाते हैं न मनुष्य को? वहाँ उस ओर... है। वहाँ दिशा को जाते न। मैं जंगल जाता था दोपहर में अकेला। वहाँ पलाशी है न पलाशी इतना-इतना उस ओर। वहाँ यह विचार आया था अन्दर से। ७८ के दोपहर में दिशा को गया था वहाँ जंगल। अपवास करते न आठम के तब। यह क्या दिखता है? यह सब क्या दिखता है? यह संयोगी स्कन्ध की विभाविक पर्याय दिखती है। कोई मूल द्रव्य दिखता नहीं। क्योंकि मूल द्रव्य अतीन्द्रिय है। समझ में आया? यह तुम्हारे गाँव में पलाशी में। कितने वर्ष हुए? ४३ वर्ष हुए। फिर

उपाश्रय में आकर बात की थी कि देखो, भाई! यह क्या है, कहा, सब यह? तब तुम कहाँ थे? तुम होंगे इतने छोटे-छोटे। ७८। तब तो पूनमभाई का जन्म भी नहीं होगा। कहा, देखो, पूरी दुनिया दिखती है ऐसे इन्द्रिय द्वारा लक्ष्य करने से स्कन्धों की—पिण्ड की विकारी विभावी पर्याय। स्वाभाविक वस्तु वह अतीन्द्रिय से ग्राह्य है। परमाणु भी अतीन्द्रिय से ग्राह्य है, भगवान भी अतीन्द्रिय से ग्राह्य है, धर्मास्ति भी अतीन्द्रिय से ग्राह्य है। आहाहा! समझ में आया? उसमें किसे कहना मेरा और किसे कहना तेरा? सबके कारण से सब हो रहा है। आहाहा! कहो, धीरुभाई! यह संचा-बंचा क्या होगा यह? स्कन्ध की पर्याय।

श्रीमद् कहते हैं न, यह लोकस्थिति ऐसी है... श्रीमद् का एक पत्र है न! यह लोकस्थिति ऐसी है... बहुत ही क्षयोपशम और विचारक में बहुत ही थे। वे एक बार यह कहते थे, नहीं? है उसमें? (पुस्तक) रखी है उसमें? यह पुस्तक नयी है न वापस। उसमें एक पत्र है। एक पत्र है डेढ़ लाईन का। हाँ, यह चिह्न किया है। एक ही डेढ़ लाईन है। विचार में उसमें से आया हुआ शब्द। 'यह लोकस्थिति ही ऐसी है कि...' २५वाँ वर्ष। उम्र २५ वर्ष की थी श्रीमद् की। पहले सात वर्ष में तो जातिस्मरण हो गया। सात वर्ष की उम्र में तो पूर्व भव का ज्ञान था। फिर आत्मज्ञान हुआ। भाई! 'यह लोकस्थिति ही ऐसी है कि उसमें सत्य का भावन करना परम विकट है। रचना सब असत्य के आग्रह की भावना करानेवाली है।' एक शब्द में इतना रखा है उन्होंने। 'यह रचना सब असत्य के आग्रह की भावना करानेवाली है।' क्योंकि जहाँ-तहाँ ऐसे संयोग से ऐसा हुआ... संयोग से ऐसा हुआ... संयोग से ऐसा हुआ... ऐसा लोग देखते हैं। पूरी डेढ़ लाईन है। २५ वर्ष में २१७ वाँ पत्र है, लो। 'यह लोकस्थिति ऐसी है कि...' २५ वर्ष में। चिमनभाई! २५ वर्ष अर्थात्? बहुत छोटी उम्र कहलाती है। अरे! १६ वर्ष में मोक्षमाला बनायी न! १६ वर्ष में। १६ वर्ष अर्थात्? देह की स्थिति १६ वर्ष। वहाँ कहा कि—

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तौलिये,

संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।

१६ वर्ष में पुकारते हैं। ऐसी एक लाईन। ऐसी पाँच लाईन का एक पूरा काव्य।
ऐसे १०८ पद। १०८ पाठ १६ वर्ष में बनाये। पंडितजी! १६ वर्ष में। यह एक कड़ी ऐसी
पाँच कड़ी का एक पाठ ६७ वाँ। ऐसे १०८ पाठ।

मुमुक्षु : तीन दिन में।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन दिन में। नवनीतभाई! तीन दिन में। बहुत फाट-फाट
(जोरदार) क्षयोपशम। सात वर्ष में तो पूर्व भव का जातिस्मरण था। यह वहाँ बबूल के
ऊपर चढ़े थे और मुर्दा जलता था। पड़ोसी का मुर्दा था। पड़ोसी मर गया। और उसमें
संस्कारी जीव है, सात वर्ष की उम्र थी, इसलिए ऐसे साथ में जाते हैं कि यह क्या करते
हो बापू? क्या कहलाता है? बाँधे। ... उनके पितामह—दादा थे। इन लड़कों ऐसे भय
लगेगा। चला जा यहाँ से। यहाँ क्या है? वह कहीं जाये ऐसा था? सात वर्ष का बालक
परन्तु जबरदस्त संस्कारी। यह ३१ के वर्ष की बात है। संवत् १९२४ में जन्म। संवत्
१९३१ की बात है। इसलिए स्वयं वहाँ चले गये। पिता... फिर वे जलाने ले गये आगे।
जाते-जाते वह खड़ु था गहरा जरा सा ऐसे थोड़ा सा खड़ु। छोटा बालक। वहाँ जलाते
थे अब देखा। वहाँ जाया नहीं जाता। फिर एक छोटा बबूल था। यह तलबबूल क्या
कहलाता है? यह तलबावळिया होता है न इतना उगा हुआ। उसकी एक टहनी
गहरी डाली ऐसी आगे रही हुई। इसलिए वहाँ डाल के ऊपर पैर रखा। ऐसा देखते
हुए विचार में कि यहाँ से एक तत्त्व इसमें से गया, इसलिए यह जलाते हैं। यह विचार
करते हुए जातिस्मरण वहाँ हुआ। डाली के ऊपर खड़े थे। वह डाली अभी चाँदी में
मँढायी है। है न वडवा में है। उस डाली का टुकड़ा काटकर चाँदी में मँढाया है। वडवा
में है अभी।

मुमुक्षु : ववाणिया में

पूज्य गुरुदेवश्री : ववाणिया में है। वहाँ गये थे देखने। यह सात वर्ष में उनका
जरा लक्ष्य करते हुए इस भव के पहले का और फिर १६ वर्ष में यह लिखा। समझ में

आया ? क्या बढ़ा ? क्या बढ़ा ? तुझे सोजिश बढ़ी, क्या बढ़ा ? यह नरभव भगवान आत्मा... मुश्किल से मनुष्यदेह अनन्त काल में मिला... उसमें आत्मा क्या है, उसे समझा नहीं। उसमें ही यह लिखा है न। 'मैं कौन हूँ आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?' भाषा में यहाँ वजन है।

सम्बन्ध दुःखमय कौन है स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?

इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिये।

तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये॥

...भाई ! १६ वर्ष में यह (लिखा है)। पढ़ी है कभी मोक्षमाला ? नहीं पढ़ी होगी। ... प्रवचन हैं बहुत। ... पुस्तक २५ के वर्ष में व्याख्यान हुए। ऐसी स्थिति आत्मा की। यह तो सामर्थ्य बताने के लिये दृष्टान्त दिया। कहीं शरीर की अवधि ऐसी हो या ऐसा हो, उसके ऊपर आधार नहीं। आत्मा में ऐसी एक सामर्थ्य है कि १६ वर्ष में १०८ पाठ। ऐसी कड़ी पाँच का एक-एक पाठ, ऐसे १०८ पाठ (लिखे)। समझ में आया ? और यहाँ तक कहा कि —

किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि में शिवभूत है,

निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है॥

उसे पहिचानो और उसके वचन की प्रतीति करो और समझो। सोलह वर्ष में पुकारते हैं।

'रे आत्म तारो, आत्म तारो' तारो नहीं, हों तारो। तारो (अर्थात्) उभारो।

'रे आत्म तारो आत्म तारो शीघ्र अनुभव कीजिए,

सर्व आत्म में समदृष्टि दो...' यह सर्व आत्म में समदृष्टि दो। 'इस वचन को हृदय लहो।' देखो, १६ वर्ष में कहते हैं। ऐसे तो बहुत पाठ हैं न। यह उस समय (लिखते हैं), इस जगत की चीज़ ऐसी मेरे इस संयोग से यह हुआ, इससे यह हुआ। यह रचना ही कोई असत्भाव की (आग्रह) करानेवाली है। ऐसा बोले हैं, हों! ऐसा देखकर। आग्रह करावे, असत्य का आग्रह भावना करानेवाली है और सत् का भावन करना परम विकट है।

दूसरा भी एक जगह डाला है। ३१९ वहाँ है न वह ? ३१९ पृष्ठ पर है। 'देखत भूली टले तो सर्व दुःख का क्षय हो।' एक शब्द डाला है। यह सब तुझे इससे यह... इससे यह... इससे यह... यह देखतभूली है। 'देखतभूली टले तो सर्व दुःख का क्षय हो।' ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है, तथापि देखतभूली के प्रवाह में जीव बहता जाता है, ऐसे जीवों को इस जगत में कोई ऐसा आधार है ? कि जिस आधार से, आश्रय से वह प्रवाह में न रहे ?' ऐसा कहकर पत्र लिखा है। लोक के प्रवाह में अनादि से संयोगदृष्टि है, स्वभाव को भूलकर रचना बाहर के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में ऐसा उलझा है, कहते हैं कि उसकी रचना में सत् का आग्रह, सत्य का भावन होना कठिन है। यह बात अन्दर से कहना चाहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १०७

यहाँ कहते हैं। १०७। आगे कहते हैं कि तू शुद्ध संग्रहनयकर जीवों में भेद मत कर—है न १०७ ? यहाँ वापस 'एकं कुरु' आता है।

२३४) एक्कु करे मण बिणिण करि मं करि वण-विसेसु।

इक्कइँ देवइँ जँ वसह तिहुयणु एहु असेसु॥ १०७॥

हे आत्मन्, तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान,... सब भगवान पर्याय में अल्पज्ञता के फेरफार से, राग के फेरफार से, संयोग के फेरफार से उसे न देख। आहाहा! इसलिए राग और द्वेष मत कर, मनुष्य जाति की... वर्ण विशेष है न? ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को भी मत कर,... यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल है। स्वभाव की अपेक्षा से बात, हों! पर्याय में अन्तर है, वापस उसे जानना चाहिए। समझ में आया ? परन्तु वहाँ वापस वे कहते हैं न ? लिंग का आग्रह छोड़ दे, आता है न भाई समाधिगतक में ? लिंग का आग्रह छोड़ दे अर्थात् फिर वहाँ मुनि का लिंग नग्न ही न हो और चाहे जैसा हो, ऐसा नहीं कहना है।

मुमुक्षु : वह तो लालन ऐसा अर्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालन ऐसा करते थे। खबर है न ? कहा, ऐसे अर्थ क्या ? वह तो दूसरी बात करते हैं। ऐसा लिंग है, वह मुझे मुक्ति का कारण है, ऐसा छोड़ दे। लिंग तो ऐसा ही होता है। मुनिदशा हो अन्दर सम्यग्दर्शनपूर्वक की तीन कषाय के अभाव की, तो उसकी शरीर की नग्न अवस्था ही सहज हो जाती है और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प सहज आते हैं। आग्रह करना नहीं कि इससे मुक्ति होगी, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहकर वहाँ दूसरा लिंग होता है और दूसरी जाति के विकल्प होते हैं, उसे छोड़ाते हैं, ऐसा नहीं। बात जहाँ करने जाये द्रव्य की, वहाँ वह पर्याय में गड़बड़ करे। पर्याय में फिर चाहे जैसा हो, अवस्था में चाहे जैसा हो। ऐसा नहीं होता। यह पण्डित लालन बहुत कहे। देखो, समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी ने कहा। किसी भी लिंग से होता है। कहा, ऐसा नहीं। यह बात ऐसी नहीं है। यह तो वह लिंग जो मुनि का है, उसका आग्रह करना नहीं कि ऐसी दशा लिंग की हुई, इसलिए हमारे मुक्ति होगी, ऐसा नहीं। वहाँ लक्ष्य न कर, यहाँ स्वभाव के ऊपर (लक्ष्य) कर। आहाहा ! क्या हो परन्तु ? समझ में आया ?

यहाँ यह ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को भी मत कर, क्योंकि अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान ये सब तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि ठहरी हुई है। पाठ में तो त्रिभुवन है न ? 'तिहुयणु' परन्तु उस त्रिभुवन में कहना (है कि) तीन लोक में रहनेवाली जीवराशि। समझ में आया ? तीन लोक में रहनेवाले जीव सब एक समय की पर्याय और संयोग को भूल जा। वस्तु ऐसी है, दृष्टि करने से तेरे स्वभाव का भी तुझे माहात्म्य होगा और राग-द्वेष होने का प्रसंग रहेगा नहीं। उसे स्वभाव का झुकाव होने से मुक्ति हुए बिना नहीं रहेगी, ऐसा बताते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्येष्ठ शुक्ल १५, रविवार, दिनांक १३-०६-१९६५

गाथा - १०७, प्रवचन - १४७

यह परमात्मप्रकाश है, इसका अध्याय दूसरा, १०७ गाथा। देखो, क्या कहते हैं ? शब्दार्थ हो गया है। **भावार्थ :- सब जीवों की एक जाति है।** पाठ में तो ऐसा रखा है कि एक ही देव त्रिभुवनम्। पूरे तीन लोक में—त्रिभुवन में एक ही देव बसता है संग्रहनय से। जाति सब एक है न ? त्रिभुवन में एक आत्मा बसता है तो कोई ऐसा ले लेवे कि एक आत्मा ही है और दूसरे पुद्गल और कर्म नहीं। तो ऐसा (नहीं)। यहाँ तो जीव की अपेक्षा चलती है। पाठ तो 'तिहुयणु एहु असेस इक्कड़ देवड़ जें वसह' त्रिभुवन में एक ही आत्मा बसता है। दिव्यशक्तिमान, परमपारिणामिकस्वभाव, वस्तु का परमपारिणामिक द्रव्यस्वभाव, वह परम दिव्य शक्तिवाला देव, वह संग्रह से एक ही देव लोक में बसता है। संग्रह से, हों! यह वापस सब होकर एक नहीं। जाति से एक है। शब्द वापस त्रिभुवन में एक आत्मा बसता है, ऐसा कहते हैं। इसलिए फिर एक आत्मा के अतिरिक्त पाँच द्रव्य हैं, वह अभी यहाँ काम नहीं। अभी तो यहाँ आत्मा की अपेक्षा से बात चलती है। वरना तो पाठ ऐसा है। 'इक्कड़ देवड़ जें वसह तिहुयणु एहु असेसु' त्रिभुवन में एक ही आत्मा है, दूसरा कुछ है नहीं। त्रिभुवन क्षेत्र है, काल है, सब आ गया न पहले से। कर्म की जाति है, ऐसी बात आ गयी। पाठ में आ गया न!

सब जीवों की एक जाति है। जैसे सेना और वन एक है, वैसे जाति की अपेक्षा सब जीव एक हैं। नर-नारकादि भेद... मनुष्य, नारकी, तिर्यच और देव, वह वर्तमान कर्म के निमित्त के अवस्था के भेद, उन्हें लक्ष्य में न लेकर, वस्तु स्वभाव परमपारिणामिक दिव्य शक्तिवाला तत्त्व, उसे अन्तर में दृष्टि में लेने से सब आत्मा ऐसे दिव्य शक्तिमान हैं। ऐसा यहाँ एक जातिरूप से स्थापन किया गया है। **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण-भेद सब कर्मजनित हैं,...** यह कहीं वस्तु के स्वरूप में नहीं। इसलिए शूद्रादि भेद, वे तो पर्याय के भेद में हैं। वस्तु परमानन्दमूर्ति में वे भेद नहीं। इसलिए देखो न, कितने

ही ऐसा लेते हैं न कि देखो इसमें कुछ जाति भेद नहीं, वस्तु सब एक है। इसलिए केवलज्ञान शूद्र दशा में भी, चाण्डालदशा में भी उत्पन्न हो सकता है। क्योंकि जाति एक है। ऐसा नहीं। यहाँ तो वस्तु का परमपारिणामिकस्वभाव एक है (ऐसा कहना है)।

अभेदनय से सब जीवों को एक जानो। सबको एक जानो। उसका अर्थ ऐसा नहीं कि पर्याय में चाण्डालपना, शूद्रपना आदि है तो उस पर्याय में उसे मोक्षदशा हो सकती है, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। वे तो निगोद, वे सर्व जीव भी दिव्य शक्तिमान हैं। समझ में आया? 'जाति वेश का भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' यह आत्मसिद्धि में आता है। अपने तो अर्थ यह किया था भाई! कि कहा मार्ग जो, भगवान ने कहा, वह मार्ग हो तब तो जो जाति और जो वेश निमित्त में हो, वही हो सकता है, दूसरा हो नहीं सकता। परन्तु ऐसा नहीं कि चाहे जिस जाति में केवल (ज्ञान) होता है या चाहे जिस वेश में केवल (ज्ञान) होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करने की बात नहीं है।

भगवान आत्मा अनन्त तीन लोक में विराजमान, ओहो! दीर्घदृष्टि कितनी? कि वर्तमान अवस्था के जीवों की अनन्त भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होने पर भी उन सब अवस्थाओं को लक्ष्य में गौण करके उसका शाश्वत् परमस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द अखण्डानन्द वस्तु जैसी सर्वज्ञ भगवान तीर्थकर परमात्मा ने केवलज्ञान में जीव चीज को देखा है। जीव तो उसे कहते हैं। कहीं पुण्य-पाप के भाव को जीव कहते हैं? कर्म-शरीर को जीव कहते हैं? और एक समय की अवस्था वर्तमान प्रगट, उसे पूरा जीव कहते हैं? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा... आहाहा! कितनी समता! वर्तमान प्रगट अवस्था में अनेक भेद होने पर भी, वस्तु के स्वरूप को दृष्टि में लेना। ऐसे अनेक भेद प्रगट व्यक्त प्रसिद्ध प्रत्यक्ष होने पर भी, वह पूर्ण स्वरूप एक समय में परमपारिणामिकस्वभावभाव ज्ञायक, वह मैं और ऐसे सब। समझ में आया? ... देरी से क्यों आये? देरी हुई। कहो, समझ में आया? **अभेदनय से सब...** इस अपेक्षा से। भेद न देख, भगवान! भेद तो व्यवहार का विषय है। अभेद चिदानन्दस्वरूप एक समय में ध्रुव जो प्रगट दशा में नहीं, प्रगट दशा में पर्यायों के अनेक भेद—निगोद को अक्षर के अनन्तवाँ भाग ज्ञान का

विकास, गणधर आदि को चार ज्ञान का विकास, कितनों को मति-श्रुत का विशेष विकास, अल्प विकास यह सब। यह तो एक गुण की बात की, ऐसे अनन्त गुण। उनकी पर्यायों में प्रगटता में, व्यक्तता में, अनेकता, भिन्नता होने पर भी, भगवान पूर्णानन्द प्रभु एक समय में पूरा अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध द्रव्य है, ऐसी दृष्टि करना, वह अनन्त पुरुषार्थ है। और उसमें सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? यह वैष्णव की भाँति आया यह। ... आता है। सर्वत्र भगवान... भगवान... भगवान... जहाँ हो वहाँ। वर्तमान अवस्था को लक्ष्य में गौण करके, होने पर भी गौण करके और प्रगटरूप से पर्याय में पूर्ण स्वरूप नहीं आया होने पर भी, वस्तुरूप से व्यक्त-प्रगट है, ऐसा दृष्टि में लेना, वह महान अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह सम्यग्दर्शन। दोनों एक ही सम्यग्दर्शन है। दोपहर का सम्यग्दर्शन और अभी के सम्यग्दर्शन में कोई अन्तर नहीं। ऐसा कि सवेरे तुमने कुछ सम्यग्दर्शन (कहा), दोपहर में और कुछ सम्यग्दर्शन, और शाम का कुछ सम्यग्दर्शन होगा? यह तो दूसरे ढंग से बात की है यहाँ। अन्तर में उस एक द्रव्य के पूर्ण स्वभाव की बात करते हुए जिस दृष्टि में पूर्ण अभेद ज्ञायकभाव अनन्त-अनन्त शक्ति का पूरा सत्त्व, उसका एकरूप दृष्टि में लेना, उसे सम्यग्दर्शन कहा। यहाँ भी इसी अपेक्षा से कहा है। यह एक समय की वर्तमान दशा दिखाई दे, देखो! इसमें कहेंगे, त्रस की जाति, स्थावर की जाति, निगोद की जाति और वह भी सब प्रतीति में आयी हुई बात कि अनन्त निगोद है, लेंगे नीचे। मेरी ज्ञान की एक पर्याय, उन सब ज्ञेयों को जानने की सामर्थ्य रखती है। अनन्त जीव हैं, इसलिए उनकी दया के लिये बात है या उन्हें मार सकता है, यह बात है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर्याय में भी जिसका स्थावरपना, एकेन्द्रियपना आदि है और ऐसे अनन्त निगोद हैं, इसलिए उन्हें नहीं मारना या उन्हें उभारना, ऐसी यहाँ चीज़ की बात नहीं।

यह अनन्त-अनन्त ज्ञेय वर्तमान पर्याय में भेद होने पर भी, उसका पूर्ण स्वभाव है, वैसा दोनों जो ज्ञान की एक समय की पर्याय स्वीकार करती है, एक समय की पर्याय

अनन्त सामर्थ्यवाली है। बस! वह ज्ञेयरूप से है, यह ज्ञान है, ऐसा स्वीकार अन्दर में ज्ञान में निर्णय आना, उस पर्याय का इतना सामर्थ्य है। समझ में आया? ऐसा भगवान ने कहा है। भाई! जरा कठिन बात है। भगवान ने कहा जीव की दया पालन करो, यह करो। भाई! भगवान ने, हो सकता नहीं वह कहा होगा? जो वस्तुएँ हैं, उनकी अवस्था दूसरा कोई कर नहीं सकता और कर सकता है, ऐसा कहा है?

उन्होंने ऐसा कहा कि आत्मा ज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी उसकी सामर्थ्यवाली पर्याय है कि जिसमें अनन्त जीवों को ज्ञेयरूप से जानकर विकल्परहित जानने की उसमें सामर्थ्य है। ऐसी वह ज्ञान की एक पर्याय इतनी बड़ी, वह एक ज्ञेय को जानती है। ऐसे अनन्त पर्याय का पिण्ड उसे गुण और ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, उसे द्रव्य (कहते हैं)। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा एक समय में यह अनन्त को जानने की पर्याय जितना भी नहीं। चन्दुभाई! क्या कहा? केवलज्ञान की पर्याय है, वह एक समय में सबको जाने। श्रुतज्ञान की पर्याय परोक्ष रीति से भी सबको जाने, परन्तु उस पर्याय जितना द्रव्य नहीं, ऐसा यहाँ तो उठाना है, वहाँ से दृष्टि उठा देनी है। आहाहा! पर को पालने या मारने की तो बात भी नहीं, परन्तु उसे जो विकल्प उठता है, उस विकल्प को भी देखना नहीं। वह विकल्प भी उसकी जाति की भात नहीं। उसकी अल्पज्ञता जो वर्तमान जिसकी अल्पज्ञ पर्याय में सब ज्ञात हो, ऐसी सामर्थ्य इतनी पर्याय को भी देखना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उस पर्याय को भी देव, भगवान देव, ओहो! लो! शब्द ही देव रखा है, देखो! शुद्ध जीव के बदले 'एकेन देवेन' अर्थ में भी किया है न? 'इक्कइं देवइं एकेन देवेन' संस्कृत टीका में। 'इक्कइं देवइं एकेन देवेन' अर्थात् कि अभेद की अपेक्षा से शुद्ध एक जीव द्रव्येन। संस्कृत टीका है, पण्डितजी! यह संस्कृत टीका है न, इसकी चौथी लाईन है। समझ में आया? आहाहा! पाठ तो 'इक्कइं देवइं' है। बाद में पाठ लिया 'इक्कइं देवइं एकेन देवेन अभेदनयापेक्षया शुद्धैकजीवद्रव्येण' भगवान अनन्त आत्मायें एक देव शुद्ध चैतन्यमूर्ति संग्रहनय से भेद न करके एक जाति भगवान चौदह ब्रह्माण्ड में अकेला भगवान ही बसता है। नवरंगभाई! त्रिभुवन कहा न? त्रिभुवन कहा और उसमें

स्थ कहा, वह देव अर्थात् आत्मा कहा। दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा कहना नहीं। क्योंकि वह तो बात पहले कह गये हैं कि 'जीवहँ भेड जि कम्मकिड कम्मु वि जीड ण होइ।' यह तो पहले बात आ गयी है। कर्म के निमित्त से भेद पड़े और कर्म, वह जीव नहीं। यह एक ओर निकाल दी। यह तो पहले गाथा में १०६ में कहा।

परन्तु यहाँ तो सब भगवान पूर्ण... पूर्ण... एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में... जिसका उपयोग भले छद्मस्थ का असंख्य समय में काम करे। उपयोग काम करे। एक समय में उपयोग काम न करे, तथापि पर्याय एक समय की वह कहीं दूसरे समय की इकट्ठी होती है, ऐसा नहीं। उपयोग काम करता है, उसमें असंख्य समय (जाते हैं) रागमिश्रित भाग है, इसलिए। तथापि उसे कहते हैं कि उस एक समय के ज्ञान का यह उपयोग जो है, वह अनन्त जीव की पर्याय और द्रव्य को, गुण को है, ऐसा स्वीकार करता है। तथापि उस पर्याय में ऐसा देखना टालता है कि वह पर्याय पूर्ण स्वभाव को देखती है अन्तर को, उस पर्याय द्वारा सभी जीव पूर्ण परमात्मा हैं, ऐसा पर्याय को गौण करके ऐसा देख (कि) सभी भगवान विराजते हैं। सभी परमात्मा अपने असंख्य प्रदेश में स्थिर होकर बिम्ब होकर पड़े हैं।

मैं एक रंक, मैं एक राग का करनेवाला, मैं एक पंचेन्द्रिय। भगवान! यह तेरा स्वरूप ऐसा नहीं। समझ में आया? अनन्त केवल (ज्ञान) प्रगट हुआ तो वह भी आत्मा उतना नहीं। उसे ऐसा न देख, ऐसा कहते हैं। एकेन्द्रिय के अक्षर के अनन्तवें भाग के उघड़े हुए जीव को इतना न देख। केवल (ज्ञान) की एक पर्याय उघड़ी हुई एक समय में, उतना न देख। सब पूर्ण द्रव्य अभेद अखण्डानन्द पूरा लोक दिव्यशक्ति का पिण्ड परमात्मा ही विराजता है। आहाहा! कितनी दृष्टि में से विकृतता टलने पर उसे अविकृत दृष्टि कहो या सम्यग्दृष्टि कहो। सम्यक् अर्थात् सत्य दृष्टि अविकृत दृष्टि। क्योंकि अविकृत त्रिकाली भाव ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जैसी अपनी अविकृत अर्थात् सम्यक् सत्यदृष्टि द्वारा अपने को जाना, उस प्रकार से ही सभी भगवान ऐसे हैं, ऐसा उसकी दृष्टि में तैरता... तैरता है, मान्यता में ऐसा बसता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भेद सब कर्मजनित हैं,... कौन? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण-भेद सब कर्मजनित हैं, अभेदनय से सब जीवों को एक जानो। अनन्त जीवोंकर यह लोक भरा हुआ है। उस जीव-राशि में भेद ऐसे हैं—अब जरा भेद बताते हैं। व्याख्या तो करे न आचार्य। भेद (होने) पर भी भेद नहीं और अभेद है, ऐसा दृष्टि में लेना। समझ में आया? देखो, जो पृथ्वीकायसूक्ष्म... सूक्ष्म पृथ्वीकाय है। पूरे लोक में भरे हुए जीव असंख्य सूक्ष्म। चौदह ब्रह्माण्ड में एक तिल रखे, इतनी खाली जगह नहीं कि जिसमें असंख्य सूक्ष्म पृथ्वी जीव न हो। यह अस्तित्व, इतना अस्तित्व पर्याय का और उसका वापस पूर्ण का। समझ में आया? इसी प्रकार ऐसे जीव हैं, ऐसा नहीं। उनके अस्तित्व की मर्यादा ऐसी है, ऐसा जो ज्ञान की पर्याय स्वीकार करती है और वह पर्याय जब अपने द्रव्य को स्वीकार करती है कि अखण्ड अभेद एकरूप हूँ, तब उसकी दूसरे की पर्याय का स्वीकार करना छूटकर, वे भी सब भगवान ही हैं। मुझे किसे हीन देखना और किसे अधिक देखना?

जलकायसूक्ष्म,... पानी के जीव चौदह ब्रह्माण्ड में एक तिल रखे इतनी खाली जगह नहीं कि जहाँ पानी के जीव न हों। जल-जल सूक्ष्म। अग्निकायसूक्ष्म... वह भी चौदह ब्रह्माण्ड में। वायुकायसूक्ष्म, नित्यनिगोदसूक्ष्म... प्रत्येक सूक्ष्म नहीं हो सकता, इतनी बात है। वनस्पति में। उनमें चार में प्रत्येक है और यह तो जो सूक्ष्म है, वह तो नित्यनिगोद सूक्ष्म, इतर निगोद, निगोद सूक्ष्म है वहाँ। प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म है, उसमें ऐसा नहीं पूरे लोक में भरा हुआ। नित्यनिगोद सूक्ष्म। कायम रहनेवाले। नित्यनिगोद, निश्चयनिगोद। निश्चय अर्थात् कायम रहनेवाला निगोद। जिसकी पर्याय कभी निगोद में से बदलती नहीं, त्रसपना कभी पावे नहीं। कलंकपहुरा। प्रचुर भावकलंक पहुरा। ऐसी पर्याय का परिणमन, उसका अनादि से चला जाता है नित्य निगोद में। समय... समय... भिन्न... भिन्न... भिन्न... ऐसा नित्य निगोद जो कभी त्रस हुए नहीं और कितने ही तो कभी अभी अनन्त काल में त्रस होंगे नहीं। ऐसे जीव की अनन्त राशि की स्वीकृति, विश्वास पर्याय में लाना और फिर उस पर्याय का विश्वास उड़ा देना। चन्दुभाई! एक द्रव्य से भगवान द्रव्य ही है। पूरा चैतन्य भगवान दिव्य शक्ति प्रभु, जिसमें ज्ञान की धारा से अन्दर जाने से जो उसे ध्येय में ले, वह ध्येय वस्तु पूरी पूर्ण अखण्डानन्द

है। ऐसी दृष्टि का नाम अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरण उसे कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं नित्यनिगोदसूक्ष्म, इतरनिगोदसूक्ष्म... बाहर निगोद में से निकले हुए... वे भी निगोद के जीव हैं। इन छह तरह के सूक्ष्म जीवोंकर तो यह लोक निरन्तर भरा हुआ है,... पूरा लोक भरा है। सब जगह इस लोक में सूक्ष्म जीव हैं। यहाँ भी है, देखो यहाँ। इस अंगुल का असंख्यवाँ भाग यहाँ लो, वहाँ अनन्त जीव हैं। आहाहा! अंगुल का असंख्य भाग है न यहाँ, अंगुल का असंख्यवाँ भाग? उसमें निगोद के अनन्त जीव हैं।

मुमुक्षु : पूरे-पूरे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे अर्थात् पूरे के पूरे। एक प्रदेश में पूरे नहीं आते। ध्यान रखो। यहाँ आकाश का एक प्रदेश लें, यहाँ एक प्रदेश तो उसमें एक जीव पूरा नहीं आ सकता, परन्तु एक जीव का असंख्यवाँ भाग, उसके जितने प्रदेश हैं जीव के, उसका असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में रहा हुआ है यहाँ। ऐसे अनन्त जीव के असंख्य (में का एक) प्रदेश (आकाश के) एक प्रदेश में रहा हुआ है। एक जीव पूरा नहीं रह सकता। अनन्त के असंख्य प्रदेश अनन्त रह सकते हैं। देखो तो यह एक इसकी महिमा वस्तु देखो!

यह एक आकाश प्रदेश लें, यहाँ प्रदेश तो उसमें एक जीव नहीं रह सकता। क्योंकि एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं लोकाकाश जितने। लोकाकाश जितने हैं न? तो यहाँ उसका असंख्यवाँ भाग, लोकाकाश का असंख्यवाँ भाग असंख्य प्रदेश रोककर एक जीव रहे। उसका—एक जीव का असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में रहे, ऐसे अनन्त जीवों के असंख्यवें भाग अनन्त प्रदेश उस प्रदेश में रहे। ऐसे अनन्त प्रदेश से भरपूर पूरा चौदह ब्रह्माण्ड है। देवचन्द! समझ में आता है?

यह तो (संवत्) १९७४ के वर्ष में प्रश्न उठा था। मास्टर है न? तुम्हारे थे न? प्राणजीवन मास्टर। तुम्हारे क्या कहलाते हैं वे? शिक्षा के पूरे राजकोट के, शिक्षा की रचना करनेवाले बड़े। उन्होंने ७४ के वर्ष में प्रश्न किया। ७४। ४७ वर्ष हुए। बोटाद में। तब कुछ था न। कुछ रोग था, प्लेग कुछ था। बोटाद में आये हुए पचास गाँवों के लोग।

उन्होंने प्रश्न किया कि यह एक जीव के प्रदेश (आकाश के) एक प्रदेश में कितने ? ७४। ४७ वर्ष पहले। कहा, एक (आकाश के) एक प्रदेश में अनन्त जीवों के अनन्त प्रदेश हैं। समझ में आया ? उनका क्षेत्र। यह भगवान जीव ऐसा है कि एक प्रदेश में नहीं रहता, ऐसा तो क्षेत्र से बड़ा। आहाहा! उसके भाव से बड़े की तो क्या बात करना ? परन्तु वह प्रदेश में चाहे जितना संकोच हो तो लोक के असंख्यवें भाग के प्रदेश रोके, रोके और रोके। एक, दो संख्यात प्रदेश में वह बिल्कुल रह सकता ही नहीं तीन काल-तीन लोक में। असंख्य प्रदेश। अकेले संख्यात प्रदेश। एक, दो, तीन संख्या, उसमें वह जीव कोई रह नहीं सकता।

लोक में असंख्यातवाँ भाग, असंख्यवाँ भाग, वह भी असंख्यात प्रदेश। वरना तो लोक का असंख्य भाग एक प्रदेश भी कहलाता है। एक प्रदेश भी लोक का असंख्य भाग कहलाता है। परन्तु लोक का असंख्यवाँ भाग कि जो असंख्य प्रदेश में आवे, उतने असंख्य को एक जीव रोकता है और ऐसे जीव अनन्त एक आकाश के प्रदेश में अनन्त जीवों के अनन्त प्रदेश हैं। एक प्रदेश में अनन्त परमाणु आदि अनन्त परमाणु के स्कन्ध, ऐसे अनन्त स्कन्ध हैं, वे एक प्रदेश में स्वयं आकाश प्रदेश है, उसमें धर्मास्ति प्रदेश है, अधर्मास्ति प्रदेश है, काल का एक है। छहों द्रव्य है उसमें। यह देखो न! समझ में आया ? उसका भाव। आहाहा! अनन्त-अनन्त। उसकी वर्तमान दशा को देखने से यह भेद है, कहते हैं। परन्तु उसका वस्तुस्वभाव देखने से, वह भेद है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्वेताम्बरसूत्र में है। यह तो व्यवहार की बात है। दसवें शतक का... है। उसमें चर्चा तब हुई थी। दसवें शतक का एक... है, उसमें यह बात है। तब भगवती (सूत्र) बहुत देखा हुआ न। (संवत्) १९७१ के वर्ष में भगवती बड़े में बड़ा सूत्र, उनका कहलाता है। १६ हजार श्लोक और एक लाख (श्लोक प्रमाण) की टीका। वह तो ७१ में देखा था। वहाँ यह चर्चा हुई थी। चर्चा तो यहाँ सूक्ष्म बात बहुत निकलती थी, परन्तु लोगों को वाड़ा की पद्धति में वह विचार करने का अवकाश नहीं

मिलता। तब ७४ में दिया भगवती के दसवें शतक का। मूलचन्दजी इनकार करे कि ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। एक प्रदेश में अनन्त प्रदेश हों और ऐसा हो—ऐसा नहीं होता। अब कहा इसमें दो और दो = चार जैसी (बात)। गणित का विषय यूरोपियन लाओ न कहा। यूरोपियन को कहें तो बात बैठे ऐसी है। उसमें कहाँ....

एक दृष्टान्त दिया था (संवत्) १९७४ में मैंने कि भाई! देखो! पूरे लोक के प्रदेश जितना एक जीव। अब वह जीव आधे लोक में रहे तो एक प्रदेश में कितने प्रदेश आवे? बसन्तीलालजी! दो। पूरे लोक में चौड़ा हो तो एक प्रदेश में एक प्रदेश हो गया? तो वह आधे में आवे तो कितने में आवे? कि एक प्रदेश में दो। चौथे भाग में आवे तो कितने में आवे? कि एक प्रदेश में चार, दसवें भाग में हो तो कितने में आवे? एक प्रदेश में दस। संख्यातवें भाग आवे तो कितने आवे? बहुत असंख्य। और असंख्यवें भाग में आवे तो कितने आवे? कि एक प्रदेश में असंख्य। यह तब ७४ में कहा था। उसमें दृष्टान्त इसका क्या है कहा गणित का? भाव अन्दर (समझो)। समझ में आया? कहाँ गये? मलूकचन्दभाई गये।

वे सब जीव हैं, बापू! उनके द्रव्य के स्वभाव का भान, प्रतीति करना। वह पर्याय तो है उसकी प्रगटता और ऐसे अनन्त हैं। समझ में आया? लोक के अन्तिम में अन्तिम प्रदेश लो, सिद्ध भगवान विराजते हैं, उसका अन्तिम प्रदेश लो, वहाँ भी अनन्त जीवों के अनन्त प्रदेश वहाँ भी है। उन सिद्ध के भी वहाँ हैं। आकाश के एक प्रदेश में एक सिद्ध नहीं रह सकते, परन्तु एक सिद्ध का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त सिद्धों के एक प्रदेश में अनन्त प्रदेश सिद्ध के हैं वहाँ। यह सब वस्तु है। ऐसे गप्प और कल्पना नहीं। बल्लभदासभाई! ऐसी बातें! भगवान आत्मा, बापू! क्या कहना उसकी बात! आहाहा! उसकी आस्था में कितना अस्तित्व आ जाता है? उसकी आस्था—श्रद्धा में कितना अस्तित्व आ जाता है कि ऐसे सब पर्यायों के भेद भी उसके अस्तित्व में, श्रद्धा में आ जाते हैं और उस श्रद्धा को मुख्यरूप से देखने पर पूरा द्रव्यस्वभाव अपना देख तू, ऐसे सभी द्रव्यों के स्वभाव उसकी दृष्टि में आ जाते हैं। ऐसी उसकी आस्था निर्विकल्प प्रतीति हो जाती है। समझ में आया?

पृथ्वीकायबादर,... अब। उन्हें—सूक्ष्म को आधार की आवश्यकता नहीं। वे तो पूरे लोक में (रहे हुए हैं)। ओहोहो! लोक कितना? असंख्य प्रदेश और जीव अनन्त, परमाणु अनन्त। बापू! यह वस्तु के स्वभाव, वह वस्तु छह प्रकार के स्वभाव जगत में हैं। छह प्रकार के स्वभाव। एक चैतन्यस्वभाव, एक मूर्त अजीवस्वभाव, चार अमूर्त अजीवस्वभाव। बस, वह स्वभाव छह प्रकार की जाति अनादि पड़ी हुई है। उसकी जाति की पूर्णता की दृष्टि करना, वर्तमान प्रगट अवस्था होने पर भी व्यक्त को अव्यक्त लक्ष्य में कर डालना और अव्यक्त अर्थात् पर्याय में नहीं आये होने पर भी वह वस्तु प्रगट है, वह महान सत्ता धाम भगवान अनन्त गुण की राशि ऐसा दिव्य भगवान एकरूप है सब भगवान। अनन्त पुरुषार्थ है। ऐसे बात में नहीं यह कहीं। यह जो ज्ञान स्वीकार करे, वह ज्ञान, स्वभाव की ओर ढले, तब उसे निःशंक अन्तर की प्रतीति का अनुभव हो, तब सब आत्मायें वस्तु से भगवान हैं। किसे हीनाधिक कहूँ श्रद्धा के विषय में? ज्ञान के विषय में व्यवहारनय से जानता है, हीनाधिक जाननेयोग्य है। समझ में आया?

यह पृथ्वीकायबादर,... अब दूसरी बात लेंगे। वह भी जगत में है। उसका अमुक स्थान है। पूरे लोक में नहीं। जलकायबादर... यह पानी, हों! एक बिन्दु में असंख्य जीव, पृथ्वी में एक कणी में असंख्य जीव। अग्निकायबादर,... एक कणी में असंख्य जीव। अग्नि की एक कणी में असंख्य जीव। वायुकायबादर, नित्यनिगोदबादर, इतरनिगोदबादर... देखो, बादर में भी दो भेद हैं और सूक्ष्म में भी दो। नित्यनिगोद और इतरनिगोद सूक्ष्म में। बादर में भी बादर और इतरनिगोद दोनों हैं। समझ में आया? और प्रत्येक वनस्पति—ये जहाँ आधार है वहाँ हैं। इस प्रत्येक वनस्पति को वहाँ जहाँ आधार हो बाह्य, उस स्थान में हो। सो कहीं पाये जाते हैं, कहीं नहीं पाये जाते,... यह बादर कहीं होते और कहीं नहीं होते। सूक्ष्म पूरे लोक में (होते हैं)। परन्तु ये भी बहुत जगह हैं। इस प्रकार स्थावर तो तीनों लोकों में पाये जाते हैं,... सूक्ष्म। और दोइन्द्री, त्रीइन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री तिर्यच ये मध्यलोक में ही पाये जाते हैं। यह त्रस, हों त्रस।

अधोलोक-ऊर्ध्वलोक में नहीं। कौन? यह तिर्यच दो इन्द्रिय आदि। अधोलोक में नहीं और ऊर्ध्वलोक में नारकी में ये दो इन्द्रिय नहीं। ऊर्ध्व में—देव में नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह दो... ऊपर लेंगे फिर।

उसमें से दोइन्द्री, त्रीइन्द्री, चौइन्द्री जीव कर्मभूमि में ही पाये जाते हैं, भोगभूमि में नहीं। जुगलिया में नहीं। वहाँ पाप का उदय नहीं न, इसलिए (नहीं हैं)। भोगभूमि में गर्भज पंचेन्द्री सैनी थलचर या नभचर ये दोनों जाति-तिर्यच हैं। मनुष्य मध्यलोक में ढाई द्वीप में पाये जाते हैं,... ढाई द्वीप में ही मनुष्यलोक है। अन्य जगह नहीं, देवलोक में स्वर्गवासी देव-देवी पाये जाते हैं, अन्य पंचेन्द्री नहीं, पाताल लोक में ऊपर के भाग में भवनवासीदेव तथा व्यन्तरदेव और नीचे के भाग में सात नरकों के नारकी पंचेन्द्री हैं, अन्य कोई नहीं,... देखो, इतने भेदों का ख्याल कराते हैं, हों! वे हैं, नहीं—ऐसा नहीं। एक आत्मा... एक आत्मा... फिर अन्त में जाओ सब यह भेद-बेद नहीं, अनन्त जीव नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो स्वभाव की अपेक्षा से इतनी बात है।

इस प्रकार त्रस जीव किसी जगह हैं, किसी जगह नहीं है। इस तरह यह लोक जीवों से भरा हुआ है। सूक्ष्म स्थावर के बिना तो लोक का कोई भाग खाली नहीं है,... यहाँ वह पूरा लोक कहा है न, उसका वर्णन करते हैं। वह त्रिभुवन शब्द प्रयोग किया है न। त्रिभुवन में पूरे परमात्मा है, ऐसा कहा था न? अर्थात् कि सूक्ष्म-स्थायर बिना लोक का कोई भाग खाली नहीं। सब जगह सूक्ष्मस्थायर भरे हुए हैं। बस! अब यह बात कहनी है वह। तीन लोक में कहा, उसका सिद्ध किया कि तीन लोक में सूक्ष्म पूरे लोक में भरे हैं। बादर में कहीं हैं और कहीं नहीं।

ये सभी जीव शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक... पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। अब पर्याय को, क्षयोपशम, उपशम, क्षायिकभाव की जो पर्याय है न जीव की? वह भी स्व की अपेक्षा से तो पारिणामिकभाव है। अरे! उदय का जो विकार है न, वह भी पारिणामिकभाव की ही वह विकारी पर्याय है, परन्तु वह पर्याय का पारिणामिक है। समझ में आया? भगवान् द्रव्यस्वरूप का... है न? परमभावग्राहक। शुद्ध पारिणामिक परमभाव। परमभाव अर्थात् त्रिकाली। अपरमभाव है ये। चार भाव अपरम। है भले पारिणामिक। निमित्त की अपेक्षा ले तो उसे उदय कहते हैं, क्षयोपशम

कहते हैं, क्षायिक कहते हैं, उपशम कहते हैं। पारिणामिकभाव की पर्यायरूप से लें तो ... लें तो ये चारों ही पारिणामिक की पर्याय और पारिणामिक की पर्याय। परमपारिणामिकभाव, वह द्रव्यस्वभाव। समझ में आया ?

सभी जीव... यह सभी जीव तो द्रव्य लिया। वह लोक में पूर्ण है, ऐसा करके त्रिभुवन सिद्ध किया। अब उसका भाव सिद्ध करते हैं यह। **शुद्ध पारिणामिक परमभाव...** समझ में आया ? शुद्ध एकरूप पारिणामिक परमभाव। शुद्ध शब्द से वहाँ एक शब्द है। एकरूप शुद्ध पारिणामिक परमस्वभाव। ऐसी दृष्टि से देखने पर शुद्ध द्रव्य प्रयोजन जिसका है, जिस ज्ञान का शुद्ध द्रव्य ही प्रयोजन है, शुद्ध द्रव्यार्थिक कहा न ? वह **शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि गुणरूप हैं**। केवलज्ञान, यह पर्याय की बात नहीं। अकेला ज्ञान, दर्शन, वे सब पारिणामिकभाव से है। ज्ञानगुण पारिणामिकभाव से। परमपारिणामिकभाव से, हों ! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता परमपारिणामिकभाव से है, वह वस्तु गुण। समझ में आया ?

शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि (अनन्त) गुणरूप हैं। देखो, शब्द लिया है शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और लिये हैं वापस गुण। और यह द्रव्य शब्द से सामान्य अंश है, ऐसा। यह वह द्रव्य शब्द से कोई सामान्य और प्रमाण का विषय द्रव्य नहीं। यहाँ सामान्य अंश जो त्रिकाल... त्रिकाल... सामान्य स्वभाव। ज्ञान-दर्शन सामान्य स्वभाव। द्रव्यार्थिकनय है न ? द्रव्य अर्थात् सामान्य जिसका प्रयोजन है, ऐसे नय का विषय। इसलिए देखें तो वह परमपारिणामिकस्वभाव से अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं। आहाहा ! इतना एक असंख्यवाँ भाग। वहाँ तो अनन्त तो निगोद के जीव। वह कहीं बात है ! स्वभाव। उसका एक निगोद का जीव, उसे उदयभाव, क्षयोपशमभाव और पारिणामिकभाव, तीन भाव हैं। एक-एक जीव को। एक शरीर में अनन्त निगोद, उसे दो-दो शरीर—तेजस और कार्माण और एक-एक तेजस-कार्माण अनन्त स्कन्ध के परमाणु की प्रकृतियाँ इतना एक अंगुल के असंख्य भाग में वह सब ठसाठस भरा है। यह व्यवहार की बात है। समझ में आया ? परन्तु यहाँ तो कहते हैं, यहाँ तो इतने में इतना भरा है, ऐसा सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : किसने निश्चित किये हैं.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित कौन करे ? आहाहा ! इतना एक अंगुल का असंख्यवाँ भाग । उसमें असंख्य निगोद शरीर । उसमें एक निगोद में सिद्ध से अनन्तगुने जीव, ऐसे अनन्त जीवों को दो-दो शरीर, दो-दो शरीर को एक-एक में अनन्त स्कन्ध की प्रकृति एक-एक । ऐसी प्रकृति उसे १४०, ४१ इत्यादि । और एक आत्मा में अनन्त गुण और उसकी एक समय की उदय और क्षयोपशम पर्याय । उसे क्षायिक पर्याय नहीं । उदय और क्षयोपशम दो ही है, उपशम नहीं । उदय और क्षयोपशम पर्याय दो है । पारिणामिभाव त्रिकाल द्रव्य है । उसके गुण जो हैं, उसके गुण का जो सत्त्व है, त्रिकाली रूप है, वह परमपारिणामिक द्रव्य से । द्रव्यार्थिक अर्थात् सामान्य अंश के नय से वह त्रिकाल एकरूप शुद्ध है ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभेद की इतनी बात है । दखल-बखल की बात नहीं । भेद होने पर भी, पर्याय में अनन्त जीवों के प्रकार में भिन्न-भिन्नता होने पर भी उसे लक्ष्य में मुख्यरूप से न लेकर, उसे गौण करके वस्तु के... यहाँ भी एक समय की पर्याय और राग को मुख्यरूप से लक्ष्य में न लेकर उसे गौण करके पूर्ण पारिणामिकभाव की अन्तर दृष्टि करना, उसका नाम अभेद दृष्टि और सम्यग्दर्शन कहा जाता है । इसके लिये इसकी बात है ।

व्यवहार है अवश्य पर्यायभेद, परन्तु उसे गौण कर डाल, ऐसा कहते हैं । तेरी अवस्था को जैसे तूने गौण किया । भगवान् पूर्ण स्वभाव भरपूर प्रभु । इतने क्षेत्र की अपेक्षा कुछ नहीं । इतना यह तो बड़ा क्षेत्र है साढ़े तीन हाथ का । वह तो अंगुल के असंख्य भाग के क्षेत्र में अनन्त परमात्मा विराजते हैं । ऐसे स्वभाव की सूक्ष्मता की प्रतीति कौन करे ? भाई ! उसका वीर्यबल एक समय की अवस्था को न स्वीकार कर, त्रिकाल वस्तु ध्रुव महासत्ता अकेला एकरूप शुद्ध स्वभाव (स्वीकार करे तो), उसकी दृष्टि में विकल्प रहे नहीं । निर्विकल्प दृष्टि होने से सभी द्रव्य भगवान् यह है, ऐसी दृष्टि है । किसी के ऊपर शत्रु-मित्रपना अन्तर दृष्टि में रहता नहीं । भेदपना रहता नहीं फिर शत्रु-मित्र कहाँ रहे ?

बात जरा ऐसी है, भाई! यह तो स्वभाववाद की बात है। वीतरागमार्ग, वह स्वभाववाद है। अकेला स्वस्वभाव अनादि-अनन्त। अकृतभाव हैं छह प्रकार के अनादि-अनन्त। किसी ने किये नहीं और पूर्णता में कम हुए नहीं स्वभाव से। पर्याय में अपूर्णता है, उसे गौण करके पूर्णता को देख। आहाहा! भाई! यह प्रयत्न की करवट बदलने का महा पुरुषार्थ है। समझ में आया? देवचन्दजी! वीतरागमार्ग का व्यवहार भी अलग जाति का और उनके कहे हुए निश्चय तत्त्व तो कोई अलौकिक! यह सब बतलाया किसलिए? कि ऐसी पर्यायवाले जीव हैं।

मुमुक्षु : पर्याय प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी पर्यायवाले जीव को स्वीकारे नहीं, वह एक-एक जीव परिपूर्ण भिन्न है, उसे वह स्वीकार नहीं सकता। समझ में आया? न्यालभाई! बड़ी बात है भाई भगवान के घर की। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? शक्ति प्रमाण वाँचे, विचारे। वाँचे, घर में वाँचे और फिर यहाँ समझ में आये कि भाई! किस प्रकार से इसका अर्थ होता है। घर में हमको वाँचने का कहो, ऐसा हमको समझ में आता नहीं तो किसलिए वाँचें? घर में वाँचन हो, उसमें से कहाँ अन्तर था, वह फिर समझ में आये तो खबर पड़े। उसमें क्या है? स्वाध्याय करना चाहिए प्रतिदिन। घण्टे, दो-दो घण्टे ऐसा तत्त्व खुराक है यह तो इसका। समझ में आया? वह खुराक तो सब धूल का है। यह तो आत्मा का खुराक दो-चार घण्टे हमेशा स्वाध्याय के लक्ष्य से तुझे ऐसे वाँचन, श्रवण, बारम्बार अन्दर घोलन होना चाहिए। समझ में आया? दृष्टि अन्तर लक्ष्य में चाहिए। वरना तो बहुत वाँचन करे तो उल्टा-उल्टा निकाला करे। उल्टा निकालेगा उसमें।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सामान्यात्मक, सामान्यात्मक अभेद।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परिणाम नहीं कहे। वे नहीं। वह तो पर्याय की बात की। पर्याय में पारिणामिक पर्याय। यह परमपारिणामिकभाव। यह त्रिकाल। परमपारिणामिकभाव त्रिकाल और पर्यायरूप का एक समय का वह पारिणामिक अकेला, परमपारिणामिक नहीं।

मुमुक्षु : उत्पादवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पाद। चार को पारिणामिक कहा है। उदय को पारिणामिक कहा जयधवल में। धवल में कहा है। यह तुम विकार को ऐसा कहोगे तो पारिणामिकभाव हो जायेगा। हमारे स्वीकार है। वीरसेनस्वामी कहते हैं कि हमको मान्य है। क्योंकि... परन्तु वह परमपारिणामिक नहीं। परमपारिणामिक ध्रुव। यह पारिणामिक की पर्याय इतनी बात है। परमपारिणामिक नहीं, परमपारिणामिक तो त्रिकाल एकरूप। यह पारिणामिक सही, परन्तु पर्याय की अपेक्षा का, त्रिकाल का नहीं। त्रिकाल को परमपारिणामिक कहा जाता है। परमपारिणामिक एकरूप त्रिकाल है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ अशुद्ध पारिणामिक है न। सब बात है न। तीन भेद किये। भव्य-अभव्य जीव के किये हैं न। द्रव्यसंग्रह में पारिणामिक... भेद किये हैं। अपने को सब आ गया है वाँचन में।

यहाँ तो बात जब एक ही स्वद्रव्य की लेनी हो, तब वह भगवान परमपारिणामिक से पूरा और उसकी पर्याय में चार प्रकार पड़े, उसे भी पारिणामिक की ही पर्याय, पारिणामिक, हों! परमपारिणामिकभाव नहीं। परिणमता है न? वह परिणमता है न? वह परिणमता है न? परिणमता है, इसलिए इस अपेक्षा से पारिणामिक। परन्तु एक समय की दशा जितना। भले क्षायिक है परन्तु सम्यक्दशा तो एक समय की है न! क्षायिक तो भले ऐसी की ऐसी बहुत काल रहे, परन्तु क्षायिक का उत्पाद तो एक समय है। वह क्षायिक समकित हुआ, वह एक समय में रहा, दूसरे समय में वापस उसका व्यय होकर दूसरा उत्पन्न होता है। उत्पाद-व्यय है सही, उत्पाद-व्यय। केवलज्ञान एक समय एक ही रहता है न। केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, परन्तु वह उत्पन्न हुई पर्याय

दूसरे समय में नहीं रहती। क्योंकि वह उत्पाद, उत्पाद-व्ययवाली पर्याय है। त्रिकाल परमपारिणामिकभाव एकरूप ध्रुव है। समझ में आया ?

यह भगवान के घर की लीला। वे ईश्वर की लीला कहते हैं, वह नहीं। 'कोई कहे लीला रे लीला अलख की, अलख पूरे मन आस, यह लीला न घटे ईश्वर दोष विलास।' आनन्दघनजी कहते हैं। यह लीला भगवान आत्मा की। ओहो! पर्यायरूप से परिणमे या विकाररूप से परिणमे, उपशमरूप से परिणमे, क्षयोपशमरूप से परिणमे, क्षायिकरूप से परिणमे। वह पर्याय। वह एक समय की दशा है, चारों ही एक समय की दशा है। यह परमपारिणामिकभाव त्रिकाल एकरूप वस्तु है। परमपारिणामिक, परमपारिणामिक वस्तु। समझ में आया ? आहाहा!

उत्पाद-व्यय का पारिणामिक क्षणिक है। यहाँ परमपारिणामिक की निश्चय में तो कुछ अपेक्षा है नहीं। व्यवहार से जब आवे, तब अपेक्षा कहलाती है। कहो, समझ में आया ? यह भगवान आत्मा परमस्वभाव, कहते हैं कि यहाँ तो दृष्टि का विषय जो ध्रुव द्रव्यार्थिकनय का, वह परमपारिणामिक है और एक समय की अवस्था हो, जाये, हो, जाये अर्थात् उत्पाद-व्यय, ऐसा। उत्पन्न-व्यय... उत्पन्न-व्यय... उत्पन्न-व्यय... क्षायिक समकित और केवलज्ञान भी एक समय में ही आता है। एक समय ही रहता है। सिद्धपद भी एक समय रहता है और दूसरे समय में सिद्धपद नया होता है। पर्याय है न वह तो ? इसलिए वह पारिणामिकभाव से वहाँ तो क्षायिक और पारिणामिक दो हैं। पारिणामिकभाव ध्रुव, क्षायिकभाव पर्याय वहाँ दो ही है। निगोद में तीन है। उदय, क्षयोपशम और पारिणामिक। पारिणामिकभाव ध्रुव और उदय और क्षयोपशम। विकार का भाव उदय और ज्ञान-दर्शन वीर्य का क्षयोपशम। ऐसे जब पर्यायदृष्टि से देखो उसका स्वतः देखो तो विकार परमपारिणामिकभाव ही स्वयं पर्यायरूप से परिणमता है। इसलिए उसे पारिणामिकपर्याय कहा है। विकार को, हों! जयधवल, धवल (में ऐसा कहा है)। यह तो बारह अंग की ठेठ की वस्तु ऐसी ही है।

यह तो आस्रव अधिकार में वर्णन किया है। आठ प्रकार की बात वर्णन की है। पारिणामिकभाव कहकर आस्रव लिया है। यह अपने आ गया है। और उपशम, क्षयोपशम,

क्षायिक, उन चार निर्मल पर्यायरूप से पारिणामिक। वह मलिन पर्यायरूप से पारिणामिक। निमित्त की अपेक्षा लें तो कर्म के निमित्त बिना चार होते नहीं, ऐसा भी कहा जाता है। उसका निमित्तपना सिद्ध करना है न? पंचास्तिकाय में आया ५८ गाथा में आया न? ५८ में।

मुमुक्षु : वह भावना क्यों....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त की अपेक्षा से कथन है। ... थी, उसका अभाव हुआ है। वस्तु के स्वभाव में भाव या अभाव कुछ है नहीं। इसलिए उसे परमपारिणामिकभाव कहो। उसको निमित्त की अपेक्षा से उदय, उपशम, क्षयोपशम कहा, इसकी अपेक्षा से पारिणामिक पर्याय कहा। जिस स्थान में जो अपेक्षा जिसके आश्रय की बात चलती हो, उस प्रकार से उसे समझना चाहिए। कहो, समझ में आया ?

सभी जीव शुद्ध पारिणामिक परमभाव... समझ में आया ? 'शुद्धपारिणामिक-परमभावग्राहकेण' संस्कृत टीका में इतना शब्द पड़ा है। 'तथा ते जीवाः' ऐसा लिया है। 'तथा ते जीवाः' अर्थात् सब उसमें आ गया। वे भेद किये सही न, इसलिए फिर सब नहीं लिये। 'तथा ते जीवाः शुद्धपारिणामिक' अर्थात् सब जो कहे—स्थावर, एकेन्द्रिय, बादर, निगोद। 'शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शक्त्यपेक्षया केवलज्ञानादिगुण-रूपास्तेन कारणेन स एव जीवराशिः यद्यपि व्यवहारेण कर्मकृतस्तिष्ठति तथापि निश्चयनयेन शक्तिरूपेण परमब्रह्मस्वरूपमिति' आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए यद्यपि यह जीव-राशि व्यवहारनयकर कर्माधीन है,... पर्याय निमित्ताधीन होती है। उसमें वह एक धर्म है। गुण में एक ईश्वर शक्ति नाम का गुण है। ईश्वर शक्ति नाम का जीव में पर्याय धर्म है। साधक जीव भी... आते हैं न ४७ नय? साधक सम्यग्दृष्टि भी अपनी पर्याय में ऐसा जानता है कि मुझमें एक उसके आधीन होने का मेरा अपना धर्म है। वह आधीन कराता नहीं। ईश्वरनय है। ईश्वरनय है न? समझ में आया? यह तो आधीन शब्द वह है। ईश्वरनय। ईश्वरनय से। देखो, यहाँ साधक जीव की बात चलती है। साधक जीव को एक समय की पर्यायों में कि द्रव्य भले उसे यह

धर्म जानता है कि जिस समय में वहाँ काल नय से मोक्ष कहा, वह भी एक धर्म है और अकाल में मोक्ष कहा, वह भी उसी समय में एक धर्म है। आगे-पीछे नहीं।

मुमुक्षु : एक ही रूप और दो नय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दो नय से कथन है। उसमें सब आगे-पीछे बात आ गयी। कल व्याख्यान स्पष्ट आ गया। वह ... बहुत वर्ष से थे और नियत-अनियत धर्म भी एक समय में दोनों हैं। उसकी—विकृत की अपेक्षा से अनियत धर्म कहते हैं, अविकृत स्वभाव की अपेक्षा से उसी काल में, उसी समय में उसे नियतनय से स्वभावनय कहते हैं। नियतनय से निश्चय स्वभाव कहते हैं। उसी और उसी को। एक समय के धर्म की बात है यह। ऐसा उसी समय में सम्यग्दृष्टि अपने को ईश्वरनय से परतन्त्रता भोगनेवाला है। ऐसा मेरा धर्म है। मेरी योग्यता का धर्म मेरी पर्याय का है। मैं निमित्ताधीन होता हूँ, ऐसा परतन्त्र होने का मेरा अपना मुझमें धर्म है। किसी बात का प्रश्न है नहीं। ईश्वरनय से परतन्त्र। धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले... यह एक धर्म है। यह अनन्त धर्मों में से... है न अन्त में ? यह सब धर्म हैं। समझ में आया ? पहले से लिया है न, देखो न ! शुरुआत में कहा है न ?

‘प्रथम तो आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता एक द्रव्य है। क्योंकि अनन्त धर्मों में व्यापनेवाले अनन्त नय, उनमें व्यापनेवाला श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाण, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा आत्मा प्रमेय होता है।’ पर्याय में वर्तमान श्रुतज्ञान उसे, अनन्त धर्म को श्रुतज्ञान प्रमाण में देखता है। एक नय एक धर्म को देखता है और श्रुतज्ञान सबको देखता है। एक समय में, हों ! जीव को। उसकी यहाँ बात शुरु करके यह बात ली है। अर्थात् ईश्वरनय भी मेरा एक धर्म है। एक नय ऐसा देखता है और सभी नय ईश्वर पराधीन होता हूँ, ऐसा मेरा धर्म। अनीश्वर, पराधीन न होऊँ, ऐसा मेरा धर्म। वह अनीश्वर। यह ३५ (वाँ नय)। ईश्वर ३४वाँ (नय)। वह भी मेरा धर्म। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि अपनी पर्याय में ऐसा धर्म श्रुतज्ञानप्रमाण द्वारा अनन्त को देखता है। और एक नय से एक को देखता है। वस्तु में तो एक समय में सभी धर्म हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह बड़ा विवाद, यह समझे बिना का चलता है।

पाठ देखे मध्यस्थ से, शान्ति से कि यह क्या कहते हैं यह ? समझे ? पीछे नदी का दृष्टान्त दिया है न समुद्र का और सबका ? वह एक समय में सब धर्म साधक जीव को है। कर्तृत्वनय का धर्म भी पर्याय का साधकजीव को है। क्योंकि वह रागरूप परिणमता है, ऐसा धर्म ज्ञानी स्वयं जानता है कि यह पर्याय, यह धर्म मेरा है और उसी ससमय में अकर्तृत्व धर्म है, उसे जानना... परन्तु उसी समय में मेरा धर्म है। कर्तृत्व पहला और अकर्तृत्व बाद में, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? लो, यह अपने 'नय प्रज्ञापन' पुस्तक आ गयी। बहुत सरस स्पष्ट किया है। आत्मप्रसिद्धि हो गयी। अब यह नया शक्तियों का वर्णन हो गया है। अब ... निकले तब खबर। क्योंकि अभी तो यह और वापस चला न, यह क्या कहा जाता है तुम्हारा ? कलशटीका। यह गुजराती कलशटीका चलती है न यह ? वह तो और शक्ति का आवे तब सही। भाई तो यह कह गये हैं न अपने मनसुखभाई पालेजवाले। कहो, समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो आत्मा कौन है और किस प्रकार से प्राप्त किया जाता है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो (उसका उत्तर) कहा गया है और फिर से कहते हैं कि आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य द्वारा व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता स्वामी एक द्रव्य है। यहाँ पर्यायसहित, हों! क्योंकि अनन्त धर्मों में व्याप्त होनेवाले जो अनन्त नय.... एक समय में, हों! उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाणपूर्वक स्वानुभव द्वारा वह प्रमेय हो सकता है।

मुमुक्षु : ऐसे श्रुतज्ञान द्वारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे श्रुतज्ञान द्वारा। एक नय से देखो तो भी अन्दर देख और व्यवहारनय से देखो तो भी वह अन्दर में देख। यह पूरी शैली बहुत अलौकिक बात है। यह तो शास्त्र और अमृतचन्द्राचार्य अर्थात् केवली के पेट खोलकर रखे हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो अपने ईश्वर (नय) की बात थी। ईश्वरनय से आत्मद्रव्य, ऐसा एक धर्म वर्तमान है कि एक नय मेरा धर्म परतन्त्ररूप से मैं होता हूँ, वह मेरे धर्म से होता हूँ। ऐसा ज्ञानी अपनी पर्याय में धर्म को देखता है। वह देखकर भी वापस द्रव्य में नजर जाये।

अनिश्वरनय से तो स्वतन्त्रता भोगनेवाला है। हिरण को स्वच्छन्दता से फाड़कर खानेवाले सिंह की भाँति। दृष्टान्त। ऐसी स्वतन्त्रता... मैं स्वयं स्वतन्त्र पर के आधीन न होऊँ, ऐसा भी मेरा एक धर्म है। वह भी उसी समय में धर्म है। आगे-पीछे के काल में नहीं। दूसरे जीव को और इस जीव को, ऐसा नहीं। एक ही जीव को एक ही समय में वह भी यहाँ साधक, साधक जीव की बात है, हों! वरन कर्तृत्वनय सदा रहता हो तो सिद्ध नहीं हो सकता। परन्तु साधक जीव है, सम्यग्दृष्टि है, अभेद की दृष्टि है। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है प्रवचनसार में। दृष्टिप्रधान समयसार में। इसलिए वहाँ शक्ति का वर्णन किया, यहाँ नय का पर्यायधर्म वर्णन किया। यहाँ ज्ञानप्रधान में। इसलिए सम्यग्दृष्टि अपने अभेद दृष्टि से देखने पर... पर्याय में ऐसा मेरा भिन्न-भिन्न धर्म एक समय में है, ऐसा श्रुतज्ञान प्रमाण द्वारा एकसाथ देखता है। देखकर वापस द्रव्य में दृष्टि जाती है। एक नय एक-एक धर्म को देखता है। यह पीछे है। (प्रवचनसार) पूरा होता है न (तत्पश्चात् परिशिष्ट में है)।

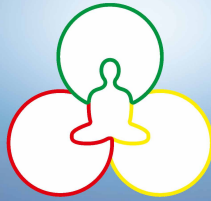
देखो, 'स्यात्कार सिंह के आवास के वश वर्तते नयसमूह द्वारा देखे तो भी और प्रमाण द्वारा देखे तो भी स्पष्ट अनन्त धर्मोंवाले निज आत्मद्रव्य को अन्दर में शुद्ध चैतन्यमात्र देखता है।' यह अन्तिम कलश है उसका। समझ में आया? अर्थात् आत्मा उदय में भी अपने कारण से ही सम्यग्दृष्टि पराधीन होकर परिणमता है। यह मेरी योग्यता का धर्म है। उसका नहीं—कर्म का नहीं। ऐसा वर्णन किया है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं **व्यवहारनयकर कर्माधीन है,...** कर्माधीन है अर्थात् स्वयं अपने कारण से आधीन होता है। अभी आयेगा। फिर अग्नि का दृष्टान्त देंगे। **तो भी निश्चयनयकर शक्तिरूप परमब्रह्मस्वरूप है।** भगवान परम आनन्दस्वरूप है, परमब्रह्मस्वरूप है। सब भगवान परम आनन्दस्वरूप है। अर्थात्? अकेला आनन्द, ऐसा नहीं। सब आनन्दस्वरूप, वह दुःख का भाव छोड़ना है न, जीवों को सुख चाहिए है न? इसलिए इस अपेक्षा से सब भगवान परम आनन्दस्वरूप है, हों! आनन्द चाहिए हो तो वहाँ नजर कर। कहीं अन्यत्र आनन्द मिले, ऐसा नहीं है। **इन जीवों को ही परमविष्णु कहना,...** इनको परमविष्णु कहना। जगत में सर्व व्यापक कोई है, ऐसा है नहीं।

परमशिव कहना चाहिए। यही अभिप्राय लेकर कोई एक ब्रह्ममयी जगत कहते हैं, कोई एक विष्णुमयी कहते हैं, कोई एक शिवमयी कहते हैं। यहाँ पर शिष्य ने प्रश्न किया, कि तुम भी जीवों को परब्रह्म मानते हो, तथा परमविष्णु, परमशिव मानते हो, तो अन्यमतवालों को क्यों दूषण देते हो ?

उसका समाधान—हम तो पूर्वोक्त नयविभागकर केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा वीतराग सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से... वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग से, जीवों को ऐसा मानते हैं,... पर्याय को लक्ष्य में मानकर, भेद को लक्ष्य में मानकर हम यह पूर्ण स्वरूप अखण्डानन्द सबका एकरूप है, इस प्रकार हम मानते हैं। वे कहते हैं, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं। समझ में आया ? तो दूषण नहीं है। इस तरह वे नहीं मानते हैं। इस प्रकार अनन्त जीवों को पर्याय में भेद है, वस्तु भिन्न-भिन्न है, ऐसा न जानकर एक ही सबको कहते हैं, इसलिए दूषण देते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



: प्रकाशक :

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

विले पार्ल, मुंबई

www.vitragvani.com